माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

उमा कुमारी

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (S) No. 4146 of 2010. Decided on 20th January, 2011.

सेवा विधि–नियुक्ति–महिला पर्यवेक्षक का पद–नियुक्ति पत्र को इस आधार पर रोका जाना कि जब याची को आंगनबाड़ी सेविका के तौर पर नियुक्त किया था वह 18 वर्ष से कम उम्र की थी–न तो राज्य प्राधिकारियों द्वारा कोई आपत्ति उठायी गयी थी और न ही याची को कोई कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था कि आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए वह विधिक रूप से अर्हित नहीं थी–महिला पर्यवेक्षक का पद बिल्कुल भिन्न, सुभिन्न, पृथक और स्वतंत्र पद है–जब एक बार चयन प्रक्रिया समाप्त हो जाती है और किसी विशेष पद के लिए उम्मीदवार का चयन कर लिया जाता है, कोई नयी कसौटी नहीं जोड़ी जा सकती है ताकि याची के चयन को विफल किया जा सके–महिला पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने का याची हकदार है–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 7)

निर्णयज विधि.–2002(1) JCR 301—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Manoj Tandon, Kumari Rashmi, Shiv Shankar Kumar, For the Petitioner; J.C. to G.P. IV, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि वर्तमान याचिका महिला पर्यवेक्षक के पद पर याची को नियुक्ति पत्र निर्गत न करने में प्रत्यर्थीगण की ओर से अकर्मण्यता के कारण दाखिल की गयी है इस आधार पर कि जब याची को आंगनबाड़ी सेविका के तौर पर नियुक्त किया गया था वह 18 वर्ष से कम उम्र की थी।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याची को आरंभ में आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था। उसने अनेक वर्ष तक उक्त पद पर काम किया था और तत्पश्चात, महिला पर्यवेक्षक के अन्य पद के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा एक नया विज्ञापन प्रकाशित किया गया था। महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए दिनांक 13 नवम्बर, 2007 को आवेदन आमंत्रित किए गए थे। याची ने उक्त पद के लिए आवेदन दिया और याची महिला पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए सम्यक् रूप से पात्र और अर्हित थी। विज्ञापन याचिका के मेमो के परिशिष्ट-1 पर है। तत्पश्चात, याची प्रत्यर्थीगण द्वारा ली गयी समस्त परीक्षाओं में सफल उम्मीदवार थी। याची को महिला पर्यवेक्षक के रूप में भी चयनित किया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि याची को नियुक्ति पत्र नहीं दिए जाने का एकमात्र कारण यह बताया गया है कि जब याची को किसी अन्य पद अर्थात् आंगनबाड़ी सेविका के पद पर नियुक्त किया गया था, वह 18 वर्ष से कम आयु की थी। वस्तुतः विज्ञापन को देखते हुए महिला पर्यवेक्षक के चयन के लिए ऐसी कोई शर्त संलग्न नहीं थी अथवा ऐसी कोई पात्रता अथवा मापदंड संलग्न नहीं था। महिला पर्यवेक्षक के पद पर चुने जाने के लिए आवेदकों के लिए एकमात्र आवश्यकता यह है कि आवेदक को आंगनबाड़ी सेविका होना चाहिए और कि उम्मीदवार के पास आंगनबाड़ी सेविका के रूप में दस वर्षों का कार्यानुभव होना चाहिए यदि उम्मीदवार किसी विषय का स्नातक है अथवा यदि उम्मीदवार मैट्रिकुलेट है, उसके पास आंगनबाड़ी सेविका के रूप में 15 वर्षों का

अनुभव होना चाहिए। याची प्रथम श्रेणी के अंतर्गत आती है। याची दिनांक 16 नवम्बर, 1991 से आंगनबाड़ी सेविका के रूप में काम कर रही थी और वह मैट्रिकुलेट है और इसलिए महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए आवेदन करने की तिथि पर याची सम्यक रूप से पात्र थी और अर्हित थी क्योंकि उसे वर्ष 1991 में आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था और उसके पास मैट्रिकुलेशन के साथ 15 वर्षों का अनुभव था और, इसलिए, प्रत्यर्थीगण द्वारा दिया गया कारण कि यद्यपि वह अन्यथा पूर्णत: अर्हित और पात्र है और महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए चुनी गयी है, याची को महिला पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि जब उसे आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था, वह 18 वर्ष से कम आयु की थी। इस आधार को मापदंड के रूप में जोड़ा नहीं जा सकता है जब संपूर्ण चयन प्रक्रिया समाप्त हो गयी है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने 2002(1) JCR पृष्ठ 301 में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, विशेषत: उसके पैराग्राफ सं॰ 5 और 6 पर विश्वास किया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन भी किया गया है कि महिला पर्यवेक्षक का पद एक बिल्कुल भिन्न पद है। महिला पर्यवेक्षक का पद आंगनबाड़ी सेविका का प्रोन्नति पद नहीं है और, इसलिए, प्रत्यर्थीगण द्वारा दिया गया कारण कि यद्यपि याची अन्यथा महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए पात्र, अर्हित और चुनी गयी है, उसको नियुक्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि जब उसे आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था, वह 18 वर्ष से कम आयु की थी, विधि में मान्य नहीं है क्योंकि आंगनबाड़ी सेविका का पद बिल्कुल भिन्न और सुभिन्न पद है। यह आधार विधि की दृष्टि में कोई आधार नहीं है। इसके अतिरिक्त, ऐसे मापदंड को बाद में जोड़ा नहीं जा सकता है और इसलिए याची, जिसे पहले ही सक्षम प्रत्यर्थी-प्राधिकारीगण द्वारा चयनित किया जा चुका है, को महिला पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त करने के लिए प्रत्यर्थीगण को इस न्यायालय द्वारा परमादेश रिट जारी किया जाए।

4. मैंने प्रत्यर्थीगण राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना है, जिन्होंने निवेदन किया है कि याची को आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था और उसकी आयु 18 वर्ष से कम थी और, इसलिए, याची को महिला पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता है यद्यपि प्रत्यर्थीगण द्वारा नियुक्त समुचित कमिटि द्वारा महिला पर्यवेक्षक के रूप में प्रत्यर्थी-प्राधिकारीगण द्वारा चुना गया है और इसलिए उसे नियुक्त नहीं किया गया है।

5. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से इस रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है:-

(i) वर्तमान याची दिनांक 16 नवम्बर, 1991 के प्रभाव से आंगनबाड़ी सेविका के रूप में ईमानदारी, निष्कपटता और तत्परता और प्रत्यर्थीगण की संतोषानुसार काम कर रही थी। राज्य प्राधिकारीगण द्वारा कभी कोई आपत्ति नहीं उठायी गयी थी कि आंगनबाड़ी सेविका के रूप में उसकी नियुक्ति अवैध थी। प्रत्यर्थीगण द्वारा याची को कभी कोई कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था कि जब उसे आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था, वह आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त होने के लिए विधित: अर्हित नहीं थी। अत: वह दिनांक 16 नवम्बर, 1991 के प्रभाव से प्रत्यर्थीगण की पूरी जानकारी के साथ आंगनबाड़ी सेविका के रूप में 15 वर्षों से अधिक की अवधि के लिए काम रही थी।

(ii) मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि दिनांक 13 नवम्बर, 2007 को महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए सार्वजनिक विज्ञापन जारी किया गया था। उक्त सार्वजनिक विज्ञापन याचिका का ज्ञापन परिशिष्ट-1 है।

महिला पर्यवेक्षक का यह पद बिल्कुल भिन्न, सुभिन्न पृथक, और स्वतंत्र पद है। महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए पात्रता मापदंड आंगनबाड़ी सेविका के रूप में 10 वर्षों का अनुभव है, यदि उम्मीदवार स्नातक है अथवा आंगनबाड़ी सेविका के रूप में 15 वर्षों का अनुभव है यदि उम्मीदवार मैट्रिकुलेट है। याची दूसरे मापदंड में आती है।

(iii) यह प्रतीत होता है कि दिनांक 3 नवम्बर 2007 के सार्वजनिक विज्ञापन के अनुसरण में याची ने महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए आवेदन दिया क्योंकि उसके पास समुचित अर्हता और पात्रता पहले से थी। तत्पश्चात, चयन प्रक्रिया से गुजरने के बाद याची को महिला पर्यवेक्षक के रूप में चुना गया था।

(iv) मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची को नियुक्ति केवल इस कारण से नहीं दी गयी है कि जब याची को आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था, उसने 18 वर्ष की आयु को पूरा नहीं किया था। प्रत्यर्थीगण द्वारा याची को आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था, उसने 18 वर्ष की आयु को पूरा नहीं किया था। प्रत्यर्थीगण द्वारा याची को यह कारण नहीं दिया जा सकता है। सार्वजनिक विज्ञापन में ऐसा कोई मापदंड इंगित नहीं किया गया था। संपूर्ण चयन प्रक्रिया समाप्त हो चुकी है। याची महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए संपूर्ण चयन प्रक्रिया से गुजरी है। उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित करता हुआ दिनांक 13 नवम्बर, 2007 के सार्वजनिक विज्ञापन, जो परिशिष्ट–1 पर है, को देखते हुए प्रतीत होता है कि महिला पर्यवेक्षक का पद आंगनबाडी सेविका के पद से बिल्कुल भिन्न है। यह आंगनबाड़ी सेविका का प्रोन्नति पद नहीं है और एक बिल्कुल नए पद के लिए सार्वजनिक विज्ञापन जारी किया गया था। याची ने आवेदन दिया था और तत्पश्चात चुनी गयी थी और अब चयन प्रक्रिया समाप्त हो जाने के बाद प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई नया मापदंड जोड़ा नहीं जा सकता है।

(v) प्रत्यर्थीगण द्वारा याची को कोई कारण नहीं दिया गया है कि क्यों महिला पर्यवेक्षक के रूप में उसके चयन के बाद उसे नियुक्ति नहीं दी गयी है। याची को पूर्ण अंधेरे में रखा गया था और इसलिए वह रिट याचिका दाखिल करने के लिए मजबूर की गयी है। अब प्रतिशपथ पत्र में कारण दिया जा रहा है कि बाद में एक और मापदंड जोड़ा गया था।

(vi) डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 3527 वर्ष 2008 में दिनांक 15 जनवरी, 2010 के आदेश के तहत इस न्यायालय द्वारा एक समरुप याचिका विनिश्चित की गयी थी जिसमें इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि बाद में अर्थात् चयन प्रक्रिया समाप्त हो जाने के बाद प्रत्यर्थीगण द्वारा जोड़ा गया मापदंड विधि की दृष्टि में अनुज्ञेय नहीं है।

(vii) महाराष्ट्र राज्य पथ निगम एवं अन्य बनाम राजेन्द्र भीम राव मांडवे एवं अन्य, 2002 (1) JCR पृष्ठ 301, में प्रकाशित मामले में, विशेषतः पैराग्राफ सं० 5 और 6 में जिसके प्रासंगिक अंश निम्नलिखित है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है:

"5. .....इसके बजाय उच्च न्यायालय को यह घोषणा करने की छूट होगी कि आवेदन प्राप्त करने के लिए नियत अंतिम तिथि के बहुत बाद और चयन प्रक्रिया के मध्य में (चूँकि इस मामले में ड्राइविंग परीक्षा दिनांक 27.11.1995 को संचालित की गयी कथित की गयी थी) चयन के लिए उम्मीदवार की मेधा अथवा ग्रेड के एकमात्र निर्णायक के रूप में दिनांक 24.4.1996 के परिपत्र द्वारा नियत करने के लिए इप्सित मापदंड को विचाराधीन चयन पर लागू नहीं किया जा सकता है और उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस न्यायालय द्वारा बार–बार यह अभिनिर्धारित किया गया

है कि खेल के नियम अर्थात् चयन का मापदंड संबंधित प्राधिकारीगण द्वारा चयन प्रक्रिया के आरंभ हो जाने के मध्य में अथवा बाद में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

6. हमने अभिनिर्धारित किया है कि दिनांक 24.4.1996 के परिपत्र आदेशों दिनांक 20.9.1995 को जारी विज्ञापन के अनुसरण में किए गए प्रश्नगत चयन के प्रति प्रासंगिक अथवा प्रयोज्य नहीं होंगे।'' *(जोर दिया गया)*

(viii) पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में भी जब एक बार चयन प्रक्रिया समाप्त हो जाती है और किसी पद विशेष के लिए उम्मीदवार चुन लिया जाता है, वर्तमान याची के चयन को विफल करने के लिए राज्य प्राधिकारीगण द्वारा कोई नया मापदंड जोड़ा नहीं जा सकता है।

6. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं के समेकित प्रभाव के कारण याची महिला पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए हकदार है और प्रत्यर्थीगण द्वारा दिया गया कारण विधि की दृष्टि में वैध कारण नहीं है और इसे एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है और मैं तात्कालिक प्रभाव से वर्तमान याची को महिला पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त करने का निर्देश संबंधित प्रत्यर्थीगण-राज्य अथवा किसी अन्य ऐसे प्राधिकारी विशेषत: प्रत्यर्थी सं॰ 2 को देता हूँ।

7. तद्नुसार, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

सिद्धेश्वर प्रसाद विद्यार्थी

बनाम

सेन्ट्रल कोलफील्ड्स लि॰ एवं अन्य

W.P. (S) No. 5646 of 2010. Decided on 10th January, 2011.

सेवा विधि–सेवा लाभ–प्रोन्नति के अस्वीकरण एवं दाण्डिक मामले में दोषसिद्धि के आधार पर अन्य लाभ–प्रोन्नत्ति दिए जाने के उद्देश्य से, सी॰ आर॰ निगरानी निर्बाधन एवं विभागीय निर्बाधन को विचार में लिया जाना है–चूँकि याची दोषसिद्ध था, वह निगरानी एवं विभाग दोनों से निर्बाधन पाने के लिए अर्हितन नहीं था–प्रकृति में सानुग्रह पूर्व राशि कार्यपालन से जुड़ी प्रोत्साहन है–याची सेवानिवृत्ति तक निलम्बन के कारण अवकाश अर्जित नहीं किया है–आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं–याचिका खारिज। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Atanu Banerjee, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में, याची ने निदेशक (कार्मिक) सेन्ट्रल कोलफील्डस लिमिटेड द्वारा जारी दिनांक 9.29.6.2010 के आदेश के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है जिसके द्वारा याची को प्रोन्नति, अनुग्रहपूर्वक दी गयी राशि, अवकाश नगद के भुगतान और दांडिक किराया की वापसी का हकदार अभिनिर्धारित नहीं किया गया है।

2. यह कथन किया गया है कि याची प्रत्यर्थीगण की सेवा में था। याची को अभिकथित रूप से ठेकेदार से घूस लेते रंगे हाथों पकड़ा गया था और उक्त अभिकथन के लिए एक दांडिक मामला संस्थापित किया गया था और दिनांक 2 सितम्बर, 1978 को याची को अभिरक्षा में लिया गया था। बाद में याची को विशेष केस सं॰ 17 वर्ष 1978 में विशेष न्यायालय, सी॰ बी॰ आई॰, पटना द्वारा विचारित किया गया

था और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराएँ 5 (1) और 5 (2) और भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के अधीन आरोप का दोषी पाया गया था। उसकी दोषसिद्धि के बाद उसे विभाग द्वारा भी आरोप-पत्र जारी किया गया था।

3. याची ने अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील दाखिल किया और आरोप-पत्र का उत्तर दिया। याची की अपील अनुज्ञात की गयी थी और पटना उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 7.8.1998 के निर्णय द्वारा उसकी दोषसिद्धि अपास्त कर दी गयी थी। किन्तु, अपील के लंबित रहने के दौरान, याची ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त की और दिनांक 31.1.1994 को सेवानिवृत्त हो गया।

4. दोषसिद्धि के निर्णय को अपास्त किए जाने के बाद याची ने अवधि, जब उसे अभिरक्षा और उक्त दांडिक मामले के आधार पर निलंबन के अधीन किया गया था, के लिए अपने वेतन का दावा किया था और प्रत्यर्थीगण ने इसे स्वीकार किया था और उक्त अवधि के लिए उसके वेतन का भुगतान किया था। किन्तु, याची को उसकी प्रोन्नति, सानुग्रहपूर्व राशि, अवकाश नगद के भुगतान, आदि से इनकार किया गया था। याची ने अभ्यावेदन दाखिल किया था जिसे दिनांक 9/29.6.2010 के आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-10) द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण ने कारण दर्ज करते हुए याची के दावे को अस्वीकार कर दिया है। याची के अनुसार, याची के उक्त दावा से इनकार करने के लिए दिए गए कारण पूर्णत: मनमाना और अवैध हैं। जब एकबार निलम्बन की अवधि के लिए वेतन भुगतान करके याची की सेवाओं को नियमित समझा गया था, वह प्रोन्नति, सानुग्रह राशि, अवकाश नगद एवं अन्य लाभों का भी हकदार था।

5. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची के प्रोन्नति, सानुग्रहपूर्ण राशि, अवकाश नगद के भुगतान एवं अन्य लाभों के लिए याची के दावा से इनकार करता निदेशक (कार्मिक) द्वारा पारित आदेश स्व-कथन करता और सकारण आदेश है। दांडिक मामले में अभिरक्षा में लिए जाने के बाद याची को निलंबन के अधीन रखा गया था और विचारण न्यायालय द्वारा उसे दोषसिद्ध किया गया था। बाद में, अपील में याची को दोषमुक्त किया गया था किन्तु इस बीच दिनांक 31.1.1994 को याची सेवानिवृत्त हो गया था। अत: याची प्रोन्नति पाने का हकदार नहीं है। यह निवेदन किया गया है कि कैडर योजना और प्रोन्नति प्रक्रिया के मुताबिक उच्चतर ग्रेड में प्रोन्नति न केवल वरीयता पर बल्कि मेधा पर भी आधारित है। डी॰ पी॰ सी॰ ने अनुशंसा करने के पहले गोपनीय/मूल्यांकन रिपोर्ट सहित इसके समक्ष प्रस्तुत समस्त प्रासंगिक सूचनाओं पर विचार किया था। चूँकि याची दिनांक 2.9.1978 से दिनांक 7.3.1984 तक निलम्बन के अधीन था, उसके सी॰ आर॰ ने सी॰ बी॰ आई॰ मामला को परिलक्षित किया होगा। इसके अलावा, डी॰ पी॰ सी॰ में मामला पर विचार करने के लिए निगरानी निर्बाधन और विभागीय निर्बाधन भी कसौटी का हिस्सा निर्मित करेगा। याची दोषसिद्ध होने के नाते निगरानी और विभाग से निर्बाधन पाने के लिए अर्हित नहीं था। सानुग्रहपूर्व राशि का भुगतान प्रोत्साहन और कार्यपालन से संबंधित है। चूँकि याची दिनांक 12.9.1978 से निलम्बन वापस लिए जाने के तिथि तक निलम्बन के अधीन था, उक्त अवधि के दौरान उससे कोई सेवा नहीं ली गयी थी और चूँकि कार्यपालन नहीं हुआ था, याची सानुग्रहपूर्व राशि पाने का हकदार नहीं था जो कार्यपालन से जुड़ा प्रोत्साहन है। याची अवकाश नगद पाने का हकदार भी नहीं है क्योंकि अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि तक याची निलम्बन के अधीन था और निलम्बन अवधि के लिए अवकाश अर्जित नहीं किया था।

6. मैंने विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और सामग्रियों पर विचार किया है और याची के दावा से इनकार करते हुए निदेशक (कार्मिक) द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का परिशीलन किया है। मैं पाता हूँ कि याची को निलम्बन के अधीन रखा गया था

क्योंकि उसे दिनांक 12.9.1978 को दांडिक मामले के संबंध में अभिरक्षा में लिया गया था और वह दिनांक 31.1.1994 तक अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि तक निलम्बन के अधीन बना रहा। प्रत्यर्थी ने कारण बताया है कि दांडिक मामले में याची की अंतर्ग्रस्तता के कारण और दोषसिद्ध होने के नाते वह प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने का हकदार नहीं था क्योंकि कंपनी नियमावली के अनुसार प्रोन्नति दिए जाने के उद्देश्य से सी॰ आर॰, निगरानी निर्बाधन और विभागीय निर्बाधन को विचार में लिया जाना है। चूँकि याची दोषसिद्ध था, वह निगरानी और विभाग दोनों से निर्बाधन पाने के लिए अर्हित नहीं था। उन्होंने आगे विचार किया है कि सानुग्रह पूर्व राशि कार्यपालन से जुड़ी प्रोत्साहन है किन्तु याची निलम्बन के अधीन था। इसी प्रकार, उन्होंने यह विचार भी किया है कि याची दिनांक 2.9.1978 से दिनांक 31.1.1994 को अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि तक निलम्बन के अधीन था और इस प्रकार उसने अवकाश अर्जित नहीं किया था। उन्होंने अन्य दावों पर विचार किया है और तर्कसंगत आदेश पारित किया है। निदेशक (कार्मिक) का आदेश सुविचारित है और तर्कसंगत कारण द्वारा समर्थित है।

7. अत: मैं आदेश में कोई अवैधता अथवा मनमानापन नहीं पाता हूँ। इस प्रकार, रिट याचिका में गुणागुण नहीं है और तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

श्रीमती ओमलता देवी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 289 of 2009. Decided on 20th January, 2011.

सेवा विधि–सेवा समाप्ति–याची को आंगनबाड़ी सेविका के रूप में नियुक्त किया गया था–सुनवाई का अवसर दिए बिना उसकी सेवा को डेढ़ साल बाद समाप्त कर दिया गया था–आक्षेपित आदेश में कोई कारण नहीं दिया गया था–प्रति शपथ पत्र के जरिए कोई कारण नहीं दिया जा सकता है–आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के उल्लंघन में है–इसके अतिरिक्त, जब कभी कर्मचारी की सेवा समाप्त करते हुए प्रत्यर्थीगण द्वारा किसी दस्तावेज पर विश्वास किया जाता है–ऐसे दस्तावेज की प्रति उस व्यक्ति को दिया जाना चाहिए जिसकी सेवाएँ समाप्त कर दी गयी है–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैराएँ 2 से 4)

अधिवक्तागण.–M/s Rajeeva Sharma, Rita Kumari, For the Petitioner; J.C. to G.P.-II, For the State.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका दिनांक 31 दिसम्बर, 2009 के आदेश के तहत जो याचिका के मेमो का परिशिष्ट-2 है, प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा याची की सेवाओं की समाप्ति के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए:–

(i) यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची को गाँव कौटिया बिद्रा के आंगनबाड़ी सेविका के तौर पर नियुक्त किया गया था और तत्पश्चात, याची ने डेढ़ वर्ष तक काम किया है और कोई नोटिस दिए बिना और सुनवाई का अवसर दिए बिना दिनांक 31

दिसम्बर, 2008 के आदेश, परिशिष्ट–2, के माध्यम से प्रत्यर्थी सं० 5 द्वारा याची की सेवाएँ समाप्त कर दी गयी है।

इस प्रकार, नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का घोर उल्लंघन हुआ है।

(ii) प्रति शपथ पत्र से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट–D के मुताबिक संबंधित प्रत्यर्थी द्वारा जाँच संचालित की गयी थी।

यह प्रतिवाद इस न्यायालय द्वारा मुख्यत: इस कारण से भी स्वीकार नहीं किया गया है कि परिशिष्ट–2 पर के आदेश को देखते हुए प्रतीत होता है कि आक्षेपित आदेश में कोई कारण नहीं दिया गया है। परिशिष्ट–2 पर आक्षेपित आदेश एक पूर्णत: कारणरहित आदेश है। प्रतिशपथ पत्र के जरिए कोई कारण नहीं दिया जा सकता है अन्यथा समस्त कारण–रहित आदेशों को बाद के चरणों पर वैध और सकारण आदेश में बदल दिया जाएगा।

पुलिस कमिश्नर, बॉम्बे बनाम गोरधनदास भानजी, AIR (39)1952 SC 16 में प्रकाशित मामले के पैराग्राफ 9 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:

"9. कमिश्नर के शपथ पत्र को निर्दिष्ट करते हुए यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि यह वस्तुत: उसके द्वारा दिया गया रद्दकरण का आदेश था और कि आदेश उसका आदेश था और न कि सरकार का। हमें स्पष्ट है कि सांविधिक प्राधिकार के प्रयोग में सार्वजनिक रूप से दिए गए लोक आदेशों का अर्थ आदेश देने वाले अधिकारी द्वारा दिए गए पश्चातवर्ती स्पष्टीकरणों कि उसका अर्थ क्या था अथवा उसके दिमाग में क्या था अथवा उसका आशय क्या करने का था, के प्रकाश में नहीं लगाया जा सकता है। लोक प्राधिकारीगण द्वारा दिए गए लोक आदेशों का सार्वजनिक प्रभाव होता है और वे उनके, जिन्हें उनको संबोधित किया गया है, आचरण और कार्रवाई को प्रभावित करने के लिए आशयित है और उनका अर्थ स्वयं आदेश में प्रयुक्त भाषा के प्रति निर्देश में वस्तुपरक रूप से लगाया जाना होगा।''

पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में, प्रति शपथ पत्र में बाद में दिए गए कारण आक्षेपित आदेश को न्यायोचित ठहराने में मदद नहीं करते हैं यदि आक्षेपित आदेश कारणरहित आदेश है और याची को सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया गया है।

(iii) प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट–D पर दिए गए जाँच रिपोर्ट को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि तथाकथित और अभिकथित जाँच भी एकपक्षीय जाँच थी और याची को नोटिस दिए बिना और उसे सुने बिना संचालित किया गया था।

कुछ अज्ञात व्यक्तियों द्वारा अभिकथनों को किया गया था और कोई नोटिस दिए बिना अथवा सुनवाई किए बिना प्रत्यर्थीगण द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों को सिद्ध पाया गया है।

यह भी नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का घोर उल्लंघन है।

(iv) यद्यपि प्रत्यर्थीगण किसी प्राधिकारी द्वारा दिए गए रिपोर्ट, जो प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट–D पर है, पर विश्वास कर रहे हैं, ऐसे रिपोर्ट की एक प्रति कभी भी याची को नहीं दी गयी थी।

जब कभी भी किसी कर्मचारी की सेवा को समाप्त करते हुए प्रत्यर्थीगण द्वारा किसी दस्तावेज पर विश्वास किया जाता है, ऐसे दस्तावेज की प्रति उस व्यक्ति, जिसकी सेवाओं को समाप्त किया जा रहा है, को दिया जाना चाहिए।

वर्तमान मामले के तथ्यों में, प्रतिशपथ पत्र के परिशिष्ट-D पर दिए गए तथाकथित रिपोर्ट को राज्य प्राधिकारीगण द्वारा प्रति शपथ पत्र में पहली बार प्रकट किया जा रहा है। किसी न्यायोचित कारण के बिना, इस दस्तावेज को प्रत्यर्थीगण द्वारा गोपनीय रिपोर्ट के रूप में रखा गया है।

3. पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों के समेकित प्रभाव के कारण, मैं एतद् द्वारा दिनांक 31 दिसम्बर, 2009 को प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा पारित आदेश, को जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-2 पर है, को अभिखंडित एवं अपास्त करता हूँ। किन्तु, विधि के अधीन स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण करने के बाद और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण करने के बाद याची के विरुद्ध कार्रवाई आरंभ करने, यदि वे ऐसा करना चुनते हैं, को स्वतंत्रता प्रत्यर्थीगण को दी जाती है।

4. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के साथ निपटायी जाती है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

राजनाथ सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 3771 of 2009. Decided on 17th January, 2011.

सेवा विधि–वसूली–याची के वेतनमान के गलत नियतिकरण के आधार पर याची को अभिकथित रूप से भुगतान की गयी आधिक्य राशि की वसूली का निर्देश–पेंशन नियमावली के नियम 43 (b) के अधीन कोई आदेश पारित नहीं किया गया–गलत भुगतान के नाम पर कोई वसूली पूर्णतः अवैध है–याची से वसूल की गयी किसी भी राशि को लौटाना होगा–गलत नियतिकरण के संबंध में अभ्यावेदन दाखिल करने की स्वतंत्रता याची को दी गयी।

(पैराएँ 4 से 7)

निर्णयज विधि.–2008 (1) JCR 5 (Jhr)—Applied.

अधिवक्तागण.–Mr. P.K. Sinha, For the Petitioner; J.C. to G.P. II, For the State.

आदेश

जब इस मामले को सुनवाई के लिए लिया गया था, याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थीगण ने ए॰ सी॰ पी॰ के लाभों को दिया था किन्तु उन्होंने याची का वेतनमान समुचित रूप से नियत नहीं किया था। याची को राशि की तात्पर्यित वसूली के अध्यधीन भी किया गया था, जिसे उसकी सेवा अवधि के दौरान याची के वेतन के गलत नियतिकरण के कारण याची को दिया गया था। यह स्वीकृत मामला है कि याची अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने के बाद प्रत्यर्थीगण की सेवा से दिनांक 31 जनवरी, 2004 को सेवानिवृत्त हुआ है।

2. याची दिनांक 20 अगस्त, 2007 की वसूली के आदेश (परिशिष्ट-4) से व्यथित है, जिसके द्वारा कार्यपालक अभियन्ता राष्ट्रीय बचत, जिनके अधीन याची ने काम किया था, को पूर्व तिथि के प्रभाव से याची के वेतनमान के गलत नियतिकरण के आधार पर याची को अभिकथित रूप से भुगतान की गयी राशि आधिक्य की वसूली करने का निर्देश दिया गया था।

3. उक्त आदेश का समर्थन करते हुए प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रति-शपथ पत्र दाखिल किया गया है। यह कथन किया गया है कि याची दिनांक 20 मार्च, 1983 के प्रभाव से चयनग्रेड में प्रोन्नत किए जाने

का हकदार था किन्तु उसे दिनांक 20 मार्च, 1978 के प्रभाव से गलत रूप से प्रोन्नति और इसके लाभों को दिया गया है। इसी प्रकार उसे सुपर सेलेक्शन ग्रेड में प्रोन्नति दी गई थी, यद्यपि वह इसका हकदार नहीं था।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उसे प्रोन्नति का आदेश विभाग के समक्ष प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया था और उक्त प्रोन्नति पाने के लिए याची द्वारा कोई दुर्व्यपदेशन नहीं था। यह निवेदन किया गया है कि याची द्वारा किसी दुर्व्यपदेशन के बिना सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रोन्नति और इसका लाभ देने के बाद प्रत्यर्थीगण गलत नियतिकरण के बहाने किसी राशि की वसूली नहीं कर सकते हैं और वह भी याची के सेवानिवृत्त होने के बाद। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने **झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम पद्मलोचन कालिंदी एवं एक अन्य (2008)1 JCR 5 (Jhr) (FB),** में अभिनिर्धारित किया है कि याची को गलत रूप से दी गयी वेतनवृद्धि अथवा लाभों की वसूली की अनुमति उसकी सेवानिवृत्ति के काफी समय बाद बिहार/झारखंड पेंशन नियमावली के नियम 43 (b) के अधीन पारित आदेश को छोड़कर नहीं दी जा सकती है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उक्त पेंशन नियमावली के नियम 43 (b) के अधीन कोई आदेश पारित नहीं किया गया है और इस प्रकार गलत भुगतान के नाम पर कोई वसूली पूर्णत: गैरकानूनी और अन्यायोचित है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण ने प्रभावशाली हैसियत में होने के कारण याची से दिनांक 3 अक्टूबर, 2007 को उसकी सेवानिवृत्ति के बाद 65,351/-रुपयों की राशि अवैध रूप से प्राप्त की हैं।

5. जी॰ पी॰ II से विद्वान जे॰ सी॰ ने इस न्यायालय की पूर्णपीठ द्वारा प्रतिपादित विधि की उक्त अवस्था को स्वीकार किया है और उसकी सेवा अवधि के दौरान भुगतान आधिक्य के नाम पर याची से वसूली का निर्देश देने वाले आक्षेपित आदेश का बचाव करने में सफल नहीं हो सके थे।

6. चूँकि यह मामला **झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम पद्मलोचन कालिंदी एवं अन्य (ऊपर)** में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के उक्त निर्णय द्वारा पूरी तरह आच्छादित है, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि गलत नियतिकरण के कारण भुगतान आधिक्य के नाम पर याची से वसूली का आदेश संपोषणीय नहीं है। दिनांक 20 अगस्त, 2007 का आक्षेपित पत्र सं॰ 514 (परिशिष्ट-4) को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। उक्त आधार पर इस बीच याची से वसूल की गयी किसी राशि को इस आदेश की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर याची को वापस लौटना होगा।

7. यदि याची अपने गलत नियतिकरण से व्यथित है, अभ्यावेदन दाखिल करके इसे संबंधित प्राधिकारीगण के ध्यान में लाने की स्वतंत्रता उसे है। यदि उसके द्वारा उस सम्बन्ध में अभ्यावेदन दाखिल किया जाता है, इसे अभ्यावेदन की प्राप्ति की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर निपटाया जाना होगा।

उक्त निबंधनों में यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

मो॰ निसार

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 5739 of 2010. Decided on 20th January, 2011.

सेवा विधि–सेवा समाप्ति–कर्तव्य से लंबी अनुपस्थिति–कारण जिसकी आपूर्ति आक्षेपित आदेश में नहीं की गयी है, को प्रति शपथ पत्र के जरिए कभी नहीं जोड़ा जा सकता है–इस अभिकथन के लिए याची को कोई नोटिस नहीं दिया गया था कि संस्थान जिसने याची को प्रमाण पत्र दिया था अनुमोदित संस्थान नहीं है–याची की अनुपस्थिति का प्रश्न नहीं था–अपने मामले को रखने के लिए याची को कभी कोई अवसर नहीं दिया गया था–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 2 और 3)

निर्णयज विधि.–AIR 1952 SC 16; (1978) 1 SCC 405;—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s R.M. Singh, S. Roy, For the Petitioner; J.C. to G.P.-IV, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा दिनांक 9/10 सितम्बर, 2010 को पारित आदेश, याचिका के मेमो का परिशिष्ट-5 है, के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा वर्तमान याची की सेवाओं को मुख्यतः इस कारण समाप्त कर दिया गया है कि वह दिनांक 9 अगस्त, 2010 से दिनांक 18 सितम्बर, 2010 तक की अवधि के लिए अनुपस्थित था।

2. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखने पर, मैं मुख्यतः निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा दिनांक 9/10 सितम्बर, 2010 को पारित आदेश (परिशिष्ट-5) को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ:

(i) सार्वजनिक विज्ञापन के अनुसरण में, फार्मासिस्ट के पद के लिए वर्तमान याची द्वारा आवेदन दिया गया था और तत्पश्चात् याची को इसी पद पर नियुक्त किया गया था।

(ii) मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि याची को दिनांक 10 अगस्त, 2010 को मूल प्रमाण पत्रों के साथ दस्तावेजों के सत्यापन के लिए बुलाया गया था।

(iii) मामले के तथ्यों से आगे यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची ने उक्त पत्र प्राप्त नहीं किया था और, इसलिए, प्रत्यर्थीगण द्वारा याची को एक और अवसर दिया गया था और मूल प्रमाणपत्रों के सत्यापन के लिए दिनांक 25 अगस्त, 2010 को प्रातः 11 बजे स्क्रीनिंग कमिटि के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए उसे पुनः निर्देशित किया गया था।

(iv) यह भी प्रतीत होता है कि वर्तमान याची दिनांक 25 अगस्त, 2010 को प्रातः 11 बजे स्क्रीनिंग कमिटि के समक्ष मूल प्रमाण पत्रों के साथ उपस्थित था।

(v) मामले के तथ्यों से आगे यह प्रतीत होता है कि दस्तावेजों के संवीक्षण के बाद प्रत्यर्थी सं॰ 3 ने दिनांक 9/10 सितम्बर, 2010 के आदेश के तहत मुख्यतः इस कारण से कि वह लंबे समय से अनुपस्थित था, वर्तमान याची का चयन रद्द कर दिया है। यह कारण दिनांक 14 अगस्त, 2010 के परिशिष्ट-4 पत्र के साथ पूर्ण विरोध में है। वर्तमान याची द्वारा अनुपस्थित रहने का कोई प्रश्न नहीं था। वस्तुतः उसे आरंभ में दिनांक 10 अगस्त, 2010 का मूल प्रमाण पत्रों के सत्यापन के लिए बुलाया गया था। वह किसी कारण से अनुपस्थित था और इसलिए स्क्रीनिंग कमिटि के समक्ष अपने मूल प्रमाण पत्रों को प्रस्तुत करने के लिए स्वयं प्रत्यर्थीगण द्वारा उसे एक और अवसर दिया गया था।

इस प्रकार, स्वयं प्रत्यर्थीगण द्वारा वर्तमान याची को एक और अवसर दिया गया था और इसलिए परिशिष्ट-5 पर दिया गया कारण विधि की दृष्टि में कोई कारण नहीं है।

(vi) इसके अतिरिक्त, परिशिष्ट-5 को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची का चयन रद्द कर दिया गया है, क्योंकि वह अनुपस्थित था। इस अभिकथन को करने के पहले वर्तमान याची को कोई नोटिस कभी नहीं दिया गया था। याची को अपना मामला रखने के लिए कभी कोई अवसर नहीं दिया गया था।

(vii) आगे यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण ने प्रतिशपथ पत्र में एक और कारण दिया है कि मूल प्रमाण पत्रों जिन्हें याची द्वारा प्रस्तुत किया गया था अथवा प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रमाण पत्रों का सत्यापन कराए जाने पर यह पाया गया है कि संस्थान, जिससे याची द्वारा प्रमाण पत्रों को प्राप्त किया गया है, सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं है, जैसा प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है। प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता यह इंगित करने में अक्षम हैं कि वह कौन सरकार थी जिसने संस्थान, जिससे याची ने प्रमाण पत्रों को प्राप्त किया है, को मान्यता नहीं दी है। यह आधार जिसे प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ 19 में निर्दिष्ट किया गया है, पूर्णतः एक अस्पष्ट आधार है। कोई निश्चितता नहीं है कि किस सरकार ने संस्थान को मान्यता नहीं दी है जिससे याची ने प्रमाणपत्रों को प्राप्त किया है। यह ए० आई० सी० टी० ई० अथवा यू० जी० सी० अथवा भारत का कोई राज्य सरकार हो सकता है।

(viii) इसके अतिरिक्त, प्रतिशपथ पत्र के जरिए किसी नए कारण की आपूर्त्ति नहीं की जा सकती है जो आक्षेपित आदेश में निर्दिष्ट नहीं है, अन्यथा कारणों की एक लंबी सूची होगी जिन्हें बाद में प्रतिशपथ पत्र में दिया गया है जो आक्षेपित आदेश में उपस्थित नहीं है। पुलिस कमिश्नर, बॉम्बे बनाम गोरधनदास भानजी, AIR (39) 1952 Supreme Court 16, में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है जिसके पैरा 9 का पठन निम्नलिखित है:-

"9. कमिश्नर के शपथपत्र को निर्दिष्ट करते हुए यह दर्शाने के लिए प्रयास किया गया था कि यह वस्तुतः उसके द्वारा पारित रद्दकरण का आदेश था और कि आदेश उसका आदेश था, और न कि सरकार का। हमें स्पष्ट हैं कि सांविधिक प्राधिकार के प्रयोग में सार्वजनिक रूप से पारित सार्वजनिक आदेशों का अर्थ आदेश पारित करने वाले अधिकारी द्वारा बाद में दिए गए स्पष्टीकरण के प्रकाश में नहीं लगाया जा सकता है कि उसका अर्थ क्या था अथवा उसके दिमाग में क्या था अथवा उसे क्या करने का आशय था। लोक प्राधिकारीगण द्वारा पारित सार्वजनिक आदेश का सार्वजनिक प्रभाव होता है और ये उनके कार्रवाई और आचरण को प्रभावित करने के लिए आशयित है जिनको इनसे संबोधित किया गया है और इनका अर्थ स्वयं आदेश में प्रयुक्त भाषा के प्रति निर्देश में वस्तुपरक रूप से लगाया जाना होगा।''

(ix) मोहिन्दर सिंह गिल एवं अन्य बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, नयी दिल्ली एवं अन्य, (1978)1 SCC 405 में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है जिसके पैराग्राफ 8 का पठन निम्नलिखित है:

"8. बराबर रूप से प्रासंगिक द्वितीय मामला यह है कि जब कोई सांविधिक कृत्यकारी निश्चित आधारों पर आधारित आदेश पारित करता है, इसकी वैधता का निर्णय ऐसे उल्लिखित कारणों द्वारा किया जाना होगा और शपथ पत्र अथवा अन्यथा के रूप में नए कारणों द्वारा इनकी अनुपूर्ति नहीं की जा सकती है। अन्यथा, आरंभ में दोषपूर्ण आदेश, उस समय तक जब यह चुनौती के कारण न्यायालय के पास आता है बाद में दिए गए अतिरिक्त आधारों द्वारा विधिमान्य हो जा सकता है। हम यहाँ गोरधनदास भानजी (ऊपर) में बोस, न्यायमूर्ति के संप्रेक्षणों की ओर ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं:

सांविधिक प्राधिकार के प्रयोग में सार्वजनिक रूप से पारित सार्वजनिक आदेशों का अर्थ आदेश पारित करने वाले अधिकारी द्वारा बाद में दिए गए स्पष्टीकरणों के प्रकाश में नहीं लगाया जा सकता है कि उसका अर्थ क्या था अथवा उसके दिमाग में क्या था अथवा क्या करने का आशय उसका था। लोक प्राधिकारीगण द्वारा पारित सार्वजनिक आदेश का सार्वजनिक प्रभाव होता है और ये उनके कार्रवाई और आचरण को प्रभावित करने के लिए आशयित है जिनको इनसे संबोधित किया गया है और इनका अर्थ स्वयं आदेश में प्रयुक्त भाषा के संदर्भ में वस्तुपरक रूप से लगाया जाना होगा।

आदेश पुरानी शराब की तरह नहीं है जो समय बीतने के साथ बेहतर होते जाते हैं।''

(x) अतः पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में, कारण, जिसकी आपूर्ति आक्षेपित आदेश में नहीं की गयी है, को कभी नहीं जोड़ा जा सकता है। किसी कारण, जिसकी आपूर्ति आक्षेपित आदेश में नहीं की गयी है, की आपूर्ति प्रतिशपथ पत्र के जरिए कभी नहीं की जा सकती है। पूर्वोक्त निर्णयों की दृष्टि में भी, यह प्रतीत होता है कि कारण, जिसे प्रति शपथ पत्र में, विशेषतः उसके पैराग्राफ 19 में जोड़ा गया है, को कभी नहीं पढ़ा जा सकता है मानो वह आक्षेपित आदेश में है। इसके अतिरिक्त, इस अभिकथन के लिए याची को कोई नोटिस नहीं दिया गया था और प्रत्यर्थीगण एकपक्षीय और पक्षपातपूर्ण तरीके से इस निष्कर्ष पर आए कि संस्थान, जिसने प्रमाणपत्रों को दिया है जिन्हें याची द्वारा प्रस्तुत किया गया है, अनुमोदित संस्थान नहीं है।

3. पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों की दृष्टि में, मैं प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा दिनांक 9/10 सितम्बर, 2010 को पारित आदेश जो वर्तमान याचिका के मेमो के परिशिष्ट-5 पर है को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। विधि, नियमों, विनियमनों और सरकारी नीतियों के अनुरुप कम से कम याची को नोटिस देने के बाद आवश्यक आदेशों को पारित करने की स्वतंत्रता प्रत्यर्थीगण को है।

4. एतद् द्वारा याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

राजेन्द्र मंडल एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 1453 of 2010. Decided on 18th January, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 311—गवाहों का परीक्षण–आक्षेपित आदेश द्वारा धारा 311 के अधीन आवेदन अनुज्ञात किया गया–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभियुक्तगण का बयान दर्ज करने के बाद ही धारा 311 के अधीन याचिका अभियोजन द्वारा दाखिल की गयी–उनको आदेशिकाएँ जारी किए जाने के बावजूद गवाहों के अप्रस्तुतीकरण के लिए अभियोजन द्वारा कोई पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं दिया गया–मामला और प्रति मामला स्थापित किया गया था–त्वरित विचारण के नाम पर सारभूत न्याय की अपेक्षाओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता है–दो माह के भीतर साक्ष्य पूरा करने का निर्देश विचारण न्यायालय को देते हुए याचिका अस्वीकार कर दी गयी। (पैराएँ 8 से 11)

निर्णयज विधि.–2002 Cri. C.J. 794 (Bom)—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Anil Kumar, Amar Kumar Gupta, For the Petitioners; Mr. Md. Hatim, For the State-Opp. Party.

आदेश

याचीगण ने दिनांक 28.8.2010 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा सत्र केस सं॰ 103/07 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन अभियोजन की ओर से दाखिल याचिका विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, देवघर द्वारा अनुज्ञात की गयी थी, के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है।

2. यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि दिनांक 19.4.2007 के आदेश द्वारा विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, देवघर ने अभियुक्त याचीगण राजेन्द्र मंडल और परमानन्द मंडल के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 448, 341, 326, 379, 387, 307/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए आरोपों को विरचित किया था जबकि अभियुक्त याची सं॰ 3 हरि मंडल के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 307/34, 448, 341 और 379 के अधीन आरोपों को विरचित किया गया था।

3. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आरोपों को विरचित किए जाने के बाद चूँकि वर्षों 2007-2010 के दौरान अनेक वर्षों तक अभियोजन की ओर से कोई गवाह प्रस्तुत और परीक्षित नहीं किया जा सका था, विचारण न्यायालय ने अभियोजन के साक्ष्य को बन्द कर दिया और अभियुक्त याचीगण का परीक्षण किया जिनके बयानों को दिनांक 5.7.2010 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दर्ज किया गया था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तगण के परीक्षण के बाद अभियोजन ने यह अभिवचन करते हुए कि न्यायालय की आदेशिका के माध्यम से गवाहों पर कोई नोटिस तामील नहीं की जा सकी थी, जिसके प्रति विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह अभियोजन का पूर्णत: भ्रामक कथन था और पूर्णत: भ्रामक था, न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अभियोजन साक्ष्य को प्रस्तुत करने और परीक्षित करने का अवसर इप्सित करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन याचिका दाखिल किया।

4. विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि अभियोजन गवाहों के विरुद्ध समनों और गैर जमानती वारन्टों को जारी किया गया था। इसके अतिरिक्त, कठघरे में गवाहों की उपस्थिति प्राप्त करने के लिए आरक्षी अधीक्षक से अपने कार्यालय का उपयोग करने का अनुरोध किया गया था और इस संबंध में उनको स्मरण पत्र (रिमांइडर) भी भेजा गया था किन्तु न्यायालय के समस्त प्रयासों के बावजूद वर्ष 2007-2010 की अवधि के दौरान कोई गवाह प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। वस्तुत:, विचारण के दौरान गवाहों के अप्रस्तुतिकरण के लिए अभियोजन कोई भी तर्कपूर्ण और स्वीकार्य स्पष्टीकरण देने में विफल रहा। गवाहों, जिनमें से कुछ प्रति मामला के अभियुक्त थे, को ज्ञात था कि याचीगण का विचारण चल रहा था जिसमें साक्ष्य देने के लिए अभियोजन द्वारा उनकी आवश्यकता थी किन्तु उन पर नोटिस तामील किए जाने के बावजूद उन्होंने उपस्थित होने का कष्ट नहीं उठाया। वर्तमान याचीगण द्वारा संस्थापित प्रति मामला इसी विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित था और गवाहों को दैनिक परिणामों की जानकारी थी किन्तु उन्होंने उपस्थित होना नहीं चुना।

5. अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि विचारण न्यायालय ने कोई तर्कपूर्ण कारण दिए बिना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन अभियोजन द्वारा दाखिल आवेदन को अनुज्ञात किया जिसने अभियुक्त याचीगण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला। विद्वान अधिवक्ता ने जोड़ा कि अभियोजन की ओर से ढिलाई को हटाया नहीं जा सकता है और अभियुक्त, याचीगण के विचारण को अभियोजन की कल्पना के अनुसार जारी नहीं रखा जा सकता है। इसमें याचीगण ने अतिरिक्त प्रार्थना की है कि मामले के उक्त तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा संपूर्ण दांडिक अभियोजन अभिखंडित किया जा सकता है।

6. पूरक शपथ पत्र दाखिल करके याचीगण ने प्रतिवाद किया है कि उन्होंने वर्तमान मामले के सूचक प्रमोद मंडल के विरुद्ध मोहनपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 190/06 नामक प्रति मामला संस्थापित किया था, जिसमें सूचक और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 147, 148, 341 और 323 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। चूँकि एक ही विचारण न्यायालय में एक ही पक्षों के बीच मामला और प्रति मामला चल रहा था और वर्तमान मामले का सूचक उस मामले में विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त के तौर पर नियमित रूप से उपस्थित हुआ था, वह न तो स्वयं अपनी स्वेच्छा से साक्ष्य देने आगे आया था और न ही अभियोजन ने वर्तमान मामले में उसे साक्ष्य देने के लिए कहा था और इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन अभियोजन की याचिका को अनुज्ञात करने के लिए न तो पर्याप्त कारण और न ही पर्याप्त आधार था।

7. राज्य-विपक्षी पक्षकार के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री मो॰ हातिम को सुना गया।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में लेते हुए, मैं पाता हूँ कि वर्ष 2007-2010 की अवधि के दौरान अभियोजन की ओर से कोई गवाह प्रस्तुत नहीं किया जा सका था और न्यायालय द्वारा उनको जारी आदेशिका के बावजूद गवाहों के अप्रस्तुतिकरण के लिए अभियोजन द्वारा पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका था। किन्तु, केवल दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तगण का बयान दर्ज किए जाने के बाद दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अधीन अभियोजन द्वारा याचिका दाखिल की गयी थी।

9. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 तात्विक गवाहों को समन करने अथवा उपस्थित व्यक्ति के परीक्षण करने की शक्ति पर विचार करती है, जो कहती है,

> *''कोई न्यायालय इस संहिता के अधीन किसी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी प्रक्रम में किसी व्यक्ति को साक्षी के तौर पर समन कर सकता है या किसी ऐसे व्यक्ति की, जो हाजिर हो, यद्यपि वह साक्षी के रूप में समन न किया गया हो, परीक्षा कर सकता है, किसी व्यक्ति को, जिसकी पहले परीक्षा की जा चुकी है पुनः बुला सकता है और उसकी पुनः परीक्षा कर सकता है; और यदि न्यायालय को मामले के न्यायसंगत विनिश्चय के लिए किसी ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य आवश्यक प्रतीत होता है तो वह ऐसे व्यक्ति को समन करेगा और उसकी परीक्षा करेगा या उसे पुनः बुलाएगा और उसकी पुनः परीक्षा करेगा।''*

10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 की भाषा स्पष्ट करती है कि मामले में न्यायोचित निर्णय की आवश्यकता कार्रवाई को केवल अभियुक्त के हित में किसी चीज को सीमित नहीं करती है। कार्रवाई अभियोजन को भी बराबर रूप से लाभ पहुँचा सकती है। लेकिन, न्यायालय से सारवान न्याय के उद्देश्य के लिए अपना स्वविवेक समुचित रूप से और न्यायोचित रूप से प्रयोग करने की अपेक्षा की जाती है। बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायालयों को प्रदान किया गया ऐसा स्वविवेक काफी व्यापक है जिससे न्याय की अत्यावश्यकता के अनुरूप कार्य किया जा सके। **[2002 Cr. L.J. 794 Bom.]**

11. स्वीकृत रूप से पक्षगण के बीच मामला और प्रति मामला था और दोनों पक्षों के सदस्यों ने उपहतियाँ प्राप्त की थी, अतः एक ही न्यायालय के समक्ष लंबित मामलों में न्यायोचित निर्णय के लिए अपेक्षित अत्यावश्यकता वर्तमान मामले में अभियोजन को साक्ष्य देने के लिए अनुमति देना था किन्तु अभियोजन चार वर्षों की अवधि तक ऐसे अवसर का लाभ उठाने में विफल रहा। भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 अभियुक्त के त्वरित विचारण की गारंटी देता है किन्तु इसी समय पर सारवान न्याय की आवश्यकता को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। मामले के उस दृष्टिकोण में, मैं पाता हूँ कि सारवान न्याय के उद्देश्य के लिए साक्ष्य देने के लिए अभियोजन गवाहों को अनुमति देते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया था। याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता मुझे कुछ भी दर्शाने और कायल करने

में विफल हैं जो आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप के लिए कहता हो। याचिका गुणागुण रहित है और इसलिए इस आदेश की प्राप्ति के दो माह के भीतर साक्ष्य पूरा करने के लिए विचारण न्यायालय को निर्देश के साथ इसे अस्वीकार किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

नवीन किशोर सहाय

बनाम

इलाहाबाद बैंक एवं अन्य

W.P.C. No. 247 of 2011. Decided on 31st January, 2011.

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002—धारा 31—धारणाधिकार से छूट–विकासकर्ता द्वारा बैंक को फ्लैट पर धारणाधिकार दिया गया–लेनदार होने के नाते याची से कर्ज के लिए बैंक के साथ फ्लैट को बंधक रखना अपेक्षित था जो करने में वह विफल रहा–याची स्वयं अपनी गलती का लाभ नहीं ले सकता है–याची धारा 31 पर विश्वास नहीं कर सकता है–अब याची अद्यतन बकाया का भुगतान करने और बैंक के साथ फ्लैट गिरवी रखने के लिए तैयार है–निर्देशों के साथ याचिका निपटायी गयी। (पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Deepak Roshan, For the Petitioner; Mr. R. R. Nath, For the Respondent.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री दीपक रोशन ने उसके (फ्लैट स्वामी), बैंक और बिल्डर के बीच हुए त्रिपक्षीय करार के खंड-8 को निर्दिष्ट किया, जिसका पठन निम्नलिखित है:

> *8. डेवलपर/प्रोमोटर एतद् द्वारा अभिव्यक्त रूप से इस प्रभाव की सहमति देता है कि पूर्वोक्त फ्लैट/एपार्टमेंट पर बैंक का धारणाधिकार होगा और लेनदार बैंक से उसके द्वारा प्राप्त किए जाने वाले कर्ज के लिए प्रतिभूति के रूप में उक्त फ्लैट को प्रस्तुत करेगा और वह बैंक के पक्ष में इसकी गिरवी सृजित कर सकता है।''*

2. उन्होंने निवेदन किया कि केवल धारणाधिकार सृजित किया गया था जिसे SARFAESI अधिनियम की धारा 31 के अधीन छूट प्राप्त है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अप्रैल 2007 से फरवरी 2010 तक उसके नियोक्ता कॉग्नेक्स फार्मा लि॰ द्वारा याची के वेतन से किश्त की राशि काटी गयी है जो उसके वेतन पर्चियों से प्रकट होगा किन्तु बैंक ने पास बुक को अद्यतन नहीं किया है जो उक्त प्रतिवाद का समर्थन कर सकता था कि अपने नियोक्ता के माध्यम से याची द्वारा किश्तों का भुगतान किया गया था।

3. दूसरी ओर, बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ आर॰ नाथ ने निवेदन किया कि याची के नियोक्ता ने बैंक में किश्तों को जमा नहीं किया है और ऐसे प्रतिवाद के समर्थन में बैंक याची को लेखा विवरण दे सकता है। उन्होंने SARFAESI अधिनियम की धारा 2(Zf) को निर्दिष्ट किया, जिसका पठन निम्नलिखित है:

> *''प्रतिभूति हित'' से किसी संपत्ति पर किसी प्रतिभूत लेनदार के पक्ष में सृजित किसी भी प्रकार का कोई अधिकार, हक और हित अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत उनसे, भिन्न जो धारा 31 में विनिर्दिष्ट है, कोई बंधक भार, आडमान समनुदेशन भी है।''*

उन्होंने निवेदन किया कि त्रिपक्षीय करार के पूर्वोक्त खंड-8 के मुताबिक डेवलपर/प्रोमोटर ने सहमति दी थी कि फ्लैट/एपार्टमेंट पर बैंक का धारणाधिकार होगा किन्तु लेनदार होने के नाते याची से अपेक्षित था कि कर्ज के लिए प्रतिभूति के रूप में बैंक के पास उक्त फ्लैट गिरवी रखे जिसे करने में वह विफल रहा और, इसलिए, ऐसे प्रतिवादों को उठाने की अनुमति उसे नहीं दी जा सकती है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यदि याची बैंक की संगणना के मुताबिक आज की तिथि तक बकायों का भुगतान करने के लिए तैयार है और यदि प्रश्नगत फ्लैट को याची द्वारा बंधक रखा जाता है, बैंक कर्ज को पुनर्गठित कर सकता है।

4. मैं श्री नाथ के निवेदनों में बल पाता हूँ कि याची स्वयं अपनी गलती का लाभ नहीं ले सकता है। स्वीकृत रूप से उसने त्रिपक्षीय करार के खंड-8 का अनुपालन नहीं किया था। डेवलपर/प्रोमोटर ने धारणाधिकार के लिए सहमति दी थी और न कि याची ने। याची से प्रतिभूति के रूप में फ्लैट को बंधक रखने की अपेक्षा की जाती थी। याची SARFAESI अधिनियम की धारा 31 पर विशेषत: धारा 2 (Zf) की दृष्टि में विश्वास नहीं कर सकता है।

5. इस पर, याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री रोशन ने निवेदन किया कि याची अद्यतन बकायों का भुगतान करने और बैंक के साथ फ्लैट गिरवी रखने के लिए तैयार है।

6. तद्नुसार, याची दिनांक 7 फरवरी, 2011 को अथवा इसके पहले बैंक के शाखा प्रबंधक के समक्ष उपस्थित होगा। शाखा प्रबंधक उसे उसके लेखा विवरण के साथ फरवरी, 2011 तक बकाया देयों की संगणना का विवरण देगा। 28 फरवरी, 2011 तक याची बैंक की संगणना के मुताबिक बकाया देयों का भुगतान करेगा और प्रश्नगत फ्लैट को बैंक के पास गिरवी रखेगा। 7 मार्च, 2011 तक बैंक याची के अद्यतन कर्ज राशि के पुनर्गठन के बारे में सूचित करेगा जिसका भुगतान याची तद्नुसार करेगा।

यदि याची इस आदेश के किसी अंश का अनुपालन करने में विफल रहता है, यह रिट याचिका खारिज हो जाएगी और बैंक विधि के अनुरूप में याची के विरुद्ध अग्रसर होने का हकदार होगा।

इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

इस आदेश की प्रति पक्षों को दी जाए जैसी प्रार्थना की गयी है।

माननीय सुशील हरकौली एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

सुगिया महतैन एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 195 of 2001. Decided on 27th January, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 226 वर्ष 1992 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, चास, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 30.5.2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 6.6.2001 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34, 498A एवं 201—ससुराल वालों द्वारा महिला की हत्या—दोषसिद्धि एवं दंडादेश—दहेज की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण अभिकथित क्रूरता—चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला संपुष्ट नहीं किया गया—घटना

के पीछे अभिकथित हेतु सिद्ध करने में अभियोजन विफल रहा–सूचक ने नगद, अथवा सामान की मांग अथवा मृतका के साथ क्रूरता के अभिकथन का समर्थन नहीं किया–अभियोजन यह अभिकथन स्थापित करने में बिल्कुल विफल रहा कि दहेज की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण मृतका को क्रूरता के अध्यधीन किया गया था–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त।

(पैराएँ 11 से 16)

अधिवक्तागण.–M/s B. M. Tripathy, A. K. Sahani, For the Appellants; Mr. T. N. Verma, For the State.

न्यायालय द्वारा.–तीन अपीलार्थीगण में से अपीलार्थी सुगिया महतैन की मृत्यु दिनांक 2.1.2005 को हो गयी है और इसलिए उसके विरुद्ध यह अपील उपशमनित है।

2. जहाँ तक अपीलार्थी सुभाष महतो का संबंध है, दोषसिद्ध किए जाने पर उसने अन्य अभियुक्तगण के साथ यह अपील दाखिल की है। इस अपील के लंबित रहने के दौरान अभिवचन किया गया था कि घटना की तिथि पर अपीलार्थी सुभाष महतो किशोर था। ऐसा अभिवचन किए जाने पर अपीलार्थी की आयु से संबंधित मामले की जाँच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो को निर्देशित किया गया था। जाँच करने के बाद, रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया था जिसे जब इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, तब सुनवाई के लिए अपील पोस्ट करने का आदेश पारित किया गया था ताकि उस समय पर उक्त रिपोर्ट पर विचार किया जा सके।

3. आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थीगण सुधीर महतो, सुभाष महतो और सुगिया महतैन (तब से मृत) को आलती देवी की हत्या करने का दोषी पाए जाने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। इसके अतिरिक्त, भारतीय दंड संहिता की धारा 498A और 201 के अधीन दोषसिद्ध किए जाने पर प्रत्येक अपराध के लिए तीन वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था।

4. अभियोजन का मामला है कि आलती देवी का विवाह सुधीर महतो के साथ वर्ष 1995 की गरमी में हुआ था। तब से वह अपने ससुराल संथालडीह गाँव में रह रही थी। दिनांक 5.10.1985 को अहली सुबह 4 बजे जब मिसरीलाल महतो (अ॰ सा॰ 1) सुधीर महतो से मिला, उसने उसे बताया कि उसकी पत्नी दैनिक कर्म से निबटने घर के बाहर गयी थी किन्तु वापस नहीं लौटी है। दोनों ने आलती देवी को खोजा किन्तु उसका कोई पता नहीं मिला। तत्पश्चात्, मिसरी लाल महतो, अ॰ सा॰ 1, कसमार गाँव आया और अपने ससुराल से आलती देवी के गायब होने के बारे में सूचक (अ॰ सा॰ 4) धीरेन्द्र नाथ महतो को सूचित किया। तत्पश्चात्, सूचक धीरेन्द्र नाथ महतो, अ॰ सा॰ 4 छत्रधारी महतो (अ॰ सा॰ 3) और चंद्रशेखर महतो (अ॰ सा॰ 5) के साथ आलती देवी के ससुराल संथालडीह गाँव आया। वहाँ जब सूचक (अ॰ सा॰ 4) ने अलाती देवी के पता-ठिकाना के बारे में आलती देवी की सास से पूछा, उसने उसे बताया कि वह दैनिक कर्म से निबटने रात में घर से बाहर गयी थी किन्तु घर वापस नहीं लौटी थी। तत्पश्चात्, सूचक और अन्य गवाहों ने उसको खोजा किन्तु जब वे उसका पता लगाने में विफल रहे, धीरेन्द्र नाथ महतो (अ॰ सा॰ 4) ने दिनांक 5.10.1985 को रात्रि लगभग 9 बजे पिंडरोजोरा पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी के समक्ष लिखित रिपोर्ट दाखिल किया जिसमें अभिकथन किया गया कि पति सुधीर महतो, सास सुगिया महतैन और देवर सुभाष महतो एवं अन्य अभियुक्तगण ने आलती देवी, जिसे दहेज मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण क्रूरता के अध्यधीन किया जाता था, की हत्या कर दी है।

5. उक्त लिखित रिपोर्ट पर मामला दर्ज किया गया था। अगले दिन अर्थात् 6.10.1985 को प्रातः लगभग 11 बजे जब यह मालूम हुआ कि कुआँ में मृत शरीर पड़ा हुआ था, पुलिस द्वारा इसे बरामद किया गया था और आलती देवी के मृत शरीर के रूप में इसे पहचाना गया था। मृत शरीर की मृत्यु समीक्षा की गयी थी। तत्पश्चात् इसे शव परीक्षण के लिए भेजा गया था जो डॉ॰ ध्रुव कुमार धीरज (अ॰ सा॰ 6) द्वारा संचालित किया गया था जिन्होंने परीक्षण पर निम्नलिखित उपहतियों को पाया था:

1. दाँए चुचुक के एक इंच ऊपर 1/10" x 1/10" का खरोंच।

2. दाएँ भौंह के ऊपर 1/2" x 1/9" का खरोंच

3. मध्य और बाएँ अगली बाँह के सामने चार की संख्या में 1/2" x 1/10" और 1/5" x 1/5" का खरोंच (संभवतः कलाई में पहली गयी चूड़ी से कारित दो स्टील एक पोला एक शंख और दो धातु का।

4. दाएँ गाल पर 1/5" x 1/5" का खरोंच।

6. होठ, मसूढ़े और जीभ पर कोई उपहति नहीं पायी गयी थी। गर्दन पर भी कोई बाह्य अथवा आंतरिक उपहति नहीं पायी गयी थी। हाइड अस्थि को भी टूटा नहीं पाया गया था। ऐसे निष्कर्ष पर मत दिया गया था कि गला दबाने अथवा दम घुटने का चिन्ह नहीं था। संभवतः, उस कारण से रासायनिक परीक्षण के लिए विसरा सुरक्षित रखा गया था किन्तु इसे किया गया प्रतीत कभी नहीं होता है।

7. आरोप-पत्र की प्रस्तुति और मामले की सुपुर्दगी पर समस्त अभियुक्तगण का विचारण किया गया था जिसमें अभियोजन ने मिसरीलाल महतो का परीक्षण किया था जिसने आलती देवी के गायब होने के बारे में अपीलार्थी सुधीर महतो द्वारा सूचित किए जाने पर इसके बारे में मृतका के भाई धीरेन्द्र नाथ महतो (अ॰ सा॰ 4) को सूचित किया था और तब धीरेन्द्र नाथ महतो (अ॰ सा॰ 4) छत्रधारी महतो (अ॰ सा॰ 3) और चंद्रशेखर महतो (अ॰ सा॰ 5) के साथ आलती देवी के घर आया जहाँ उन्हें आलती देवी के गायब होने के बारे में बताया गया था।

8. विचारण न्यायालय ने यह तथ्य कि पेट में अनपचा चावल था जिसने सुझाया कि छह घंटों से भी कम समय में उसे मार दिया गया था और अन्य साक्ष्य भी कि मृतका अहली सुबह 4 बजे घर से बाहर गयी थी, को ध्यान में लेने पर मत बनाया कि मृतक की हत्या करने के बाद उसे कुआँ में डाल दिया गया था। इसके अतिरिक्त, अभियुक्तगण के दोष को सुझाते हुए मामले में सामने आते अपराध में फँसाने वाली निम्नलिखित परिस्थितियों को विचार में लिया गया था।

1. डॉक्टर ने शरीर के अनेक हिस्सों पर शवपूर्व खरोंच पाया था जिसके लिए अभियुक्तगण द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया था।

2. मृतका की हत्या करने के पहले उसे नगद और गहना की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण क्रूरता के अध्यधीन किया जाता था।

9. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

10. जैसा हमने पहले ध्यान में लिया है कि विचारण न्यायालय ने यह ध्यान में लेने पर कि मृतका के पेट में अनपचा चावल था, मृतका द्वारा दैनिक कर्म से निबटने के लिए प्रातः 4 बजे घर से बाहर जाने के बारे में अभियुक्तगण के विवरण को एक सफेद झूठ पाया और इसलिए यह दर्ज किया गया था कि मृतका की हत्या कर उसके शरीर को कुआँ में फेंक दिया गया था किन्तु वस्तुतः, अभियोजन के मामले के अनुसार अभियुक्तगण ने गवाहों को सूचित किया था कि मृतका दैनिक कर्म से निबटने रात में गयी थी जो सूचक के साक्ष्य से स्पष्ट होगा जिसमें उसने परिसाक्ष्य दिया है कि अपनी बहन के गायब होने

के बारे में मिसरीलाल महतो, अ॰ सा॰ 1, से जानकारी मिलने पर वह चन्द्रशेखर महतो, अ॰ सा॰ 5 के साथ अपनी बहन के ससुराल आया जहाँ उसकी बहन के सास ने प्रकट किया कि आलती देवी दैनिक कर्म से निबटने रात में घर से बाहर गयी थी किन्तु आश्चर्यजनक रूप से छत्रधारी महतो, अ॰ सा॰ 3, जो धीरेन्द्र नाथ महतो, अ॰ सा॰ 4 के साथ संथालडीह गाँव आने का दावा करता है, ने अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्तगण ने उसे बताया कि मृतका अहली सुबह 4 बजे घर से बाहर गयी थी जबकि अ॰ सा॰ 5 चन्द्रशेखर महतो ने परिसाक्ष्य दिया कि गाँव वालों ने उसे सूचित किया था कि मृतका 4 बजे प्रात: घर से निकली थी जिस प्राख्यान को अ॰ सा॰ 4 के परिसाक्ष्य की दृष्टि में स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसने स्पष्ट परिसाक्ष्य दिया कि उसकी बहन की सास ने उसे सूचित किया था कि मृतका रात में घर से बाहर गयी थी। समय के उस बिन्दु पर जब अ॰ सा॰ 4 को सूचित किया गया था, अ॰ सा॰ 3 और 5 अ॰ सा॰ 4 के साथ थे। इसके अतिरिक्त, दोनों गवाह इस बिन्दु पर संगत नहीं थे क्योंकि एक कहता है कि अभियुक्तगण ने उन्हें समय के बारे में बताया था जब मृतका ने घर छोड़ा था जबकि दूसरा कहता है कि गाँव वालों ने समय के बारे में बताया था। इसके अतिरिक्त, मिसरीलाल महतो, अ॰ सा॰ 1, जो अभियुक्त सुधीर महतो से प्रात: 4 बजे मिलने वाला पहला व्यक्ति था, ने कभी कथन नहीं किया है कि अभियुक्तगण ने उससे कहा था कि मृतका प्रात: 4 बजे घर से बाहर गयी थी।

11. इन परिस्थितियों के अधीन, जब यह कभी नहीं स्थापित किया गया है कि अभियुक्तगण ने मृतका द्वारा प्रात: 4 बजे घर छोड़ने के बारे में सूचित किया था, अभियुक्तगण के दोष के प्रतिमत बनाना मुश्किल होगा क्योंकि मृतका के पेट में अनपचा चावल पाया गया था।

12. इसके अतिरिक्त, हम वस्तुत: पाते हैं कि हेतु जिसे अभियोजन द्वारा बताया गया है, यह है कि दहेज मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण अभियुक्तगण ने मृतका की हत्या कर दी किन्तु अभियोजन दहेज मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण मृतका को क्रूरता के अध्यधीन करने और दहेज की मांग का तथ्य स्थापित करने में विफल रहा है। इस संबंध में, हम सूचक अ॰ सा॰ 4 के परिसाक्ष्य को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिसमें उसने परिसाक्ष्य दिया है कि उसकी बहन अनेक अवसरों पर अपने माता-पिता के घर आती थी किन्तु केवल तब जब वह करमा पूजा के अवसर पर आयी थी, उसने प्रकट किया था कि अभियुक्तगण दहेज मांगते हैं और गंभीर परिणामों की धमकी देते हैं। इस प्रकार, यह गवाह विनिर्दिष्ट नहीं है कि नगद अथवा सामान के रूप में कुछ मांगा जा रहा था और इसके अतिरिक्त वह मृतका को क्रूरता के अध्यधीन किए जाने के बिन्दु पर भी मौन है। किन्तु, उसने परिसाक्ष्य दिया है कि जब उसका पिता करमा पूजा के बाद उसकी बहन को लेकर उसके ससुराल गया, अभियुक्तगण ने धन और आभूषणों की मांग की थी किन्तु आश्चर्यजनक रूप से इस तथ्य को स्थापित करने के लिए पिता का परीक्षण नहीं किया गया था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि गवाह अ॰ सा॰ 4 दहेज की मांग पूरा नहीं किए जाने के कारण मृतका को क्रूरता के अध्यधीन किए जाने के बिन्दु पर बिल्कुल मौन है और वह इस बिन्दु पर भी मौन है कि अभियुक्तगण द्वारा लगातार दहेज मांगा जाता था। मामले के उस दृष्टिकोण में, दहेज मांग और मृतका को दुर्व्यवहार के अध्यधीन करने और उसपर प्रहार करने के संबंध में अ॰ सा॰ 4 द्वारा दिया गया साक्ष्य स्वीकार करने योग्य नहीं है। इस प्रकार, अभियोजन अभिकथन स्थापित करने में बिल्कुल विफल रहा है कि दहेज मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण मृतका को क्रूरता के अध्यधीन किया जाता था।

13. मृतका के शरीर पर पायी गयी उपहतियों के संबंध अगली परिस्थिति अपीलार्थीगण को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं है विशेषत: जब डॉक्टर ने गर्दन पर कोई बाह्य अथवा आंतरिक

उपहति नहीं पाया था और न ही हाइयाड अस्थि, फ्रैक्चर पायी गयी थी जिसके आधार पर डॉक्टर का मत है कि गला दबाने अथवा दम घुटने का कोई चिन्ह नहीं था।

14. इन परिस्थितियों के अधीन यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप सिद्ध करने में विफल रहा है और ऊपर कथित तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थीगण अर्थात् सुभाष महतो और सुधीर महतो संदेह का लाभ पाने के योग्य है।

15. तद्नुसार, अपीलार्थीगण सुभाष महतो और सुधीर महतो के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, उन्हें उनके विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। तद्नुसार, सुधीर महतो, जो अभिरक्षा में है, को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

16. पूर्वोक्त निष्कर्ष की दृष्टि में, मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर कोई कदम उठाने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक अपीलार्थी सुभाष महतो का संबंध है, चूँकि उसे दोषमुक्त कर दिया गया है, उसे जमानत बंध पत्र के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

सुनील कुमार चौधरी एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 813 of 2008. Decided on 4th February, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498A—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 177 एवं 482—क्रूरता—संज्ञान—न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता—उस दंडाधिकारी की क्षेत्रीय अधिकारिता में अभिकथित कृत्य का कोई अंश नहीं हुआ था जिसने याचीगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया था और आक्षेपित आदेश पारित किया था—आक्षेपित आदेश का पोषण नहीं किया जा सकता—परिवादी को सक्षम अधिकारिता के न्यायालय में परिवाद दाखिल करने की स्वतंत्रता के साथ समूचा दांडिक अभियोजन अपास्त। (पैरा 7)

निर्णयज विधि.—(2007) 1 SCC 262; (2008) 11 SCC 103—Relied on.

अधिवक्तागण.—M/s R. S. Mazumdar, Rishav Dev, Rajesh Kumar, For the Petitioners; Mr. D.K. Prasad, For the State; M/s Manoj Kr. Sah, Md. Imteyaz Ashrad, For the Opp. Party No.2.

डी०के० सिन्हा, न्यायमूर्ति.—एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, रांची के समक्ष लंबित परिवाद केस सं॰ 664/07 से उद्भूत होने वाले समूचे दांडिक अभियोजन को दिनांक 19.5.2008 के आक्षेपित आदेश समेत, जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, निरस्त करने के लिए याचीगण ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का आलम्ब लिया है।

2. अभियोजन कहानी संक्षेप में यह है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 का दुमका, जहां उसके पिता सेवा के दौरान पदस्थापित थे, में प्रचलित हिन्दू रीति रिवाजों के अनुसार 21.6.1999 को अभियुक्त-याची के साथ विवाह हुआ था। अपने विवाह के उपरांत, वह पटना जिले में मकसूदपुर स्थित अपने वैवाहिक

घर गयी थी। परिवाद में यह अभिकथित किया गया था कि उसके विवाह के एक महीने के भीतर अभियुक्त व्यक्तियों ने उसे प्रताड़ित करना एवं उसके साथ अमानवीय व्यवहार तथा क्रूरता करना प्रारम्भ कर दिया था और उन्होंने 5,00,000/- रुपये की मांग करना प्रारंभ कर दिया जिसे उसे माता-पिता के घर से लाना था, इस तथ्य के बावजूद कि उसके विवाह की पूर्व संध्या पर बहुमूल्य उपहार उसे भेंट किये गये थे। चूंकि परिवादी के माता-पिता को ऐसी गैर मुनासिब मांग पूरा करने में वित्तीय अड़चनें थी, उन्होंने परिवादी को अच्छी तरह से रखने और उसके साथ मानवीय व्यवहार करने के लिए अभियुक्त व्यक्तियों को तैयार करने के अपने ईमानदार प्रयास किये परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। यह अभिकथित किया गया था कि परिवादी को समय-समय पर बिना खाना-पानी के कमरे में बंद रखा जाता था और उनके हाथों उसे मारपीट झेलनी पड़ती थी। फिर भी, परिवादी का पिता समय-समय पर पति-याची सं॰ 1 को कतिपय राशियां दिया करता था परन्तु इसने अभियुक्त व्यक्तियों के लोभ को संतुष्ट नहीं किया। जब परिवादी गर्भवती हो गयी, उसे रांची भेज दिया गया जहां उसका पिता दुमका से स्थानांतरण होने पर पदस्थापित था। उसने रांची में एक बालक को जन्म दिया परन्तु उसके पति-याची सं॰ 1 समेत उनमें से किसी ने भी उसकी देखभाल करने या परिवादी या नवजात बच्चे की ही देखभाल करने का कोई कष्ट नहीं उठाया। कुछ समय उपरांत वह अपने वैवाहिक घर लौट आयी जहां उसके साथ पुनः क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया और मानसिक कष्ट पहुंचाया गया। यद्यपि उसने परिस्थिति से निपटने का प्रयास किया परन्तु सभी अभियुक्तों ने ऐसी टिप्पणीयां करके उसका अपमान किया कि उसका किसी सुधीर कुमार चौधरी, जो परिवाद केस में अभियुक्त सं॰ 3 के साथ अनैतिक संबंध था और अंततः उसे जनवरी, 2004 के महीने में उसके वैवाहिक घर से बाहर निकाल दिया गया और कोई रास्ता न पाकर उसने अपने माता-पिता के घर में आश्रय लिया। परन्तु इसके पहले अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा उसकी आलमारी तोड़ दी गयी थी और सभी बहुमूल्य सामानों एवं जेवरातों को उनके द्वारा हटा दिया गया था। 15.5.2004 को वह किसी श्याम बाबू चौधरी के साथ अपने वैवाहिक घर लौट आयी परन्तु वैवाहिक घर में उसके प्रवेश के लिए उसे 5,00,000/- रुपये लाने को कहा गया। उन्होंने उसके जेवरात एवं अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को भी लौटाने से इंकार कर दिया। कोई रास्ता न पाकर उसने अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498A/406 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, रांची के समक्ष एक परिवाद केस सं॰ 691/04 दाखिल किया। इसके साथ-साथ, उसने प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, रांची के न्यायालय में अपने पति याची सं॰ 1 के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन एक कार्यवाही प्रारम्भ किया। दोनों मामलों के लंबित रहने के दौरान, पति-याची सं॰1 रांची आया और परिवादी के साथ विवाद का समाधान करने का प्रस्ताव रखा अपने इस आश्वासन एवं वचनबद्धता पर कि वह उसके साथ अच्छा व्यवहार करेगा और उसके माता पिता से कोई भी मांग नहीं करेगा। पति-याची ने यह भी वचनबद्धता ली की उसके रिश्तेदारों में से कोई भी उसके साथ किसी क्रूरता को अंजाम नहीं देगा। उसके पति-याची सं॰ 1 सुनील कुमार चौधरी द्वारा अभियुक्त सं॰ 10 कन्हैया की उपस्थिति में दिये गये ऐसे आश्वासन पर, उसने अपने पति के साथ पटना जाने की अपनी इच्छा अभिव्यक्त की और इस प्रक्रिया में प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, रांची के समक्ष समझौता याचिका दाखिल किया गया था जिसे स्वीकार कर लिया गया था और तत्पश्चात्, परिवाद केस सं॰ 691/04, जिसे उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 498A/406 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दाखिल किया था, वापस ले लिया गया। उसे इसके बाद मकसुदपुर स्थित उसके वैवाहिक घर ले जाया गया परन्तु अभियुक्त व्यक्तियों ने थोड़े समय बाद उसके साथ शारीरिक एवं मानसिक क्रूरता करके पुराना व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। उसे फिर अनिसाबाद और वहां से पाटलीपुत्रा कॉलोनी, पटना ले जाया गया, परन्तु उसकी परेशानियां वहां समाप्त नहीं हुई और उस पर उसके माता-पिता के घर से धन लाने के लिए दबाव डाला गया था वरना उन परिणामों के लिए उसका पिता जिम्मेदार होगा जो भविष्य

में उसके साथ हो सकता है। यह भी अभिकथित किया गया था कि याची सं॰ 2 एवं याची सं॰ 5 ने उसे बलपूर्वक रांची भेजने का प्रयास किया था परन्तु उसने इंकार कर दिया। तथापि, 2.2.2007 को उसे सूचित किया गया कि उसका पति रांची में था, जो उसके पिता के साथ रांची में कतिपय मुद्दों का समाधान करने के लिए उसका वहां होना चाहता था और ऐसे बहाने पर उसे अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा रांची ले जाया गया, जिन्होंने उसे बस स्टैंड पर छोड़ दिया यह कहते हुए कि उसे उसके पति एवं ससुराल द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा जबतक कि वह 5,00,000/- रुपया नहीं लायेगी। उसके अवयस्क पुत्र को भी अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा बलपूर्वक अपने पास रख लिया गया। इसके अलावा, यह भी गंभीर रूप से अभिकथित किया गया कि उसके पति ने उस पर अभियुक्त सं॰ 3 सुधीर कुमार चौधरी के साथ रहने पर जोर दिया था और तद्द्वारा, क्रूरता का भयानक रूप प्रदर्शित किया गया था।

3. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री आर॰ एस॰ मजुमदार ने प्रारम्भ में ही निवेदन किया कि याचीगण के विरुद्ध समूची दांडिक कार्यवाहियां और वह आदेश भी, जिसके द्वारा मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया था, विधि में दूषित था क्योंकि उसे क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं थी इस तथ्य की दृष्टि में कि कार्रवाई के कारण का कोई भी हिस्सा CJM/ SDJM, राँची की क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर घटित नहीं हुआ था। विद्वान वरीय अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि जिस अपराध के अधीन न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया था वह एक जारी रहने वाला अपराध नहीं था, इस प्रकार, इसका रांची में विचारण नहीं किया जा सकता था। भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 498A/406/120B के अधीन अपराध का संज्ञान यांत्रिक रूप से लिया गया था क्योंकि न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता की जांच नहीं की गयी थी क्योंकि परिवाद की विषय वस्तु ने प्रतिबिम्बित किया था कि घटना का कोई भी हिस्सा CJM, रांची के क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर घटित नहीं हुआ था और अतएव, याचीगण का समूचा दांडिक अभियोजन निरस्त किये जाने योग्य था।

4. (2008) 11 SCC 103 में रिपोर्ट किये गये **भूरा राम एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं एक अन्य** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

> *''परिवाद में कथित तथ्य प्रकट करते हैं कि परिवादी ने वह स्थान छोड़ा था जहां वह अपने पति एवं ससुराल वालों के साथ निवास कर रही थी और राजस्थान राज्य के श्रीगंगानगर शहर पहुंची थी और यह कि परिवाद के अनुसार सभी अभिकथित कृत्य पंजाब राज्य में घटित हुए थे। राजस्थान के न्यायालय को मामले से निबटने की अधिकारिता नहीं है। परिवाद में परिवादी द्वारा प्रकटित तथ्यपरक परिदृश्य के आधार पर, अवश्यंभावी निष्कर्ष यह है कि राजस्थान में कार्रवाई के कारण का कोई हिस्सा उदभूत नहीं हुआ था और, अतएव, सम्बद्ध दंडाधिकारी को मामले से निबटने की कोई अधिकारिता नहीं थी। इसके परिणाम के तौर पर, अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, श्री गंगानगर के समक्ष कार्यवाईयां निरस्त की जाती है। परिवाद परिवादी को लौटा दिया जाए और अगर उसकी ऐसी इच्छा है, वह विधि के अनुसार निबटाये जाने के लिए इसे उपयुक्त न्यायालय में दाखिल कर सकती है।''*

5. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री मनोज कुमार साह ने विधिक स्थिति को विवादित नहीं किया सिवाय यह कहने के कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के यातना एवं धन की मांग के कारण अपना वैवाहिक घर छोड़ देने पर मजबूर किया जाना मानसिक क्रूरता एवं उत्पीड़न की परिधि के भीतर आयेगा जो उस स्थान पर भी जारी रहा जहां वह अपने पिता के पास रांची लौटी थी और अतएव, अपराध का संज्ञान लेते समय CJM, रांची द्वारा कोई त्रुटि कारित नहीं की गयी थी और भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 498A/406/120B के अधीन अभिकथित अपराध के लिए अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध विद्वान SDJM, रांची ने प्रथम दृष्टया मामला पाया था।

6. मनीष रतन एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं एक अन्य ने, जो **(2007) 1 SCC 262** में रिपोर्ट किया गया था, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था :

''7. इससे इंकार नहीं किया गया है या इसे विवादित नहीं किया गया है कि दतिया न्यायालय के अधिकारिता की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर कार्रवाई के कारण का कोई भाग उदभूत नहीं हुआ था। संहिता की धारा 177 आदेश करती है कि प्रत्येक अपराध का सामान्य रूप से एक ऐसे न्यायालय द्वारा जांच पड़ताल एवं विचारण किया जायेगा जिसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर यह कारित किया गया था।

8. ''सामान्यतः'' पद की व्याख्या पर विचार इसकी धारा 178 में अंतर्विष्ट प्रावधानों को ध्यान में रखकर करना होगा जो निम्नवत् पठित है:

*''178. **जांच या विचारण का स्थान.**-(a) जहां यह अनिश्चित हो कि विभिन्न स्थानीय क्षेत्रों में से एक अपराध कहां कारित किया गया था, या*

(b) जहां एक अपराध आंशिक रूप से एक स्थानीय क्षेत्र में और अंशतः एक अन्य में कारित किया जाता है, या

(c) जहां एक अपराध जारी रहने वाला अपराध हो, और एक से अधिक स्थानीय क्षेत्रों में कारित किया जाना जारी रहता हो, या

(d) जहां इसमें विभिन्न स्थानीय क्षेत्रों में किये गये कई कृत्यों से गठित हो,

इसकी एक ऐसे न्यायालय द्वारा जांच की जा सकती है या विचारण किया जा सकता है जिसकी ऐसे स्थानीय क्षेत्रों में से किसी क्षेत्र पर भी अधिकारिता हो।''

9. इस प्रकार, उक्त प्रावधान के खंड (C) का वर्तमान मामले में इस्तेमाल किया गया है।

10. इस प्रकार, क्या परिवाद याचिका में किये गये अभिकथन एक सतत् चलने वाले अपराध का गठन करेंगे, यह केन्द्रीय प्रश्न है।

11. ऐसी प्रकृति के एक मामले में, किसी अपराध को एक लगातार चलने वाला अपराध नहीं कहा जा सकता, मात्र इस कारण कि परिवादी को उसका वैवाहिक घर छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था।'

7. वैधानिक एवं तथ्यपरक स्थिति की दृष्टि में, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है। आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा विद्वान SDJM, रांची ने भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याचीगण के विरुद्ध एक प्रथम दृष्टया मामला पाया था, विधि के अधीन पोषित नहीं किया जा सकता क्योंकि इसे इस पर विचार किये बिना ही अभिलिखित किया गया था कि अभिकथित कृत्य का कोई भी हिस्सा उनकी क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर गठित नहीं हुआ था। तदनुसार, ऐसा आदेश और परिवाद केस सं॰ 664/07 में याचीगण का समूचा दांडिक अभियोजन अपास्त किया जाता है, तथापि, परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को सक्षम क्षेत्रीय अधिकारिता के न्यायालय में ऐसे किसी परिवाद को दाखिल करने की स्वतंत्रता के साथ।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

मृत्युंजय किशोर मिट्टू

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P. (S) No. 1079 of 2005. Decided on 31st January, 2011.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सेवा विधि—प्रोन्नति—याची के विरुद्ध कतिपय अभिकथनों के लंबित रहने के आधार पर डी॰ एस॰ पी॰ से ए॰ एस॰ पी॰ और एस॰ पी॰ के पद पर प्रोन्नति का रोका जाना—याची को झारखण्ड राज्य आबंटित किया गया था—याची के चरित्र पुस्तक में काफी पहले चेतावनी का हल्का दंड अभिलिखित किया गया था—उसके उपरांत कोई प्रतिकूल प्रविष्टियां दर्ज नहीं की गयी—याची उस तिथि से प्रोन्नति पाने का अधिकारी है जिस तिथि से उसके कनिष्ठों को उच्चतर वेतनमान में प्रोन्नत किया गया है—याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 5 एवं 6)

निर्णयज विधि.—W. P. (S) No. 1096 of 2001—Applied.

अधिवक्तागण.—M/s M. M. Pal, Mahua Palit, Leena Mukherjee, Ruby Pandey, For the Petitioner; M/s T. N. Verma, Arun Kumar Sahai, For the Respondents (Vigilance).

आदेश

याची ने दिनांक 8.11.2004 के विभागीय प्रोन्नति समिति के निर्णय को चुनौती देते हुए यह रिट याचिका दाखिल की है जिसके द्वारा याची को प्रोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया था इस तथ्य की दृष्टि में कि याची के विरुद्ध कतिपय अभिकथन मौजूद थे। याची ने उसे उस तिथि से वरीय आरक्षी अधीक्षक एवं अपर आरक्षी अधीक्षक के पदों पर प्रोन्नति प्रदान करने के लिए या प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध परमादेश निर्गत किये जाने का भी आग्रह किया है जिस तिथि से 8.11.2004 को उक्त समिति द्वारा इसी प्रकार की स्थिति में मौजूद अन्य व्यक्तियों को प्रोन्नति प्रदान की गयी है।

2. 3.5.1983 को बिहार लोक सेवा द्वारा आयोजित सम्मिलित प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर याची को उप आरक्षी अधीक्षक के तौर पर नियुक्त किया गया था। वह इस प्रकार बिहार के विभिन्न स्थानों पर अपने कर्त्तव्यों का लगातार रूप से निर्वहन करता रहा था। बिहार राज्य के पुनर्गठन के उपरांत, याची को झारखंड राज्य आबंटित किया गया था और 8.11.2004 को उसकी प्रोन्नति पर विचार किया गया था। आक्षेपित आदेश में यह इंगित किया गया है कि वह एक आरोपित पदाधिकारी है और उसे प्रोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया था।

3. प्रत्यर्थीगण द्वारा भी रिट याचिका का प्रतिवाद किया गया था और उन्होंने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया तथा प्रति शपथ पत्र में अभिकथित किया कि अध्यक्ष, झारखण्ड राज्य लोक सेवा आयोग की अध्यक्षता के अधीन उप-आरक्षी अधीक्षक के पद से उच्चतर पद पर याची की प्रोन्नति के लिए चयन समिति का आयोजन किया गया था और याची के एक आरोपित पदाधिकारी होने के कारण उसे प्रोन्नति के लिए विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा उपयुक्त नहीं पाया गया था। यह भी अभिकथित किया गया था कि 5.10.1996 को उसे एक चेतावनी दी गयी थी जिसे उसकी चरित्र पुस्तक में प्रविष्ट कराया गया था और इस प्रकार याची दावा नहीं कर सकता कि उसका बेदाग चरित्र था। प्रत्यर्थीगण ने अपने शपथ पत्र में यह भी कथन किया है कि याची के मामले पर विचार किया जायेगा और जैसे ही प्रोन्नति की प्रक्रिया पूरी कर ली जायेगी, याची को प्रोन्नति प्रदान कर दी जायेगी।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क रखा कि किसी अभिकथन या आरोप का मात्र लंबित रहना किसी व्यक्ति को प्रोन्नति के लिए अनुपयुक्त घोषित करने का एक आधार नहीं हो सकता। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इस तर्क का विरोध किया। यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि अगर एक व्यक्ति के विरुद्ध कोई कार्यवाही प्रारंभ की जाती है और उसे किसी विभागीय कार्यवाही में दोषी नहीं पाया गया है, विभागीय प्रोन्नति समिति उसके मामले को सीधे ही इस आधार पर अस्वीकार नहीं कर देगी कि

उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही लंबित है या यह कि उस व्यक्ति को किसी विभागीय जांच में आरोपित किया गया है। विधि का यह भी स्थापित सिद्धांत है कि ऐसे मामलों में विभागीय प्रोन्नति समिति को उसके दावे पर विचार करना होता है और कार्यवाही को एक मुहरबंद लिफाफे में रखने या मामले को लंबित रखने का विकल्प उसके लिए खुला था। मुहरबंद लिफाफा खोला जायेगा अगर विभागीय कार्यवाही समाप्त कर दी जाती है और उसे विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा लिये गये निर्णय का लाभ प्रदान किया जायेगा। वर्तमान मामले में, विभागीय प्रोन्नति समिति ने इसी प्रक्रिया का मार्ग नहीं अपनाया है।

5. वर्तमान मामले में, रिट याचिका के परिशिष्ट 2 से यह प्रकट है कि विभागीय कार्यवाही, जो प्रारंभ की गयी थी, ने अंतिमता प्राप्त कर ली है और प्रत्यर्थी-राज्य ने वर्ष 1992 में एक निर्णय लिया था, जिसे वर्ष 1996 में संसूचित किया गया था, कि याची को उन आरोपों के लिए चेतावनी दी गयी है जो वर्ष 1987 में उसके विरुद्ध लगाये गये थे। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता यह नहीं दर्शा सके थे कि वर्ष 1987 में उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों के संबंध में याची के विरुद्ध कार्यवाही अभी तक लंबित है। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चेतावनी के माध्यम से याची पर एक हल्के दंड के अधिरोपण के साथ जांच पूरी कर ली गयी है जो काफी पहले याची के चरित्र पुस्तक में दर्ज की गयी थी। इस प्रकार, रिट याचिका के परिशिष्ट 3 (दिनांक 8.11.2004 की डी॰ पी॰ सी॰ की कार्यवाहियों की प्रति) में याची को प्रोन्नति से वंचित करते हुए किया गया पृष्ठांकन सही नहीं है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता अभिलेखों से नहीं दर्शा सके कि इसके उपरांत कोई प्रतिकूल प्रविष्टियां दर्ज की गयी हैं। **शिवाजी सिंह बनाम झारखंड राज्य (W.P.(S) सं॰ 1096 वर्ष 2001, दिनांक 21.7.2005)** में दिये गये इस न्यायालय के निर्णय द्वारा याची का मामला पूर्णतः आच्छादित है। इन परिस्थितियों में, रिट याचिका के परिशिष्ट 3 में यथा अंतर्विष्ट प्रत्यर्थी का आदेश याची के विरुद्ध पोषणीय नहीं है। याची उस तिथि से प्रोन्नति पाने का अधिकारी है जिस तिथि से उसके कनीयों को उच्चतर वेतनमान में प्रोन्नत किया गया है। याची प्रोन्नति के लिए झारखण्ड राज्य द्वारा विचारित किये जाने का अधिकारी है और अगली बैठक में विचारण के लिए मामले को भी विभागीय प्रोन्नति समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

6. मामले के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों की दृष्टि में, मैं प्रत्यर्थीगण को उच्चतर पदों पर और वेतनमानों पर याची की प्रोन्नति के मामले पर विचार करने का प्रत्यर्थीगण को निर्देश देता हूँ रिट याचिका में दावा की गयी तिथि 8.11.2004 से, जब इसी प्रकार की स्थिति में मौजूद अन्य व्यक्तियों को प्रोन्नति प्रदान की गयी थी। प्रत्यर्थीगण इस आदेश की एक प्रति के प्रस्तुतिकरण/प्राप्ति की तिथि से अधिमानतः तीन महीनों की अवधि के भीतर याची के मामले में शीघ्रतापूर्वक एक अंतिम निर्णय लेंगे।

उपरोक्त संपरीक्षणों एवं निर्देश के साथ, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। व्ययों के संबंध में कोई आदेश नहीं।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मुकेश रंजन

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 197 of 2009. Decided on 4th February, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498A सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3/4—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—क्रूरता—दहेज की मांग—संज्ञान—पक्षकारों के बीच पारस्परिक सहमति से तलाक—तलाक के निबंधनों में याची-पति द्वारा 2,50,000/-रुपये जमा किये गये—पत्नी की कोई अभ्यापत्ति न होने से याची का समूचा दांडिक अभियोजन निरस्त—आक्षेपित आदेश निरस्त एवं अभियुक्त दोषमुक्त। (पैराएँ 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.—(2003) 4 SCC 675—Applied.

अधिवक्तागण.—Mr. Abhiram Anand, For the Petitioner; Mr. Md. Hatim, For the State; M/s R.K. Shshi, A.K. Srivastava, Rubin Kr., For the Opp. Party No. 2.

डी० के० सिन्हा, न्यायमूर्ति.—जी०आर० सं० 3538/07 के तत्सम डोरंडा (अरगोरा) पुलिस थाना केस सं० 265/07 से उद्‌भूत होने वाली समूची दांडिक कार्रवाई के निरस्तीकरण के लिए याची ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय के अंतर्निहित अधिकारिता का आलम्ब लिया है, जिसके द्वारा विद्वान सी०जे०एम०, राँची ने भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए उसके विरुद्ध दिनांक 24. 9.2007 के आक्षेपित आदेश द्वारा अपराध का संज्ञान लिया था।

2. अभियोजन पक्ष संक्षेप में यह है कि सूचनादाता-विपक्षी पक्षकार सं० 2 का 7.5.2006 को याची के साथ विवाह हुआ था और वह अपने वैवाहिक घर चली गयी थी। यह अभिकथित किया गया था कि पति-याची एवं सूचनादाता के ससुराल वाले उसके विवाह के अवसर पर दिये गये दहेज से संतुष्ट नहीं थे और इस कारण, उन्होंने ताने कसने प्रारंभ कर दिये थे और वे चुभने वाले शब्दों का इस्तेमाल किया करते थे। छोटे-मोटे घरेलू कारणों से उसे कई अवसरों पर मारा-पीटा एवं प्रताड़ित तक किया गया था और उसे अपने माता पिता से स्पष्ट शब्दों में एक लाख रुपये एवं एक इंडिका कार लाने का निर्देश दिया गया था। उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था और कोई रास्ता सामने नजर नहीं आने के कारण उसने अपने पति एवं अन्य ससुराल वालों के विरुद्ध एक पुलिस केस दाखिल कर दिया था। याची-पति मुकेश रंजन एवं सास पुर्णिमा देवी के विरुद्ध मामले के अन्वेषण के उपरांत आरोप पत्र दाखिल किया गया था और तदनुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धाराओं 3/4 के अधीन भी अपराध का संज्ञान लिया गया था।

3. इस दांडिक विविध याचिका के लंबित रहने के दौरान, याची ने दो अंतर्वर्ती आवेदन दाखिल किये थे। आई० ए० (दांडिक) सं० 2585 वर्ष 2009 में याची ने अनुतोष वाले हिस्से में संशोधन इप्सित किया था अपने आग्रह में ऐसा जोड़ने का प्रस्ताव रखकर कि दिनांक 20.5.2009 के संज्ञान के आदेश को भी निरस्त किया जाए। आई० ए० सं० 1749 वर्ष 2010 में याची ने दिनांक 1.7.2010 के समझौते विलेख (परिशिष्ट-10) की दृष्टि में और हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन लाये गये वैवाहिक अभिधान वाद सं० 213 वर्ष 2009 में पारित क्रमशः 1.7.2010 के निर्णय एवं 3.7.2010 की डिक्री भी दृष्टि में डोरंडा (अरगोरा) पुलिस थाना केस सं० 265/07 से उद्‌भूत होने वाले समूचे दांडिक अभियोजन को प्राथमिकी समेत निरस्त करने का आग्रह किया था जो याची के विरुद्ध प्रारंभ किया गया था। आई० ए० सं० 1749 वर्ष 2010 में यह तर्क रखा गया है कि वैवाहिक वाद, जो प्रारंभ में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 (ia) एवं (ib) के अधीन याची-पति द्वारा प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, रांची के समक्ष दाखिल किया गया था को पारस्परिक सहमति से तलाक के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन एक वाद में संपरिवर्तित कर दिया गया था। इसमें सूचनादाता विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने हाजिरी दर्ज कराई थी और निम्नांकित संपरीक्षण के साथ उक्त वैवाहिक वाद में निर्णय अभिलिखित किया गया था :

''अभिवाकों एवं मौखिक परिसाक्ष्य से यह परिलक्षित होता है कि पक्षकार पिछले 2 वर्षों से अधिक समय से पृथक रूप से रह रहे हैं। पक्षकारों के भिन्न स्वभाव के कारण उनके बीच मेल मिलाप विफल हो गया है और वे एक सुखी वैवाहिक जीवन गुजारने में अक्षम हैं। वे तलाक के अपने पक्ष पर अड़े हुए हैं और यह भी कि न्यायालय के समक्ष उन्होंने अभिसाक्ष्य दिया कि तलाक के उपरांत वे भविष्य में एक दूसरे के विरुद्ध कोई दावा नहीं करेंगे।

समर्थन करने वाले साक्ष्य समेत अभिलेख का अवलोकन करने के उपरांत मुझे समाधान है कि संयुक्त याचिका सांठ-गांठ के बिना है, पक्षकार पिछले दो वर्षों से अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और भविष्य में वे एक दूसरे के विरुद्ध कोई दावा नहीं करेंगे।

ऊपर परिचर्चा किये गये पक्षकारों के निवेदन एवं अभिसाक्ष्य के आलोक में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन संयुक्त याचिका अनुज्ञात की जाती है। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन पारित तलाक की एक डिक्री द्वारा वैवाहिक संबंध एतद द्वारा भंग किया जाता है। पक्षकार अपने खर्चों का वहन स्वयं करेंगे।''

4. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी इंगित किया कि पारस्परिक सहमति से हुए तलाक के निबंधनों के अनुसार, याची-पति ने पूर्ण एवं अंतिम राशि के तौर पर प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय में 2,50,000/-रुपये का एक बैंक ड्राफ्ट इस शर्त के साथ जमा कर दिया कि पत्नी-विपक्षी पक्षकार सं० 2 इसे तभी प्राप्त करेगी जब सारे मामलों का निस्तारण कर लिया जाए।

5. विपक्षी पक्षकार सं० 2, सूचनादाता ने इस दांडिक विविध याचिका में उपस्थिति दर्ज की थी और प्रति शपथ पत्र दाखिल किया था उसमें यह कथित करते हुए कि याची-पति की माता ने भी परिवाद केस सं० 2686/2008 दाखिल किया था जिसमें सूचनादाता-विपक्षी पक्षकार सं० 2, उसकी बड़ी बहन एवं दो भाईयों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 323/348/385 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(ia) एवं (ib) के अधीन दाखिल वैवाहिक वाद पारस्परिक सहमति से तलाक के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13B के अधीन एक वाद में संपरिवर्तित कर दिया गया था जिसमें कुटुम्ब न्यायालय में याची द्वारा पूरी एवं अंतिम राशि के तौर पर 2,50,000/- रुपये का एक बैंक ड्राफ्ट जमा किया गया था, जिसे वह सारे मामलों के निस्तारण के उपरांत प्राप्त करने की अधिकारी थी। ऐसे निबंधनों के अनुसरण में, याची-पति की माता ने परिवाद केस सं० 2686/2008 को वापस लेने के लिए एक याचिका दाखिल की थी जिसमें अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया था। प्रतिशपथ पत्र में यह भी तर्क दिया गया है कि जी०आर० सं० 3538/07 में अभियुक्त-याची एवं उसकी माता के अभियुक्त होने के कारण उन्हें पुलिस के कागजात की आपूर्ति के लिए यह मामला एस०डी०जे०एम०, रांची के समक्ष लंबित था, परन्तु वे जानबूझकर बैंक ड्राफ्ट की वैधता का अवसान करा देने के लिए न्यायालय में हाजिरी से बचते रहे हैं ताकि सूचनादाता-विपक्षी पक्षकार सं० 2 दो को उसे स्थायी निर्वाहिका से वंचित किया जा सके, यद्यपि उसने आश्वस्त किया है कि वह एस०डी०जे०एम०, रांची के समक्ष लंबित वर्तमान जी०आर० सं० 3538/07 का अनुसरण करने में रूचि नहीं रखती है।

6. पक्षकारों के अभिवाकों से मैं पाता हूँ कि विवाद के समाधान पर पहले ही पहुंचा जा चुका है और प्रति शपथ पत्र में अंतर्विष्ट था कि उसे कोई आपत्ति नहीं होगी अगर इस न्यायालय के आदेश द्वारा इस मामले के अभियुक्त-याची के समूचे दांडिक अभियोजन को निरस्त कर दिया जाए। विपक्षी पक्षकार सं० 2 ने विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, रांची द्वारा पारित परिवाद केस सं० 2686/2008 में

अभिलिखित निर्णय की सत्यापित प्रति की जेरोक्स प्रति दाखिल की है जिसके द्वारा वर्तमान मामले की परिवादी श्रीमती रजनी कुमारी एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को आरोप से बरी कर दिया गया था और उसने जी०आर० सं० 3538/2007 में उसकी ओर से दाखिल याचिका की जोरेक्स प्रति भी दाखिल किया है जिसके द्वारा उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन संस्थित दांडिक मामले के निस्तारण का एस०डी०जे०एम०, रांची से आग्रह किया था।

7. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों, पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत तर्कों को ध्यान में रखकर तथा याचिका एवं प्रति शपथ पत्र के परिशीलन पर मैं पाता हूँ कि वर्तमान मामला **(2003) 4 SCC 675** में रिपोर्ट किये गये **बी०एस० जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं एक अन्य** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णय से पूर्णत: आच्छादित है। **बी०एस० जोशी मामले (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए जी०आर० सं० 3538/07 के तत्सम डोरंडा (अरगोरा) पुलिस थाना केस सं० 265/07 में उस आदेश समेत, जिसमें अपराध का संज्ञान लिया गया है, याची मुकेश रंजन का दांडिक अभियोजन निरस्त किया जाता है और अभियुक्तों को बरी किया जाता है।

8. तदनुसार, आई० ए० (दांडिक) सं० 2585 वर्ष 2009 एवं I.A. सं० 1749 वर्ष 2010 भी निस्तारित किये जाते हैं।

माननीय सुशील हरकौली एवं आर० आर० प्रसाद न्यायमूर्तिगण

अबू बकर शेख एवं अन्य (289 में)

मोजीबुर शेख एवं एक अन्य (295 में)

बनाम

झारखंड राज्य (दोनों में)

Cr. Appeal Nos. 289, 295 of 2002. Decided on 20th January, 2011.

सत्र केस सं० 155 वर्ष 1985 में अपर सत्र न्यायाधीश, पाकुड़ द्वारा पारित दिनांक 6.5.2002 के निर्णय और दिनांक 8.5.2002 के दोषसिद्धि के आदेश एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34, 323/34 और 148—हत्या और उपहति–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–विचारण न्यायालय द्वारा 14 अभियुक्तगण में से केवल 7 को दंडादेश दिया गया–हत्या और लूट का हेतु अभियुक्तगण और सूचक के परिवार के बीच पुरानी दुश्मनी बताया जाता है–सूचक का परिवार समस्त अभियुक्तगण को जानता था–अपराध करते हुए अभियुक्तगण में से किसी के द्वारा अपने चेहरों को छुपाने का प्रयास नहीं किया गया–यह मध्य रात्रि में डकैती का मामला है और डकैतों को पहचाना नहीं जा सका था–पुरानी दुश्मनी के कारण अभियुक्तगण को आलिप्त किया गया था–अपीलें अनुज्ञात। (पैराएँ 9 से 13)

अधिवक्तागण.–M/s R.S. Mazumdar, Md. Asadul Haque, Rishavdev, For the Appellants; Mr. A.B. Mahato, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–ये दोनों संबंधित अपीलें सत्र केस सं० 155 वर्ष 1985 में पारित दिनांक 8.5.2002 के निर्णय से उद्भूत होती है जिसके द्वारा अपर सत्र न्यायाधीश, पाकुड़ ने अपील सं० 289/2002 के अभियुक्त-अपीलार्थीगण अर्थात् अबू बकर शेख, हुसैन शेख, मीरजाफर शेख, उमर शेख और अजीद शेख को दोषसिद्ध किया और भा० दं० सं० की धारा 302/34 के अधीन आजीवन कारावास और

भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 148 के अधीन छह माह के कारावास का दंडादेश दिया। अपील सं॰ 295/2002 के अभियुक्त अपीलार्थीगण अर्थात् मोजीर्बुर शेख, सैदुल शेख को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323/34 के अधीन नौ माह के कारावास और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 148 के अधीन छह माह के कारावास का दंडादेश दिया गया है।

2. विचारण न्यायालय ने उक्त निर्णय द्वारा 14 अभियुक्तगण में से केवल 7 अभियुक्तगण को दंडादेश दिया गया है जिनका विचारण किया गया था।

3. अभियोजन मामला के अनुसार, दिनांक 27-28 नवम्बर, 1984 को रात्रि लगभग 11 बजे जब सूचक नासिर शेख लेटा हुआ था और अपने साला निजामुद्दीन शेख के साथ बात कर रहा था और परिवार के अन्य सदस्य घर में सो रहे थे, लगभग 5-6 व्यक्ति सूचक के घर के छत पर चढ़े और सीढ़ी के सहारे उतरे और घर के आंगन में घुसे और घर के मुख्य दरवाजा को खोल दिया। मुख्य दरवाजा से 10-12 और व्यक्ति घर में घुस गए। ये समस्त व्यक्ति बम, चिजल, कुल्हाड़ी, साइकिल चेन और लोहे की छड़ आदि से लैस थे। सूचक ने समस्त 14 (चौदह) व्यक्तियों को अभिकथित रूप से लालटेन के प्रकाश में पहचाना था और उन समस्त व्यक्तियों को प्राथमिकी में नामित किया था और उनका विचारण किया गया था। सूचक अभिकथन करता है कि उसने शोर मचाया जिस पर उसे और उसके साला पर साइकिल चेन और लोहे की छड़ से प्रहार किया गया था जिससे सूचक को मस्तक, बाँह, जांघ और पीठ पर उपहति हुई। अजीद शेख (जिसे दोषमुक्त कर दिया गया है) को कोयेश विश्वास का अता-पता पूछता हुआ अभिकथित किया गया है और उसे अन्य को कोयेश विश्वास की हत्या करने और संपत्ति लूटने के लिए कहता हुआ अभिकथित किया गया है। प्राथमिकी के अनुसार, कोयेश विश्वास अर्थात् सूचक का पिता घर के बीच में कोठरी में सो रहा था। चौदह अभियुक्तगण में से अबू बकर, हुसैन शेख, मीरजाफर शेख, उमर शेख और अजीद शेख उस कोठरी में घुसे। अबू बकर ने अपने हाथ की कुल्हाड़ी से और उमर शेख ने छेनी से कोयेश विश्वास पर प्रहार किया और उसकी हत्या कर दी। जब प्रहार किया जा रहा था, मीरजाफर शेख, हुसैन शेख और अजीद शेख मृतक कोयेश विश्वास को पकड़े हुए थे। आगे, प्राथमिकी के अनुसार, कोयेश विश्वास की हत्या करने के बाद अभियुक्त अबू बकर ने अपने सह-अभियुक्तगण से कहा अब जाना चाहिए क्योंकि काम हो गया है और समस्त अभियुक्तगण बम विस्फोट करते हुए घर के बाहर उत्तर की ओर चले गए। घटना के बाद सूचक को उसकी पत्नी ने बताया कि अभियुक्तगण ने उसकी पत्नी और बहन के गहनों को और अन्य घरेलू वस्तुओं को अर्थात् पाँच थाली, एक शीट, आदि लूट लिया था। प्राथमिकी के अनुसार, हत्या और लूट का हेतु सूचक के परिवार और अभियुक्तगण के बीच पुरानी दुश्मनी थी। दुश्मनी के क्रम में यह भी अभिकथित किया गया है कि एक मामला लंबित है और घटना के पहले जुलाई माह अर्थात् जुलाई, 1984 में अभियुक्तगण ने सूचक को और उसके परिवार के सदस्यों को हत्या के मामले में आलिप्त किया था और उनको जेल भिजवाया था।

4. घटना की प्राथमिकी को अगले दिन अर्थात् दिनांक 28.11.1984 को प्रातः 8.30 बजे अभिकथित रूप से दर्ज किया गया था। कुल मिलाकर अभियोजन द्वारा 11 गवाहों का परीक्षण किया गया था। सूचक का परीक्षण अ॰ सा॰ 6 के रूप में किया गया है। वह घायल गवाह होने का दावा करता है किन्तु उपहतियों के प्रकार, जैसा वह प्राथमिकी में अभिकथित करता है, अभिकथित रूप से प्रयुक्त किए गए हथियारों अर्थात् लोहे की छड़, साइकिल की चेन के आलोक में चिकित्सीय रिपोर्ट से बिल्कुल सही समर्थन नहीं पाते हैं जैसा अ॰ सा॰ 5 डॉ॰ एस॰ एन॰ पी॰ सिन्हा द्वारा परिसाक्ष्य दिया गया है। इन उपहतियों का परीक्षण अगले दिन अर्थात् दिनांक 28.11.1984 को किया गया था और सूचक पर त्वचा तक गहरा विदीर्ण जख्म स्काल्प पर पाया गया था और शेष समस्त उपहतियाँ सूजन के साथ खरोंच मात्र है। इससे

भी महत्वपूर्ण, इसी डॉक्टर ने सूचक के साला अर्थात् निजामुद्दीन के शरीर पर केवल खरोंच पाया है। दो हथियार विहीन व्यक्तियों पर लोगों की वृहत संख्या द्वारा लोहे की छड़ और साइकिल की चेन से किए गए प्रहार का परिणाम सामान्यत: बड़ी और गहरी उपहतियों में होता।

5. यद्यपि प्राथमिकी को दिनांक 28.11.1984 को प्रात: 8.30 बजे दर्ज किया गया बताया गया है किन्तु इसे दिनांक 7.12.1984 तक सी॰ जे॰ एम॰ को अग्रसर नहीं किया गया था जो एक छोटा सा संदेह सृजित करता है कि क्या प्राथमिकी का रजिस्ट्रेशन समय पूर्व है और वास्तविक प्राथमिकी अत्यन्त सोच-विचार के बाद बहुत देर से दर्ज की गयी थी। यह अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है क्योंकि प्रकाश का एकमात्र स्रोत लालटेन अभिकथित किया गया है किन्तु ऐसा कोई लालटेन अन्वेषण अधिकारी द्वारा अभिग्रहित नहीं किया गया है। अन्य घायल गवाह निजामुद्दीन शेख का परीक्षण अ॰ सा॰ 8 के रूप में किया गया है। जैसा ऊपर उल्लिखित किया गया है, उसकी उपहतियाँ मात्र खरोंच हैं जो प्राथमिकी में अभिकथित प्रहार के प्रकार से मेल नहीं खाती है। इन कारकों का अधिमूल्यन इस तथ्य के प्रकाश में करना होगा कि अ॰ सा॰ 9 मो॰ शमशुल हक और अ॰ सा॰ 10 अब्दुल हक, जिनका परीक्षण मुख्यत: मृत्यु समीक्षा के गवाहों के रूप में किया गया है, ने कथन किया है कि वे घटना के कुछ देर बाद ही घटनास्थल पर पहुँचे थे किन्तु उस समय पर अभियुक्तगण के नामों को प्रकट नहीं किया गया था और यह अभिकथित किया गया था कि पीड़ित के घर में डकैती की गयी थी। वे स्वतंत्र गवाह हैं। वे अभियोजन गवाह हैं और उन्हें पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है। अभियुक्तगण का बचाव यह है कि यह अज्ञात व्यक्तियों द्वारा डकैती का मामला है और अभियुक्तगण को दुश्मनी के कारण सोच-विचार कर झूठा आलिप्त किया गया है क्योंकि वास्तविक हमलावर अज्ञात थे और उनका पता नहीं लगाया जा सका था और यही कारण है कि दिनांक 28.11.1984 को दर्ज प्राथमिकी को दिनांक 7.12.1984 अर्थात् दस दिनों की अवधि तक सी॰ जे॰ एम॰ को अग्रसर नहीं की गयी थी। अभियोजन द्वारा अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण भी नहीं किया गया है, तद्द्वारा एक महत्वपूर्ण स्वतंत्र गवाह के परीक्षण के अवसर से अभियुक्तगण को वंचित करते हुए कि प्राथमिकी दर्ज करने के अभिकथित समय और इसे सी॰ जे॰ एम॰ को भेजने के समय के बीच क्या हुआ था।

6. मृतक पर प्रहार के दौरान कोठरी के भीतर जो हुआ था उसका वर्णन अत्यन्त ग्राफिक विवरणों को अंतर्विष्ट करता है जिसे सूचक, जिसे साक्ष्य के अनुसार आरंभिक चरण पर अभियुक्तगण द्वारा बरामदा में बांध दिया गया था, द्वारा देखे जाने की संभावना नहीं है। यद्यपि सूचक और उसके साला को बांधने और तत्पश्चात् उन दोनों पर प्रहार करने का मामला मूल प्राथमिकी में नहीं दिया गया है।

7. इसके अतिरिक्त, यदि दुश्मनी हेतु था जैसा प्राथमिकी में अभिकथित किया गया है और हत्या करने के बाद अभियुक्त अबू बकर ने कहा कि उनका काम हो गया है और इसलिए उन्हें चले जाना चाहिए, छोटे-मोटे घरेलू सामानों जैसे शीट, थाली का लूटा जाना संगत प्रतीत नहीं होता है।

8. यह अभिकथित नहीं किया गया है कि क्यों सूचक के पिता कोयेश विश्वास को उसकी हत्या के लिए चुना गया था जब दुश्मनी सूचक के पूरे परिवार के साथ प्रतीत होती है। सूचक को छोड़ने और केवल उसके पिता की हत्या करने का कोई अच्छा कारण प्रतीत नहीं होता है।

9. जैसा ऊपर कथन किया गया है, अ॰ सा॰ 9 मो॰ शमशुल हक पंचायत का मुखिया होने के कारण स्वतंत्र गवाह है और उसने परिसाक्ष्य दिया है कि बम विस्फोट और गाँववालों का शोर सुनकर वह घटनास्थल पहुँचा। घटनास्थल पर पहुँचने के बाद, उसने कोयेश विश्वास को मृत पाया और सूचक और उसके साला निजामुद्दीन शेख को घायल पाया। इसी प्रकार, अ॰ सा॰ 10 अब्दुल हक विश्वास भी बम

विस्फोट सुनकर घटनास्थल पहुँचा और मृतक एवं दो घायलों को पाया और इन गवाहों के अनुसार, सूचक ने उस समय उन्हें बताया कि उसके घर में डकैती हुई है और डकैतों द्वारा उसके पिता की हत्या कर दी गयी है। इन दोनों स्वतंत्र गवाहों के साक्ष्य को आसानी से अनदेखा नहीं किया जा सकता है और यह अभियोजन के विवरण पर गंभीर संदेह उत्पन्न करता है जिसे प्राथमिकी में दिया गया है जिसके अनुसार कुल मिलाकर 14 अभियुक्तगण सूचक के घर में घुसे और लालटेन के प्रकाश में सूचक द्वारा उन्हें तुरन्त पहचान लिया गया था जिस लालटेन को इसे अभिग्रहित करके न्यायालय के समक्ष सिद्ध भी नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 3 सूचक की पत्नी है। वह भी चश्मदीद गवाह होने का दावा करती है। वह अपने साक्ष्य में कहती है कि अभियुक्तगण द्वारा उसके पति और उसके साला को बांध दिया गया था और तत्पश्चात् साइकिल चेन और लोहे की छड़ से उन पर प्रहार किया गया था। इस गवाह के अनुसार, इन दोनों घायलों पर प्रहार करने के बाद अभियुक्तगण कोठरी में घुसे और उसके श्वसुर पर तेजधार वाले हथियार से प्रहार किया जिसके बाद अभियुक्त अबू बकर ने उसके गले से सोने का चेन छीना और टिन बॉक्स से एक अन्य सोने का चेन निकाला और अभियुक्त सैदूल शेख ने टिन के बक्सा से कपड़े और गहने निकाले। यह साक्ष्य भी प्राथमिकी से मेल नहीं खाता है जिसके अनुसार हत्या के तुरन्त बाद अभियुक्त अबू बकर ने कहा कि उनका काम हो गया है और उन्हें जाना चाहिए। अब यह कल्पना करना मुश्किल है कि यह गवाह (अ॰ सा॰ 3) कहाँ थी, जहाँ से उसने न केवल वह देखा जो बरामदे में घटा था बल्कि वह भी देखा जो कोठरी के अंदर हुआ था। वह अपने पति को बचाने के लिए क्यों नहीं दौड़ी। अ॰ सा॰ 4 मृतक की पत्नी है। वह भी अपने पति पर प्रहार किए जाने के चरण तक का चश्मदीद गवाह होने का दावा करती है जिसके बाद वह दावा करती है कि वह मूर्छित हो गयी थी। इन दोनों महिला गवाहों ने लगभग प्राथमिकी की कथा दोहरायी है किन्तु सूचक के परिवार का सदस्य होने के नाते वे समान रूप से हितबद्ध गवाह है क्योंकि अभियुक्तगण ने पुरानी दुश्मनी स्वीकार की है और इसलिए हम स्वतंत्र गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 9 और अ॰ सा॰ 10 पर विश्वास करेंगे।

10. तरीका जिससे अभियुक्तगण को सीढ़ी की मदद से घर की छत पर चढ़ने और आंगन में नीचे उतरने और मुख्य दरवाजा खोलने जिससे और भी अभियुक्तगण घर में घुसे, और इस तरह रात्रि 11 बजे घर के अन्दर पहुँचा हुआ बताया जाता है, डकैती की आम कहानी है न कि प्रतिशोधपूर्ण हत्या का एक मामला है। अभियोजन का स्वीकृत मामला है कि सूचक का परिवार इन समस्त अभियुक्तगण को अच्छी तरह जानता था। अपराध करते हुए अभियुक्तगण में से किसी के द्वारा अपने चेहरे को छुपाने का प्रयास नहीं किया गया है और वस्तुतः घर छोड़ते हुए बम विस्फोट करना गाँववालों में से अन्य गवाहों का ध्यान आकृष्ट करने का जोखिम उठाना होगा। यदि सूचक का परिवार अभियुक्तगण को अच्छी तरह जानता और वे अपनी पहचान छुपाने के किसी प्रयास के बिना हत्या करते और घर के अनेक सदस्यों (जिन्होंने अपराध देखा है) को जीवित छोड़ देते, तो कोई सही कारण प्रतीत नहीं होता है कि इस प्रकार का अपराध करने के लिए क्यों वे लगभग मध्य रात्रि का समय चुनेंगे।

11. स्वयं विचारण न्यायालय ने 14 अभियुक्तगण में से 7 को दोषमुक्त कर दिया है जिनके विरुद्ध साक्ष्य वही है जो सात दोषसिद्ध अभियुक्तगण के विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने समस्त अभियुक्तगण को संपत्ति लूटने के आरोप से दोषमुक्त कर दिया है सिवाय मृतक की पत्नी अ॰ सा॰ 4 के जो कहती है कि वह अपने पति पर प्रहार को देखने के बाद मूर्छित हो गयी थी, और इसलिए लूट नहीं देख सकी थी, को छोड़कर सभी चश्मदीद गवाहों का संगत साक्ष्य है।

12. अत:, ऊपर इंगित की गई परिस्थितियों, विशेषत:, अ॰ सा॰ 9 और अ॰ सा॰ 10 के साक्ष्य के आलोक में हमारा मत है कि अभियोजन युक्तियुक्त संदेह के परे स्थापित नहीं कर सका था कि घटना उस तरीके से हुई थी जैसा अभियोजन द्वारा प्राथमिकी में अभिकथित किया गया है। हमें संदेह है कि क्या सूचक द्वारा अभियुक्तगण को वास्तविक रूप से पहचाना गया था जैसा अभिकथन किया गया है और कि क्या प्राथमिकी उस समय पर दर्ज की गयी थी जब इसे दर्ज किया गया कहा जाता है। संभावना है कि यह मध्य रात्रि में डकैती का मामला है। डकैतों को पहचाना नहीं जा सका था और इसलिए ही घटना के तुरन्त बाद जब गाँव वाले घटनास्थल पर पहुँचे, अभियुक्तगण का नाम प्रकट नहीं किया गया था और केवल यह कथन किया गया था कि डकैती की गयी है। यह संभावना भी बनी रहती है कि प्राथमिकी को अगले दिन अर्थात् 28.11.1984 को प्रात: 8.30 बजे दर्ज नहीं किया गया था बल्कि काफी बाद में दर्ज की गयी थी जब हमलावरों का पता लगाया जा सका था अथवा उनको पहचाना जा सका था और 14 अभियुक्तगण को पुरानी दुश्मनी के कारण आलिप्त किया गया था।

14. अत:, हम दोनों अपीलों को अनुज्ञात करते हैं और दोनों अपीलों में समस्त सात अभियुक्त-अपीलार्थीगण को आरोपों से दोषमुक्त करते हैं। अपीलार्थीगण हुसैन शेख, मीरजाफर शेख और अजीद शेख (दांडिक अपील सं॰ 289 वर्ष 2002 में) और मोजीर्बुर शेख और सैदुल शेख (दांडिक अपील सं॰ 295 वर्ष 2002 में) जमानत पर है उनके जमानत बंधकों को रद्द किया जाता है और प्रतिभूतियों को उन्मोचित किया जाता है। जहाँ तक अपीलार्थीगण अर्थात्, अबू बकर शेख और उमर शेख (दांडिक अपील सं॰ 289 वर्ष 2002 में) का संबंध है, चूँकि वे जेल में है, उन्हें तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उनकी आवश्यकता न हो।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

महेश प्रसाद स्वर्णकार एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

सेवा विधि–प्रोन्नति–ए॰ सी॰ पी॰ के लाभों को वापस लिया जाना–स्वयं आक्षेपित आदेश में कारणों को उल्लिखित करना होगा–पूर्णत: कारणरहित आदेश को न्यायोचित ठहराने के लिए प्रतिशपथ में कारणों को नहीं दिया जा सकता है–ए॰ सी॰ पी॰ आदेश प्रदान करते हुए एस॰ पी॰ द्वारा पारित किया गया–कोई नोटिस दिए बिना और कोई कारण दिए बिना उसी प्राधिकारी द्वारा आदेश का पुनर्विलोकन आक्षेपित आदेश को भेद्य बनाता है–आक्षेपित आदेश अपास्त।

(पैराएँ 2 से 4)

निर्णयज विधि.–W.P. (S) No. 2584 of 2005. Decided on 18th January, 2011.

अधिवक्तागण.–M/s (Dr.) S.N. Pathak, N. K. Pandey, For the Petitioner; J.C. to A.G., For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका मुख्यत: इन कारणों से दाखिल की गयी है कि परिशिष्ट-4 पर दिनांक 9 जनवरी, 2004 के आदेश के तहत याचीगण को प्रदान किए गए एश्योर्ड कैरिअर प्रोग्रेशन (संक्षेप में ''ए॰ सी॰ पी॰'') के लाभों को परिशिष्ट-6 पर दिनांक 12 जनवरी, 2005 के पश्चात्वर्ती आदेश द्वारा एकपक्षीय

रूप से मनमाने ढंग से नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के उल्लंघन में और कोई सुयोग्य कारण दिए बिना वापस ले लिया गया है और इसलिए परिशिष्ट-6 पर दिनांक 12 जनवरी, 2005 के आदेश को चुनौती देते हुए याचीगण द्वारा वर्तमान याचिका दाखिल की गयी है।

2. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि:–

(i) याचीगण प्रासंगिक समय पर प्रत्यर्थीगण के साथ बावर्ची, जलवाहक, नाई, माली, जमादार, आदि के रूप में ग्रेड-IV के पद पर काम कर रहे थे।

(ii) आगे यह प्रतीत होता है कि प्रारंभ में माननीय पटना उच्च न्यायालय के समक्ष सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 7810 वर्ष 1988 और सी० डब्ल्यू० जे० सी० संख्या 5485 वर्ष 1989 रिट याचिकाएँ उनकी सेवाओं के नियमितिकरण के लिए दाखिल की गयी थी और दिनांक 27 मार्च, 1996 के आदेश के तहत, पैराग्राफों 7 और 8 में माननीय पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:-

"7. तद्नुसार, मैं प्रत्यर्थी बिहार राज्य और इसके प्राधिकारीगण को सेवा में प्रवेश करने की उनकी अपनी-अपनी तिथि को विचार में लेते हुए और यदि आवश्यक हो, पदों जिनके विरुद्ध याचीगण को सेवा में प्रवेश करने की उनकी अपनी-अपनी तिथि को विचार में लेते हुए, और यदि आवश्यक हो, पदों जिनके विरुद्ध याचीगण अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं को स्थायी पद बनाते हुए दिनांक 5 मार्च, 1948 की नियमावली (परिशिष्ट-9) के निबंधनानुसार नियमित नियुक्ति के लिए समस्थित समस्त व्यक्तियों के साथ याचीगण के मामले पर विचार करने का निर्देश देता हूँ। इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर ऐसी कार्रवाई करनी होगी और प्रत्यर्थीगण द्वारा आदेशों को पारित किया जाएगा। यह स्पष्ट किया जाता है कि आदेश को बिहार राज्य के गृह (पुलिस) विभाग के सचिव को साथ इसकी प्रति पुलिस महानिदेशक सह पुलिस महानिरीक्षक को देना होगा।

8. रिट याचिकाएँ अनुज्ञात की जाती हैं। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।''

(iii) यह प्रतीत होता है कि आरक्षी अधीक्षक, पद्मा प्रशिक्षण केन्द्र, हजारीबाग ने दिनांक 9 जनवरी, 2004 को आदेश पारित किया है। जिसके द्वारा याचिका के मेमो के परिशिष्ट-4 पर आदेश के तहत 12 वर्षों की सेवा पूरी कर लेने पर याचीगण को ए० सी० पी० का लाभ दिया गया था।

(iv) वर्तमान मामले के तथ्यों से आगे यह प्रतीत होता है कि आरक्षी अधीक्षक, पद्मा प्रशिक्षण केन्द्र, हजारीबाग ने याचिका के मेमो के परिशिष्ट-6 के आदेश के तहत 12 माह की अवधि के अवसान पर अर्थात् दिनांक 12 जनवरी, 2005 को याचीगण को प्रदत्त ए० सी० पी० योजना के लाभ को वापस ले लिया है।

(v) वर्तमान मामले के तथ्यों से आगे यह प्रतीत होता है कि परिशिष्ट-6 का आदेश याचीगण को कोई नोटिस दिए बिना पारित किया गया है। ए० सी० पी० लाभ को वापस लेने के पहले याचीगण को कोई नोटिस नहीं दी गयी थी। प्रोद्भूत लाभ को वापस लेने के पहले अपने मामलों को रखने के लिए याचीगण को कोई अवसर नहीं दिया गया था। लगभग 12 माह बाद, प्रोद्भूत लाभ को प्रत्यर्थीगण द्वारा वापस ले लिया गया था और वह भी याचीगण को अपने मामलों को रखने के लिए कोई नोटिस अथवा अवसर दिए बिना। अतः, याचिका के मेमो के परिशिष्ट-6 पर दिनांक 12 जनवरी, 2005 का आदेश पारित करने के पहले नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का घोर उल्लंघन किया गया है और इसलिए यह अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

(vi) दिनांक 12 जनवरी, 2005 के आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-6) से आगे यह प्रतीत होता है कि ''कुछ अनियमितताओं'' के कारण ए० सी० पी० योजना के लाभ को वापस लिया गया है। विधि की दृष्टि में यह कोई तर्क नहीं है। आक्षेपित आदेश में उल्लिखित नहीं किया गया है कि वे अनियमितताएँ क्या थी। अतः आक्षेपित आदेश पूर्णतः कारण रहित आदेश है। जब कभी भी राज्य प्राधिकारीगण द्वारा प्रोद्भूत लाभ वापस लिया जाता है, इसे वापस लेने से पहले कारणों को देना ही होगा।

(vii) परिशिष्ट-6 पर आक्षेपित आदेश को देखते हुए, यह केवल निर्दिष्ट करता है कि कुछ अनियमितताएँ हैं और इसलिए ए० सी० पी० का लाभ वापस ले लिया गया है। ए० सी० पी० के लाभ को वापस लेने के कारणों के बारे में याचीगण को अंधेरे में रखा गया था। कारण रहित आदेश सदैव मनमानापन की ओर ले जाता है। मनमानापन और समानता एक-दूसरे के दुश्मन है। यदि मनमानापन उपस्थित है तब समानता सदैव अनुपस्थित है और जहाँ समानता उपस्थित है तब मनमानापन सदैव अनुपस्थित है।

(viii) परिशिष्ट-6 पर के आक्षेपित आदेश को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह कोई तर्क दिए बिना और मनमानापन से पूर्णतः कारण रहित आदेश है और इसलिए याचीगण में निहित समानता के अधिकार और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का भी उल्लंघन करता है। अतः परिशिष्ट-6 पर दिनांक 12 जनवरी, 2005 का आदेश अभिखंडित एवं अपास्त किए जाने योग्य है।

(ix) प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि प्रतिशपथ पत्र में पैराग्राफों 5 और 6 पर कारण दिया गया है कि याचीगण ने 12 वर्षों की सेवा पूरी नहीं की है और इसलिए ए० सी० पी० का लाभ वापस ले लिया गया है। यह तर्क मुख्यतः इस कारण से इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है कि पूर्णतः कारणरहित आदेश को न्यायोचित ठहराने के लिए प्रति शपथ पत्र में कोई भी कारण नहीं दिया जा सकता है अन्यथा समस्त कारण रहित और मनमाने आदेशों को समय बीत जाने पर न्यायालय में दाखिल प्रतिशपथ के जरिए तर्कपूर्ण और सकारण आदेशों में परिवर्तित कर दिया जाएगा। सरकार द्वारा बाद में प्रतिशपथ पत्र में कोई कारण नहीं दिया जा सकता है। कारणों को स्वयं आक्षेपित आदेश में उल्लिखित करना ही होगा। इसे पुलिस कमिश्नर, बॉम्बे बनाम गोरधनदास भानजी, AIR 1952 SC 16 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया है जिसके पैरा 9 का पठन है:

"9. कमिश्नर के शपथपत्र को निर्दिष्ट करते हुए यह दर्शाने का प्रयास किया गया था कि यह वस्तुतः उसके द्वारा पारित रद्दकरण का आदेश है और कि आदेश उसका आदेश था, न कि सरकार का। हमें स्पष्ट है कि सांविधिक प्राधिकार के प्रयोग में सार्वजनिक रूप से पारित लोक आदेशों का अर्थ उस आदेश को पारित करते हुए अधिकारी द्वारा बाद में दिए गए स्पष्टीकरणों के प्रकाश में नहीं लगाया जा सकता है कि उसका अर्थ क्या था अथवा उसके दिमाग में क्या था अथवा क्या करने का आशय उसका था। सार्वजनिक प्राधिकारीगण द्वारा पारित लोक आदेशों का सार्वजनिक प्रभाव होता है और वे उनके आचरण और कार्रवाई को प्रभावित करने के लिए आशयित है जिन्हें इन्हें संबोधित किया गया है और उनका अर्थ स्वयं आदेश में प्रयुक्त भाषा के संदर्भ में वस्तुपरक रूप से लगाना होगा।''

(x) पूर्वोक्त निर्णय का अनुसरण अनेक पश्चातवर्ती निर्णयों में किया गया है, उदाहरणस्वरुप मोहिन्दर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, (1978)1 SCC 405, में प्रकाशित मामले जिसके पैराग्राफ-8 का पठन निम्नलिखित है:-

"8. दूसरा बराबर रूप से प्रासंगिक मामला यह है कि जब कोई सांविधिक कार्यपालक कतिपय आधारों पर आधारित आदेश पारित करता है, इसकी वैधता का निर्णय उसमें उल्लिखित कारणों द्वारा करना होगा और इसकी पूर्ति शपथ पत्र अथवा अन्यथा के रूप में नए कारणों द्वारा नहीं की जा सकती है। अन्यथा, आरंभ में दोषपूर्ण आदेश उस समय तक जब न्यायालय में इसे चुनौती दी जाती है, बाद में दिए गए अतिरिक्त कारणों द्वारा वैध हो जाएगा। हम यहाँ गोरधन दास भानजी में बोस, न्यायमूर्ति के संप्रेक्षणों की ओर ध्यान खींच सकते हैं।

सांविधिक प्राधिकार के प्रयोग में, सार्वजनिक रूप से पारित लोक आदेशों का अर्थ आदेश पारित करते हुए अधिकारी द्वारा बाद में दिए गए स्पष्टीकरणों के आलोक में नहीं लगाया जा सकता है कि उसका अर्थ क्या था अथवा उसके दिमाग में क्या था अथवा क्या करने का आशय उसका था। लोक प्राधिकारीगण द्वारा पारित लोक आदेशों का सार्वजनिक प्रभाव होता है और वे उनके आचरण और कार्रवाई को प्रभावित करने के लिए आशयित है जिन्हें संबोधित किया गया है और उसका अर्थ स्वयं आदेश में प्रयुक्त भाषा के प्रति निर्देश में वस्तुपरक रूप से लगाया जाना होगा।

आदेश पुरानी शराब की तरह नहीं है जो समय बीतने के साथ-साथ बेहतर होते जाते हैं।''

(ix) पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में भी प्रति शपथ पत्र के कारणों की पश्चातवर्ती आपूर्ति कारण रहित आदेश को सकारण आदेश में परिवर्तित नहीं कर सकते हैं। अतः प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया प्रतिवाद कि प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफों-5 और 6 में कारणों को दिया गया है जो कारणरहित आदेश को सकारण बनाता है, इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है।

(xii) तथ्यों से आगे यह प्रतीत होता है कि परिशिष्ट-4 आरक्षी अधीक्षक, पद्मा प्रशिक्षण केंद्र, हजारीबाग द्वारा दिनांक 9 जनवरी, 2011 को पारित आदेश है जो ए० सी० पी० योजना का लाभ प्रदान करता है और उसी प्राधिकारी ने ही आदेश का पुनर्विलोकन किया है और 12 माह से काफी पहले दिए गए लाभ को वापस लेते हुए परिशिष्ट-6 पर नया आदेश पारित किया है। वस्तुतः उसी प्राधिकारी को नोटिस और सुनवाई का अवसर याचीगण को देना चाहिए था। उसी प्राधिकारी द्वारा आदेश का पुनर्विलोकन करना, और वो भी कोई नोटिस अथवा सुयोग्य कारण दिए बिना, आदेश को भेद्य बनाता है अतः दिनांक 12 जनवरी, 2005 का आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

(xiii) कमल कांत सहाय बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2010 (2) JCR 558 (Jhr) में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि नोटिस दिए बिना और सुनवाई का अवसर दिए बिना पहले दी जा चुके ए० सी० पी० के लाभ को वापस नहीं लिया जा सकता है। वर्तमान मामले के तथ्यों में भी लाभ जिसे परिशिष्ट-4 के तहत दिनांक 9 जनवरी, 2005 को प्रदान किया गया था को परिशिष्ट-6 पर के दिनांक 12 जनवरी, 2006 के आदेश द्वारा याचीगण को कोई नोटिस अथवा सुनवाई का अवसर दिए बिना अथवा अपने मामलों को रखने का अवसर दिए बिना एक पूर्णतः कारणहित आदेश द्वारा वापस ले लिया गया है।

3. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं के समेकित प्रभाव के कारण, मैं एतद् द्वारा आरक्षी अधीक्षक, पद्मा प्रशिक्षण केन्द्र, हजारीबाग द्वारा परिशिष्ट-6 पर पारित दिनांक 12 जनवरी, 2005 के आदेश को अभिखंडित और अपास्त करता हूँ।

4. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

अंजन कुमार सिन्हा उर्फ अंजन सिन्हा

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 334 of 2009. Decided on 20th January, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 323, 341, 406 एवं 420—उपहति, आपराधिक न्यास भंग और छल–विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति–यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि कर्ज लेते समय अभियुक्तगण का आशय इसे लौटाने का नहीं था–धाराएँ, 323, 341 एवं 406 के अधीन विरचित अन्य आरोपों के बारे में गवाह मौन हैं–पक्षों के बीच का विवाद सिविल प्रकृति का है–अवर न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों को उलटने का तर्कपूर्ण आधार नहीं है–पुनरीक्षण याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s Atanu Banerjee, Naresh Prasad Thakur, For the Petitioner; Mr. Md. Hatim, For the State; Mr. M.B. Lal, For the Opp.party No. 2.

आदेश

यह दांडिक पुनरीक्षण दांडिक अपील सं॰ 241 वर्ष 2008 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 18.2.2009 के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा टी॰ आर॰ सं॰ 394 वर्ष 2008, जोरापोखर पी॰ एस॰ केस सं॰ 121 वर्ष 2003 से उद्भूत, में श्री रवि रंजन, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा निर्णय को अभिपुष्ट किया गया था और तद्द्वारा अपील खारिज कर दी गयी थी।

2. टी॰ आर॰ सं॰ 394 वर्ष 2008 में, भारतीय दंड संहिता की धाराएँ, 323, 341, 406 और 420 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए विचारण दंडाधिकारी द्वारा अभियुक्त विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 शंकर दास के विरुद्ध आरोप विरचित किया गया था किन्तु उसे विचारण दंडाधिकारी द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था जिसे दांडिक अपील में अभिपुष्ट किया गया था।

3. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि याची सूचक अंजन कुमार सिन्हा उर्फ अंजन सिन्हा ने जोरापोखर पुलिस थाना के समक्ष लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत किया था जिसमें अभिकथन किया गया था कि दिनांक 4.12.2002 को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 शंकर दास ने उससे मित्रवत कर्ज के रूप में 25,000/- रुपया प्राप्त किया था जिसके बारे में लिखित में करार किया गया था जिसमें शंकर दास ने छह माह के भीतर उसको कर्ज में दिए गए धन को लौटाने का वादा किया था जिसमें उसके विफल होने पर याची को लेनदार के विरुद्ध कार्रवाई करने की स्वतंत्रता दी गयी थी। यह अभिकथित किया गया है कि लेनदार-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दिए गए आश्वासन के बावजूद उसने (विपक्षी पक्षकार सं॰ 2) ने धन नहीं लौटाया था और कि दिनांक 4.6.2003 को सांय लगभग 7.30 बजे जब याची-सूचक विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के घर गया और उसे धन लौटाने को कहा, यह अभिकथित किया गया है कि उसके साथ हाथापाई की गयी थी और गंभीर परिणामों की धमकी दी गयी थी। याची द्वारा मामला दर्ज किया गया था और अन्वेषण के बाद पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 323, 341, 406 और 420 के अधीन विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया और उक्त आरोप के लिए उसका विचारण किया।

4. याची-सूचक के विद्वान अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय के निर्णय का विरोध किया कि केवल यह संप्रेक्षित करते हुए कि सूचक को प्रवंचित करने की उसकी आपराधिक मन: स्थिति नहीं थी, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया। नि:संदेह, पक्षों के बीच करार (प्रदर्श-1) हुआ था जिस

पर गवाहों की उपस्थिति में सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किया गया था, किन्तु अभियुक्त द्वारा दर्शाया गया आचरण और व्यवहार, जिसने न केवल सूचक के साथ हाथापाई की बल्कि गंभीर परिणामों की धमकी भी दी ने स्पष्टत: उसका असद्भावपूर्व आशय प्रकट किया कि वह सूचक को धन जो उसने कर्ज में लिया था को लौटाने के लिए इच्छुक नहीं था।

5. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय ने समवर्ती निष्कर्षों द्वारा संप्रेक्षित किया कि करार के मुताबिक कर्ज लेना और देनदार को इसे वापस नहीं देना भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन छल के अपराध की कोटि में नहीं आएगा। विचारण न्यायालय द्वारा संप्रेक्षित किया गया था कि यदि संविदा के पक्षों में से एक इसके निबंधनों और शर्तों का पालन करने में विफल रहता है, ऐसी विफलता सिविल विवाद को जन्म देगी और अभियुक्त के अभिकथित आचरण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 की रिष्टि के अंतर्गत लाने के लिए अभियोजन को प्रथम दृष्टया आपराधिक मन: स्थिति सिद्ध करना होगा कि आरंभ से ही अभियुक्त का आशय सूचक के साथ छल करने का था और उसने धन देने के लिए सूचक को कपटपूर्वक और गैरईमानदारी से प्रेरित किया था। विचारण न्यायालय द्वारा आगे संप्रेक्षित किया गया था कि अ॰ सा॰ 5 और अन्य अ॰ सा॰ ने केवल यह कथन किया कि अभियुक्त ने करार के मुताबिक धन नहीं लौटाया था और मामले के उस दृष्टिकोण में विचारण न्यायालय ने इसे केवल संविदा के भंग का मामला पाया और भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 323/341/406 के अधीन और धारा 420 के अधीन भी आरोप को सिद्ध करने के लिए अन्य अभिकथनों को सिद्ध नहीं किया जा सका था।

6. मैं दांडिक अपील सं॰ 241 वर्ष 2008 में दर्ज निर्णय से पाता हूँ कि सत्र न्यायाधीश, धनबाद ने दोहराया था कि वि॰ प॰ सं॰ 2 के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन आरोप के लिए अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि कर्ज लेते समय इसे लौटाने का आशय उसका नहीं था। गवाह भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 323, 341, 406 के अधीन विरचित अन्य आरोपों के बारे में मौन हैं।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण को ग्रहण करने के लिए इन कारणों से गुणागुण नहीं पाता हूँ जिसे दांडिक अपील सं॰ 241 वर्ष 2008 में दर्ज निर्णय के विरुद्ध दाखिल किया गया है, कि अवर न्यायालयों ने समवर्ती निष्कर्षों द्वारा संप्रेक्षित किया कि पक्षों के बीच मामला सिविल प्रकृति का है और विचारण न्यायालय एवं अपीलीय न्यायालय के समवर्ती निष्कर्षों को उलटने के लिए तर्कपूर्ण आधार दर्शाने में याची के विद्वान अधिवक्ता विफल रहे।

8. यह दांडिक पुनरीक्षण गुणागुण रहित है और इसे खारिज किया जाता है किन्तु यह याची को सिविल न्यायालय के समक्ष मामला उठाने से वर्जित नहीं करता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

जय गोविंद तिवारी

बनाम

बोकारो इस्पात संयंत्र एवं अन्य

W.P. (C) No. 4582 of 2010. Decided on 1st February, 2011.

सार्वजनिक परिसर (अनधिकृत अधिभोगियों का निष्कासन) अधिनियम, 1971—धारा 7— क्वार्टर खाली करने का निर्देश—स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने के उपरांत याची अनधिकृत रूप से क्वार्टर अपने पास रखे रहा—याची ने परिसम्पदा पदाधिकारी के समक्ष और अपीलीय प्राधिकार के समक्ष क्वार्टर के आबंटन के लिए अपने आवेदन करने के अभिवाक् को न उठाने का विकल्प चुना—अब वह केवल आक्षेपित आदेशों के निबंधनों में निष्कासन में विलम्ब करने के लिए रिट याचिका में ऐसा अभिवाक् उठा रहा है—याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 8)

निर्णयज विधि.—(2000) 9 SCC 339—Distinguished.

अधिवक्तागण.—Mr. R. N. Sahay, For the Petitioner; Mr. Rajiv Ranjan. For the Respondents.

आदेश

31.7.2010 तक क्वार्टर सं॰ 3C/E 164 B.S. City खाली करने का याची को निर्देश देते हुए केस सं॰ A/E 180 वर्ष 2005 में सार्वजनिक परिसर (अनधिकृत अधिभोगियों का निष्कासन) अधिनियम, 1971 के अधीन परिसम्पदा पदाधिकारी, बोकारो (प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा पारित दिनांक 20.7.2010 के आदेश को निरस्त करने के लिए यह रिट याचिका दाखिल की गयी है, उक्त मामले में पारित दिनांक 6.4.2006 के आदेश के अनुसरण में, याची ने विद्वान जिला न्यायाधीश, बोकारो द्वारा विविध अपील सं॰ 20 वर्ष 2007 में पारित दिनांक 18.8.2009 के अपीलीय आदेश को भी निरस्त करने का आग्रह किया था।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰एन॰ सहाय ने निवेदन किया कि याची ने 31.8.2003 के प्रभाव से वी॰ आर॰ एस॰ ले लिया था और तत्कालीन योजना के अधीन दीर्घकालीन पट्टे के लिए उसने 5.9.2003 को उसके अधिभोग के अधीन क्वार्टर के आबंटन हेतु आवेदन किया था। उसने अपने सेवानिवृत्ति बकायों से अग्रिम धन के समायोजन के लिए भी आवेदन किया था। तदनुसार, उपदान को रोक रखा गया था, परन्तु दीर्घकालीन पट्टा प्रदान करने के लिए याची के आवेदन पर विचार किये बिना ही उसे प्रश्नाधीन क्वार्टर खाली करने का निर्देश दिया गया है।

3. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-कम्पनी के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची के प्रश्नाधीन क्वार्टर के आबंटन के लिए आवेदन किया था और सेवानिवृत्ति बकायों से अपने अग्रिम धन के समायोजन के लिए आग्रह किया था, परन्तु इसके उपरांत उसने क्वार्टर के आबंटन में रूचि नहीं लिया था और इस संबंध में औपचारिकताएं पूरी नहीं की थी। यह दिनांक 24.9.2003 के उसके पत्र से स्पष्ट होगा जिसके द्वारा उसने अपनी उपदान राशि के विरुद्ध क्वार्टर को छः महीनों तक रखने की उसे अनुमति देने का आग्रह किया था। उसने उपदान राशि के विरुद्ध समय के विस्तार के लिए भी आग्रह किया था। तदनुसार, उसे कम्पनी के नियमों के अनुसार सभी प्रभारों के भुगतान पर लगभग 1 वर्ष के लिए क्वार्टर अपने पास रखने की अनुमति दी गयी थी, परन्तु उसके उपरांत, चूंकि उसने इसे खाली नहीं किया था, उक्त निष्कासन केस दाखिल किया गया था। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि नोटिस की तामिला एवं पर्याप्त अवसर के बावजूद, याची उक्त मामले में उपस्थित होने से बचना चाहा। प्रत्यर्थी-कम्पनी द्वारा रखे गये साक्ष्यों एवं अभिलेख पर रखी गयी अन्य सामग्रियों पर विचार करने के उपरांत निष्कासन का आदेश उचित रूप से पारित किया गया था। याची ने उक्त आदेश के विरुद्ध उक्त अपील दाखिल किया था, परन्तु अपील में भी उसने हाजिर न होने का विकल्प चुना। तथापि, अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर विचार करके अपील खारिज कर दी गयी। इस प्रकार उन्होंने निवेदन किया याची क्वार्टर खाली करने का दायी है और प्रत्यर्थीगण याची के उपदान से क्वार्टर पर आने वाले सभी प्रभारों को वसूल करने तथा अगर यह अपर्याप्त है, तो अन्य कानूनी उपायों द्वारा भी वसूल करने के अधिकारी हैं।

4. जवाब में, श्री सहाय ने निवेदन किया कि 6-6 महीनों के लिए क्वार्टर अपने पास रखने की याची को अनुमति देने के लिए आग्रह के उक्त पत्र प्रत्यर्थी द्वारा धमकी देकर प्राप्त किये गये थे।

5. प्रत्यर्थी-कम्पनी द्वारा यह विवादित नहीं किया गया है कि याची ने दीर्घकालीन पट्टे का आवेदन किया था, परन्तु यह तर्क रखा गया है कि उसने औपचारिकताएं पूरी नहीं की थी और इस प्रकार ऐसा आवेदन निरर्थक/अवैध बन गया था। यह भी प्रतीत होता है कि याची ने 6 महीनों के लिए क्वार्टर अपने पास रखने की उसे अनुमति देने का आग्रह किया था और जिसके लिए उसके उपदान को रोक रखा जा सकता था। पुनः उसने इसी प्रकार 6 महीनों के विस्तार के लिए आवेदन किया। याची का यह तर्क कि ऐसे पत्र उसके द्वारा धमकी/जोर जबर्दस्ती के अधीन लिखे गये थे, निराधार है। परिसम्पदा पदाधिकारी के आदेश से यह भी प्रतीत होता है कि नोटिस के तामिला एवं पर्याप्त अवसर के बावजूद याची ने हाजिर न होने का विकल्प चुना था। परिसम्पदा पदाधिकारी ने अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर विचार किया था और अभिनिर्धारित किया था कि याची का अधिभोग अनधिकृत था। तदनुसार, उसे क्वार्टर खाली करने का निर्देश दिया गया था। याची ने अपील दाखिल की थी, परन्तु अपील में भी उसने हाजिरी नहीं दर्ज की थी जब अपील पर विचार किया गया था। अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों पर विचार करके अपील खारिज कर दी थी।

6. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि 31.8.2003 के प्रभाव से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने के उपरांत याची ने अनधिकृत रूप से क्वार्टर अपने पास रखा था। एक वर्ष की एक अवधि को छोड़कर जब उसे कम्पनी के सामान्य निबंधनों पर इसका अधिभोग करने की अनुमति दी गयी थी। श्री सहाय द्वारा **आर॰ कान्थीमथी एवं एक अन्य बनाम बिटराईस जेवियर (श्रीमती)** के मामले, जो **(2000) 9 SCC 339** में रिपोर्ट किया गया था, में हुए निर्णय पर किया गया भरोसा वर्तमान मामले के लिए पूर्ण रूप से असंगत है। याची ने परिसम्पदा पदाधिकारी के समक्ष और अपीलीय प्राधिकार के समक्ष क्वार्टर के आबंटन के लिए अपना आवेदन रखने के अभिवाक् को नहीं उठाने का विकल्प चुना, अब वह इस रिट याचिका में इस अभिवाक् को उठा रहा है, प्रकटतः केवल आक्षेपित आदेशों के निबंधनों में निष्कासन में विलम्ब करने के लिए। मैं इस रिट याचिका में आक्षेपित आदेशों के साथ हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ।

7. याची को क्वार्टर खाली करने और आज से 4 सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थी सं॰ 3 को प्रश्नाधीन क्वार्टर का कब्जा सौंपने का निर्देश दिया जाता है। प्रत्यर्थी-कम्पनी याची की उपदान राशि से एवं अन्य कानूनी उपायों से उससे प्रश्नाधीन क्वार्टर के अनधिकृत अधिभोग के लिए सभी प्रभारों की कटौती/समायोजन करने की अधिकारी होगी।

8. इन संपरीक्षणों एवं निर्देशों के साथ, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

कृष्णा प्रसाद

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 557 of 2010. Decided on 21st January, 2011.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धाराएँ 138 एवं 147—चेक का अनादर–याची पर दंडादेश और जुर्माना अधिरोपित किया गया–पक्षों ने विवाद में सुलह कर लिया है और अपराध शमनित करने की अनुरोध कर रहे हैं–परिवादी मामला आगे बढ़ाने के लिए इच्छुक नहीं है–विवादों का सुलह अनुज्ञात–याची दोषमुक्त। (पैराएँ 7 से 13)

निर्णयज विधि.–2010 (1) JCR 75 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Ram Naresh Singh, Indrajit Sinha, B. Sinha, A. K. Sah, For the Petitioner; Mr. Amitabh, For the State; M/s R.K. Sinha, Dhananjay Bharti, For the Opp.Party No. 2.

आदेश

यह दांडिक पुनरीक्षण षष्टम् अपर न्यायिक कमिश्नर (एफ॰ टी॰ सी॰), राँची के दिनांक 2.12.2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा परिवाद केस सं॰ 170/2000 में श्री आर॰ एस॰ मिश्रा, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, राँची के न्यायालय द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन दिनांक 21.2.2009 को याची की दोषसिद्धि अभिपुष्ट की गयी थी और दिनांक 2.12.2009 को दांडिक अपील सं॰ 49 वर्ष 2009 खारिज कर दिया गया था।

2. याची को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया गया था और छह माह का सश्रम कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 (3) के अधीन इसमें परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को उसके द्वारा सहन किए गए नुकसान के मुआवजा के रूप में 50,000/-रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

3. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 हरबंश सिंह देओल नोटिस पाने पर इस दांडिक पुनरीक्षण में उपस्थित हुए और प्रति शपथ पत्र दाखिल किया।

4. इस दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान दिनांक 23.8.2010 को एक सुलह याचिका दाखिल की गयी है जिसमें यह अधिकथित किया गया है कि शुभचिंतकों और मित्रगण के हस्तक्षेप के कारण पक्षों के बीच विवाद न्यायालय के बाहर सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझा लिया गया है, इस प्रकार, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को याची से कोई शिकायत नहीं है और परिस्थितियों के अधीन विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 याची के विरुद्ध अग्रसर होने का इच्छुक नहीं है क्योंकि मामला सुलझा लिया गया है। उसमें वर्तमान सुलह याचिका को प्रस्तुत करने और समुचित आदेश पारित करने का अनुरोध किया गया है। यह याचिका याची कृष्णा प्रसाद और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 हरबंश सिंह देओल द्वारा सम्यक् रूप से शपथ लेते शपथ पत्रों द्वारा समर्थित किया गया है। उसके समर्थन में, दिनांक 25.10.2010 को याची की ओर से पूरक शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि याची ने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 हरबंश सिंह देओल, देओल फिनांसर्स का स्वत्वधारी, को हाथ में दिनांक 21.10.2010 को अपने पैड पर प्राप्ति रसीद के विरुद्ध 1,30,000/-रुपयों की चेक राशि में से 19,500/-रुपयों की नगद राशि दी है। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा जारी रसीद की छाया प्रतिलिपि को उपाबद्ध किया गया है और परिशिष्ट–3 के रूप में चिन्हित किया गया है।

5. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने अपने प्रति शपथ पत्र में जिसे दिनांक 3.11.2010 को दाखिल किया गया है में कथन किया है कि विवाद को पक्षों के बीच सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझा लिया गया है और इस प्रकार, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 मामले में अग्रसर होने का इच्छुक नहीं है और उसे कोई आपत्ति नहीं है यदि सुलह याचिका, जिसे आई॰ ए॰ सं॰ 2052/10 के रूप में दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 557 वर्ष 2010 के अभिलेख पर पहले ही लाया जा चुका है, की दृष्टि में आक्षेपित निर्णय को अपास्त कर दिया जाता है। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा प्रतिशपथ पत्र हस्ताक्षरित और सत्यापित किया गया है जिसके हस्ताक्षर को सम्यक् रूप से पहचाना गया है। उसके स्थायी लेखा संख्या (पी॰ ए॰ एन॰) की छाया प्रतिलिपि को भी प्रतिशपथ पत्र के साथ संलग्न किया गया है।

6. दिनांक 14.12.2010 को पृथक आई॰ ए॰ सं॰ 2742/10 दाखिल करके इसमें के याची और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने प्रतिवाद किया है कि विधि के किसी न्यायालय में वर्तमान मामले से संबंधित कोई मामला लंबित नहीं है और कि उन्होंने न्यायालय के बाहर विवाद को सुलझा लिया है जिसकी विषय वस्तु याची और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा पृथक शपथपत्रों में समर्थित किया गया है।

7. पहले दाखिल किए गए सुलह याचिका के अनुसरण में तृतीय आई॰ ए॰ सं॰ 105/11 दाखिल करके यह कथन किया गया है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 पक्षों के बीच सुलह की दृष्टि में मामले में अग्रसर होने का इच्छुक नहीं है और विधि के किसी न्यायालय में वर्तमान मामले में अंतर्ग्रस्त विवाद्यकों से संबंधित कोई मामला लंबित नहीं है और अपराध शमनित करने की अनुमति देने का अनुरोध उसमें किया गया है।

8. पूर्वोक्त पैराग्राफों से स्पष्ट होगा कि तीनों अंतर्वर्ती आवेदनों में पक्षगण संगत हैं कि उन्होंने शुभचिंतकों के मध्यक्षेप से विवाद में सुलह कर लिया है और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल करके कथन किया है कि उसे याची के विरुद्ध अब कोई शिकायत नहीं है और उसे कोई आपत्ति नहीं होगी यदि इस न्यायालय द्वारा इस कंपोजीशन को स्वीकार कर लिया जाता है। अंतर्वर्ती आवेदनों के विषय वस्तुओं को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा शपथ पर समर्थित किया गया है।

9. याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री राम नरेश सिंह, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ के॰ सिन्हा और राज्य के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री अमिताभ को सुना गया।

10. पक्षों के बीच परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881 की धारा 147 के अधीन समझौता के प्रावधानों की दृष्टि में मार्गदर्शक सिद्धान्तों को देते हुए अनेक निर्णयों में भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि अधिकथित की गयी है। **के॰ एम॰ इब्राहिम बनाम के॰ पी॰ मोहम्मद एवं एक अन्य, 2010(1) JCR 75 (SC)** में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है:

''जब एक बार किसी व्यक्ति को मामला शमनित करने की अनुमति दी जाती है, जैसा परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 147 के अधीन प्रावधानित किया गया है, उक्त अधिनियम की धारा 138 के अधीन दोषसिद्धि को भी अपास्त कर दिया जाना चाहिए। विनय देवन्ना नायक [(2008)2 SCC 305] के मामले में विवाद्यक उठाया गया था और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 320 के प्रावधानों को ध्यान में लेने के बाद इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूँकि पक्षों के बीच मामले में सुलह कर लिया गया है और बैंक के देयों के पूर्ण और अंतिम व्यवस्थापन में भुगतान कर दिया गया है, अपील अनुज्ञात किए जाने योग्य है और अपीलार्थी दोषमुक्ति का हकदार है। परिणामस्वरुप, समस्त न्यायालयों द्वारा दर्ज दोषसिद्धि के आदेश और दंडादेश को अपास्त कर दिया गया था और अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया था। ''

11. उक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगे संप्रेक्षित किया गया था:

''यह सत्य है कि अपीलीय फोरम के समक्ष कार्यवाहियों के समाप्त हो जाने के बाद पक्षों द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 147 के अधीन आवेदन दिया गया था। किन्तु, पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 147 कार्यवाही के अपीलीय चरण पर भी धारा 138 के अधीन अपराध को शमनित करने से पक्षों को वर्जित नहीं करती है। अतः हम संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन कार्यवाही में भी पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 147 के अधीन आवेदन अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं पाते हैं।

चूँकि पक्षों ने विवाद सुलझा लिया है, अधिनियम की धारा 147 की आत्मा के रूप हम पक्षों को अपराध शमनित करने की अनुमति देते हैं, अवर न्यायालयों के निर्णय को अपास्त करते हैं और उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप से अपीलार्थी को दोषमुक्त करते हैं।''

12. यह उल्लिखित करना प्रासंगिक है कि समस्त अंतर्वर्ती आवेदनों में याची और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 देनदार संगत है कि उन्होंने विवाद का समाधान कर लिया है और उन्हें एक-दूसरे के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है जो केवल शुभचिंतकों और मित्रों की सहायता से संभव हो सकता था। लेनदार याची ने प्रतिवाद किया कि उसने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा जारी लेटर पैड पर रसीद के विरुद्ध विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की प्रेरणा पर 19,500/-रुपयों का भुगतान किया है। यद्यपि प्रतिशपथ पत्र में यह स्पष्टत: उल्लिखित नहीं है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने उसके पूर्ण और अंतिम व्यवस्थापन पर संपूर्ण राशि प्राप्त की है किन्तु उसने स्वीकार किया है कि विवाद का समाधान कर लिया गया है और वह मामले में अग्रसर होने का इच्छुक नहीं है और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की प्रेरणा पर याची को दांडिक पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान जमानत दी गयी थी। समस्त अंतर्वर्ती आवेदनों में तथ्यों को दोहराया गया है कि विवाद का समाधान कर लिया गया है और कि परिवादी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 मामले में अग्रसर होने का इच्छुक नहीं है। अंतर्वर्ती आवेदनों के विषय वस्तुओं को याची और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा समर्थित किया गया है और यहाँ पहले निर्दिष्ट समस्त याचिकाओं के विषय वस्तुओं पर विचार करते हुए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से दाखिल प्रतिशपथ पत्र की विषयवस्तुओं को विचार में लेते हुए मैं परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 147 के अधीन प्रावधानों की दृष्टि में विवाद का प्रशमन/समझौता अनुज्ञात करता हूँ जिसके परिणामस्वरुप यहाँ ऊपर निर्दिष्ट **के॰ एम॰ इब्राहिम बनाम के॰ पी॰ मोहम्मद एवं एक अन्य (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए याची को दोषमुक्त किया जाता है।

13. तद्नुसार, दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है और निपटाया जाता है और समस्त तीनों अंतर्वर्ती आवेदनों अर्थात् आई॰ ए॰ सं॰ 2052/10, आई॰ ए॰ सं॰ 2742/10 और आई॰ ए॰ सं॰ 105/11 को भी निपटाया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

मेसर्स माता कंस्ट्रक्शन

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 4053 of 2010. Decided on 19th January, 2011.

(क) सरकारी संविदा–प्रतिषेध–प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अधीन कार्य की धीमी प्रगति के कारण याची को आगे काम करने से वर्जित किया गया–कार्य की प्रगति असंतोषजनक है–प्रत्यर्थीगण ठेकेदारों से यह कहने में न्यायोचित है कि जब तक वे कार्य पूरा नहीं करेंगे, वे प्रत्यर्थीगण से आगे काम पाने के हकदार नहीं होंगे–लोकहित में आक्षेपित आदेश पारित–याचिका खारिज। (पैराएँ 4 से 7)

(ख) न्यायिक पुनर्विलोकन–परिधि एवं विस्तार–गैर सांविधिक संविदात्मक मामलों में उच्च न्यायालय अभिकथनों, स्पष्टीकरणों और प्रति अभिकथनों का परीक्षण नहीं कर सकता है जिसमें न्यायिक पुनर्विलोकन का विस्तार अत्यन्त सीमित है। (पैरा 6)

निर्णयज विधि.–(2007)14 SCC 517—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s P.K. Prasad, Rohit Roy, Rishav Dev, For the Petitioner; Sr. SC-1, For the Respondents.

आदेश

पक्षों को अंतिम रूप से सुना गया।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया संविदा की गयी अवधि के दौरान प्रत्यर्थीगण के किसी अन्य कार्य में भाग लेने से याची को वर्जित करते हुए दिनांक 3.8.2010 का पत्र (परिशिष्ट-3) जारी किया गया है, जो याची को सुनवाई का अवसर दिए बिना काली सूची में नाम डालने की कोटि में आता है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि कार्य की धीमी प्रगति याची की ओर से की गयी किसी गलती के कारण नहीं थी, बल्कि कार्य की धीमी प्रगति के लिए स्वयं प्रत्यर्थीगण जिम्मेदार हैं। उन्होंने **1994 Supp (2) Supreme Court cases 699 (सदर्न पेंटर्स बनाम फर्टिलाइजर्स एवं केमिकल्स ट्रावनकोर लि॰ एवं एक अन्य)** और **(1978)3 Supreme Court Cases 36 (जोसेफ विलंगंदन बनाम कार्यपालक अभियन्ता (पी॰ डब्ल्यू॰ डी॰) एर्नाकुलम एवं अन्य** पर विश्वास किया। उन्होंने आगे निवेदन किया कि बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद प्रत्यर्थीगण द्वारा वन अनापत्ति प्राप्त नहीं की गयी थी जो नक्सल गतिविधियों, आदि के अतिरिक्त समय सीमा के मुताबिक कार्य पूरा नहीं करने के कारणों में से एक था।

3. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिशपथ पत्र को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि आरंभ से ही कार्य की प्रगति अत्यन्त धीमी थी जो मासिक प्रगति रिपोर्ट से स्पष्ट होगा। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यह कहते हुए कि जब तक याची सहित लगभग 89 ठेकेदारों द्वारा लंबित कार्य पूरा नहीं किया जाता है, वे प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी निविदा में भाग लेने से वर्जित रहेंगे और केवल कार्य पूरा कर लिए जाने के बाद ही आक्षेपित आदेश के साथ संलग्न ठेकेदारों की सूची से ठेकेदार का नाम हटाया जाएगा, आक्षेपित आदेश प्रगति के मासिक आकलन के दौरान पारित किया गया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के लिए तात्पर्यित स्पष्टीकरण का कोई आधार नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि इन परिस्थितियों में यह दावा नहीं किया जा सकता है कि आक्षेपित आदेश को पारित करने के पहले याची को सुनवाई का अवसर देने की आवश्यकता थी।

4. यह प्रतीत होता है कि योजना अर्थात् प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अधीन कार्य को समय सीमा के मुताबिक पूरा किया जाना अपेक्षित है यद्यपि समय बढ़ाने का प्रावधान है। आगे प्रतीत होता है कि कार्य की प्रगति के मासिक आकलन के दौरान यह पाया गया था कि याची सहित लगभग 89 ठेकेदारों को न्यस्त अनेक योजनाओं के अधीन कार्य की प्रगति संतोषजनक नहीं थी और इसलिए आक्षेपित निर्णय लिया गया था कि जब तक कार्य पूरा नहीं किया जाता है, सूची में नामित ठेकेदार प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी किसी अन्य निविदा में भाग लेने से वर्जित रहेंगे। उक्त पत्र में यह भी कहा गया है कि कार्य पूरा कर लिए जाने के बाद उक्त सूची से ठेकेदार का नाम हटा दिया जाएगा। दूसरे शब्दों में, प्रत्यर्थीगण के अधीन जारी निविदाओं में भाग लेने से याची सहित 89 ठेकेदारों को वर्जित करता आदेश कार्य संपादन के अध्यधीन है।

5. रिट याचिका में, सामान्यत: यह कथन किया गया था कि समय पर कार्य पूरा नहीं करने में याची की गलती नहीं है किन्तु आज दाखिल किए गए प्रत्युत्तर में याची ने यह कहते हुए अपने मामले को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है कि बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद विभाग ने वन अनापत्ति प्राप्त नहीं की है और इसलिए कार्य पूरा करने में विलम्ब हुआ है। यहाँ ध्यान में लिया जा सकता है कि ऐसे बयान के समर्थन में कोई दस्तावेज प्रत्युत्तर के साथ संलग्न नहीं किया गया है। किसी भी सूरत में, यह ऐसा मामला है जहाँ प्रत्यर्थीगण के अनुसार याची सहित 89 ठेकेदारों की कार्य प्रगति अत्यन्त धीमी है

और संविदा के निबंधनानुसार नहीं है जबकि याची के अनुसार, कार्य की धीमी प्रगति के लिए वह जिम्मेदार नहीं है बल्कि इसके लिए विभाग जिम्मेदार है। इस प्रकार, कार्य की प्रगति के संबंध में पक्षों के बीच अभिकथन और प्रति अभिकथन है।

6. श्री प्रसाद द्वारा विश्वास किया गया निर्णय याची की सहायता नहीं करता है। **सदर्न पेंटर्स (ऊपर)** के मामले में अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ठेकेदार के नाम का काटा जाना काली सूची में नाम डालने की कोटि में आता है और इसलिए ठेकेदार सुनवाई का अवसर पाने का हकदार है। **जोसेफ विलंगंदन (ऊपर)** मामले में अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया गया था कि नोटिस स्पष्ट नहीं थी, कि विभाग के भविष्य की निविदा में भाग लेने से ठेकेदार को वर्जित करने की कार्रवाई अनुध्यान में थी और इस प्रकार सुनवाई का अवसर देने की आवश्यकता थी यदि ऐसी कार्रवाई अनुध्यात की गयी थी। किन्तु यहाँ इस मामले में, वर्जन केवल याची और अन्य 88 ठेकेदारों द्वारा काम पूरा किए जाने तक है। यह प्रतीत होता है कि प्रश्नगत कार्य सहित कार्य की वृहत् संख्या की प्रगति असंतोषजनक है। याची ने खुली आँखों से संविदा की थी। गैर-सांविधिक मामलों में जहाँ न्यायिक पुनर्विलोकन का विस्तार अत्यन्त सीमित है, अभिकथनों, स्पष्टीकरणों एवं प्रति अभिकथनों पर इस न्यायालय को विचार नहीं करना चाहिए और वह ऐसा नहीं कर सकता है। **(2007)14 SCC 517 (जगदीश मंडल बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य)** में प्रकाशित मामले में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:

"22. प्रशासनिक कार्रवाई का न्यायिक पुनर्विलोकन मनमानापन, अतार्किकता, अयुक्तियुक्तता, पूर्वाग्रह और असद्भाव को रोकने के लिए आशयित है। इसका उद्देश्य यह जाँचना है कि क्या चयन अथवा निर्णय विधिपूर्वक किया गया है और न कि यह जाँचना कि क्या चयन अथवा निर्णय 'तर्कसंगत' है। जब निविदाओं अथवा संविदा दिए जाने से संबंधित मामलों में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अवलम्ब लिया जाता है, कतिपय विशेष लक्षणों को ध्यान में रखना होगा। संविदा एक व्यवसायिक संव्यवहार है। निविदाओं का मूल्यांकन करना और संविदा दिया जाना आवश्यकतः व्यवसायिक क्रियाकलाप है। साम्या और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त दूरी पर रहते हैं। यदि संविदा के अधिनिर्णय से संबंधित निर्णय सद्भावपूर्व है और लोकहित में है, न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करेंगे यद्यपि प्रक्रियात्मक विपथन अथवा निर्धारण/आकलन में गलती अथवा निविदा देने पर प्रतिकूलता निर्मित किया जाता है। लोकहित की कीमत पर निजी हित की सुरक्षा के लिए अथवा संविदात्मक विवादों को विनिश्चित करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अवलम्ब लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। शिकायत करनेवाला निविदादाता अथवा ठेकेदार सदैव सिविल न्यायालय में नुकसान इप्सित कर सकता है। कल्पित शिकायतों, जख्मीदंभ और व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा से पीड़ित असफल निविदादाताओं का किसी तकनीकी/प्रक्रियात्मक उल्लंघन अथवा स्वयं को प्रतिकूलता के कारण तिल का ताड़ बनाने का प्रयास और न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करके हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालयों को कायल करने के प्रयासों का विरोध किया जाना चाहिए। ऐसे हस्तक्षेप, अंतरिम अथवा अंतिम, वर्षों तक लोक कार्यों को रोके रख सकते हैं और लाखों-करोड़ों लोगों को लाभ देने में विलम्ब कर सकते हैं और प्रोजेक्ट की कीमत कई गुना बढ़ा सकते हैं। अतः निविदा अथवा संविदात्मक मामलों में, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप करने के पहले न्यायालयों को स्वयं से दो प्रश्नों को पूछना चाहिए।

(i) क्या प्राधिकारी द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया अथवा किया गया निर्णय असद्भावपूर्व है अथवा किसी का पक्ष लेने के लिए आशयित है;

अथवा

क्या अपनायी गयी प्रक्रिया अथवा किया गया निर्णय इतना मनमाना और अतार्किक है कि न्यायालय कह सकता है: ''निर्णय ऐसा है कि युक्तियुक्त रूप से कार्रवाई करने वाले और प्रासंगिक विधि के अनुरूप कोई जिम्मेदार प्राधिकारी नहीं ले सकता था।''

(ii) क्या लोकहित प्रभावित हुआ है। यदि उत्तर नकारात्मक है, अनुच्छेद 226 के अधीन हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। किसी निविदादाता/ठेकेदार को काली सूची में डालना अथवा दांडिक परिणामों को अधिरोपित करना अथवा राज्य के उपहार वितरण (साइटों/दुकानों का आबंटन, अनुज्ञप्तियों, डीलरशिप और फ्रैचाइजी का प्रदान) अंतर्ग्रस्त करते मामले बिल्कुल अलग हैं क्योंकि वे कार्रवाई में निष्पक्षता की उच्चतर डिग्री की अपेक्षा रखते हैं।''

7. प्रत्यर्थीगण की ओर से कोई मनमानापन अथवा असद्भाव नहीं है। प्रत्यर्थीगण ठेकेदारों को यह कहने में न्यायोचित हैं कि जब तक कार्य पूरा नहीं किया जाता है, प्रत्यर्थीगण से आगे काम लेने के वे हकदार नहीं होंगे। इसके अतिरिक्त, मेरे मत में आक्षेपित आदेश लोकहित में पारित किया गया है और रिट अधिकारिता में यह इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने के लिए नहीं कहता है। तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है। किन्तु व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

संजय कुमार धाड़ा उर्फ संजय दारा उर्फ संजय कुमार धाड़ा

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 1306 of 2010. Decided on 20th January, 2011.

खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957—धारा 21 सह-पठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराएँ 467, 468, 471, 420 और 120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—कूटरचना एवं छल–संज्ञान–कूट रचित दस्तावेजों का प्रयोग करके लौह अयस्क का गैर-कानूनी खनन एवं परिवहन–प्राथमिकी दर्ज करने के लिए सूचक-एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा कोई प्राधिकार पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया–अभियुक्तगण में से किसी के विरुद्ध सक्षम अधिकारी द्वारा सी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष कोई परिवाद दाखिल नहीं किया गया–डी॰ एम॰ ओ॰ द्वारा जारी मांग पत्र के अनुसरण में राज्य की क्षतिपूर्ति पर्याप्त रूप से कर दी गयी–याची का दांडिक अभियोजन न्याय की हानि की कोटि में आएगा–दांडिक अभियोजन अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 11)

निर्णयज विधि.–2010 (3) JCR 301—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Nilesh Kumar, For the Petitioner; Mr. T.N. Verma, For the State.

न्यायालय द्वारा.–वर्तमान याचिका दिनांक 30.8.2010 के आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा गुआ (बराजमदा) पी॰ एस॰ केस सं॰ 28 वर्ष 2010 तत्सम जी॰ आर॰ केस सं॰ 231 वर्ष 2010, में याची सहित अनेक अभियुक्तगण के विरुद्ध एम॰ एम॰ डी॰ आर॰ अधिनियम, 1957 की धारा 21 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 467/468/471/420/120B के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, सहित याची के विरुद्ध लंबित समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लेते हुए याची की ओर से दाखिल की गयी है। याची को इस न्यायालय द्वारा बी॰ ए॰ सं॰ 6079 वर्ष 2010 में जमानत दिया गया है।

2. आरंभ में, प्राथमिकी तीन नामित अभियुक्तगण और दो संदिग्धों के विरुद्ध संस्थापित की गयी थी किन्तु याची की कम्पनी को संदिग्धों में भी नामित नहीं किया गया था। अभिकथित किया गया था कि लौह अयस्क के परिवहन के लिए खान विभाग द्वारा पहले चालान जारी किया गया था जिसका पुनर्उपयोग अभियुक्तगण द्वारा किया गया था और तद्द्वारा कूटरचना की गयी थी और एम॰ एम॰ डी॰ आर॰ अधिनियम के अधीन भी अपराध किया गया था।

3. बाराजामदा पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी के समक्ष सूचक सब-डिविजनल अधिकारी, सदर, चाईबासा द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट के आइटम सं॰ 4 के संदर्भ में यह अभिकथित किया गया था कि 3921.010 मीट्रिक टन लौह अयस्क सारा इंटरनेशनल प्रा॰ लि॰ द्वारा रेलवे रैक के माध्यम से भेजा गया था और ऐसे परिवहन के कथनों को रेलवे के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, जिसके अनुसार, क्रम सं॰ 8447101 से 8447400 के तहत चालानों में से 299 चालानों को दिनांक 11.4.2009 को एपेक्स एक्सपोर्ट, बाराजमदा को लौह अयस्क का परेषित परिमाण भेजने के लिए पुनः उपयोगित किया गया था और लौह अयस्क को एपेक्स एक्सपोर्ट द्वारा भूषण पावर एण्ड स्टील को बेच दिया गया था और यह पता नहीं लगाया जा सका था कि क्या सारा इंटरनेशनल द्वारा किसी अन्य पक्ष को किसी प्रकार का परेषित परिमाण भेजा गया था अथवा बुक किया गया था। आगे अभिकथित किया गया है कि सारा इंटरनेशनल के पास बाराजमदा स्टेशन पर रेलवे साइडिंग के लिए कोई अनुज्ञप्ति नहीं थी किन्तु चूँकि लौह अयस्क लाइसेंस के बिना रेलवे साइडिंग पर भंडारित किया गया था, इसे सूचक द्वारा जब्त कर लिया गया था।

4. पुलिस ने अन्वेषण के बाद याची, जो एपेक्स एक्सपोर्ट, बाराजमदा का कर्मचारी था, के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया।

5. विद्वान अधिवक्ता श्री निलेश कुमार ने आरंभ में निवेदन किया कि बाराजमदा पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी के समक्ष प्राथमिकी दर्ज करने के लिए एम॰ एम॰ डी॰ आर॰ अधिनियम के अधीन सूचक सब-डिविजन अधिकारी, चाईबासा सक्षम अधिकारी नहीं था। खनन एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 22 अपराधों के संज्ञान के बारे में कथन करती है:

> *''कोई न्यायालय इस निमित्त केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा लिखित में किए गए परिवाद को छोड़कर इस अधिनियम अथवा इसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अधीन किसी दंडनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा।''*

स्वीकृत रूप से, प्राथमिकी दर्ज करने के लिए सूचक-एस॰ डी॰ ओ॰ द्वारा कोई प्राधिकार पत्र प्रस्तुत नहीं किया जा सका था और वर्तमान मामले के याची अथवा अभियुक्तगण में से किसी के विरुद्ध सक्षम अधिकारी द्वारा सी॰ जे॰ एम॰ के समक्ष कोई परिवाद दाखिल नहीं किया गया था।

6. विद्वान अधिवक्ता, श्री निलेश कुमार ने आगे निवेदन किया कि इसी बीच सारा इंटरनेशनल प्रा॰ लि॰ से दिनांक 19.2.2010 को इसे प्राप्त करने के बाद भूषण पावर एण्ड स्टील को भेजे गए 3921.010 मीट्रिक टन लौह अयस्क की कीमत की 19,60,505/-रुपयों की राशि को जमा करने के लिए कहते हुए मेसर्स एपेक्स एक्सपोर्ट अर्थात् याची के नियोक्ता को जिला खान अधिकारी, पश्चिमी सिंहभूम, चाईबासा द्वारा नोटिस भेजा गया था और तद्द्वारा एम॰ एम॰ डी॰ आर॰ अधिनियम, 1957 की धारा 21(5) के अधीन अपराध किया गया था। लौह अयस्क को 500/-रुपए प्रति मीट्रिक टन की दर से मूल्यांकित करते हुए मुआवजा का भुगतान करने के लिए कहते हुए अधिनियम की धारा 23(A) के अधीन अपराध के गठन के लिए खनन अधिकारी द्वारा प्रस्ताव दिया गया। जिला खनन अधिकारी के उक्त पत्र में सावधान किया गया था और आगे कथन किया गया था कि संपूर्ण मुआवजा राशि का भुगतान करने में विफलता पर सर्टिफिकेट केस आरंभ करके अधिहरण के लिए कार्यवाही आरंभ की जाएगी। इस नोटिस के अनुसरण में, याची ने मेसर्स एपेक्स एक्सपोर्ट का कर्मचारी होने के नाते 4,18,778.00/-रुपयों (चार लाख अठारह

हजार सात सौ अटहत्तर रुपया मात्र) की राशि डिमान्ड ड्राफ्ट द्वारा दिनांक 4.8.2010 को जमा किया और बाद में 15,16,717.00/-रुपयों (पंद्रह लाख सोलह हजार सात सौ सतरह मात्र) की राशि को दिनांक 21.10.2010 की एक अन्य बैंक ड्राफ्ट द्वारा जमा किया गया था और दोनों ड्राफ्ट जिला खनन अधिकारी, चाईबासा के पक्ष में बनाए गए थे जिन्हें ऊपरवाल द्वारा निकाला गया था और इस प्रकार याची ने मेसर्स एपेक्स एक्सपोर्ट बाराजमदा का कर्मचारी होने के नाते जिला खनन अधिकारी, चाईबासा द्वारा जारी मांग पत्र के विरुद्ध समस्त राशि को जमा कर दिया। यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि चूँकि जिला खनन अधिकारी इस मामले में परिवादी नहीं था और कि याची ने जिला खनन अधिकारी द्वारा जारी मांग पत्र में अंतर्विष्ट संपूर्ण राशि जमा कर दी थी, अधिनियम की धारा 23 (A) के अधीन अपराध के गठन के संबंध किसी पृथक करार को दाखिल किए जाने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि खनन अधिकारी इस मामले में सूचक (परिवादी) नहीं था। इस प्रतिवाद के समर्थन में कि अपेक्षित राशि डिमान्ड ड्राफ्ट के माध्यम से जिला खनन अधिकारी के खाता में जमा कर दिया गया था, डिमान्ड ड्राफ्टों की छाया प्रतिलिपियों को वर्तमान याचिका के साथ उपाबद्ध किया गया है (दिनांक 20.1.2011 के पूरक शपथपत्र का परिशिष्ट-3 और परिशिष्ट-A)

7. विष्णु चंद्र चौधरी एवं एक अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2010 (3) JCR 301, में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:

> *''विशेष विधान में अंतर्विष्ट प्रावधान निश्चय ही दंड संहिता के अधीन विहित सामान्य दंड के ऊपर अग्रता लेंगे और इस प्रकार खनिज के खनन के मामले में दंड संहिता के प्रावधान लागू नहीं होंगे बल्कि यह खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम का विषय वस्तु होगा जिसका संज्ञान केवल इस निमित्त केंद्र सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा दाखिल परिवाद पर ही लिया जा सकता है जिस विधि की प्रतिपादना को इस न्यायालय द्वारा बी० मुथुरमन एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य, 2009 (3) JLJR 724, में अधिकथिक किया गया है। स्वीकृत रूप से, केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा दर्ज परिवाद पर अभियोजन आरंभ कभी नहीं किया गया है। अतः, इस गणना पर भी, अपराध का संज्ञान लेने वाले आदेश सहित संपूर्ण कार्यवाही को विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है।''*

8. प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ सं॰ 6 के संदर्भ में राज्य विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित ए॰ पी॰ पी॰, श्री टी॰ एन॰ वर्मा ने निवेदन किया कि राज्य कोषागार को भारी वित्तीय नुकसान कारित करते हुए और इसी समय पर वन का विनाश कारित करते हुए कूट रचित दस्तावेजों के प्रयोग द्वारा लौह अयस्क के गैरकानूनी खनन और परिवहन को रोकने और जाँचने के लिए उप-कमिश्नर, पश्चिमी सिंहभूम, चाईबासा ने टास्क फोर्स गठित किया था। जिला खनन अधिकारी, चाईबासा इस टास्क फोर्स के सदस्यों में से एक थे। टास्क फोर्स के सदस्यों को जाँच करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था और उसके अनुसरण में, एस॰ डी॰ ओ॰, चाईबासा, जो सदस्यों में से एक थे, ने आरंभिक जाँच की और कूटरचित दस्तावेजों के आधार पर और पहले उपयोग कर लिए गए चालानों का फिर से उपयोग करके लौह अयस्क के परिवहन में अनेक अवैध कृत्यों में लिप्त अनेक व्यवसायिक संगठनों के विरुद्ध पुलिस केस संस्थापित किया था। एम॰ एम॰ डी॰ आर॰ अधिनियम की धारा 21 के अधीन अपराध के संज्ञान के अतिरिक्त भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 467/468/471/420/120B के अधीन भी संज्ञान लिया गया

था और कि सामान्य खंड अधिनियम की धारा 26 विशेष अथवा सामान्य अधिनियम के अधीन अभियोजन को वर्जित नहीं करती है।

9. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि खान एवं खनिज (विकास एवं विनियमन) अधिनियम, 1957 संघ के नियंत्रण के अधीन खानों एवं खनिजों के विकास एवं विनियमन के लिए अधिनियमित एवं अंतर्विष्ट विधान है जो कथन करता है:

''जो कोई भी धारा 4 की उपधारा (1) अथवा उपधारा (1A) के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, उसे कारावास जिसकी अवधि दो वर्षों तक के लिए बढ़ायी जा सकती है के साथ अथवा जुर्माना जिसे 25000/-रुपयों तक बढ़ाया जा सकता है के साथ अथवा दोनों के साथ दंडित किया जाएगा।''

इसी समय पर, अधिनियम की धारा 23A अपराध की शमनीयता पर विचार करती है जो कथन करती है:

''इस अधिनियम अथवा इसके अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध को अभियोजन के संस्थापन के पहले अथवा बाद में उस अपराध के संबंध में न्यायालय के समक्ष परिवाद करने के लिए प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा उस व्यक्ति को, सरकार को क्रेडिट के लिए ऐसी राशि के भुगतान पर, जैसा वह विनिर्दिष्ट कर सकता है शमनित किया जा सकता है;

परन्तु यह कि केवल जुर्माना से दंडनीय अपराध के मामले में वैसी राशि जुर्माना की महत्तम राशि, जो उस अपराध के लिए अधिरोपित की जा सकती है, से अधिक नहीं होगा।''

धारा 23B (2) : जब उपधारा (1) के अधीन अपराध शमनित किया जाता है, कोई कार्यवाही अथवा अतिरिक्त कार्यवाही, जैसा भी मामला हो ऐसे शमनित अपराध के संबंध में अपराधकर्ता के विरुद्ध नहीं की जाएगी।''

10. याची की कम्पनी के विरुद्ध विनिर्दिष्टत: अभिकथित किया गया है कि इसने परिवहन चालानों, जिनका उपयोग भूषण स्टील एण्ड कम्पनी को लौह अयस्क भेजने के लिए पहले ही किया जा चुका था, का फिर से उपयोग किया किन्तु जिला खनन अधिकारी, पश्चिमी सिंहभूम, चाईबासा द्वारा जारी मांग पत्र के अनुसरण में राज्य सरकार के अधीन खनन विभाग को पर्याप्त रूप से मुआवजा दिया जा चुका है और इसलिए उसकी दृष्टि में याची का दांडिक अभियोजन न्याय की हानि की कोटि में आएगा।

11. यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, चाईबासा के न्यायालय के समक्ष लंबित गुआ (बाराजमदा) पी॰ एस॰ केस सं॰ 28 वर्ष 2010, तत्सम जी॰ आर॰ केस सं॰ 231 वर्ष 2010, में याची के दांडिक अभियोजन को अपास्त किया जाता है।

माननीय सुशील हरकौली एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

सोना महतो

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 643 of 2004. Decided on 1st February, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 93 वर्ष 2001/31 वर्ष 2003 में छठे अपर सत्र न्यायाधीश, गिरीडिह द्वारा पारित दिनांक 9.1.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दिनांक 12.1.2004 के दंडादेश के विरुद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—पत्नी की हत्या—दहेज की मांग—मृतका को घर के कमरे में मारा गया था जहां अपीलार्थी एवं उसके परिवार वाले निवास करते थे—अपराध कारित करने के समय अपीलार्थी मौजूद था—अभियोजन के अलावा, घर के अंत:वासियों पर एक तत्सम भार होगा इस संबंध में अकाट्य स्पष्टीकरण देने का कि अपराध किसी प्रकार कारित किया गया था—अंत:वासी मात्र चुप रहना की बात कहकर बच नहीं सकते—यथा अभिकथित मंशा अधिसंभाव्य प्रतीत होती है—अपील खारिज। (पैराएँ 12 से 17)

(ख) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 25—न्यायिकेतर संस्वीकृति—जब अभियुक्त ने गांव वालों के सामने अपना दोष स्वीकार किया था, पुलिस मौजूद थी—ऐसी स्वीकारोक्ति का कोई साक्ष्यमूलक महत्व नहीं होगा। (पैरा 15)

अधिवक्तागण.—Mr. P.K. Mukhopadhaya, For the Appellant; A.P.P., For the State.

न्यायालय द्वारा.—अपीलार्थी को अपनी पत्नी तारा देवी की हत्या कारित करने का दोषी पाये जाने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश सुनाया गया था।

2. अभियोजन का मामला यह है कि मृतका तारा देवी का इस अपीलार्थी के साथ वर्ष 1996 में विवाह किया गया था। विवाह में, दहेज दिया गया था परन्तु बावजूद इसके अपीलार्थी एवं ससुराल के अन्य सदस्य और दहेज प्राप्त करने को ध्यान में रखकर उसे प्रताड़ित किया करते थे। कई अवसरों पर, मामला पंचायती में लाया गया था परन्तु इसने तारादेवी को प्रताड़ित करने से अभियुक्त व्यक्तियों को नहीं रोका था।

3. 22.11.2010 को बनपुरा गांव के दो व्यक्ति सूचनादाता बुद्धि महतो (अ॰सा॰12) के पास आये थे और उसे बताया कि उसकी पुत्री को मार दिया गया है। यह सुनने पर, सूचनादाता अन्य गांव वालों, जिनमें प्रेम चंद महतो (अ॰सा॰4), गोबर्धन महतो (अ॰सा॰ 2) सम्मिलित थे, के साथ बनपुरा गांव आया और अपनी पुत्री का शव एक खाट के नीचे पड़ा हुआ पाया। उन्होंने मृतका के शरीर पर उपहतियों को भी नोटिस किया। वहां सूचनादाता एवं अन्य को मालूम हुआ कि 21 एवं 22 नवम्बर, 2000 के बीच की रात में मृतका की हत्या किये जाने के कारण अपीलार्थी के घर के निकट काफी शोर शराबा हुआ था। अतएव, उन्हें इस अपीलार्थी (मृतका का पति), ससुर, जगदीश महतो एवं सास श्रीमती राधा देवी के हाथ होने का संदेह हुआ। बगोदर पुलिस थाने के थाना प्रभारी के समक्ष इस प्रभाव की एक लिखित रिपोर्ट सौंपी गयी जिस पर एक मामला दर्ज किया गया।

4. तथापि, मामला दर्ज किये जाने से पहले कोई राजेन्द्र रजक, ए॰ एस॰ आई॰ यह सूचना पाने पर कि एक महिला को मार दिया गया है, बनपुरा गांव पहुंचा और तारा देवी का शव उसके घर में पाया। उसने शव की मृत्यु समीक्षा की और शव को पोस्टमार्टम परीक्षण के लिए भेज दिया। उस समय, गांव वालों ने अपीलार्थी एवं उसकी माता को अपनी हिरासत में रखा था जिनके समक्ष अपीलार्थी ने अपना दोष स्वीकार किया था जिसे उक्त राजेन्द्र रजक (अ॰सा॰14) द्वारा लिखित में दर्ज कर लिया गया था।

विचारण के अनुक्रम में इसे प्रदर्श-8 के तौर पर साक्ष्य में प्रस्तुत किया गया था परन्तु एक अभ्यापत्ति के साथ। डॉ० राजेन्द्र चौधारी (अ०सा० 5) ने 4.30 बजे पूर्वाह्न में शव का पोस्टमार्टम परीक्षण 22.11. 2000 को किया था और निम्नांकित उपहतियां पाई थी:

(i) गर्दन के बायें एवं दायें हिस्से पर भिन्न भिन्न आकारों की कई खरोंचे।

(ii) Unblical क्षेत्र के ऊपर भेदता हुआ घाव और साथ में तीक्ष्ण धारदार हथियार द्वारा कारित बाहर आई आँत। तदनुसार, डॉक्टर ने पोस्टमार्टम परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श-1) निर्गत की इस राय के साथ कि उपरोक्त उपहतियों के कारण सदमे एवं रक्तस्राव से मृत्यु हो गयी थी।

5. तदनुसार, डॉक्टर ने पोस्टमार्टम परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श-1) निर्गत किया इस राय के साथ कि उपरोक्त उपहतियों के कारण सदमें एवं रक्तस्राव से मृत्यु हुई थी।

6. अन्वेषण के समापन के उपरांत, इस अपीलार्थी एवं जगदीश महतो तथा राधा देवी के विरुद्ध भी आरोप पत्र दाखिल किया गया था।

7. मामले की सुपुदर्गी पर, सभी तीन अभियुक्त व्यक्तियों को विचारण पर रखा गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 304(B), 498(A) एवं वैकल्पिक रूप से धारा 302 के अधीन आरोपित किया गया था।

8. अभियोजन ने दोषसिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर 14 गवाहों को परीक्षित किया था। उनमें से अ०सा० 1 खेलो महतो, अ०सा० 2 गोबर्धन महतो, अ०सा० 9 लट्टो महतो इस बिंदु पर हैं कि जब वे बनपुरा गांव पहुंचे थे, उन्होंने शव को देखा था जिस पर उपहतियां थी और यह कि अपीलार्थी एवं उसकी माता को गांव वालों द्वारा बंद कर दिया गया था और उनकी उपस्थिति में इस अपीलार्थी ने अपना यह दोष स्वीकार किया था कि उसने अपनी पत्नी की हत्या कारित की है। उन्होंने दहेज की मांग और क्रूरता करने के संबंध में भी परिसाक्ष्य दिया था। अ०सा०4 प्रेमचंद महतो, अ०सा० 10 देगन महतो, अ०सा० 11 पनवा देवी और अ०सा० 12 सूचनादाता ने भी परिसाक्ष्य दिया है कि जब वे बनपुरा गांव पहुंचे थे, उन्होंने शव को देखा था जिस पर उपहतियां थीं और अपीलार्थी एवं उसकी माता को गांव वालों की कैद में देखा था जिन्होंने उन्हें बताया था कि अपीलार्थी ने उनके समक्ष स्वीकार किया है कि उसने अपनी पत्नी की हत्या कारित की है। अ०सा० 6 करमचंद महतो, जो उसी गांव का निवासी है, ने परिसाक्ष्य दिया है कि हल्ला सुनकर जब वह और अन्य लोग अपीलार्थी के घर के निकट आये थे, अपीलार्थी एवं उसकी माता ने उन्हें बताया था कि किसी चोर ने चोरी कारित करने के क्रम में मृतका की हत्या कारित कर दी है।

9. साक्ष्य के मूल्यांकन पर विचारण न्यायालय ने पाया था कि अभियोजन दहेज हत्या के मामले एवं दहेज की मांग को भी सिद्ध करने में विफल रहा है। तथापि, विचारण न्यायालय ने न्यायिकेतर संस्वीकृति तौर पर अभियुक्त द्वारा की गयी स्वीकारोक्ति और अन्य परिस्थितियों को भी ध्यान में रखते हुए केवल अपीलार्थी को दोषी पाया और अतएव, दोषसिद्धि एवं दंडादेश अभिलिखित किया। अन्य अपीलार्थियों, अर्थात, जगदीश महतो एवं राधा देवी को बरी कर दिया गया।

10. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ मुखोपाध्याय निवेदन करते हैं कि यद्यपि अपीलार्थी ने कथित रूप से गांव वालों के समक्ष अपना दोष स्वीकार किया है परन्तु इसे एक पुलिस पदाधिकारी की उपस्थिति में दर्ज किया गया था और, अतएव, साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 द्वारा इसकी ग्राहता बाधित है और तदद्वारा जिस विचारण न्यायालय ने न्यायिकेतर संस्वीकृति पर अपना निष्कर्ष आधारित किया है, जो ग्राह्य नहीं थी, उसने दोषसिद्धि का आदेश एवं दंडादेश अभिलिखित करने में एक गंभीर त्रुटि कारित की है और अतएव, दोषसिद्धि का आदेश एवं दंडादेश अपास्त किये जाने योग्य हैं।

11. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ताओं को सुनकर और अभिलेख के परिशीलन पर, हम वाकई पाते हैं कि पुत्री की हत्या से संबंधित सूचना प्राप्त होने पर अ०सा०12 अन्य लोगों, अर्थात, खेलो महतो अ०सा० 1, गोबर्धन महतो अ०सा० 2, प्रेम चंद महतो अ०सा० 4, लिलो महतो अ०सा० 8, लाटो महतो अ०सा० 9, देगन महतो अ०सा० 10 एवं पनवा देवी अ०सा० 11 के साथ मृतका के स्थान पर पहुंचा था। वहां उन्होंने मृतका का शव एक खाट के नीचे जमीन पर पड़ा हुआ पाया था। उनके ध्यान में मृतका के शरीर पर मौजूद उपहतियां भी आई थीं। उनमें से अधिकांश ने यह भी परिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी एवं उसकी माता गांव वालों की गिरफ्त में थीं जिनके समक्ष अपीलार्थी ने स्वीकार किया था कि उसने अपनी पत्नी को मारा है। इसके अतिरिक्त, अभियोजन ने उसी गांव के निवासी किसी करमचंद महतो, अ०सा० 6 को भी पेश किया है जिसने परिसाक्ष्य दिया है कि हल्ला सुनकर जब वह अन्य के साथ अपीलार्थी के घर पहुंचा था, अपीलार्थी एवं उसकी माता ने उन्हें बताया था कि किसी अज्ञात चोर ने चोरी का अपराध कारित करने के अनुक्रम में मृतका की हत्या कारित कर दी थी। इस गवाह ने यह भी परिसाक्ष्य दिया है कि जब उन्होंने घर में प्रवेश किया, उन्होंने फर्श पर शव को पड़ा हुआ पाया जहां रक्त भी मौजूद था जो जमा हुआ था यह बताते हुए कि मृत्यु काफी पहले हो चुकी थी। उन्हें यह भी प्रतीत हुआ कि घर में कभी कोई चोरी नहीं हुई थी।

12. इस प्रकार, यह एक अखंडनीय साक्ष्य प्रतीत होता है कि मृतका को घर के कमरे में मारा गया था जहां अपीलार्थी एवं उसके परिवार वाले रहते थे और यह कि अपीलार्थी अपराध कारित होने के समय बिलकुल मौजूद था जो उसी गांव के एक निवासी अ०सा० 6 के साक्ष्य से प्रकट होगा जिसने परिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी एवं परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा संत्रास किये जाने पर जब वह और अन्य गांव वाले वहां पहुंचे थे, अपीलार्थी एवं उसकी माता ने उन्हें बताया था कि किसी अज्ञात चोर ने मृतका तारा देवी की हत्या कारित कर दी है। इस प्रकार, इसमें कोई संदेह नहीं रहा है कि मृतका को घर के अंदर मार दिया गया था और उस समय अपीलार्थी घर में ही मौजूद था ऐसी स्थिति में, जब एक व्यक्ति को एक घर के अंदर मारा जाता है, मामले को सिद्ध करने का प्रारंभिक भार नि:संदेह अभियोजन पर होगा परन्तु आरोप को सिद्ध करने के लिए इसके द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति एवं मात्रा उसी स्तर की नहीं हो सकती जैसा कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अन्य मामले में आवश्यक होता है। यह भार तुलनात्मक रूप से हल्की प्रकृति का होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की दृष्टि में, घर के अंत:वासियों पर इसको लेकर अकाट्य स्पष्टीकरण देने का तत्सम भार होगा कि अपराध किस प्रकार कारित किया गया था। अंत:वासी मात्र चुप रहकर और कोई स्पष्टीकरण न देकर बच नहीं सकते यह मानते हुए कि अपने मामले को सिद्ध करने का भार पूर्णत: अभियोजन पर होता है और अभियुक्त पर कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का कोई दायित्व ही नहीं है, बल्कि प्रस्तुत किये जाने वाला स्पष्टीकरण अगर असत्य पाया जाता है, तब यही परिस्थितियों की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी बन जाता है।

13. यहां वर्तमान मामले में, यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया गया है कि मृतका को उस घर के अंदर मारा गया था जहां अपीलार्थी बिल्कुल मौजूद था। जो स्पष्टीकरण अपीलार्थी की पक्ष की ओर से आ रहा है वह यह है कि किसी अज्ञात चोर ने उसकी पत्नी की हत्या कारित कर दी थी। यह स्पष्टीकरण, मृतक के शरीर पर उपहतियों और इस तथ्य ध्यान में रखने पर कि शव एक खाट के नीचे जमीन पर पड़ा हुआ था, चोर द्वारा मृतका को मार दिये जाने के वर्णन से मेल नहीं खाता क्योंकि सामान्यत: यह अपेक्षित नहीं है कि एक चोर जल्दबाजी में ऐसी कई उपहतियां कारित करेगा जो खरोंच के प्रकृति के हो जिनमें छिद्रित घाव भी हो। इससे भी बढ़कर, अ०सा० 6 के ध्यान में चोरी का कोई चिन्ह नहीं आया था।

14. इसके अतिरिक्त, अ०सा० 6 ने रक्त पाया था जो शव के निकट था परन्तु यह जमा हुआ था जो बताता था कि मृत्यु अपीलार्थी द्वारा किये गये संत्रास से काफी पहले हो चुकी थी। इस प्रकार, जो भी स्पष्टीकरण आया है वह पूर्णत: असत्य प्रतीत होता है और इसे परिस्थितियों की श्रृंखला में एक अतिरिक्त कड़ी के तौर पर लिया जा सकता है।

15. इसके अतिरिक्त, यह अभिलिखित करना समुचित होगा कि विचारण न्यायालय ने गांव वालों के समक्ष अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा की गयी स्वीकारोक्ति पर दोषसिद्धि का अपना आदेश आधारित किया है परन्तु गवाहों के साक्ष्य, विशेषकर अ०सा० 1 खेलो महतो, अ०सा० 2 गोबर्धन महतो एंव अ०सा० 9 लाटो महतो के साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि जब अभियुक्त व्यक्तियों ने गांव वालों के समक्ष अपना दोष स्वीकार किया था, पुलिस मौजूद थी। मामले की इस दृष्टि में, साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में ऐसी स्वीकारोक्ति का कोई साक्ष्यात्मक महत्व नहीं होगा। बहरहाल, अपीलार्थी के विरुद्ध प्रतीत होनेवाली यथा पूर्वोक्त परिस्थिति इतनी निश्चायी है कि यह अचूक रूप से अपीलार्थी को छोड़कर किसी अन्य की ओर इशारा नहीं करती। इसके अतिरक्त, जो मंशा अभिलेख पर आयी है वह यह है कि अपीलार्थी की पत्नी को अपीलार्थी के किसी अन्य लड़की के साथ संबंध होने का संदेह था जिसकी वह बार-बार शिकायत करती थी और इस कारण, इससे क्रूद्ध होकर उसने अपराध कारित कर दिया था।

16. अतएव, ऊपर गिनायी गयी परिस्थितियां अभियुक्त के दोष की ओर सटीक रूप से इंगित करती है और वे उसकी निर्दोषिता से असंगत है।

17. इस प्रकार, हम यह पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने उचित रूप से अपीलार्थी की दोषसिद्धि एवं दंडादेश किया है। अतएव, दोषसिद्धि का आदेश एवं दंडादेश एतद् द्वारा सम्पुष्ट किया जाता है।

18. परिणामत:, यह अपील खारिज की जाती है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

मेसर्स जयंत एजेन्सीज

बनाम

केनरा बैंक एवं अन्य

W.P. (C) No. 4084 of 2010. Decided on 15th December, 2010.

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002—धाराएँ 13(2), 13(4) एवं 17 सह-पठित प्रत्याभूति हित (प्रवर्तन) नियमावली, 2002 के नियम 8 एवं 9—एन०पी०ए० के तौर पर खाते की घोषणा के साथ मांग नोटिस—धारा 13(2) के अधीन नोटिस के विरुद्ध किसी अपील का प्रावधान नहीं—परन्तु, यह ऋणी के लिए अभ्यावेदन करने या कोई अभ्यापत्ति उठाने के अवसर का प्रावधान करती है—प्रत्याभूत ऋणदाता को ऐसे अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति पर विचार करना होता है—धारा 13(3) ऐसा विहित नहीं करती कि अभ्यावेदन किसी विशिष्ट पदाधिकारी को संबोधित किया जाना है—याची के अभ्यावेदन पर विचार न करने के लिए समनुदेशित कारण किसी तार्किकता से रहित—प्रत्याभूत ऋणदाता एक आकस्मिक तरीके से ऋणी के अभ्यावेदन पर विचार करने से इंकार नहीं कर सकता—इसके अतिरिक्त, यह तर्क नहीं रखा जा सकता कि धारा 17 की दृष्टि में रिट याचिका समर्थनीय नहीं है—आक्षेपित नोटिस निरस्त। (पैराएं 20, 21, 25 से 29, 36 एवं 37)

निर्णयज विधि.–(1983) 2 AC 237; 2010 (2) DRTC 362 (Cal); W.P. (C) No. 231 of 2008—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Kumar, For the Petitioner; Mrs. A. R. Choudhary, For the Respondents.

आदेश

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (इसमें इसके पश्चात 'SARFAESI अधिनियम' या 'अधिनियम' के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 13(2) के अधीन निर्गत दिनांक 13 जनवरी, 2010 की नोटिस को निरस्त करने और SARFAESI अधिनियम की धारा 13(4) सह-पठित प्रत्याभूति हित (प्रवर्तन) नियमावली, 2002 के नियम 8 एवं 9 के अधीन निर्गत दिनांक 31 मई, 2010 तथा इसके पश्चात हुई कार्यवाहियों को निरस्त करने का याची ने आग्रह किया है।

2. याची इलेक्ट्रोनिक्स सामानों की बिक्री एवं सेवाओं के व्यापार में संलग्न है और सुचारू रूप से व्यवसाय चलाने के लिए याची ने कैश क्रेडिट सुविधा के तौर पर वित्तीय सहायता के लिए 30 अगस्त, 2007 को प्रत्यर्थी सं॰ 1-कैनरा बैंक का दरवाजा खटखटाया था। कैनरा बैंक (थरपाकना शाखा) ने 50,00,000/- रुपये तक की कैश सुविधा मंजूर की थी और, तदनुसार, याची के नाम से 12 सितम्बर, 2007 को एक चालू खाता खोल दिया गया था। तभी से याची उक्त सुविधा का उपभोग करता रहा था। याची ऋण का पुनर्भुगतान भी करता रहा था।

3. याची के अनुसार, अचानक ही SARFAESI अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दिनांक 13 जनवरी, 2010 की एक नोटिस का उसे तामिला कराया गया, याची को यह सूचित करते हुए कि 12 जनवरी, 2010 को उसका खाता गैर निष्पादनीय परिसम्पत्ति (संक्षेप में एन॰ पी॰ ए॰) के तौर पर घोषित/वर्गीकृत कर दिया गया था। याची को 56,91,642.37 रुपये का आगे आने वाले ब्याज के साथ भुगतान करने के लिए भी कहा गया था जिसमें विफल होने पर बैंक SARFAESI अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन कार्रवाई करेगा।

4. यह कथित किया गया है कि उक्त नोटिस की प्राप्ति के तुरंत बाद याची प्रत्यर्थी बैंक के पास गया और अतिरिक्त सूचना एवं तथ्य तथा आंकड़े एकत्र किये। तत्पश्चात्, उसने एकमुश्त परिनिर्धारण योजना (OTS)के अधीन अपने खाते का निपटारा करने का बैंक से आग्रह करते हुए SARFAESI अधिनियम की धारा 13 (3A) के अधीन एक अभ्यापत्ति दाखिल किया। उन्होंने यह भी कथित किया कि वे समूचे बकाये का भुगतान करने को तैयार हैं, अगर ब्याज माफ कर दिया जाता है। याची ने यह पक्ष भी लिया कि अभिकथित घोषणा के दिन भी उनके खाते में बकाया सीमा के भीतर था, अर्थात्, 43, 93, 479.37 रुपये था और यह कि खाते को याची के खाते की स्थिति को विचार में लिए बिना और विहित नियमों एवं मार्गनिर्देशों के विरुद्ध जाकर त्रुटिपूर्ण से एन॰ पी॰ ए॰ के तौर पर घोषित कर दिया गया था।

5. याची के अनुसार, उक्त अभ्यापत्ति निबंधित डाक और कोरियर के माध्यम से भी भेजी गयी थी तथा 16 फरवरी, 2010 को बैंक द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त की गयी थी। तथापि, बैंक ने SARFAESI अधिनियम की धारा 13(3A) के प्रावधान के अधीन यथा आवश्यक तौर पर याची के अभ्यावेदन/अभ्यापत्ति पर विचार किये बिना और निर्णय किये बिना ही SARFAESI अधिनियम की धारा 13(4)सह-पठित प्रत्याभूति हित (प्रवर्तन) नियमावली, 2002 के नियम 8 एवं 9 के तात्पर्यित प्रावधान के अधीन दिनांक 31 मई, 2010 की कब्जे की नोटिस (परिशिष्ट 5) निर्गत कर दिया।

6. आक्षेपित नोटिस की प्राप्ति पर, याची ने प्रत्यर्थी-बैंक से उक्त नोटिस वापस लेने का आग्रह करते हुए 19 जुलाई, 2010 को उनके समक्ष अभ्यावेदन दाखिल किया, क्योंकि यह विधि के आज्ञापक प्रावधान का अनुपालन किये बिना ही निर्गत किया गया था, परन्तु प्रत्यर्थी बैंक ने याची के अभ्यावेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया था।

7. याची ने तर्क रखा कि धारा 13(2) के अधीन आक्षेपित नोटिस और SARFAESI अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन कब्जे की नोटिस (क्रमशः परिशिष्ट 2 एवं 5) भी पूर्णतः मनमाना एवं अवैधानिक है और ये निरस्त किये जाने योग्य हैं।

8. प्रत्यर्थी-बैंक ने अपना प्रति-शपथ पत्र दाखिल करके रिट याचिका का प्रतिवाद किया। अन्य के साथ-साथ यह कथित किया गया है कि याची ने 2008 से ही भुगतान करने में व्यतिक्रम किया था और पर्याप्त अवसर प्रदान किये जाने के बावजूद याची खाते को नियमित करने में विफल रहा था। बैंक ने अंततः याची के खाते को एन॰ पी॰ ए॰ के तौर पर घोषित कर दिया था और SARFAESI अधिनियम द्वारा यथा विहित कार्रवाई करने के लिए आगे कदम बढ़ाये थे।

9. प्रत्यर्थी-बैंक ने SARFAESI अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन नोटिस निर्गत की थी परन्तु इसका जवाब नहीं दिया गया था। बैंक को याची से कोई अभ्यावेदन/अभ्यापत्ति प्राप्त नहीं हुई थी। बैंक ने रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में एक प्रारंभिक अभ्यापत्ति उठाया इस आधार पर कि याची के पास SARFAESI अधिनियम की धारा 17 के अधीन उपचार का प्रभावी विकल्प मौजूद है, जिसका वह उस तिथि से 45 दिनों के भीतर इस्तेमाल कर सकता था जिस तिथि को बैंक द्वारा SARFAESI अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन कोई कदम उठाया गया था। परन्तु वह अपील दाखिल करने में विफल रहा। इसकी दृष्टि में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका पोषणीय नहीं है।

10. रिट याचिका की सुनवाई के समय प्रत्यर्थी-बैंक की ओर से उपस्थित होने वाली विद्वान अधिवक्ता श्रीमती ए॰ आर॰ चौधरी ने एस॰ एल॰ पी॰ (C) सं॰ 10145 वर्ष 2010 से उदभूत होने वाले **यूनाईटेड बैंक ऑफ इण्डिया बनाम सत्यवती टंडन एवं अन्य (सिविल अपील सं॰ 5990 वर्ष 2010)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर पूरे उत्साह के साथ पोषणीयता के बिंदु पर जोर दिया। विद्वान अधिवक्ता ने **अक्षत कॉमरशियल प्रा॰ लि॰ एवं एक अन्य बनाम कल्पना चक्रवर्ती एवं अन्य (2010) (2) DRTC 362 (Culcutta)** के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भी भरोसा किया।

11. दूसरी ओर, याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री राजेश कुमार ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी-बैंक की कार्रवाई पूर्णतः मनमाना, अवैधानिक एवं अन्यायपूर्ण है। याची के खाते को अवैधानिक रूप से एन॰ पी॰ ए॰ के तौर पर घोषित कर दिया गया था, यद्यपि घोषणा की तिथि को भी बकाया 50,00,000/- रुपये की विहित सीमा के भीतर था। याची सदैव ही ओ॰ टी॰ एस॰ योजना के अधीन अपने खाते का निपटारा करने को तैयार एवं इच्छुक था। वे समूचे बकायों का भुगतान करने को तैयार हैं, अगर योजना के अधीन ब्याज माफ कर दिया जाता है। याची ने धारा 13(2) के अधीन नोटिस की प्राप्ति के उपरांत भी इसका आग्रह किया था और बैंक ने एन॰ पी॰ ए॰ कोटि से याची के खाते को हटाकर इसके परिचालन को पुनर्बहाल करने के लिए एक मुश्त रकम की शर्त पर उसके प्रस्ताव को स्वीकार करने का आश्वासन दिया था। उक्त आश्वासन पर, याची ने धारा 13(2) के अधीन 13 जनवरी, 2010 की नोटिस प्राप्त करने के उपरांत 30 जून, 2010 तक के लिए 16,06,620 रुपये जमा कर दिये थे। उक्त जमा स्वीकार किया गया था और खाते के माध्यम से लेन देन अनुज्ञात करके खाते को चालू कर दिया गया था। तथापि, उक्त राशि के जमा करने के बावजूद याची को ओ॰ टी॰ एस॰ योजना के अधीन खाते के निपटारा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था। SARFAESI अधिनियम की धारा 13(3A) के आज्ञापक प्रावधान द्वारा आवश्यक बनाये जाने पर भी उसके अभ्यावेदन, अभ्यापत्ति पर विचार नहीं किया गया था और प्रत्यर्थी-बैंक ने मनमाना कार्यवाही किया था और कब्जे की नोटिस (परिशिष्ट 5) निर्गत कर दी थी।

12. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अभ्यावेदन की प्राप्ति से बैंक का इंकार विमर्शित एवं झूठा है। कुरियर के माध्यम से अभ्यावेदन की प्राप्ति पर बैंक ने बैंक की सील एवं प्राप्त करने वाले पदाधिकारी के हस्ताक्षर (परिशिष्ट-8 एवं 8/1) के साथ पावती रसीद लौटाया था। बैंक द्वारा सील एवं हस्ताक्षर के साथ उक्त पावती की प्राप्ति से इंकार नहीं किया गया है। इस प्रकार, प्रत्यर्थी-बैंक का रवैया पूर्णत: विद्वेषपूर्ण और स्थापित मानदंडों के विरुद्ध है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि SARFAESI अधिनियम एक विशेष अधिनियम है जो न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना भी प्रत्याभूत ऋणदाता को प्रत्याभूति ब्याज प्रवर्तित करने की शक्ति प्रदान करता है। उक्त कठोर विशेष प्रावधान का कठोरतापूर्वक अर्थान्वयन एवं अनुसरण किया जाना आवश्यक है। SARFAESI अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन नोटिस की प्राप्ति पर धारा 13(3A) ऋणी द्वारा दाखिल अभ्यावेदन पर विचार करने का प्रावधान करती है। उक्त प्रावधान आज्ञापक है और प्रत्यर्थी-बैंक आगे कार्रवाई करने से पहले याची के अभ्यापत्ति पर विचार करने और एक निर्णय लेने के लिए बाध्य है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि धारा 13(4) के अधीन प्रत्याभूति का प्रवर्तन उक्त अधिनियम की धारा 13(3A) के अधीन अधिकथित शर्त्तों के अध्यधीन है।

13. विद्वान अधिवक्ता ने **मेसर्स- डी॰ एन॰ मोटर्स बनाम भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य (WP(C) सं॰ 231 वर्ष 2008)** के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय को निर्दिष्ट किया और उस पर भरोसा किया, जिसमें इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि SARFAESI अधिनियम की धारा 13(3A) के प्रावधान की प्रकृति आज्ञापक है और प्रत्याभूत ऋणदाता धारा 13 (3A) के प्रावधानों का अनुपालन करने के उपरांत धारा 13(4) के अधीन प्रावधान किये गये उपायों में से किसी एक का या अन्य उपायों का आश्रय लेने का अधिकारी है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि किसी प्रत्याभूत परिसम्पत्ति का कब्जा लेने के लिए कार्यवाही करने से पहले या SARFAESI अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (4) के अधीन कोई अन्य उपाय करने से पहले प्रत्यर्थी-बैंक की ओर से धारा 13 (3A) के अधीन ऋण दाखिल याची के अभ्यावेदन पर विचार करना आवश्यक है।

14. विद्वान अधिवक्ताओं को सुनकर, मैंने अधिनियम के सुसंगत प्रावधानों का मूल्यांकन किया।

15. न्यायालय या अधिकरण के हस्तक्षेप के बिना बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं को प्रत्याभूति ब्याज के उपचार से साधन सम्पन्न करने के उद्देश्य के लिए मुख्य रूप से SARFAESI अधिनियम, 2002 लाया गया है।

16. SARFAESI अधिनियम का अध्याय 3 प्रत्याभूत ऋणदाता द्वारा प्रत्याभूति ब्याज के प्रवर्तन के लिए एक सम्पूर्ण तंत्र का निर्माण करता है इस अध्याय में, अधिनियम की धारा 13 उक्त उद्देश्य के लिए विस्तृत प्रक्रिया को समर्पित है। धारा 13 इसमें नीचे प्रत्युत्पादित की गयी है :

> *'13. **प्रत्याभूति ब्याज का प्रवर्तन.**-(1) सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (4 वर्ष 1882) की धारा 69 धारा या 69A में कुछ भी अंतर्विष्ट होने के बावजूद किसी प्रत्याभूत ऋणदाता के पक्ष में रचित कोई प्रत्याभूत ब्याज न्यायालय या अधिकरण के हस्तक्षेप के बिना ही इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ऐसे ऋणदाता द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है।*
>
> *(2) जहां कोई ऋणी, जो एक प्रत्याभूति समझौते के अधीन एक प्रत्याभूत ऋणदाता की एक दायिता के अधीन है, प्रत्याभूत ऋण या इसकी किश्त के पुनर्भुगतान में कोई व्यतिक्रम करता है, और ऐसे ऋण के संबंध में उसका खाता प्रत्याभूत ऋणी द्वारा गैर निष्पादनीय परिसम्पत्ति के तौर पर वर्गीकृत कर दिया जाता है, तब, प्रत्याभूत ऋणदाता लिखित नोटिस द्वारा नोटिस की तिथि से 60 दिनों के भीतर ऋणी के लिए प्रत्याभूत*

ऋणदाता के प्रति उसकी सारी दायिताओं का उन्मोचन करना आवश्यक बना सकता है जिसमें विफल होने पर प्रत्याभूत ऋण दाता उपधारा (4) के अधीन अधिकारों में से सारे अधिकारों या किसी एक अधिकार का इस्तेमाल करने का अधिकारी होगा।

(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट नोटिस ऋणी द्वारा प्रत्याभूत ऋणों के अभुगतान की स्थिति में ट्टणी द्वारा देय राशि के विवरण एवं प्रत्याभूत ऋणदाता द्वारा प्रवर्तित किये जाने के लिए आशयित प्रत्याभूत आस्तियों के विवरण प्रदान करेगी।

(3A) अगर, उपधारा (2) के नोटिस की प्राप्ति पर, ऋणी कोई अभ्यावेदन करता है या कोई अभ्यापत्ति उठाता है, प्रत्याभूत ऋणदाता ऐसे अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति पर विचार करेगा और अगर प्रत्याभूत ऋणदाता इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ऐसा अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति स्वीकारनीय या तार्किक नहीं है, वह ऐसे अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति की प्राप्ति के एक सप्ताह के भीतर ऋणी को अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति के अस्वीकरण के कारणों को संसूचित करेगा :

परन्तु यह कि इस प्रकार संसूचित कारण या कारणों की संसूचना के प्रक्रम पर प्रत्याभूत ऋणदाता की संभावी कार्यवाई ऋणी को धारा 17 के अधीन ऋण वसूली अधिकरण या धारा 17A के अधीन जिला न्यायाधीश के न्यायालय के यहां एक आवेदन करने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगा।

(4) ऋणी के उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपनी दायिता का पूर्ण रूप से उन्मोचन करने में विफल होने की स्थिति में, प्रत्याभूत ऋणदाता अपने प्रत्याभूत ऋण को वसूल करने के लिए निम्नांकित उपायों में से एक उपाय या एक से अधिक उपाय का आश्रय ले सकता है, अर्थात् :

(a) प्रत्याभूत परिसम्पत्ति वसूलने के लिए पट्टटे, गिरवी या विक्रय के माध्यम से अंतरण के अधिकार समेत ऋणी की प्रत्याभूत परिसम्पत्तियों का कब्जा लेना;

(b) प्रत्याभूत परिसम्पत्ति को वसूलने के लिए पट्टा, गिरवी या विक्रय के माध्यम से अंतरण के अधिकार समेत ऋणी के व्यवसाय का प्रबंध अपने हाथों में लेना :

परन्तु यह कि पट्टटे पर देने, गिरवी रखने या विक्रय के माध्यम से अंतरण के अधिकार का केवल तभी इस्तेमाल किया जायेगा जहां उधार लेने वाले के व्यवसाय का अधिकांश हिस्सा ऋण के लिए प्रत्याभूति के तौर पर रखा गया है:

परन्तु यह भी कि जहां व्यवसाय का संपूर्ण हिस्सा या व्यवसाय का अंश पृथक्करणीय है, प्रत्याभूत ऋणदाता ऋणी के ऐसे व्यवसाय का ही प्रबंधन अपने हाथों में लेगा जो प्रतिभूति या ऋण से संबंधित करने योग्य है;

(c) वैसी प्रत्याभूत सम्पत्तियों के प्रबंधन के लिए किसी व्यक्ति (इसमें इसके पश्चात् प्रबंधक के तौर पर निर्दिष्ट) को नियुक्त करना जिनका प्रत्याभूत ऋणदाता द्वारा कब्जा लिया गया है;

(d) किसी भी समय लिखित नोटिस द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति, जिसने ऋणी से प्रत्याभूत परिसम्पत्तियों में से किसी सम्पत्ति का अर्जन किया है और जिससे कोई धन ऋणी के लिए बकाया है या बकाया बन सकता है, के लिए प्रत्याभूत ऋणदाता को उस राशि का भुगतान करना आवश्यक बना देना जो राशि प्रत्याभूत ऋण को चुकाने के लिए पर्याप्त हो।

x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x x

17. पूर्वाक्त प्रावधान के सरल पठन पर, यह स्पष्ट है कि धारा 13 की उपधारा 1 सर्वोपरि खण्ड से प्रारम्भ होती है और इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार न्यायालय या अधिकरण के हस्तक्षेप के

बिना प्रत्याभूत ऋणदाता के पक्ष में सृजत प्रतिभूति हित के प्रवर्तन का प्रावधान करती है। धारा 13 की उपधारा (2) प्रत्याभूत ऋणदाता द्वारा ऋणी को लिखित में नोटिस दिए जाने के तिथि से 60 दिनों के भीतर प्रत्याभूत ऋणदाता के प्रति उसकी दायिताओं का उन्मोचन करने के लिए एक नोटिस देने का प्रावधान करती है जिसमें विफल होने पर उपधारा (4) के अधीन सभी अधिकारों या कोई एक अधिकार का इस्तेमाल करने के लिए प्रत्याभूत ऋणदाता को अधिकृत करने का प्रावधान बनाया गया है। धारा 13 की उपधारा 3 अधिकथित करती है कि धारा 13(2) के अधीन निर्गत नोटिस ऋणी द्वारा देय राशि के विवरणों और वित्तीय संस्था द्वारा आशयित रूप से प्रवर्तित किये जाने वाले प्रत्याभूत परिसम्पत्तियों के विवरणों को भी अंतर्विष्ट करेगी। उपधारा (3A) प्रावधान करती है कि धारा 13(2) के अधीन नोटिस की प्राप्ति पर अगर ऋणी कोई अभ्यावेदन करता है या कोई अभ्यापत्ति उठाता है, प्रत्याभूत ऋणदाता ऐसे अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति पर विचार करेगा और अगर प्रत्याभूत ऋणदाता इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ऐसा अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति स्वीकारनीय या तार्किक नहीं है, वह ऐसे अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति की प्राप्ति की एक सप्ताह के भीतर ऋणी को अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति के अस्वीकरण के कारणों को संसूचित करेगा।

(जोर दिया गया)

18. तत्पश्चात, धारा 13 की उपधारा (4) प्रत्याभूत ऋणदाता के प्रत्याभूत ऋण को वसूल करने के लिए उसके द्वारा अपनाये जाने वाले मार्ग का प्रावधान करती है जिसमें प्रत्याभूत परिसम्पत्ति को वसूल करने के लिए पट्टा, गिरवी या विक्रय के माध्यम से अंतरण के अधिकार समेत ऋणी की प्रत्याभूत परिसम्पत्तियों का कब्जा लेना शामिल है।

19. धारा 17 धारा 13 के उपधारा (4) में निर्दिष्ट उपायों में से प्रत्याभूत ऋणदाता द्वारा लिये गये किसी भी उपाय से व्यथित एक व्यक्ति को अपील का अधिकार प्रदान करती है।

20. यह नोट किया जाए कि धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन नोटिस के विरुद्ध किसी अपील का प्रावधान नहीं है, परन्तु यह ऋणी के लिए अभ्यावेदन करने या कोई अभ्यापत्ति उठाने के अवसर का प्रावधान करती है। तत्पश्चात, प्रत्याभूत ऋणदाता को ऐसे अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति पर विचार करना होता है। इसके विचारण पर अगर प्रत्याभूत ऋणदाता इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ऐसा अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति स्वीकारनीय या तार्किक नहीं है, तब उसे अभ्यावेदन की प्राप्ति के एक सप्ताह के भीतर ऋणी को अभ्यावेदन या अभ्यापत्ति अस्वीकरण के कारणों को संसूचित करना होता है।

21. प्रस्तुत मामले में, SARFAESI अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन दिनांक 13 जनवरी, 2010 की नोटिस निर्गत की गयी थी। याची के अनुसार, नोटिस की प्राप्ति पर उसने दिनांक 15 फरवरी, 2010 का अपना अभ्यावेदन रखा था जो उपमहाप्रबंधक, केनरा बैंक, जोनल कार्यालय, डोरंडा, रांची को संबोधित था। स्वीकार्यत:, प्रत्यर्थी-बैंक द्वारा उसके अभ्यावेदन पर विचार नहीं किया गया है।

22. प्रति शपथ पत्र में, प्रत्यर्थी-बैंक ने कथन किया है कि बैंक द्वारा ऐसा कोई अभ्यावेदन प्राप्त नहीं किया गया था।

23. याची ने दिनांक 15 फरवरी, 2010 की पावती रसीद प्राप्ति अभिलेख पर प्रस्तुत की है, जिस पर प्राप्त करने वाले पदाधिकारी के हस्ताक्षर एवं बैंक की मोहर के साथ बैंक का पावती अंतर्विष्ट है।

24. प्रत्यर्थी-बैंक ने उक्त सील एवं हस्ताक्षर से इंकार नहीं किया है या इसे विवादित नहीं किया है। तथापि, सुनवाई के समय प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन करके इस बिंदु का उत्तर देने का प्रयास किया कि पत्र बैंक के जोनल प्रबंधक को संबोधित था, जो प्राधिकृत पदाधिकारी नहीं है,

और इस कारण पत्र की प्राप्ति की ऐसी पावती के बावजूद इसे बैंक द्वारा प्राप्त किया गया नहीं कहा जा सकता और प्रत्यर्थी-बैंक याची के अभ्यावेदन पर इसके उपयुक्त रूप से संबोधित न होने के कारण विचार करने के लिए बाध्य नहीं था।

25. SARFAESI अधिनियम की धारा 13 के उपधारा (3) को निर्दिष्ट करने पर, मैं पाता हूँ यह ऐसा विहित नहीं करती कि अभ्यावेदन किसी विशिष्ट पदाधिकारी को संबोधित किया जाना है। 'प्रत्याभूत ऋणदाता' शब्दों का इस धारा में प्रत्येक स्थान पर इस्तेमाल किया गया है।

26. विधि के उक्त स्पष्ट प्रावधान की दृष्टि में, यह नहीं कहा जा सकता कि याची का अभ्यावेदन उपयुक्त रूप से संबोधित नहीं था और/या उक्त कारण से यह विचारण का अधिकारी नहीं था।

27. याची के अभ्यावेदन के अविचारण के लिए और SARFAESI अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (3A) के आज्ञापक प्रावधानों के गैर अनुपालन के लिए समनुदेशित कारण अभिलेख पर मौजूद किसी सामग्री द्वारा समर्थित नहीं है और विश्वसनीयता से रहित है। चूँकि यह प्रावधान आज्ञापक प्रकृति का है, प्रत्याभूत ऋणदाता को इतने ढीले-ढाले तरीके से ऋणी के अभ्यावेदन पर विचार करने से इंकार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

28. मैं पाता हूँ कि प्रत्यर्थी-बैंक के पास SARFAESI अधिनियम की धारा 13 (2) के अधीन नोटिस के विरूद्ध दाखिल याची के अभ्यावेदन पर विचारण से इंकार करने का कोई औचित्य नहीं था/है। चूँकि धारा 13 की उपधारा (3A) के आज्ञापक प्रावधान का अनुपालन नहीं किया गया है, उपधारा 4(क) के अधीन कब्जे की नोटिस निर्गत करने का कोई अवसर नहीं था।

29. मैं यह भी पाता हूँ कि धारा 17 के अधीन अपील का प्रावधान उस व्यक्ति के लिए है जो धारा 13 की उपधारा (4) में निर्दिष्ट उपायों में से किसी उपाय द्वारा व्यथित है। धारा 13 की उपधारा 3(A) के अधीन ऋणी के अभ्यावेदन पर विचारण से इंकार करने पर अपील का कोई प्रावधान नहीं है। अतएव, मैं प्रत्यर्थीगण के इस निवेदन में कोई दम नहीं पाता हूँ कि SARFAESI अधिनियम की धारा 17 के प्रावधान की दृष्टि में रिट याचिका समर्थनीय नहीं है।

30. यूनाईटेड बैंक ऑफ इण्डिया (ऊपर) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जिस पर प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है और इसे निर्दिष्ट किया गया है, यह अभिनिर्धारित नहीं करता कि विधि के आज्ञापक प्रावधान के उल्लंघन की स्थिति में भी उच्च न्यायालय किसी रिट याचिका को ग्रहण नहीं करेगा। प्रत्यर्थीगण द्वारा भरोसा किये गये **अक्षत कॉमर्शियल प्रा॰ लि॰ एवं एक अन्य (ऊपर)** में कलकत्ता उच्च न्यायालय का निर्णय SARFAESI अधिनियम की धारा 17 एवं परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के साथ बैंक एवं वित्तीय संस्थान को बकाये ऋण की वसूली अधिनियम की धारा 24 के प्रावधान से निपटता है और वर्तमान रिट याचिका में अंतर्ग्रस्त तथ्यों एवं विवादों पर इसकी कोई प्रयोज्यता नहीं है। उक्त निर्णय प्रत्यर्थीगण के किसी काम के नहीं है।

31. मेसर्स डी॰ एन॰ मोटर्स (ऊपर) में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि SARFAESI अधिनियम की धारा 13(3A) के अधीन प्रावधान आज्ञापक है और SARFAESI अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन प्रत्याभूत ऋणदाता द्वारा उठाये जाने वाले कदम का चरण धारा 13 (3A) के प्रावधान के अनुपालन के उपरांत आता है जो ऋणी के लिए अभ्यावेदन के अवसर और प्रत्याभूत ऋणदाता के लिए अभ्यावेदन पर विचार करने की बाध्यता और ऋणी की अभ्यापत्ति/अभ्यावेदन को स्वीकार न करने के कारण को उसे मालूम होने के अधिकार का भी प्रावधान करती है।

32. उक्त प्रावधान की जड़ें निष्पक्षता एवं नैसर्गिक न्याय के मौलिक सिद्धांत में निहित हैं।

33. यह स्थापित सिद्धांत है कि जो शक्ति एक व्यक्ति के अधिकार को प्रभावित करती है उसका इस्तेमाल निष्पक्षता एवं न्यायपूर्ण रूप से किया जाना आवश्यक है।

34. ओ॰ रिले बनाम मैकमैन एवं अन्य [1983 (2) AC 237] में लॉड डिप्लॉक हाऊस ऑफ लार्ड्स में बोलते हुए कहा कि जिस व्यक्ति का अधिकार किसी आदेश द्वारा प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने वाला है उसे सुनवाई का एक उपयुक्त अवसर दिया जाना होता है। यह अधिकार किसी सम्य विधिक तंत्र के लिए इतना मौलिक है कि यह उपधारित किया जाना है कि संसद का यह आशय था कि इसका अनुपालन करने में विफलता ऐसी अपेक्षा का उल्लंघन करते हुए लिये गये किसी भी निर्णय को शून्य एवं नास्ति कर देना चाहिए।

35. उपरोक्त परिचर्चा की दृष्टि में, मैं पाता हूँ कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी-बैंक SARFAESI अधिनियम की धारा 13(3A) के प्रावधानों का अनुपालन करने में विफल रहा है और इस दृष्टि में SARFAESI अधिनियम की धारा 13(4) सह-पठित प्रत्याभूति हित (प्रवर्तन) नियमावली, 2002 के नियम 8 एवं 9 के अधीन निर्गत दिनांक 31 मई, 2010 की कब्जे की नोटिस अपरिपक्व एवं अनुपयुक्त है।

36. इस प्रकार, परिशिष्ट 5 में अंतर्विष्ट दिनांक 31 मई, 2010 की नोटिस विधि में पोषणीय नहीं है और एतद द्वारा निरस्त की जाती है। SARFAESI अधिनियम की धारा 13(3A) के निबंधनों में याची के अभ्यावेदन पर विचार करने के लिए और विधि के अनुसार इसके निस्तारण के लिए मामला बैंक को वापस भेजा जाता है।

37. एक परिणाम के तौर पर SARFAESI अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन नोटिस के अनुशरण में की गयी कोई भी कार्रवाई निराकृत की जाती है। प्रत्यर्थी-बैंक के पास याची के अभ्यावेदन पर विचार करने और इसका निस्तारण करने के उपरांत विधि के अनुसार कार्यवाही करने की स्वतंत्रता होगी।

उपरोक्त निबंधनों में यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

माननीय सुशील हरकौली एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

जितेन्द्र कुमार राय (868 में)

पप्पु सिंह एवं एक अन्य (837 में)

सुशील रॉय उर्फ सुशील कुमार रॉय (1174 में)

बनाम

झारखंड राज्य (सभी में)

Criminal Appeal Nos. 868, 837 with 1174 of 2004. Decided on 4th February, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 11 वर्ष 2003 में अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰-III, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 25.3.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 364A/120B एवं 379/120B—फिरौती के लिए अपहरण—दोषसिद्धि एवं दंडादेश—अपीलार्थी पीड़ित का चालक था—इस तरह का अपराध केवल तभी किया जाता है जब अपराधी पीड़ित के नजदीकी सहायक से सूचना पाते हैं—अपीलार्थी द्वारा रेलवे स्टेशन पहुँचने में आशयपूर्वक विलम्ब किया गया और गाड़ी की गति बढ़ाने के निर्देश

के बावजूद गाड़ी धीमी चलायी जा रही थी, जो अपीलार्थी की सह-अपराधिता सिद्ध करता है–फिरौती के लिए अपहरण के अपराध के लिए दोषसिद्धि एवं दंडादेश अभिपुष्ट–किंतु वाहन की चोरी किए जाने के संबंध में विनिर्दिष्ट साक्ष्य की अनुपस्थिति में धारा 379/120B के अधीन दोषसिद्धि अपास्त। (पैराएँ 16 से 20)

अधिवक्तागण.–M/s Mahesh Kumar Sinha, Manish Kumar, B. N. Ojha, S. N. Singh, S. K. Pandey, For the Appellants; A.P.P., For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–समस्त चारों अपीलार्थीगण को दोषी पाए जाने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 364A सह-पठित धारा 120B के अधीन और धारा 379/120B के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया था और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 364A/120B के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास भुगतने और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379/120B के अधीन अपराध में लिए तीन वर्षों का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था।

2. आलोक राजगढ़िया की माइका फैक्ट्री टूंडी रोड, गिरिडीह पर अवस्थित है। कोलकाता का निवासी स्वत्वधारी आलोक राजगढ़िया अपने कारखाने का माह में एक-दो बार दौरा किया करता था।

3. अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 12.6.2002 को आलोक राजगढ़िया शताब्दी एक्सप्रेस से प्रात: 6.30 बजे हावड़ा से धनबाद के लिए रवाना हुआ। जाने से पहले उसने अपने चालक जितेन्द्र कुमार राय (अपीलार्थी) को उसकी गाड़ी को दिनांक 11.6.2002 को ही धनबाद ले जाने को कहा ताकि वह उसे अगली सुबह गिरिडीह जाने के लिए धनबाद स्टेशन पर उससे मिल सके। धनबाद पहुँचने पर आलोक राजगढ़िया ने प्रात: 9.20 बजे अपने धनबाद पहुँचने के बारे में कोलकाता मुख्य कार्यालय को फोन किया। जब वह दोपहर 1 बजे तक गिरिडीह नहीं पहुँचा, गिरिडीह कारखाना के स्टाफ ने कोलकाता मुख्य कार्यालय को इसके बारे में सूचित किया क्योंकि वह सामान्यत: प्रात: 11.30 बजे तक गिरिडीह पहुँच जाया करता था। जब आलोक राजगढ़िया के बड़े भाई दिलीप कुमार राजगढ़िया (अ॰ सा॰ 4) को पता चला कि उसका भाई गिरीडीह नहीं पहुँचा है, उसने सूचक कौशिक चटर्जी (अ॰ सा॰ 5) को धनबाद भेजा। जब तक वह धनबाद पहुँचा, गिरीडीह का स्टाफ भी धनबाद पहुँच चुका था। उन्होंने इस संबंध में पूछताछ की और मालूम किया कि अपीलार्थी जितेन्द्र कुमार राय, जो बलराम प्रसाद के घर में ठहरा था, प्रात: 8 बजे स्टेशन चला गया था। किन्तु आलोक राजगढ़िया और उसके चालक के पता-ठिकाना के बारे में कुछ भी पता नहीं जाना जा सका था। अत: दिनांक 13.6.2002 को उक्त कौशिक चटर्जी ने यह संदेह करते हुए कि किसी ने फिरौती पाने के उद्देश्य से आलोक राजगढ़िया का अपहरण कर लिया है, लिखित रिपोर्ट दाखिल किया।

4. अभियोजन का आगे मामला यह है कि दिनांक 13.6.2002 की गहन रात्रि में पीड़ित आलोक राजगढ़िया के बड़े भाई दिलीप कुमार राजगढ़िया (अ॰ सा॰ 4) द्वारा फोन रिसीव किया गया था जिसके द्वारा दुष्टों ने उसके भाई के अपहरण के बारे में उसे सूचित किया और भारी फिरौती मांगा। दिलीप कुमार राजगढ़िया ने आरक्षी अधीक्षक को इसके बारे में सूचित किया, जिन्होंने उसे टेलीफोन पर कॉलर आई॰ डी॰ लगवाने को कहा। जब अगले दिन अर्थात् दिनांक 14.6.2002 को फिर से कॉल किया गया था, नम्बर पता चल गया था और तब रिलायंस के कार्यालय से यह पता लगाया जा सका था कि मोबाइल पिंकू सिंह और पप्पू सिंह का था। स्थान का पता लगाने पर पप्पू सिंह और पिंकू सिंह (दोनों अपीलार्थीगण) के घर पर छापा मारा गया जहाँ से आलोक राजगढ़िया और चालक को बरामद किया गया था और एक व्यक्ति अपीलार्थी सुशील कुमार रॉय, जो बंदूक लिए उनकी निगरानी कर रहा था, को गिरफ्तार किया गया था।

5. तत्पश्चात् पुलिस ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन पीड़ित का बयान दर्ज किया और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन उसका बयान दर्ज करवाया। उसके बयान से पता चला

कि जब वह चालक जितेन्द्र कुमार राय (अपीलार्थी) द्वारा चलायी जा रही कार से गिरीडीह आ रहा था, कुछ दुष्टों ने सड़क पर कार को रोक लिया और तब उसे और उसके चालक को काबू में ले लिया गया और किसी जगह पर लाया गया जहाँ उन्हें एक कमरे में बंद कर दिया गया। कहे जाने पर उसने अपने भाई (अ॰ सा॰ 4) को एक दिन और फिर अगले दिन फोन किया। दुष्टों ने उसके भाई से फिरौती मांगी। पीड़ित ने पुलिस के समक्ष अभिकथित अपराध में उसका हाथ भी सुझाते हुए चालक के आचरण के बारे में प्रकट किया।

6. अन्वेषण पूरा करने पर, पुलिस ने इन चार अपीलार्थीगण और मनोज कुमार सिन्हा एवं शिव कुमार सिंह के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया।

7. मामले की सुपुर्दगी पर, समस्त छह व्यक्तियों का विचारण किया गया था जिसमें अभियोजन कुल मिलाकर आठ गवाहों का परीक्षण किया। उनमें से अ॰ सा॰ 1 बलराम झा ने केवल यह परिसाक्ष्य दिया है कि चालक जितेन्द्र कुमार राय उसके घर में रात में रुका था और दिनांक 12.6.2002 को प्रातः 7-8 बजे उसके घर से चला गया था। अ॰ सा॰ 3 आलोक राजगढ़िया ने अपने परिसाक्ष्य में अपने अपहरण के तरीके के बारे में बताया और किस तरह सुशील कुमार रॉय द्वारा गार्ड किए जा रहे उनके घर में पप्पू सिंह और पिंकू सिंह ने उसे बन्द रखा था। उसने अभियुक्तगण द्वारा उसके भाई दिलीप कुमार राजगढ़िया, जिसका अ॰ सा॰ 4 के रूप में परीक्षण किया गया और जिसने फिरौती की मांग के मामले का समर्थन किया है, से फिरौती की मांग के बारे में भी परिसाक्ष्य दिया। अ॰ सा॰ 4 सूचक कौशिक चटर्जी हैं जबकि अ॰ सा॰ 2 प्रवीण कुमार और अ॰ सा॰ 7 गोविन्द प्रसाद अन्वेषण अधिकारीगण हैं जिन दोनों ने आंशिक रूप से मामले का अन्वेषण किया है किन्तु उनमें से किसी ने न तो पीड़ित को बरामद किया था अथवा न ही अपीलार्थी सुशील कुमार राय को गिरफ्तार किया था।

8. विचारण न्यायालय ने गवाहों के परिसाक्ष्यों पर अंतर्निहित विश्वास करते हुए वस्तुतः पाया था कि अपीलार्थीगण ने आपस में साँठ-गाँठ करके फिरौती के लिए पीड़ित का अपहरण किया था। तद्नुसार, उन्होंने अभियुक्तगण मनोज कुमार सिन्हा और शिव कुमार सिंह को दोषमुक्त करते हुए इन चार अपीलार्थीगण के विरुद्ध दोषसिद्धि का आदेश और दंडादेश दर्ज किया।

9. दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश से व्यथित होकर, जैसा कि ऊपर कहा गया हैं अपीलार्थीगण की ओर से इन तीनों अपीलों को दाखिल किया गया है।

10. अपीलार्थी जितेन्द्र कुमार राय की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश कुमार सिन्हा निवेदन करते है कि पीड़ित आलोक राजगढ़िया (अ॰ सा॰ 3) ने अभिकथित अपराध में इस अपीलार्थी का हाथ होने का संदेह इस कारण किया कि अपीलार्थी घटना के दिन पर पेट्रोल लेने के लिए कार को पेट्रोल पंप ले गया था यद्यपि अ॰ सा॰ 3 के अनुसार वे सामान्यतः रास्ते में पेट्रोल नहीं लेते हैं और कि अ॰ सा॰ 3 ने पीछा किए जाने का संदेह होने पर जब चालक (अपीलार्थी) को तेज गति से कार चलाने को कहा, उसने उसके अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया। किन्तु इस गवाह ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अपने बयान में इन बातों का जिक्र नहीं किया था और इस प्रकार न्यायालय के समक्ष रखी गयी परिस्थितियाँ, जिन्हें अपीलार्थी के विरुद्ध अपराध में फँसाने वाला माना गया था, पूर्णतः मनगढ़ंत है जिन्हें विचारण न्यायालय द्वारा विचार में कभी नहीं लिया गया था और इसलिए उन सामग्रियों पर दोषसिद्धि का आदेश दर्ज करके विचारण न्यायालय ने गलती की।

11. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि इस अपीलार्थी की निर्दोषिता इस तथ्य से स्पष्ट है कि इस अपीलार्थी और पीड़ित दोनों को अपहरण करने के बाद साथ-साथ बन्द रखा गया था और जब वे बंद थे, अ॰ सा॰ 3 ने इस अपीलार्थी से केवल यह पूछा था कि यह सब कैसे हुआ। यह तथ्य और

यह तथ्य भी कि अपीलार्थी अपनी बरामदगी के दिन से ही पुलिस की अभिरक्षा में था, किन्तु चार दिनों तक उसे गिरफ्तार नहीं किया गया था, इस अपीलार्थी की निर्दोषिता स्पष्टत: स्थापित करता है फिर भी विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धि का आदेश और दंडादेश दर्ज किया और इसलिए आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है।

12. अन्य अपीलार्थीगण पप्पू सिंह एवं पिंकू सिंह की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अभियोजन की ओर से कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं दिया गया था कि मोबाइल जिससे पीड़ित के भाई को फोन किया गया था, इन अपीलार्थीगण का था। इसी समय पर अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा कि घर जहाँ से पीड़ित (अ॰ सा॰ 3) और चालक को बरामद किया गया था, इन अपीलार्थीगण का था। अत: अपीलार्थीगण समस्त आरोपों से दोषमुक्त किए जाने योग्य है।

13. अंत में, अपीलार्थी सुशील कुमार राय की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि अपीलार्थी को पीड़ित की बरामदगी के समय पर घर से गिरफ्तार किया गया बताया जाता है किन्तु पुलिस अधिकारी, जिसने इस अपीलार्थी को गिरफ्तार किया था, का अभियोजन द्वारा परीक्षण नहीं किया गया है। ऐसी स्थिति में, अन्वेषण अधिकारियों अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 7 के अपीलार्थी के संबंध में साक्ष्य का शायद ही कोई महत्व होगा।

14. यह निवेदन भी किया गया है कि इस अपीलार्थी और अन्य अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धारा 379/120B के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया है किन्तु इस अपीलार्थी द्वारा कार की चोरी का अपराध किया जाना स्थापित करने के लिए साक्ष्य बिल्कुल नहीं है। इसके अतिरिक्त, कार की चोरी के संबंध में इस अपीलार्थी से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कोई भी प्रश्न नहीं पूछा गया था और इसलिए इस अपीलार्थी के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि का आदेश और दंडादेश अपास्त किए जाने योग्य है।

15. अभिलेख का परिशीलन किया गया। अ॰ सा॰ 3 पीड़ित के साक्ष्य से वस्तुत: प्रतीत होता है कि दिनांक 12.6.2002 को जब पीड़ित शताब्दी एक्सप्रेस से धनबाद स्टेशन पहुँचा, उसने अपने चालक को वहाँ उपस्थित नहीं पाया। किन्तु 10-15 मिनट बाद वह अपने चालक से मिला और गिरीडीह के लिए रवाना हुआ। रास्ते में, अपीलार्थी जितेन्द्र कुमार राय ने पीड़ित को पेट्रोल पंप से पेट्रोल लेने को कहा। उन्होंने पेट्रोल पंप से पेट्रोल लिया किन्तु पूर्व अवसरों पर उन्होंने रास्ते में कभी भी पेट्रोल नहीं लिया था। जब वे आगे बढ़े, पीड़ित को लगा कि कार द्वारा उनका पीछा किया जा रहा है और खतरा महसूस करते हुए उसने अपीलार्थी (जितेन्द्र कुमार राय) को तेजी से कार चलाने को कहा किंतु चालक ने इस पर ध्यान नहीं दिया। कुछ देर बाद विपरीत दिशा से आते ट्रक ने रास्ता जाम कर दिया जिसके परिणामस्वरुप गाड़ी रुक गयी। इस पर, दुष्टगण वहाँ आए और उस पर और उसके चालक को काबू में कर लिया और दोनों को कार की पिछली सीट पर बैठा दिया गया। उन्हें किसी जगह ले जाया गया जहाँ उन्हें रात्रि 11 बजे तक रखा गया था। तत्पश्चात, उन्हें पैदल 3-4 किलोमीटर दूर एक अन्य गाँव में ले जाया गया था और कमरे में बन्द रखा गया था जहाँ वे अगले दिन रात्रि 10 बजे तक बन्द रहे। तत्पश्चात्, दुष्टगण पीड़ित को 1 कि॰ मी॰ दूर ले गए जहाँ से मोबाइल पर उसके बड़े भाई दिलीप कुमार राजगढ़िया (अ॰ सा॰ 4) से फिरौती मांगी गयी थी। समय के उस बिन्दु पर, दोनों अपीलार्थीगण पप्पू सिंह और पिंकू सिंह अन्य के साथ वहाँ उपस्थित थे। आगे अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि जैसे ही अ॰ सा॰ 4 ने दुष्टों से फोन पाया, उसने आरक्षी अधीक्षक को सूचित किया जिसने उसे आई॰ डी॰ कॉलर लगवाने को कहा ताकि नम्बर का पता चल सके। पीड़ित के अनुसार अगले दिन अर्थात् दिनांक 14.6.2002 को दुष्टों ने

पुन: फिरौती मांगी। तब अ० सा० 7 के साक्ष्य के मुताबिक नम्बर पता लगा लिया गया और छापा मारा गया और पप्पू सिंह और पिंकू सिंह के घर से पीड़ित और चालक को बरामद किया गया था। इसी समय पर, अपीलार्थी सुशील कुमार राय को भी उनको गार्ड करते हुए बन्दूक के साथ गिरफ्तार किया गया था।

16. बरामद किए जाने पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन दिनांक 17.6.2002 को अ० सा० 4 का बयान दर्ज किया गया था जिसमें उसने अभिकथित अपराध में उसकी सह-अपराधिता दर्शाते हुए अपने चालक के आचरण के बारे में कुछ भी नहीं कहा था किन्तु बाद में अ० सा० 4 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन बयान देता प्रतीत होता है जिसमें अभिकथित अपराध में उसकी अंतर्ग्रस्तता दर्शाते हुए आचरण के बारे में प्रकट किया गया था। इस गवाह ने साक्ष्य के क्रम में चालक के आचरण के बारे में भी कथन किया जो त्रुटिहीन रूप से उसका दोष इंगित करता है। अ० सा० 3 द्वारा बताए गए आचरण ये हैं कि सामान्यत: चालक समय पर स्टेशन के प्लैटफॉर्म पर मौजूद रहता था किन्तु घटना के दिन वह काफी देर से आया और कि वे रास्ते में कभी पेट्रोल नहीं लेते है किन्तु उस दिन चालक ने पेट्रोल पंप से पेट्रोल लिया और कि जब पीड़ित ने पाया कि किसी के द्वारा उनका पीछा किया जा रहा है, उसने चालक से कार तेजी से चलाने को कहा किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। चूँकि ये बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन दिए गए बयान में नहीं है, अभिवचन किया गया था कि अपीलार्थी को आलिप्त करने के लिए इन तथ्यों को गढ़ा गया है। हम इस निवेदन में इस कारण से कोई सार नहीं पाते है कि विगत 10 वर्षों से काम कर रहा चालक विश्वसनीय था और उसने अ० सा० 3 को अपनी विश्वसनीयता पर संदेह करने का कोई मौका नहीं दिया था और इसलिए यकायक अ० सा० 3 से चालक के उन कृत्यों को षडयन्त्र का हिस्सा मानने की उम्मीद नहीं की जाती है। इसके अतिरिक्त, अ० सा० 3, जिसे 3 दिन बाद बरामद किया गया था, स्वयं को शांत नहीं रख पाया होगा बल्कि ट्रॉमा में होगा और तद्द्वारा किसी निष्कर्ष पर आने के लिए अपीलार्थी के आचरण/कृत्यों को समाविष्ट करने में अक्षम रहा होगा। संभवत: इस कारण से जब अ० सा० 3 ने पहले-पहल धारा 164 के अधीन बयान दिया था, उसने जितेन्द्र कुमार राय के आचरण/कृत्य के बारे में कुछ भी नहीं कहा था किन्तु जब पीड़ित ट्रॉमा से बाहर आया होगा, उसने अपीलार्थी के आचरण/कृत्य, जिसे अपीलार्थी ने धनबाद से गिरीडीह की यात्रा के क्रम में दर्शाया था, के क्रम को समाविष्ट किया और तब उक्त संदेहास्पद आचरण को षडयन्त्र का हिस्सा समझा। अत: उसकी सह अपराधिता दर्शाता हुए अपीलार्थी के विरुद्ध पुलिस के समक्ष जो भी कथन किया गया था अथवा अभिसाक्ष्य दिया गया था, उसे अलंकरण अथवा मनगढ़ंत नहीं माना जा सकता है क्योंकि ऐसा अपराध सामान्यत: तभी किया जाता है जब अपराधी पीड़ित के निकट सहयोगी से सूचना पाते है। हमने पहले ही ध्यान में लिया है कि धनबाद रेलवे स्टेशन पहुँचने में अपीलार्थी की ओर से विलम्ब हुआ था। और उसने पेट्रोल लेने और कार की गति बढ़ाने के लिए कहे जाने के बावजूद कार को धीमी चला कर और भी विलम्ब किया, यह निश्चय ही अपीलार्थी की सह-अपराधिता सिद्ध करता है।

17. अन्य अपीलार्थीगण की ओर से आते हुए, हम पीड़ित (अ० सा० 3) के साक्ष्य से पाते हैं कि घर जहाँ अ० सा० 3 को बन्द रखा गया था और जहाँ से बरामदगी की गयी थी, पप्पू सिंह और पिंकू सिंह का था। इसके अतिरिक्त, अ० सा० 7 के साक्ष्य में भी यह आया है कि मोबाइल जिससे फोन किया गया था, इन अपीलार्थीगण का है और इसके अलावा, अ० सा० 3 के साक्ष्य के मुताबिक ये दोनों अपीलार्थीगण बन्द स्थान पर उपस्थित थे और उस स्थान पर भी जहाँ पीड़ित को फोन करने के लिए ले जाया गया था और पीड़ित लगातार संपर्क में रहने के कारण पप्पू सिंह और पिंकू सिंह के नाम जानने में सक्षम था।

इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 3 ने अपने साक्ष्य के समय उनको पहचाना था। अत: अपीलार्थीगण की सह-अपराधिता के बारे में संदेह का एक कण भी प्रतीत नहीं होता है।

18. जहाँ तक अपीलार्थी सुशील कुमार राय का संबंध है, वह अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य के मुताबिक उसे घटनास्थल से गिरफ्तार किया गया था जब वह बंदूक लिए था। यह सत्य है कि अ॰ सा॰ 7 ने अपीलार्थी को गिरफ्तार नहीं किया था और कि व्यक्ति, जिसने उसे गिरफ्तार किया था, का परीक्षण नहीं किया गया था किन्तु यह पीड़ित अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य जिसमें उसने परिसाक्ष्य दिया कि दुष्टों की अभिरक्षा से उन्हें निर्मुक्त कराने के क्रम में सुशील कुमार राय को आग्नेयास्त्र के साथ गिरफ्तार किया था और वह उनके अपहरण के समय से उनकी बरामदगी तक पूरे समय उनके साथ था, की दृष्टि में अभियोजन मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है। अत: यह बिल्कुल स्पष्ट है कि पीड़ित इस अपीलार्थी के नाम को जान सकता था जो पीड़ित के साथ निरंतर संपर्क में था।

19. अत: हम पाते हैं कि फिरौती के लिए अपहरण के अपराध में समस्त चारों अपीलार्थीगण की अंतर्ग्रस्तता स्थापित करने में अभियोजन सक्षम रहा है और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा सही प्रकार से उनको दोषसिद्ध किया गया है और दंडादेशित किया गया है। तद्नुसार, निर्णय और आदेश का यह अंश अभिपुष्ट किया जाता है।

20. जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 379/120B के अधीन अपराध का संबंध है, कोई विनिर्दिष्ट साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थीगण ने पीड़ित के वाहन की चोरी की। इसके अतिरिक्त चोरी के अपराध में अपीलार्थीगण की सह-अपराधिता दर्शाते हुए अपराध में फँसाने वाली सामग्रियों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तगण को कभी भी स्पष्ट नहीं किया गया है। अत: अपीलार्थीगण भारतीय दंड संहिता की धारा 379 सह-पठित धारा 120B के अधीन गलत रूप से दोषसिद्ध किए गए प्रतीत होते है और इसलिए उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 379 सह-पठित धारा 120B के अधीन आरोप से दोषमुक्त किया जाता है।

21. तद्नुसार, इन तीनों अपीलों को अंशत: अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

लक्ष्मीपति महतो एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P. (C) No. 4003 of 2004. Decided on 27th January, 2011.

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894—धारा 18—भूमि का अर्जन—अधिनिर्णय में शुद्धि—अब अधिनिर्णय समाप्त हो गया है और याचीगण भूमि के कब्जा को पाने का हकदार हैं—यदि अधिनिर्णय को सुधारा नहीं गया है और अधिनिर्णीत राशि संवितरित नहीं की गयी है, जिला अर्जन अधिकारी सुनिश्चित करेगा कि सुधार किया गया अधिनिर्णय तैयार किया जाए और इसे पाने के लिए विधित: हकदार व्यक्तियों को राशि का भुगतान किया जाए। (पैरा 1 से 4)

अधिवक्तागण.—Mr. H. K. Mahto, For the Petitioners; Mr. Sarvendra Kumar, For the State; M/s Biren Poddar, Piyush Poddar, Vikash Pandey, D. Poddar, For the Respondent No. 3.

आदेश

याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री एच॰ के॰ महतो ने निवेदन किया कि अधिनिर्णय गलत व्यक्तियों के नाम में तैयार किया गया था। याची ने आपत्ति की थी। ऐसी आपत्ति सही पायी गयी थी और एल॰ ए॰ केस सं॰ 2 वर्ष 1991-92 में अधिनिर्णय को सुधारने और गलत रूप से भुगतान की गयी राशि की वसूली के लिए भूमि अर्जन अधिकारी, सदर चाईबासा द्वारा दिनांक 7.9.1996 को आदेश पारित किया गया था। उक्त राशि 4,65,347.68/- रुपया वसूल किया गया था, जैसा दिनांक 2.4.1997 के आदेश से प्रतीत होगा, किन्तु तत्पश्चात् बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद अधिनिर्णय को सुधारने के लिए और याचीगण को उक्त राशि का भुगतान करने के लिए संबंधित प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गयी थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि जहाँ तक खाता सं॰ 54 के अधीन 1.03 एकड़ क्षेत्र वाले वर्ष 1993 के विलेख का संबंध है, याचीगण आरंभ से ही इस भूमि पर काबिज थे किन्तु विक्रय विलेख केवल वर्ष 1993 में निष्पादित किया गया था। किन्तु यदि प्राधिकारी संतुष्ट नहीं थे, मामले को भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अधीन निर्दिष्ट किया जा सकता था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यद्यपि अधिनिर्णय समाप्त हो गया है और याचीगण भूमि के कब्जा को पाने के हकदार हैं किन्तु याचीगण तभी संतुष्ट होंगे यदि दिनांक 7.9.1996 के आदेश का अनुपालन किया जाता है और राशि जिसका भुगतान याचीगण को अप्रैल 1997 में ही किया जाना था, का भुगतान मुआवजा/साम्यापूर्ण ब्याज के साथ किया जाता है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अधिनिर्णय को सुधारने के बाद, याचीगण ऐसा परामर्श दिए जाने पर मुआवजा, आदि बढ़ाए जाने के लिए समुचित फोरम के समक्ष जा सकते हैं।

2. दूसरी ओर, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री सवैन्द्र कुमार अभिलेख पर लाया गया ऐसा कुछ भी दर्शा नहीं सके थे जिसके द्वारा यह देखा जा सकता है कि अधिनिर्णय को शुद्ध करके और याचीगण को वापस की गयी राशि का भुगतान करके दिनांक 7.9.1996 के उक्त आदेश का अनुपालन किया गया था। किन्तु प्रति शपथ पत्र में कहा गया है कि याचीगण को कुछ राशि का भुगतान किया गया था किन्तु इस पर श्री महतो ने निवेदन किया कि अधिनिर्णय को शुद्ध किए बिना कैसे किसी राशि का भुगतान किया जा सकता था और यह कि वस्तुतः अन्य भूमि के लिए ऐसी राशि का भुगतान किया गया था।

3. प्रत्यर्थी सं॰ 3 उषा मार्टिन की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री पोद्दार ने निवेदन किया कि कंपनी ने सक्षम प्राधिकारी के आदेश के अनुसार अर्जन की पूरी राशि का भुगतान कर दिया है।

4. इन परिस्थितियों में, याचीगण को प्रासंगिक दस्तावेजों के साथ जिला भूमि अर्जन अधिकारी, सरायकेला-खरसावाँ (प्रत्यर्थी सं॰ 2) के समक्ष आवेदन दाखिल करने की अनुमति दी जाती है जो इस मामले की जाँच करेंगे। यदि वह पाते हैं कि दिनांक 7.9.1996 के उक्त आदेश के निबंधनानुसार अभी तक अधिनिर्णय का शुद्धिकरण नहीं किया गया है और अधिनिर्णीत राशि संवितरित नहीं की गयी है, वह देखेंगे कि शुद्ध किया गया अधिनिर्णय तैयार किया जाय और याचीगण द्वारा अभ्यावेदन दाखिल करने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर शीघ्रातिशीघ्र इसको प्राप्त करने के लिए विधितः हकदार व्यक्तियों को राशि का भुगतान किया जाय। इसके अतिरिक्त, यदि वह संतुष्ट है कि याचीगण राशि प्राप्त करने के लिए विधितः हकदार व्यक्ति है और उनकी कोई गलती नहीं है यदि अधिनिर्णय को शुद्ध नहीं किया गया है और उन्हें राशि का भुगतान नहीं किया गया है, वह अधिनिर्णीत राशि पर अक्टूबर 1997 से भुगतान की तिथि तक 6% वार्षिक सरल ब्याज के दर के साथ भुगतान के लिए आदेश पारित करेंगे। अधिनिर्णय पाने वालों को समुचित प्राधिकारी/फोरम के समक्ष अधिनिर्णय के विरुद्ध कदम उठाने की स्वतंत्रता रहेगी।

5. इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

श्रीमती मीरा देवी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P. (S) No. 3123 of 2006. Decided on 1st February, 2011.

(क) प्रशासनिक विधि—यदि किसी आदेश/परिपत्र अथवा विधि को किसी तिथि विशेष से प्रयोज्य बनाया जाता है, उक्त विधि अपनी प्रयोजनीयता में भविष्यलक्षी होगा—इसकी व्याख्या करने के लिए सरकारी आदेश को समग्रता में पढ़ा जाना चाहिए। (पैराएँ 4 एवं 6)

(ख) भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226—केवल उस मामले में जहाँ अधिकारीगण पर सांविधिक कर्तव्य अधिरोपित किया गया है, में परमादेश रिट प्रदान किया जा सकता है–यह दर्शाना होगा कि संविधि विधिक कर्तव्य अधिरोपित करती है और इसी आदेश परिपत्र अथवा संविधि के अधीन व्यथित पक्ष को विधिक अधिकार है। (पैरा 6)

(ग) भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 21 एवं 226—नक्सली हिंसा—अनुग्रहपूर्वक भुगतान–याची का पति मुठभेड़ में मारा गया–सरकारी आदेश सं॰ 64 वर्ष 2000 के तहत 10 लाख रुपयों के भुगतान का दावा–मुठभेड़ सरकारी आदेश सं॰ 64 वर्ष 2000 के प्रवर्तन के पहले हुई थी–याची को 2.50/-लाख रुपया अनुग्रहपूर्वक भुगतान के रूप में दिया गया था–मृतक जिसकी मृत्यु दिनांक 21.3.2001 के पहले हो गयी थी, के आश्रितों को अनुग्रहपूर्वक राशि का भुगतान करने के लिए प्रत्यर्थीगण पर कोई सांविधिक कर्तव्यबाध्यता नहीं है–राज्य को प्रवर्तन की तिथि शिथिल करने की कोई शक्ति नहीं है–प्रत्यर्थीगण को याची को मंजूर राशि के शेष का भुगतान करने का निर्देश। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Kalyan Banerjee, For the Petitioner; JC to A.G., For the Respondents.

आदेश

यह रिट याचिका दिनांक 29.4.2005 की अधिसूचना सं॰ 1941 के तहत प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी पुलिस आदेश सं॰ 23/05 के अनुसरण में अनुग्रहपूर्वक अनुदान के रूप में 10 लाख रुपयों का भुगतान करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाना इप्सित करते हुए याची द्वारा दाखिल की गयी है। रिट याचिका में अभिकथित किया गया है कि याची की पति की मृत्यु दिनांक 29.10.2000 को कार्य घंटों के दौरान नक्सलियों से हुए मुठभेड़ में राज्य के शिक्षामंत्री की सुरक्षा के लिए एस्कॉर्ट पार्टी होने के कारण हो गयी थी और तत्पश्चात याची के मृत पति के स्थान पर याची के पुत्र को अनुकंपा के आधार पर नियोजित किया गया था और सेवा के अन्य लाभों को दिया गया था। दिनांक 28.10.2000 को उच्च शिक्षा मंत्री ने मृत कॉंस्टेबल की पत्नी अर्थात मीरा देवी को भुगतान किए जाने वाली 5 लाख रुपयों की अनुग्रहपूर्वक राशि को भी मंजूर किया था। तत्पश्चात्, परिपत्र जारी किया गया था जिसमें अनुग्रहपूर्वक राशि 10,00,000/-रुपयों (दस लाख) तक बढ़ा दी गयी है जिसे उसके बार-बार अनुरोध के बावजूद याची को नहीं दिया गया था। अत: याची ने राज्य की ओर से इस निष्क्रियता से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष इस रिट याचिका को दाखिल किया है।

2. राज्य द्वारा रिट याचिका का प्रतिवाद किया गया था। यह अभिकथित किया गया है कि याची का पति दिनांक 29.10.2000 को नक्सलियों के साथ मुठभेड़ में मारा गया था और याची को 2.50 लाख

रुपए अनुग्रहपूर्वक राशि दी गयी है। आगे यह अभिकथित किया गया है कि अनुग्रहपूर्वक राशि के रूप में 10,00,000/- (दस लाख) रुपया, जैसा दावा याची द्वारा किया गया है, भुगतान करने का प्रावधान सरकारी आदेश सं॰ 64 वर्ष 2000 के तहत दिनांक 21.3.2001 के प्रभाव के साथ प्रवर्तित किया गया था। मुठभेड़ उक्त आदेश के प्रवर्तन के पहले हुई थी, अत: याची उक्त राशि का दावा करने की हकदार नहीं है।

3. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख का परिशीलन किया है।

4. रिट याचिका के परिशिष्ट-2 के परिशीलन से यह प्रकट है कि तत्कालीन शिक्षा मंत्री द्वारा याची को पाँच लाख रुपयो की अनुग्रहपूर्वक राशि प्रदान की गयी है। प्रतिशपथ पत्र के पैरा 6 के अनुसार, 2,50,000/-रुपयों की राशि का भुगतान याची को किया गया है। प्रत्यर्थीगण ने कोई कारण नहीं दिया है कि क्यों शेष राशि का भुगतान याची को नहीं किया गया है। आदेश (प्रतिशपथ पत्र का परिशिष्ट-A) के जिसे दिनांक 21.3.2001 को जारी किया गया था, के परिशीलन से प्रकट है कि यदि नक्सलियों के साथ मुठभेड़ में कोई पुलिस अधिकारी अथवा पुलिसकर्मी अथवा कोई अन्य सरकारी सेवक मुठभेड़ में मारा जाता है, दिनांक 21.3.2001 के प्रभाव से मृत पुलिस अधिकारी/पुलिसकर्मी अथवा कर्मचारी के आश्रितों को दस लाख रुपयों की राशि का भुगतान किया जाएगा। याची के विद्वान अधिवक्ता मुझे प्रदर्शित नहीं कर सके थे कि यह परिपत्र निबंधनों में भूतलक्षी है। यह विधि की सुनिश्चित अवस्था है कि यदि किसी आदेश/परिपत्र अथवा विधि को तिथि विशेष से प्रयोज्य बनाया जाता है, उक्त विधि प्रयोजनीयता में भविष्यलक्षी होगी। यह नहीं कहा जा सकता है कि पूर्वोक्त परिपत्र भूतलक्षी प्रभाव से प्रवर्तनीय है। इस प्रकार, दस लाख रुपयों की राशि दिनांक 21.3.2001 के प्रभाव से प्रयोज्य बनायी गयी थी। वर्तमान मामले में, मुठभेड़ दिनांक 29.1.2000 को हुआ था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मुठभेड़ दिनांक 21.3.2001 की अधिसूचना (प्रतिशपथ पत्र का परिशिष्ट-A) के छह माह पहले हुई थी। अत: न्यायालय द्वारा परिपत्र को शिथिल करना चाहिए और उक्त परिपत्र में उपदर्शित राशि याची को दी जानी चाहिए।

6. यह विधि की सुनिश्चित अवस्था है कि इसकी व्याख्या के लिए सरकारी आदेश को समग्रता में पढ़ा जाना चाहिए। यह आदेश प्रत्यर्थीगण पर दिनांक 21.3.2001 के प्रभाव से दस लाख रुपयों की अनुग्रहपूर्वक राशि का भुगतान करने का संविधिक कर्तव्य डालता है। यह सरकारी आदेश के अधीन किसी शिथिलीकरण खंड को प्रावधानित नहीं करता था। राज्य को प्रवर्तन तिथि शिथिल करने की शक्ति नहीं है। यदि इसे शिथिल करने की शक्ति नहीं है, प्रत्यर्थीगण पर कोई सांविधिक कर्तव्य नहीं डाला जाना है। इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण पर मृतक जिसकी मृत्यु मुठभेड़ में दिनांक 21.3.2001 के पहले हुई थी, के आश्रितों को अनुग्रहपूर्वक राशि का भुगतान करने की कोई सांविधिक कर्तव्य नहीं डाला गया है। परमादेश का रिट केवल ऐसे मामले में प्रदान किया जा सकता है जहाँ संबंधित अधिकारियों पर सांविधिक कर्तव्य अधिरोपित किया जाता है और सांविधिक बाध्यता के निर्वहन में अधिकारी की ओर से विफलता हुई है। रिट का मुख्य कार्य संविधि द्वारा विहित लोक कर्तव्यों के पालन को अनिवार्य बनाना है और लोक कृत्यों का पालन करने वाले अधीनस्थ अधिकरणों और अधिकारियों को उनकी अधिकारिता के अंतर्गत रखना है। अत: इससे अनुसरित होता है कि प्राधिकारियों को कुछ करने के लिए मजबूर करने के लिए परमादेश रिट जारी किए जाने के लिए यह दर्शाना होगा कि संविधि विधिक कर्तव्य अधिरोपित करती है और इसी आदेश, परिपत्र अथवा संविधि के अधीन अनुपालन प्रवर्तित करने के लिए व्यथित पक्ष को विधिक अधिकार है। अत: दिनांक 21.3.2001 के सरकारी आदेश के अधीन अनुग्रहपूर्वक राशि के रूप में 10,00,000 (दस लाख) रुपयों को पाने के लिए याची के पास विधित: प्रवर्तनीय अधिकार नहीं है।

7. प्रत्यर्थीगण दर्शा नहीं सके थे कि याची को पाँच लाख रुपयों की राशि प्रदान नहीं की गयी थी। इन परिस्थितियों में, यह निष्कर्षित किया जा सकता है कि रिट याचिका के परिशिष्ट-2 की दृष्टि में याची को पाँच लाख रुपयों की राशि मंजूर की गयी थी। प्रत्यर्थीगण ने केवल कहा है कि अब तक याची को केवल 2.50/- लाख रुपयों का भुगतान किया गया है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता दर्शा नहीं सके थे कि क्या शेष राशि का भुगतान याची को कर दिया गया है। इस प्रकार प्रत्यर्थीगण को याची को 2.50/- लाख रुपयों की शेष राशि का भुगतान करना है। प्रत्यर्थीगण को इस आदेश की प्रति की प्रस्तुति/प्राप्ति की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर शीघ्रातिशीघ्र याची को 2,50,000/- (दो लाख पचास हजार) रुपयों की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

8. इस प्रकार यह रिट याचिका निपटायी जाती है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

बालिका विद्या मंदिर, झरिया

बनाम

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

W. P. (C) No. 4830 of 2004. Decided on 2nd February, 2011.

आयकर अधिनियम, 1961—धारा 12AA—इस आधार पर घरेलू टैरिफ का दावा कि विद्यालय से आय का उपयोग केवल विद्यालय के विकास के लिए किया जा रहा है—घरेलू टैरिफ मान्यता प्राप्त पूर्त्त संस्था के मामले में प्रयोज्य है—यदि कोई न्यास गरीबों को राहत पहुँचाने, शिक्षा और चिकित्सा राहत के लिए गतिविधि करता है और लाभ का उपयोग न्यास के मुख्य उद्देश्य के लिए किया जाता है, इसे पूर्त्त न्यास के रूप में मान्यता दिया जा सकता है—केवल यह अभिनिर्धारित करते हुए कि याची का विद्यालय विकास शुल्क प्रभारित कर रहा है, यह टैरिफ के लाभ से इनकार करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा—आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 7, 9 एवं 10)

अधिवक्तागण.—M/s.L. K. Bajla, Anil Choudhary, For the Petitioner; Mr. Mukesh Kumar, For the Respondent-Board.

आदेश

याची का मामला यह है कि झरिया मारवाड़ी सम्मेलन न्यास, न्यास अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड लोक पूर्त्त न्यास है और आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 12AA के अधीन भी लोक पूर्त्त न्यास के रूप में रजिस्टर्ड है। न्यास के उद्देश्यों में से एक उनको शिक्षा प्रदान करने के लिए विशेषत: बालिकाओं के लिए विद्यालय की स्थापना करना है। इस उद्देश्य से बालिका विद्या मंदिर के नाम से वर्ष 1961 में बालिका विद्यालय (याची) की स्थापना की गयी थी। ऐसे विद्यालय को चलाने से उत्पन्न आय को अनन्यत: विद्यालय के विकास के लिए खर्च किया जाता है और इसके किसी अंश का उपयोग किसी अन्य उद्देश्यों से नहीं किया जाता है।

2. आगे मामला है कि वर्ष 1997 में न्यास ने हेठली बाँध, झरिया में विद्यालय के लिए नए भवन का निर्माण किया जिसमें विद्युत बोर्ड द्वारा 1 K.W. के कनेक्टेड लोड के साथ घरेलू सेवा श्रेणी का विद्युत कनेक्शन दिया गया था। वर्ष 1997 से जुलाई 2001 तक वर्ष 1993 के घरेलु टैरिफ के अनुरुप विद्युत

प्रभारों को प्रभारित किया जाता था जो मान्यता प्राप्त पूर्त्त संस्थान के लिए अनुज्ञेय था किन्तु दिनांक 24.8.2001 को विद्युत बोर्ड के कुछ प्राधिकारीगण ने इसके कनेक्टेड लोड को अभिनिश्चित करने के लिए विद्यालय का निरीक्षण किया और निरीक्षण पर 1 किलोवाट के मंजूर कनेक्टेड लोड के विरुद्ध 13 किलोवाट का कनेक्टेड लोड अभिकथित रूप से पाया गया था। तद्नुसार, वाणिज्यिक टैरिफ के लिए लागू दर प्रभारित करते हुए अगस्त 2001 का विद्युत बिल जारी किया गया था। तत्पश्चात्, तुरन्त बिजली काट दिए जाने का नोटिस तामील किया गया था जिसे इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दाखिल करके यह अभिवचन करते हुए चुनौती दी गयी थी कि याची विद्यालय के मामले में वाणिज्यिक सेवा टैरिफ प्रयोज्य नहीं है क्योंकि इसे न्यास के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पूर्त्त न्यास द्वारा चलाया जा रहा है। डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 5510 वर्ष 2001 वाले उक्त रिट आवेदन में याची को अपनी समस्त शिकायतों, जिन्हें रिट आवेदन में उठाया गया था, को उठाते हुए कार्यपालक विद्युत अभियन्ता, झरिया के समक्ष आवेदन दाखिल करने का निर्देश देते हुए निपटाया गया था। उसके अनुसरण में याची ने दिनांक 10.6.2002 को अभ्यावेदन दाखिल किया। दिनांक 10.7.2002 की नियत तिथि पर याची अपने प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित हुआ और न्यास विलेख की प्रति और आयकर अधिनियम के अधीन न्यास का रजिस्ट्रेशन दर्शाता दस्तावेज भी दाखिल किया। उस दिन पर तर्क समाप्त हुआ और जब युक्तियुक्त अवधि के भीतर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, याची ने अनेक आवेदनों को दाखिल किया और यह सूचना का कोई आदेश पारित किया गया था या नहीं, इप्सित करने के लिए कानूनी नोटिस भी भेजा गया था। अंतत: यह संसूचित किया गया था कि दिनांक 30.11.2002 को एक आदेश पारित किया गया था जिसके द्वारा यह दर्ज किया गया था कि चूँकि विद्यालय विकास शुल्क प्रभारित कर रहा है, वाणिज्यिक टैरिफ लागू करते हुए बिल सही प्रकार से जारी किया गया है। अंतर्वर्ती आवेदन के माध्यम से उक्त आदेश को दोषपूर्ण होने के लिए विरोध किया गया था।

3. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री एल० के० बाजला ने निवेदन किया कि जिस आधार पर घरेलू टैरिफ की प्रयोज्यता से इनकार किया गया है, मान्य नहीं है क्योंकि विद्यालय द्वारा विकास शुल्क प्रभारित किया जाना विद्यालय को पूर्त्त संस्थान के दर्जे से विहीन नहीं करेगा क्योंकि विद्यालय से आय का उपयोग केवल विद्यालय के विकास के लिए किया जा रहा है और न कि किसी अन्य उद्देश्य के लिए और इसलिए छात्राओं से विकास शुल्क प्रभारित किया जाना बच्चों को शिक्षा देने के मुख्य उद्देश्य से आनुषंगिक है।

4. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि न्यास के उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए न्यास को आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 12AA के अधीन रजिस्ट्रेशन प्रदान किया गया है। किन्तु, जब निर्धारण वर्ष 2006-07 का रिटर्न न्यास द्वारा दाखिल किया गया था, विभाग द्वारा इसे संवीक्षण के लिए चुना गया था। अत: न्यास को नोटिस जारी किया गया था। उपस्थित होकर याची ने कैश बुक, लेजर आदि प्रस्तुत किया। निर्धारण प्राधिकारी ने सम्यक् रूप से विचार करने के बाद वस्तुत: पाया कि इसकी प्राप्ति/आय का 85% से अधिक का उपयोग न्यास के लक्ष्य को अग्रसर करने के लिए किया जाता है, अत: दाखिल रिटर्न को आयकर प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किया गया था।

5. यह भी इंगित किया गया था कि न्यास की अन्य इकाई, अर्थात्, मातृ सदन को भी पूर्त्त संस्थान के रूप में माना जाता था और घरेलू टैरिफ लागू करके बिल प्रभारित किया जाता था किन्तु वर्ष 2004 में अचानक वाणिज्यिक सेवा टैरिफ लागू करके बिल जारी किया गया था जो प्राधिकारी की निरंकुशता थी और इस प्रकार वाणिज्यिक सेवा प्रभार लागू करने के लिए आपत्ति उठाते हुए इस संबंध में अभ्यावेदन दिया गया था। प्राधिकारी ने गलती से अवगत होने पर घरेलू टैरिफ लागू करके विद्युत का दर प्रभारित

करके स्वयं को सुधारा। इस प्रकार निवेदन किया गया था कि एक ओर बोर्ड पूर्त्त न्यास की एक इकाई को पूर्त्त उद्देश्यों के लिए चला जा रहा संस्थान के रूप में स्वीकार कर रहा है किन्तु याची विद्यालय के मामले में इसे पूर्त्त न्यास इस कारण से नहीं माना जा रहा है क्योंकि विकास शुल्क प्रभारित किया जा रहा है जो उस लाभ से इनकार करने का आधार नहीं हो सकता है जिसे बोर्ड द्वारा जारी टैरिफ के अधीन पाने का पूर्त्त संस्थान हकदार है और इसलिए परिशिष्ट-9 में अंतर्विष्ट आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

6. प्रत्यर्थी बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री मुकेश कुमार निवेदन करते हैं कि छूट प्रदान करना और आयकर विभाग द्वारा किसी संस्थान को पूर्त्त संस्थान के रूप में मानना याची को स्वयंमेव ही घरेलू टैरिफ का दावा करने का हकदार नहीं बनाता है क्योंकि सरकार ने उक्त विद्यालय को पूर्त्त संस्थान के रूप में मान्यता प्रदान नहीं किया है।

7. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, यह प्रतीत होता है कि याची पूर्त्त न्यास द्वारा चलाए जा रहे पूर्त्त संस्थान होने के अपने दावा के कारण घरेलू टैरिफ लागू किए जाने का दावा कर रहा है क्योंकि मान्यता प्राप्त पूर्त्त संस्थान के मामले में घरेलू टैरिफ प्रयोज्य है। टैरिफ के प्रासंगिक प्रावधान का पठन निम्नलिखित है:–

> *''निजी निवास में रेडियो, फैन, टेलीविजन, डेजर्टकूलर, एअर कंडीशनर, घरेलू उद्देश्य के लिए पानी चढ़ाने के लिए 1 BHP तक के मोटर जैसे घरेलू विद्युत उपकरण और घरेलू पंपिग सेट और किसी अन्य अनुसूची में अनाच्छादित अन्य घरेलू विद्युत उपकरण सहित घरेलू उद्देश्य के उपयोग के लिए।*
>
> *यह दर वहाँ भी प्रयोज्य है जहाँ मंदिर, गुरुद्वारा, मस्जिद, चर्च और कब्रगाह/श्मशान घाट एवं अन्य मान्यता प्राप्त पूर्त्त संस्थानों जैसे धार्मिक संस्थानों में आपूर्ति का उपयोग किया जाता है।''*

8. याची की ओर से इंगित किया गया है कि न्यास अर्थात् झरिया मारवाड़ी सम्मेलन न्यास आयकर अधिनियम की धारा 12AA के अधीन लोक पूर्त्त न्यास के रूप में रजिस्टर्ड है और रजिस्ट्रेशन सं॰ IV-31 वर्ष 1997 के तहत जिला रजिस्ट्रार, धनबाद द्वारा भी न्यास अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड है।

9. साथ ही साथ याची का मामला यह भी है कि विद्यालय से उत्पन्न आय का सर्वाधिक हिस्सा विद्यालय के विकास पर अनन्यत: खर्च किया जाता है जिसे आयकर प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश से स्थापित करना इप्सित किया गया था जिसमें यह दर्ज किया गया है कि न्यास की आय का 85% से अधिक का उपयोग न्यास के उद्देश्यों जैसे शिक्षा, नर्सिंग आदि के लिए किया जाता है जो आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 2(15) के अर्थ के अंतर्गत पूर्त्त उद्देश्य है। किन्तु टैरिफ के अधीन कोई मार्गदर्शन नहीं है जिससे अभिनिश्चित किया जा सके कि कब पूर्त्त न्यास सामान्य अभिप्राय के अधीन घरेलू टैरिफ को लागू किए जाने की अपनी हकदारी खो देता है और आयकर अधिनियम के अधीन भी यदि कोई न्यास गरीबों को राहत पहुँचाने और शिक्षा एवं चिकित्सा राहत के लिए गतिविधि करता है और लाभ अर्जित करता है और यदि ऐसे लाभ का उपयोग न्यास के मुख्य लक्ष्य के लिए किया जाता है, इसे पूर्त्त न्यास के रूप में मान्यता दी जा सकती है। किसी मार्गदर्शन की अनुपस्थिति में इसे ही किसी संस्थान को पूर्त्त संस्थान के रूप में मान्यता देने के लिए मापदंड माना जा सकता है। केवल यह अभिनिर्धारित करते हुए कि याची का विद्यालय विकास शुल्क प्रभारित कर रहा है, यह टैरिफ के लाभ से इनकार करने के लिए

पर्याप्त नहीं होगा यदि विद्यालय पूर्त उद्देश्यों के लिए चलाया जा रहा है बल्कि यह परीक्षण करना आवश्यक होगा कि क्या आय के सर्वाधिक अंश का उपयोग न्यास के उद्देश्य के लिए किया जा रहा है।

10. चूँकि परिशिष्ट-9 में अंतर्विष्ट दिनांक 30.11.2002 का आदेश पारित करते हुए इस पर विचार नहीं किया गया था, इसे एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। किन्तु ऊपर उपदर्शित कोण से मामले को देखने के लिए मामला वापस भेजा जाता है ताकि यह अभिनिश्चित किया जा सके कि क्या याची घरेलू टैरिफ के अधीन लाभ का हकदार है या नहीं। याची को समस्त प्रासंगिक दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की छूट होगी जो पूर्वोक्त मामले के विनिश्चय के लिए आवश्यक होंगे।

अत: आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

डॉ॰ आनन्द मोहन रॉय उर्फ ए॰ एम॰ रॉय एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 950 of 2010. Decided on 1st February, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 306/34—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—आत्महत्या का दुष्प्रेरण—उन्मोचन याचिका की खारिजी–मृतक द्वारा कोई आत्महत्या नोट नहीं छोड़ा गया था जो मृतक द्वारा आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरक के रूप में याचीगण पर प्रथम दृष्टया दांडिक दायित्व डालता—सूचक द्वारा बेबुनियाद अभिकथन किए गए—याचीगण को आलिप्त करने के लिए कोई प्रथम दृष्टया सामग्री नहीं है—आक्षेपित आदेश अपास्त–पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात। (पैरा 9)

निर्णयज विधि.–2005 Cr.LJ 1737—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. R. S. Mazumdar, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा दर्ज दिनांक 20.9.2010 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा सत्र विचारण सं॰ 555 वर्ष 2009 में उनके उन्मोचन के लिए याचीगण की ओर से दाखिल याचिका खारिज कर दी गयी थी।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक लव कुमार सिंह ने दिनांक 5.2.2006 को धनबाद पुलिस के समक्ष एक लिखित कथन दाखिल किया था जिसमें अन्य बातों के साथ कथन किया गया था कि उसका मामा अर्थात् निर्भय कुमार सिंह किसी शिव कुमार खेमका, जो विगत 6-7 वर्षों से द्वारिका दास जालान मेमोरियल अस्पताल, धनबाद के सचिव हैं, के निजी चालक के रूप में काम कर रहा था। सूचना देने के दिन सूचक ने अफवाह सुनी कि उसके मामा निर्भय कुमार सिंह की मृत्यु जालान अस्पताल में हो गयी थी। ऐसी अफवाह सुनकर जब सूचक नियोक्ता शिव कुमार खेमका के घर गया, उसे बताया गया कि निर्भय कुमार सिंह एक सप्ताह पहले ही अपना काम छोड़ चुका था और जालान अस्पताल में उसका अता-पता मालूम करने के लिए भी सूचक को कहा गया था। सूचक जालान अस्पताल गया जहाँ उसकी मुलाकात डॉ॰ आनन्द मोहन रॉय उर्फ ए॰ एम॰ रॉय से हुई जिन्होंने बताया कि निर्भय कुमार सिंह

ने छत से फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी और कि उसका मृत शरीर बिस्तर पर पड़ा था। वह सीढ़ी चढ़कर कमरे में गया और बिस्तर पर अपने मामा का मृत शरीर पाया। सूचक को मालूम हुआ कि अस्पताल के कमरे के नगद पेटी से नगद चुराया गया था और इस चोरी के लिए उसकी अंतर्ग्रस्तता के बारे में निर्भय कुमार सिंह के विरुद्ध अभिकथन किए गए थे। सूचक के पास विश्वास करने का कारण था कि शिव कुमार खेमका और डॉ॰ आनन्द मोहन रॉय उर्फ ए॰ एम॰ रॉय ने उसके मामा निर्भय कुमार सिंह की हत्या कर दी थी और आत्महत्या का अंजाम देने के लिए उसके मृत शरीर को छत से लटका दिया था। धनबाद पुलिस ने दोनों नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन पी॰ एस॰ केस सं॰ 89 वर्ष 2006 दर्ज किया किन्तु अन्वेषण के बाद आरोप-पत्र भारतीय दंड संहिता की धारा 306/34 के अधीन दाखिल किया गया था।

3. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री मजूमदार ने निवेदन किया कि याची सं॰ 1 डॉ॰ आनन्द मोहन रॉय उर्फ ए॰ एम॰ रॉय पेशे से चिकित्सक था और जालान अस्पताल से संबद्ध था जबकि याची सं॰ 2 शिव कुमार खेमका प्रासंगिक समय पर उक्त अस्पताल का सचिव था और दोनों को अग्रिम जमानत प्रदान किया गया था। वस्तुत:, संबंधित पुलिस थाना को सूचना भेजी गयी थी जिसमें कहा गया था कि निर्भय कुमार सिंह ने नॉन-ए॰ सी॰ कमरे में आत्महत्या कर ली थी और ऐसी सूचना पर पुलिस का ए॰ एस॰ आई॰ वहाँ आया और मनोज मोहन श्रीवास्तव, जो डी॰ डी॰ जालान मेमोरियल अस्पताल का मुख्य सुरक्षा अधिकारी था, से पूछताछ किया और उसका बयान दर्ज किया और मृत शरीर को शव परीक्षण के लिए भेजा। मुख्य सुरक्षा अधिकारी मनोज मोहन श्रीवास्तव, जिसने अस्पताल से नगद की चोरी की घटना के बारे में पहले पुलिस को सूचित किया था और दिनांक 5.2.2006 को उसका बयान दर्ज किया गया था जिसमें उसने कथन किया कि दिनांक 4.2.2006 को उसे पता चला कि बक्सा का ताला तोड़कर नगद की चोरी की गयी थी और अन्वेषण के दौरान प्रकट किया गया था कि निर्भय कुमार सिंह (तब से मृत), जो शिव कुमार खेमका का चालक था, को संदेहास्पद स्थिति में भंडारगृह के निकट घूमता हुआ देखा गया था। संदेह होने पर निर्भय कुमार सिंह से पैसे की चोरी के बारे में पूछा गया था और अस्पताल में रुकने के लिए कहा गया था। मनोज मोहन श्रीवास्तव ने स्पष्ट किया कि जब वह अगले दिन अस्पताल आया, उसे उसके सुरक्षा स्टाफ द्वारा सूचित किया गया था कि निर्भय कुमार सिंह ने छत से खुद को लटकाकर नॉन-ए॰ सी॰ कमरा सं॰ 1 में आत्महत्या कर ली थी। डॉ॰ के॰ के॰ शर्मा सहित अन्य गवाह वहाँ आए और निर्भय सिंह को मृत घोषित किया। मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट भी प्रकट करता है कि मृत्यु फाँसी लगाने के कारण हुआ प्रतीत होती है।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री मजुमदार ने आगे निवेदन किया कि जालान अस्पताल के सुरक्षा गार्ड राजेश कुमार ठाकुर ने मामले के अन्वेषण के दौरान दर्ज अपने बयान में बताया कि दिनांक 4.5.2006 को प्रात: उसने शीशे की खिड़की से देखा कि प्रथम तल पर अवस्थित नॉन-ए॰ सी॰ कमरे के सीलिंग फैन से एक व्यक्ति लटका हुआ था। वह खिड़की के निकट गया और पाया कि वह सचिव का चालक था और उसे पता लगा कि केबिन का दरवाजा अन्दर से बंद था। अस्पताल के स्टाफ को तुरन्त मामले की सूचना दी गयी और निर्भय कुमार सिंह के मृत शरीर को सीलिंग फैन से नीचे लाया गया। गवाह ने आगे कथन किया कि कैश बॉक्स से नगद की चोरी के संबंध में निर्भय सिंह से केवल मनोज जी और सोमनाथ द्वारा पूछताछ की गयी थी और न कि वर्तमान याचीगण द्वारा।

5. विद्वान वरीय अधिवक्ता ने इंगित किया कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा घटना स्थल जहाँ से मृत शरीर बरामद किया गया था, का निरीक्षण और दौरा किया गया था जिन्होंने पाया कि वस्तुतः नॉन-ए॰ सी॰ कमरे का लैच अंदर से टूटा हुआ था। वस्तुतः, विद्वान अधिवक्ता ने जोड़ा कि याचीगण अस्पताल के सुरक्षा गार्ड से सूचना प्राप्त करने पर अस्पताल आए थे और सिलिंग फैन से निर्भय सिंह के शरीर को लटकते देखा था। दरवाजे की कुंडी तब तोड़ी गयी थी और मृत शरीर को नीचे लाया गया था। गवाह संगत थे कि कैस बॉक्स से नगद की चोरी होने के दौरान निर्भय सिंह को संदेहास्पद स्थिति में भंडार गृह के आस-पास घूमता हुआ पाया गया था और इसके लिए उससे अस्पताल के सुरक्षा गार्ड द्वारा पूछताछ की गयी थी, न कि याचीगण द्वारा। निर्भय सिंह को सावधान किया गया था कि चोरी के दांडिक कृत्य के लिए उसका अभियोजन किया जा सकता था। उमेश राजवार और मदन सिंह जैसे गवाह भी दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161 के अधीन अपने बयानों में संगत थे कि सुरक्षाकर्मियों द्वारा मृतक से पूछताछ की गयी थी और परिणामस्वरुप निर्भय कुमार सिंह ने नॉन-ए॰ सी॰ कमरा सं॰ 1 में आत्महत्या कर ली थी। कई अन्य गवाहों अर्थात् रीत कुमार, दिनेश महतो, कुसुम कुमारी, मीना कुमारी और पार्वती देवी से भी अन्वेषण के दौरान पुलिस द्वारा पूछताछ की गयी थी और वे सभी संगत थे कि मृतक शिव कुमार खेमका का चालक था और अस्पताल के भंडारकक्ष में चोरी का पता चलने के बाद विगत कुछ दिनों से उसे तनावग्रस्त पाया गया था और निर्भय कुमार सिंह को नगद की चोरी के पहले वहाँ घूमते हुए पाया गया था। शव परीक्षण में, शरीर पर कोई बाहरी उपहति नहीं पायी गयी थी और निर्भय सिंह की मृत्यु का कारण फाँसी लगाने के परिणामस्वरुप दम घुटने से बताया गया था। अस्पताल के कैश बॉक्स, जिसे भंडार कक्ष में रखा जाता था, से दिनांक 4.2.2006 को 40/45 हजार रुपयों की राशि की चोरी की गयी थी और अभिकथित चोरी में मृतक की सह-अपराधिता पर संदेह किया गया था।

6. अपना तर्क आगे बढ़ाते हुए, श्री मजुमदार ने आगे निवेदन किया कि याची डॉ॰ आनन्द मोहन रॉय उर्फ ए॰ एम॰ रॉय डी॰ डी॰ जालान अस्पताल, धनबाद की चिकित्सा सेवाओं के अवैतनिक मुख्य थे और उनका कर्तव्य मरीज के चिकित्सा सेवा तक ही सीमित था जैसा विभिन्न विभागों के डॉक्टरों, नर्सों, पैरामेडिकल स्टाफ, टेकनीशियन को काम पर लगाना और मरीजों को समुचित सेवा प्रदान करना। मृतक निर्भय कुमार सिंह अस्पताल में मरीज नहीं था बल्कि घटना के पहले उसकी सेवा से उसको बर्खास्त कर दिया गया था। याची सं॰ 2 शिव कुमार खेमका भी जीवन रेखा न्यास के अवैतनिक सचिव थे और डी॰ डी॰ जालान अस्पताल का प्रबंध कर रहे थे। वह धनबाद पब्लिक स्कूल के अध्यक्ष थे और महाराज अग्रसेन न्यास के रूप में ज्ञात पूर्त्त न्यास द्वारा चलाए जा रहे विद्यालय के अध्यक्ष थे।

7. आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए, विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उनके उन्मोचन के लिए याचीगण की प्रार्थना को अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा न्यायिक विवेक का इस्तेमाल किए बिना और इस तथ्य को अनदेखा करते हुए कि भारतीय दंड संहिता की धारा 306/34 के अधीन अपराध के लिए उनको आलिप्त करने के लिए याचीगण के विरुद्ध केस डायरी में कोई सामग्री नहीं थी, अस्वीकार कर दिया गया था। आई॰ ओ॰ द्वारा अन्वेषण के क्रम में परीक्षित गवाहों में से कोई भी प्रकट नहीं कर सकता था कि याचीगण ने निर्भय सिंह को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया था। यह निष्कर्षित करने के लिए भी कोई सामग्री नहीं है कि याचीगण द्वारा दुष्प्रेरित किए जाने के बाद निर्भय सिंह ने आत्महत्या कर ली थी। याचीगण की उन्मोचन की प्रार्थना को आक्षेपित आदेश द्वारा यह संप्रेक्षित करते

हुए अस्वीकार कर दिया गया था कि जालान अस्पताल के सुरक्षा अधिकारी और अन्य स्टाफ द्वारा मृतक से पूछताछ की गयी थी और उस पर दबाव डाला गया था किन्तु उसके लिए याचीगण को दायी नहीं बनाना चाहिए था। विद्वान न्यायालय ने केवल इस आधार पर उन्मोचन याचिका को खारिज कर दिया कि यद्यपि याची डॉ॰ आनन्द मोहन रॉय उर्फ ए॰ एन॰ रॉय ने सूचक को बताया था कि शव पंखा से लटका हुआ था किन्तु सूचक ने मृत शरीर को बिस्तर पर पाया था और यह कि मृतक की कमीज सीलिंग फैन पर बंधी हुई थी जो याचीगण की उन्मोचन प्रार्थना को अस्वीकार करने का युक्तियुक्त आधार नहीं हो सकता था। वर्तमान मामले के प्रासंगिक तथ्य भ्रामक है और विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में याची की प्रार्थना पर विचार नहीं किया जा सका था।

8. भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने **नेताई दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2005 Cr.L.J. 1737** में प्रकाशित मामले में संप्रेक्षित किया:

> *''अभिकथित आत्महत्या नोट में कोई प्रकथन नहीं है कि वर्तमान अपीलार्थी ने उसको हानि कारित की थी अथवा मृतक प्रणव कुमार नाग को वेतन के भुगतान के विलंब के लिए किसी प्रकार से जिम्मेवार था। यह प्रतीत होता है कि मृतक कार्यस्थल पर कार्य स्थिति से अत्यन्त असंतुष्ट था किन्तु यह भी ध्यान में लिया जा सकता है कि वर्ष 1999 में अपने स्थानांतरण के बाद मृतक ने कभी भी 160 बी० एल० साह रोड, कोलकाता के कार्यालय में पदग्रहण नहीं किया था और दो वर्षों की अवधि के लिए स्वयं को अनुपस्थित रखा था और आत्महत्या दिनांक 16.2.2001 को की गयी थी। यह नहीं कहा जा सकता है कि वर्तमान अपीलार्थी ने किसी प्रकार से मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया था अथवा वह प्रणव कुमार नाग की आत्महत्या के लिए जिम्मेदार था। भा० दं० सं० की धारा 306 के अधीन अपराध केवल तभी बनेगा जब अपराध करने के लिए दुष्प्रेरण होता है। 'दुष्प्रेरण' के मापदंडों को भारतीय दंड संहिता की धारा 107 में कथित किया गया है। धारा 107 कहती है कि कोई व्यक्ति किसी चीज को करने के लिए दुष्प्रेरित करता है, जब वह किसी व्यक्ति को उस चीज को करने के लिए उकसाता है, अथवा एक अथवा अधिक व्यक्तियों के साथ उस चीज को करने के लिए षडयंत्र करता है यदि उस षडयंत्र के अनुसरण में कोई कृत्य अथवा अवैध लोप किया जाता है अथवा व्यक्ति ने आशयपूर्वक किसी कृत्य अथवा अवैध लोप के लिए मदद किया था। धारा 107 का स्पष्टीकरण कहता है कि किसी तात्विक तथ्य, जिसे प्रकट करने के लिए वह बाध्य है, जानबूझकर दुर्व्यपदेशन अथवा छुपाया जाना भी दुष्प्रेरण की सीमा के भीतर आ सकता है।''*

9. स्वीकृत रूप से वर्तमान मामले में मृतक निर्भय कुमार सिंह द्वारा कोई आत्महत्या नोट नहीं छोड़ा गया था जो निर्भय सिंह द्वारा आत्महत्या किए जाने के लिए दुष्प्रेरक के रूप में याचीगण पर प्रथम दृष्टया दांडिक दायित्व डालता हो और मेरे मत में सूचक द्वारा किए गए अभिकथन याचीगण के विरुद्ध किए गए बेबुनियाद अभिकथन है और केस डायरी में अथवा अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं लायी जा सकी थी जो याचीगण को प्रथम दृष्टया आलिप्त कर सके कि वे दुष्प्रेरक थे जिसके परिणामस्वरुप निर्भय सिंह ने आत्महत्या कर ली थी। वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण में गुणागुण प्रतीत होता है, तद्नुसार इसे अनुज्ञात किया जाता है। आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और अपर सत्र न्यायाधीश–I, धनबाद के न्यायालय के समक्ष लंबित धनबाद पी॰ एस॰ केस सं॰ 84 वर्ष 2006, जी॰ आर॰ सं॰ 382 वर्ष 2006 के तत्सम (एस॰ टी॰ सं॰ 555 वर्ष 2009) में याचीगण को उन्मोचित किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

एनोस एक्का

बनाम

झारखंड राज्य

B.A. Nos. 7099 with 6982 of 2010. Decided on 4th February, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 439—जमानत–यह याची, जो स्वयं को जनप्रतिनिधि होने का दावा करता है, द्वारा काफी मात्रा में सार्वजनिक धन के लूट और शोधन का मामला है–याची विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग कर रहा है और न्याय प्रणाली का मजाक उड़ा रहा है–याची मामले की प्रगति में रुकावट डाल रहा है–याची ने साक्ष्य में छेड़छाड़ करने और गवाहों को प्रभावित करने का प्रयास किया है–अन्य दांडिक मामलों में अभियुक्तगण के जमानत आदेश याची की मदद नहीं करते हैं–जमानत आवेदन अस्वीकार। (पैराएँ 5 से 7)

निर्णयज विधि.–AIR 1979 SC 1360; AIR 1984 SC 372—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s Kaushlendra Prasad Singh, Amit Sinha, Sameer Saurabh, For the Petitioner; Mr. Mokhtar Khan (in 7099), For the CBI; Mr. A. K. Das (in 6982), For Directorate of Enforcement.

आदेश

बी॰ ए॰ सं॰ 7099 वर्ष 2010

यह जमानत आवेदन भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 406/409/420/423/427/465/120B सह–पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराएँ 11, 13 (2) और 13(1) (A) के अधीन दर्ज आर॰ सी॰ केस सं॰ 04 (A)/2010/ए॰ एच॰ डी॰/राँची, सदर (निगरानी) पी॰ एस॰ केस सं॰ 26 वर्ष 2008 के तत्सम, विशेष केस सं॰ 32/2008 के तत्सम से उद्‌भूत होता है।

याची पहले बी॰ ए॰ सं॰ 6647 वर्ष 2009 के तहत जमानत के लिए इस न्यायालय के पास आया था जिसे दिनांक 18.11.2009 को अस्वीकार कर दिया गया था। याची ने एस॰ एल॰ ए॰ (दांडिक) सं॰ 9127 वर्ष 2009 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास गया था किन्तु दिनांक 4.12.2009 को अपील की उक्त विशेष अनुमति को भी खारिज कर दिया गया था।

बी॰ ए॰ सं॰ 6982 वर्ष 2010

यह जमानत आवेदन प्रवर्तन मामला सूचना रिपोर्ट के इ॰ सी॰ आइ॰ आर॰ केस सं॰ 01/PAT/09/AD में मनी लांड्रिंग निवारण अधिनियम, 2002 (इसके बाद मनी लांड्रिंग निवारण अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 3 सह–पठित धारा 4 के अधीन अपराधों का अभिकथन करते मामले से उद्‌भूत होता है।

याची बी॰ ए॰ सं॰ 7609 वर्ष 2009 के तहत जमानत के लिए इस न्यायालय के पास आया था जिसे दिनांक 18.11.2009 को अस्वीकार कर दिया गया था। याची एस॰ एल॰ ए॰ (दांडिक) सं॰ 9126 वर्ष 2009 के तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास गया किन्तु दिनांक 4.12.2009 को अपील की उक्त विशेष अनुमति को भी खारिज कर दिया गया था।

3. यह ध्यान में लिया जा सकता है कि याची द्वारा दाखिल दोनों जमानत आवेदनों को इस न्यायालय द्वारा और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा साथ–साथ सुना गया था और एक ही आदेश द्वारा अस्वीकार/खारिज किया गया था।

4. दोनों मामलों में याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री कन्हैया प्रसाद सिंह ने निम्नलिखित समान निवेदनों को किया।

याची की जमानत की प्रार्थना सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 4.12.2009 को अस्वीकार कर दी गयी थी जब याची केवल साढ़े तीन महीनों के लिए अभिरक्षा में रहा था और जब अन्वेषण जारी था किन्तु अब वह 17 माह से अधिक कारवास में है।

जमानत का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि याची का विचारण किया जाय और कि उसे जेल में बन्द रखकर दंडित करना उद्देश्य नहीं है। याची की जड़ें समुदाय में है और वह वर्तमान विधायक है और उसके विचारण से अनुपस्थित रहने का खतरा नहीं है। उन्होंने **AIR 1979 SC 1360 हुसैनारा खातून एवं अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना और AIR 1984 SC 372 भगीरथ सिंह जुदेगा बनाम गुजरात राज्य** के मामलों में दिए गए निर्णयों पर विश्वास किया।

किसी कमलेश कुमार सिंह उर्फ कमलेश सिंह जिसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 409, 420, 423, 424, 465 और 120B सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7/10/11/13(2) सह-पठित धारा 13(1)(e) के अधीन अपराधों को करने के लिए गंभीर अभिकथन थे, को बी॰ ए॰ सं॰ 9220 वर्ष 2010 में दिनांक 13.12.2010 को इस न्यायालय द्वारा जमानत दिया गया था और वह केवल साढ़े ग्यारह माह तक जेल में रहा था। **मनोज कुमार उर्फ मनोज कुमार सिंह** के मामले में **बी॰ ए॰ सं॰ 4392 वर्ष 2010** में पारित दिनांक 3.9.2010 के आदेश पर भी विश्वास किया गया था और निवेदन किया गया था कि छह माह से अधिक की अभिरक्षा की दृष्टि में भा॰ दं॰ सं॰ के और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के भी प्रावधानों के अधीन रजिस्टर्ड उस मामले में जमानत दी गयी थी जिसमें अन्य आस्तियों के अतिरिक्त 12.54 करोड़ रुपयों से अधिक 169 फिक्सड् डिपोजिट की बरामदगी के अभिकथन थे। चारा घोटाला मामलों में भी, समस्त अभियुक्तगण को छह से नौ माह तक जेल में रहने के बाद जमानत दी गयी थी। सह-अभियुक्त हरि नारायण राय का मामला अधिक गंभीर था जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने छह माह बाद प्रार्थना करने की छूट दी थी। याची की समस्त आस्तियों की कुर्की का अंतिम आदेश पारित किया गया है। इन मामलों में अधिकतम दंड 7 वर्षों का है। अंत में उन्होंने निवेदन किया कि यह ज्ञात नहीं है कि सी॰ बी॰ आई॰ कब तक अपना अन्वेषण पूरा कर लेगी।

5. दूसरी ओर, प्रवर्तन निदेशालय की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ दास और सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री मुख्तार खान ने अभिलेखों और अपने-अपने प्रति शपथ पत्रों को निर्दिष्ट करते हुए जमानत की प्रार्थना का विरोध किया और निम्नलिखित निवेदनों को किया।

वर्ष 2005 में चुनाव लड़ते समय पर याची ने अपनी पत्नी के साथ 10.50 लाख रुपयों की अपनी आस्तियों की घोषणा की और मार्च 2005 से जून 2008 तक विधायक/मंत्री के रूप में 15.40 लाख रुपया वेतन के रूप में उपार्जित किया। मंत्री बनने के बाद उसने अपनी पत्नी और संबंधियों के नाम में ''एक्का कंस्ट्रक्शन'' नामक कंस्ट्रक्शन कंपनी खोला और विभाग, जिसका वह मंत्री था, में इसका रजिस्ट्रेशन करवाया और अपने प्रभाव के फलस्वरुप उक्त कंपनी के पक्ष में अनेक विभागों से कार्यादेशों को प्राप्त किया। अननुपातिक आस्तियों का मूल्य लगभग 6.88 करोड़ रुपया निर्धारित किया गया था और यह बढ़ता ही जा रहा है।

याची ने अपनी पूर्व जमानत याचिका के साथ दिनांक 17.2.2009 को 11 शपथपत्रों को यह दर्शाने के लिए कि याची की पत्नी ने उनसे कतिपय भूमि खरीदी थी और समय के किसी बिन्दु पर प्राथमिकी संस्थापित किए जाने के बाद याची ने कभी उनसे संपर्क नहीं किया अथवा याची ने कभी उन्हें कोई धमकी दी थी, विभिन्न विक्रेताओं द्वारा अभिकथित रूप से शपथ पत्र दाखिल करवाया और न्यायिक अभिरक्षा में रहते हुए साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ किया जबकि अन्वेषण के दौरान उक्त विक्रेताओं ने अन्यथा कहा था कि याची ने धन दिया था और अपने नाम में अपनी पत्नी एवं संबंधियों के नाम से भूमि खरीदा। वह इतना ताकतवर और प्रभावशील है कि जेल में रहते हुए भी उसने विधायक का चुनाव जीता था।

यह भी पाया गया था कि दिए गए पता पर एक्का कंस्ट्रक्शन जैसी किसी कंपनी का अस्तित्व नहीं है। लगभग 108 विक्रय विलेख हैं जिसके अधीन याची द्वारा अपने नाम में और अपनी पत्नी एवं संबंधियों के नाम में और उक्त कंपनी के नाम में बड़ी संपत्ति खरीदी गयी है।

इ॰ सी॰ आइ॰ आर॰ केस में आर्डर-शीट को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया गया था कि याची अपनी इच्छानुसार बीमार हो जाता है और कुछ समय के भीतर विधायक के रूप में शपथ लेने अथवा राज्य सभा चुनाव में भाग लेने के लिए अनुमति दिए जाने की प्रार्थना करता है।

उन मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों में कमलेश सिंह, मनोज सिंह और लालू प्रसाद यादव, आदि को जमानत दी गयी थी जो वर्तमान मामले से बिल्कुल भिन्न थे। मनी लांड्रिंग अधिनियम के अधीन परिवाद केस सं॰ 1 वर्ष 2009 दाखिल किया गया है जो आरोप-पत्र की तरह है। उक्त अधिनियम की धारा 24 के अधीन यह सिद्ध करने की अपराध का आगम अकलंकित संपत्ति है, का प्रमाण देने का भार याची पर है और धारा 45 के मुताबिक जमानत केवल तभी दिया जा सकता है जब न्यायालय संतुष्ट है कि यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि याची दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा अपराध करने की संभावना नहीं है।

याची मनी लांड्रिंग मामले में विचारण होने नहीं दे रहा है क्योंकि वह जानता है कि उसका दोषसिद्ध कर दिया जाएगा। उसने लगभग पाँच माह तक अभियोजन दस्तावेजों की प्राप्ति से बचने के लिए अनेक युक्तियाँ अपनायी। अंततः, इसे दिनांक 28 अक्टूबर, 2010 को प्राप्त किया गया था जब बी॰ ए॰ सं॰ 6982 वर्ष 2010 में दाखिल प्रतिशपथ पत्र में विलंबकारी युक्तियों का उल्लेखन किया गया था। मामले को आरोप के लिए नियत किया गया था किन्तु याची की ओर से कमजोर आधारों पर स्थगन लिया जा रहा है। इस प्रकार याची मामलों की प्रगति में रुकावट डाल रहा है। वह विचारण की समाप्ति में विलम्ब की शिकायत नहीं कर सकता है क्योंकि वह स्वयं इसके लिए जिम्मेदार है। वह 17 माह की अपनी न्यायिक अभिरक्षा में से लगभग चार माह तक अस्पताल में लंबी अवधि तक टिका रहा है और कमजोर आधारों पर न्यायालय में अपनी उपस्थिति से बचता रहा है। यह निवेदन भी किया गया है कि संबद्ध संपत्तियों का वास्तविक कब्जा आज की तिथि तक नहीं लिया जा सका था।

सी॰ बी॰ आई॰, हैदराबाद बनाम बी॰ रामाराजू एवं अन्य के मामले में **एस॰ एल॰ पी॰ (दांडिक) सं॰ 6995-6999 वर्ष 2010** में पारित दिनांक 26.10.2010 के सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर विश्वास किया गया था और निवेदन किया गया था कि अभिकथनों की गंभीर प्रकृति की दृष्टि में उच्च न्यायालय द्वारा दी गयी जमानत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दी गयी थी।

यह निवेदन भी किया गया है कि निगरानी द्वारा आरोप-पत्र दाखिल किए जाने के बाद सी॰ बी॰ आई॰ ने इस न्यायालय के आदेश के मुताबिक केवल अगस्त, 2010 में अन्वेषण शुरू किया। अन्वेषण भारत के विभिन्न भागों में और अन्य देशों में किया जाना है और यह स्वाभाविकतः कुछ समय लेगा।

6. याची की ओर से उपस्थित श्री सिंह ने उत्तर में निवेदन किया कि यदि याची बीमार हो जाता है तो यह उसका दोष नहीं है और यह जेल प्राधिकारी की गलती है यदि बीमारी का झूठा रिपोर्ट भेजा जाता है। उन्होंने अंत में निवेदन किया कि यदि याची को जमानत नहीं दी जाती है, लोगों का विश्वास न्याय प्रशासन से उठ जाएगा।

7. मेरे मत में, अन्य दांडिक मामलों में अभियुक्तगण के जमानत आदेश जिन्हें उन मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों में स्वविवेक के प्रयोग में पारित किया गया था, याची की मदद नहीं करते हैं। वह मनी लांड्रिंग मामलों में भी अंतर्ग्रस्त है, जो स्थिति याची द्वारा विश्वास किए गए उक्त मामलों में नहीं थी।

दोनों मामलों में याची की जमानत की प्रार्थना को पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों पर विस्तारपूर्वक विचार करने के बाद इस न्यायालय द्वारा दिनांक 18.11.2009 को अस्वीकार कर दिया गया था। तब उन्हें दिनांक 4.12.2009 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। यह सत्य है कि याची (लगभग चार माह तक अस्पताल सहित) लगभग 17 माह तक न्यायिक अभिरक्षा में रहा है किन्तु अभिकथन अत्यन्त गंभीर हैं। निगरानी मामले में, याची के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। किन्तु इस न्यायालय के आदेश के अधीन सी॰ बी॰ आई॰ ने हाल-फिलहाल में अगस्त 2010 में आगे अन्वेषण का भार लिया है। ऐसा अन्वेषण देश के विभिन्न भागों में और अन्य देशों में भी किया जाना है। मनी लांड्रिंग मामले में परिवाद (आरोप पत्र) याची के विरुद्ध दाखिल किया गया है। इस अधिनियम की धाराओं 24 और 25 के प्रावधान कठोर हैं। यह सिद्ध करने कि वह दोषी नहीं है, का भार याची पर है और जमानत की प्रार्थना पर विचार करते हुए न्यायालय से संतुष्ट होने की अपेक्षा की जाती है कि युक्तियुक्त आधार हैं कि अभियुक्त दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा मनी लांड्रिंग का अपराध किए जाने की संभावना नहीं है। प्रथम दृष्टया दोनों मामलों में याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री है। अभिलेख पर आया है कि याची ने अपने नाम में और अपने से जुड़े अन्य लोगों के नाम में 108 बड़ी संपत्तियों को खरीदा था। अन्वेषण के दौरान अननुपातिक आस्तियों का मूल्य बढ़ता ही जा रहा है। यह भी अभिलेख पर आया है कि याची ने जेल में रहते हुए साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने और गवाहों को प्रभावित करने की चेष्टा की है।

इसके अतिरिक्त, इ॰ सी॰ आइ॰ आर॰ मामले (परिशिष्ट-B) के आर्डर शीट से स्पष्ट है कि कभी तो याची विधायक के लिए शपथ लेने और राज्यसभा चुनाव में भाग लेने के लिए योग्य हो जाता है और कभी तात्पर्यित मेडिकल रिपोर्टों के आधार पर आर॰ आई॰ एम॰ एस॰, राँची ए॰ आई॰ आई॰ एम॰ एस॰, नयी दिल्ली (अस्पतालों) में बने रहने के लिए बीमार हो जाता है। यह भी स्पष्ट है कि आरोपों के विरचन के चरण से बचने की दृष्टि से लगभग पाँच माह तक एक या दूसरे बहाने याची की ओर से अभियोजन दस्तावेजों को प्राप्त नहीं किया गया था। अब जब वह चरण आ गया है, स्थगनों को लिया जा रहा है।

प्रथम दृष्टया, यह याची, जो स्वयं के लोक प्रतिनिधि होने का दावा करता है, के द्वारा विपुल सार्वजनिक धन राशि के लूट और लांड्रिंग का मामला है। याची विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी कर रहा है और न्याय प्रणाली का मजाक उड़ा रहा है जैसा ऊपर ध्यान में लिया गया है।

पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद और मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद मेरे मत में याची इन मामलों में जमानतों को पाने का योग्य नहीं है। तद्नुसार, इन जमानत आवेदनों को अस्वीकार किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

शकील अहमद एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 1091 of 2009. Decided on 2nd February, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498A—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 177 एवं 482—क्रूरता—संज्ञान—न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता—न्यायिक दंडाधिकारी, राँची की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत घटना का कोई अंश नहीं हुआ था–परिवादी को उड़ीसा राज्य के अंतर्गत उसके दांपत्यगृह में यातना दी जाती थी–संज्ञान का आक्षेपित आदेश क्षेत्रीय अधिकारिता द्वारा वर्जित है और तद्नुसार अपास्त किया जाता है। (पैराएँ 5 से 9)

निर्णयज विधि.–(2008) 11 SCC 103—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Abhijeet Kumar Singh, Rajesh Kr., For the Petitioners; Mr. Md. Hatim, APP For the State; Mr. Jai Prakash, For the Opp. Party No. 2.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याचीगण ने दिनांक 13.12.2000 के आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा श्री एस॰ के॰ उपाध्याय, न्यायिक दंडाधिकारी, राँची ने याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन प्रथम दृष्टया अपराध पाया है सहित समस्त दांडिक अभियोजन के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि परिवादी निकहत परवीन, वर्तमान विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 का विवाह याची सं॰ 1 शकील अहमद के साथ हुआ था और उनके विवाह संबंध से दो संतानों का जन्म हुआ था। निकाह के समय पर दीनारों के साथ 10,000/-रुपयों की राशि दीनमेहर के रूप में नियत की गयी थी किन्तु इसका भुगतान उसे कभी नहीं किया गया था। विवाह के अवसर पर सोने और चांदी के आभूषणों, अनेक बहुमूल्य वस्तुओं और उपहारों को परिवादी को दिया गया था और वह इन समस्त वस्तुओं को अपने साथ अपने दांपत्यगृह राजगंजपुर ले गयी थी। यह अभिकथित किया गया था कि याची पति ने इस बहाने कि उसे अपना व्यवसाय शुरू करना था, परिवादी से अपने मायके से 40,000/-रुपया नगद लाने की मांग की थी और उस प्रक्रिया में उसके समस्त संबंधियों ने उसके साथ मिलकर उसको अनेक तरीकों से यातना के अध्यधीन किया था। किन्तु, परिवादी के बेहतर भविष्य की उम्मीद में उसके पति को 15,000/-रुपयों की राशि दी गयी थी किन्तु उसकी परेशानी यहाँ खत्म नहीं हुई थी। अभियुक्तगण द्वारा उसे उसके दांपत्यगृह से निकाल दिया गया था और तब से वह अपनी संतानों के साथ राँची में असहाय जीवन बिता रही थी।

3. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पक्षों के बीच मुकदमें के दौरान सुलह करवा दिया गया था और तद्नुसार दिनांक 6.4.2002 को संयुक्त सुलह याचिका दाखिल की गयी थी जिसके निबंधनों में से एक यह था कि पति याची सं॰ 1 उसे मासिक भरण पोषण के रूप में 1200/-रुपया देना और पति याची सं॰ 1 लगातार परिवादी को राशि का भुगतान कर रहा है और करार में अंतर्विष्ट ऐसे निबंधनों के अनुसरण में पक्षगण वर्तमान मामला सहित अपने-अपने मामलों, जो उन्होंने एक दूसरे के विरुद्ध दाखिल किया था, को वापस लेने के लिए तैयार हुए थे।

4. परिवाद याचिका वर्ष 2000 में दाखिल की गयी थी और भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला पाए जाने पर दिनांक 13.12.2000 के आक्षेपित आदेश द्वारा याचीगण को नोटिसों को जारी करने का निर्देश दिया गया था।

5. अधिकारिता का बिन्दु उठाते हुए, याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आरंभ में निवेदन किया कि न्यायिक दंडाधिकारी, राँची की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत घटना का कोई अंश घटित नहीं हुआ था और परिवादी ने अपनी परिवाद याचिका में स्वीकार किया कि उड़ीसा राज्य के अंतर्गत राजगंजपुर, पी॰ एस॰ राजगंजपुर, जिला सुंदरगढ़ में अवस्थित उसके दांपत्यगृह में उसे यातना दी जाती थी जहाँ वह अपने पति के साथ रहती थी और उनके विवाह संबंध से दो संतानों का जन्म हुआ था। पति द्वारा राजगंजपुर में 40,000/-रुपयों की मांग की गयी थी और अभिकथित मांग के संबंध में यातना का अभिकथन भी राजगंजपुर का था।

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भूरा राम एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं एक अन्य, (2008)11 Supreme Court Cases 103,** में प्रकाशित मामले में संप्रेक्षित किया:

> *''परिवाद में कथित तथ्य प्रकट करते हैं कि परिवादी ने उस स्थान को छोड़ दिया जहाँ वह अपने पति और ससुराल वालों के साथ रह रही थी और राजस्थान राज्य के श्री गंगानगर शहर में रहने चली आयी और कि परिवाद के मुताबिक समस्त अभिकथित कृत्य पंजाब राज्य में हुए थे। राजस्थान के न्यायालय को मामले पर विचार करने की अधिकारिता नहीं है। परिवादी द्वारा परिवाद में प्रकट किए गए ताथ्यिक परिदृश्य के आधार पर अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि वाद हेतुक का कोई अंश राजस्थान में उद्‌भूत नहीं हुआ और, इसलिए, मामले पर विचार करने की अधिकारिता दंडाधिकारी को नहीं है। उसके परिणामस्वरुप, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, श्री गंगानगर के समक्ष की कार्यवाही अभिखंडित की जाती है। परिवादी को परिवाद वापस लौटा दिया जाए और यदि उसकी ऐसी इच्छा है वह मामले पर विधि के अनुरूप विचार किए जाने के लिए समुचित न्यायालय के समक्ष इसे दाखिल कर सकती है।''*

7. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने **भूरा राम एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं एक अन्य (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गयी प्रतिपादना और विधिक अवस्था पर विवाद नहीं किया है।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और स्वीकृत विधिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए यह याचिका अनुज्ञात की जाती है और दिनांक 13.12.2000 का आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा परिवाद केस सं॰ 85 वर्ष 2000 में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, राँची द्वारा अभियुक्त याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन प्रथम दृष्टया अभिकथन पाया गया था, को क्षेत्रीय अधिकारिता द्वारा वर्जित होने के कारण अपास्त किया जाता है।

9. यह स्पष्ट किया जाता है कि यह आदेश परिवादी-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा सक्षम अधिकारिता के न्यायालय के समक्ष नया परिवाद दाखिल करने के रास्ते में नहीं आएगा।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

अरुण कुमार सिंह

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 243 of 2008. Decided on 25th February, 2011.

बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000—धारा 74—प्रयोज्यता–प्रतिनियुक्ति व्यवस्था आच्छादित नहीं होती है जब अपीलार्थी धारा 74 के निबंधनानुसार राज्य का अधिष्ठायी कर्मचारी है–प्रतिनियुक्ति पर कोई व्यक्ति आमेलन के अधिकार का दावा नहीं कर सकता है क्योंकि उसका धरणाधिकार (लियन) मूल विभाग के साथ बना रहता है–अपीलार्थी का अपने प्रथम नियोक्ता के साथ धरणाधिकार होने के चलते उस पर तद्नुसार विचार किया जाएगा–उसका संप्रत्यावर्तन अवैध नहीं है–अपील खारिज। (पैराएँ 3, 4 एवं 9)

अधिवक्तागण.–M/s Pandey Neeraj Rai, Satya Prakash Sinha, For the Appellant; M/s Saurav Arun, Abhishek Kumar, For the Respondents.

आदेश

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस न्यायालय ने संस्थित मामले में पहले ही दृष्टिकोण अपनाया है जो निम्नलिखित है:

''प्रतिनियुक्ति पर व्यक्ति आमेलन के अधिकार का दावा नहीं कर सकता है क्योंकि उसका धारणाधिकार मूल विभाग के साथ बना रहता है और विभाग, जहाँ व्यक्ति प्रतिनियुक्ति पर जाता है, उसका आमेलन स्वीकार कर सकता है अथवा नहीं कर सकता है। कोई सांविधिक प्रावधान नहीं होने के कारण, अपीलार्थी को उसके मूल पद पर वापस जाने के लिए कहा गया है। यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई अवैधता की गयी है क्योंकि सेवा की शर्तों, जिन्हें उसको भर्ती किए जाते समय उसे बताया गया था, में से कोई भी उससे संबद्ध नहीं होती हैं।''

3. आज अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 74 की ओर आकृष्ट किया है और जोर दिया है कि तत्कालीन बिहार राज्य के कर्मचारीगण पर बिहार पुनर्गठन अधिनियम की धारा 74 के अनुसार विचार किया जाना अपेक्षित है। हमारा इस प्रतिपादना पर कोई विवाद नहीं है। धारा कहती है कि कर्मचारी उस पद पर बना रह सकता है जो उसने धारित किया था। अपीलार्थी अधिष्ठायी नियुक्ति पर बिस्कोमान में पद धारित कर रहा था। वह इस अपील द्वारा जो कहना चाहता है यह है कि यह प्रतिनियुक्ति व्यवस्था है। हमें चिंता है कि प्रतिनियुक्ति व्यवस्था आच्छादित नहीं होती है जब वह बिहार पुनर्गठन अधिनियम की धारा 74 के निबंधनानुसार अधिष्ठायी कर्मचारी है।

4. विद्वान अधिवक्ता ने इस पर भी जोर दिया है कि यह अनुसचिवीय निर्णय था। हमने निर्णय को देखा है और वह निर्णय इस नोटिंग के साथ एकल मंत्री का प्रस्ताव था कि कैबिनेट के समक्ष प्रस्ताव रखा जाना होगा और मामले को कैबिनेट के समक्ष कभी नहीं रखा गया था। अत:, एकल मंत्री के निर्णय को सरकार के निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि बिहार सरकार ने उस निर्णय पर कार्रवाई की है किन्तु यह ऐसा उदाहरण नहीं बन सकता है जो बाध्यकारी है क्योंकि निर्णय लेना और उसका अनुसरण करना कार्यपालकों का कार्य है। वह निर्णय वैध अथवा अवैध हो सकता है, और जब न्यायालय में इसकी परीक्षा ली जाती है तब उस परीक्षा में इसे उत्तीर्ण होना होगा। हम पाते हैं कि इन दोनों निर्णयों को कैबिनेट का निर्णय नहीं होने के कारण सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के रूप में नहीं माना जा सकता है।

5. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि वर्ष 2000 के बाद अपीलार्थी सेवारत है और यह समझा जाना चाहिए कि झारखंड सरकार ने उन निर्णयों पर कार्रवाई की है और वर्तमान मुकदमा दर्शाता है कि अपीलार्थी क्यों सेवारत था। मामले के उस दृष्टिकोण में, इस तर्क का कोई महत्व नहीं है।

6. विधि सम्मत प्रत्याशा और बचन-विबंध के प्रश्नों को भी उठाया गया था किंतु हम अपने समक्ष उपलब्ध कोई सामग्री नहीं पाते हैं कि जो अपीलार्थी के पक्ष में इन दो वैध आधारों को गठित करेगा। मामले के उस दृष्टिकोण में, वे केवल उस प्रकार के तर्क हैं जिन्हें केवल उठाए जाने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया जाता है।

7. विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि पटना उच्च न्यायालय का निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एस॰ एल॰ पी॰ में मान्य ठहराया गया था और यह इसे इस न्यायालय पर बाध्यकारी बनाता है।

8. हमें चिंता है कि यह विधि के बारे में विद्वान अधिवक्ता की अनभिज्ञता दर्शाता है क्योंकि निर्णय को मान्य ठहराते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आरंभ में ही खारिज कर दिया गया कोई एस॰ एल॰ पी॰ हमारे ऊपर बाध्यकारी नहीं है।

9. अत:, अपीलार्थी का अपने प्रथम नियोक्ता के साथ धरणाधिकार होने के कारण उस पर तद्नुसार विचार किया जाएगा। उसका संप्रत्यावर्तन अवैध प्रतीत नहीं हो सकता है और हम नहीं पाते हैं कि उसकी रिट याचिका अस्वीकार करने में विद्वान एकल न्यायाधीश ने कोई अवैधता की है। अपील में कोई बल नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

प्रशांत बोथरा एवं एक अन्य (954, 957 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य (दोनों में)

Cr.M.P. No. 954 with 957 of 2009. Decided on 14th February, 2011.

कारखाना अधिनियम, 1948—धाराएँ 9 एवं 95 सह-पठित बिहार कारखाना नियमावली, 1950 का नियम 102—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—कारखाना परिसर के भीतर मजदूर की दुर्घटनावश मृत्यु–संज्ञान–कारखाना का निरीक्षक दुर्घटना का सफलतापूर्वक जाँच नहीं कर सकता है क्योंकि प्रबंधक अथवा अधिष्ठाता भी धारा 9(c) एवं 9(e) के परन्तुक के निबंधनानुसार सुरक्षा इप्सित करेंगे–निरीक्षक कारखाना परिसर के निरीक्षण, दस्तावेजों और रजिस्टरों के परीक्षण और उनके अभिग्रहण के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है–याचीगण का अभियोजन विधि में असंपोषणीय है और तद्नुसार अभिखंडित किया जाता है–याचिकाएँ अनुज्ञात। (पैराएँ 9 एवं 10)

अधिवक्तागण.–Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioners; Mr. A.B. Mahto, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–दोनों याचिकाओं में याचीगण ने सी॰/2 केस सं॰ 73 वर्ष 2007 (दांडिक विविध याचिका सं॰ 954 वर्ष 2009 में) और लगभग एक ही हेतुक के लिए सी॰/2 केस सं॰ 78 वर्ष 2007 (दांडिक विविध याचिका सं॰ 957 वर्ष 2009 में) भी, जिनमें मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, सरायकेला ने वि॰ प॰ सं॰ 2 कारखाना निरीक्षक द्वारा दाखिल दोनों परिवादों में कारखाना अधिनियम की धारा 95 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया था, संज्ञान आदेशों और उनके विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है।

2. दोनों परिवादों में समान अभियोजन मामला यह था कि दिनांक 24.7.2007 को जब मजदूर निताई करमाकर भट्ठी के अंदर जाकर भट्ठी सं॰ 2 की सफाई कर रहा था और बिजली के लैंप का उपयोग

कर रहा था और एक नंगे बिजली के तार के संपर्क में आया और दोपहर 3.55 बजे उसे बिजली का झटका लगा। उसे तुरन्त हटाया गया और अस्पताल ले जाया गया जहाँ उसे मृत घोषित किया गया था। ऐसी दुर्घटना की सूचना मिलने पर, परिवादी कारखाना निरीक्षक ने दुर्घटना स्थल का दौरा किया। उसने दिनांक 27.7.2007 के अपने पत्र सं॰ 346 द्वारा निम्नलिखित रजिस्टरों/सूचनाओं को इप्सित किया:

(i) उपस्थिति रजिस्टर,

(ii) वयस्क कर्मकार रजिस्टर,

(iii) दुर्घटना रजिस्टर; और

(iv) वेतन भुगतान रजिस्टर।

3. परिवाद सी॰/2 केस सं॰ 73 वर्ष 2007 में अभिकथित किया गया था कि इप्सित की गयी सूचना को अधिष्ठाता और प्रबंधक द्वारा दिनांक 31.7.2007 तक दिया जाना था किन्तु पूर्वोक्तानुसार लिखित में ऐसी संसूचना के बावजूद याचीगण ने मेसर्स कोहिनूर स्टील (प्रा॰) लि॰ का अधिष्ठाता और प्रबंधक होने के नाते ऐसे रजिस्टरों एवं दस्तावेजों को प्रस्तुत नहीं किया था और तद्द्वारा उनमें से प्रत्येक ने झारखंड राज्य द्वारा अपनायी गयी बिहार कारखाना नियमावली, 1950 के नियम 102 के प्रावधानों का उल्लंघन किया और तद्द्वारा कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 95 के अधीन दंडनीय अपराध किया। याचीगण के विरुद्ध दिनांक 11.12.2007 को परिवाद (दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 954 वर्ष 2009 में) दर्ज किया गया था।

4. याचीगण (दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 957 वर्ष 2009 में) के विद्वान अधिवक्ता, श्री इंद्रजीत सिन्हा ने निवेदन किया कि यदि संपूर्ण तथ्यों को सत्य माना भी जाए, बिहार कारखाना नियमावली (झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया) के नियम 102 का उल्लंघन अभिकथित करते हुए पृथक अभियोजन दाखिल करने के लिए वि॰ प॰ सं॰ 2 कारखाना निरीक्षक के लिए अवसर नहीं था क्योंकि याचीगण को एकल कार्यवाही अर्थात् सी॰/2 केस सं॰ 73 वर्ष 2007 में अभियोजित किया जा सकता था और न कि उसी दुर्घटना के लिए याचीगण के विरुद्ध परिवाद केस सं॰ सी॰/2 केस सं॰ 78 वर्ष 2007 को उद्भूत करने वाले पृथक अभियोजन को आरंभ करके।

5. सी॰/2 केस सं॰ 78 वर्ष 2007 के विषयवस्तु से स्पष्ट होगा कि सूचना, जैसा यहाँ ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, जिसे वि॰ प॰ सं॰ 2 कारखाना निरीक्षक द्वारा दिनांक 27.8.2007 के पत्र सं॰ 403 और दिनांक 24.9.2007 के मेमो सं॰ 424 के तहत रजिस्टर्ड पत्र द्वारा उक्त कारखाना के अधिष्ठाता और प्रबंधक को भेज कर मांगा गया था और जिसका अनुपालन दिनांक 30.8.2007 तक किया जाना था, जिसे नहीं किया जा सका था और कि अनुदेश का अननुपालन नियमावली के नियम 102 का उल्लंघन था जिसने कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 95 के अधीन अपराध आकृष्ट किया। स्वीकृत रूप से, विभिन्न वाद हेतुक नहीं था सिवाय इसके कि मेमो और रजिस्टर्ड पत्र को विभिन्न तिथियों पर जारी किया गया था। परिवाद केस सी॰/2 केस सं॰ 73 वर्ष 2007 में मेमो और रजिस्टर्ड पत्र को क्रमश: दिनांक 23.7.2007 और दिनांक 20.8.2007 को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2, कारखाना निरीक्षक द्वारा जारी किया गया था और उन समस्त रजिस्टर सूचनाओं को दिनांक 31.7.2007 तक प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था जबकि सी॰/2 केस सं॰ 78 वर्ष 2007 में कारखाना निरीक्षक ने दिनांक 27.8.2007 को मेमो सं॰ 403 और दिनांक 24.9.2007 को रजिस्टर्ड पत्र जारी किया और याचीगण को दिनांक 30.8.2007 तक उन दस्तावेजों को प्रस्तुत करने को कहा जिसका अनुपालन याचीगण ने नहीं किया।

6. विद्वान अधिवक्ता श्री सिन्हा ने निवेदन किया कि यह सुनिश्चित विधि है कि ऐसे मामले में जहाँ एकल घटना में एक से अधिक अपराध अभिकथित रूप से किया गया था, पश्चातवर्ती सूचना पर पश्चातवर्ती अभियोजन का परिणाम न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग में होगा। वर्तमान मामले में अभिकथित अपराध दिनांक 31.7.2007 को किया गया था जिस तिथि तक याचीगण परिवादी कारखाना निरीक्षक द्वारा मांगे गए दस्तावेजों/सूचनाओं को प्रस्तुत नहीं कर सके थे। यद्यपि याचीगण पत्र में दिए गए

अनुदेश का अनुपालन करने में सक्षम नहीं हो सके थे, उनका दांडिक अभियोजन नहीं किया जाना चाहिए था क्योंकि वे भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अधीन संरक्षित थे जिसके द्वारा उन्हें किसी साक्ष्य को देने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता था जो उन्हें अपराध में फँसाता हो और कारखाना अधिनियम की धारा 9 में उपाबद्ध परन्तुक में भी उनको समरुप सुरक्षा प्रावधानित की गयी थी।

7. वि॰ प॰ सं॰ 2 कारखाना निरीक्षक मजदूर की मृत्यु में परिणत दुर्घटना की जाँच कर रहा था और जाँच के क्रम में उसने अनेक ढंग के माध्यम से पत्रों को भेजकर कतिपय दस्तावेजों को मांगा था। अधिनियम की धारा 9 निरीक्षक को किसी दुर्घटना की जाँच करने के लिए सशक्त बनाती है और उसे रजिस्टरों, अभिलेखों अथवा दस्तावेजों की प्रतियों अथवा उसके किसी अंश को अभिग्रहित करने के लिए सशक्त बनाती है जिसे वह अधिनियम की धारा 95 के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में आवश्यक समझता है किन्तु यह परन्तुक के अध्यधीन है जो कथन करता है:

> *''परन्तु यह कि किसी व्यक्ति को स्वयं को अपराध में फँसाने की ओर ले जाने वाले किसी प्रश्न का उत्तर देने अथवा कोई साक्ष्य देने के लिए इस धारा के अधीन मजबूर नहीं किया जाएगा।''*

8. विद्वान अधिवक्ता श्री सिन्हा ने प्राख्यान किया कि अधिनियम की धारा 9 के ऐसे परन्तुक की दृष्टि में याचीगण की अपेक्षित दस्तावेजों और रजिस्टरों के अप्रस्तुतीकरण के लिए बिहार कारखाना नियमावली, 1950 (झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया) के नियम 102 के अभिकथित उल्लंघन के लिए अधिनियम की धारा 95 के अधीन दांडिक रूप से दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता था यद्यपि याचीगण ने समय बढ़ाने के लिए अनुरोध किया था।

9. यह सुस्थापित विधि है कि धारा 9 (c) के अधीन शक्ति के प्रयोग में निरीक्षक द्वारा संचालित जाँच के क्रम में धारा 9 (d) के अधीन शक्ति के तात्पर्यित प्रयोग में अधिष्ठाता और/अथवा प्रबंधक को अपराध में फँसाने की प्रवृत्ति रखने वाले दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए अधिष्ठाता अथवा प्रबंधक को दस्तावेजी साक्ष्य सहित (साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3) साक्ष्य देने के लिए मजबूर करना अधिनियम की धारा 9 के परन्तुक द्वारा प्रतिसिद्ध था और यदि अधिष्ठाता द्वारा दस्तावेजों, जो उनको अपराध में फँसाने की प्रवृत्ति वाला था, का प्रस्तुतीकरण प्रतिषिद्ध था, तब अधिनियम की धारा 95 के अधीन याचीगण का अभियोजन न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के समान होगा। परन्तुक का सामान्य कार्य अधिनियमन के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत विरचित संविधि अथवा नियमावली का अपवाद प्रदान करना है।

10. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं तर्कों में सार पाता हूँ कि कारखाना अधिनियम की धारा 9 के परन्तुक की व्याख्या इस प्रकार से प्रतिषिद्ध करती है तब कारखाना निरीक्षक दुर्घटना की सफलतापूर्वक जाँच करने के लिए सक्षम नहीं हो सकते हैं क्योंकि अधिष्ठाता अथवा प्रबंधक भी अधिनियम की धारा 9 (c) से 9(e) तक के परन्तुक के निबंधनानुसार सुरक्षा इप्सित करेंगे। फिर भी, कारखाना अधिनियम निरीक्षक को कारखाना परिसर में प्रवेश करने, व्यक्तियों का परीक्षण करने और रजिस्टरों एवं अन्य दस्तावेजों की समस्त प्रतियों को अभिग्रहित अथवा लेने के लिए सशक्त करता है जिन्हें वह अधिनियम के अधीन अभिकथित अपराध के संबंध में आवश्यक समझता है। कारखाना में प्रवेश करने और दस्तावेजों को जब्त करने की कारखाना निरीक्षक की शक्ति अधिनियम की धारा 9 के परन्तुक द्वारा कम नहीं की गयी है और इसलिए दुर्घटना में निरीक्षक द्वारा संचालित जाँच में कोई रूकावट नहीं आएगी। ऐसी स्थिति में सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन की प्रतिपादना की भूमिका सामने आती है और तद्द्वारा यह सुरक्षित रूप से निष्कर्षित किया जा सकता है कि परन्तुक ने निरीक्षक द्वारा शक्ति के प्रयोग के प्रति अपवाद सृजित नहीं किया था बल्कि कारखाना परिसर के निरीक्षण, दस्तावेजों, रजिस्टरों के परीक्षण के लिए निरीक्षक अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और प्रासंगिक रजिस्टरों/दस्तावेजों को अभिग्रहित कर सकता है। धारा 9 के परन्तुक के फलस्वरुप निरीक्षक द्वारा शक्ति के प्रयोग पर अधिरोपित निर्बंधन पर विचार किए बिना धारा 95 का कोई अर्थान्वयन अधिनियम को कार्यान्वित किए जाने योग्य नहीं बनाएगी। धारा 9 का परन्तुक न केवल स्थिति विशेष में निरीक्षक की शक्तियों को कम करता है बल्कि कारखाना के अधिष्ठाता

और प्रबंधक के पक्ष में अधिकार भी सृजित करता है। वि॰ प॰ सं॰ 2 कारखाना निरीक्षक ने विविध याचिकाओं में उपस्थित होकर प्रति शपथ पत्र दाखिल किया। विधि के प्रावधानों को विवादित नहीं किया गया है और उसमें निवेदन किया गया था कि दोनों परिवादों को नियमावली के नियम 102 के उल्लंघन के लिए परिसीमा की सांविधिक अवधि के भीतर दाखिल किया गया था जो कारखाना अधिनियम की धारा 95 के अधीन अधिष्ठाता एवं प्रबंधक अर्थात् वर्तमान याचीगण के विरुद्ध अपराध आकृष्ट करता था। याचीगण के अधिवक्ता ने ऐसे प्रतिवाद को अंतिम रूप से विवादित नहीं किया है, फिर भी, मैं पाता हूँ कि दोनों याचिकाओं में याचीगण का अभियोजन दी गयी स्थिति में विधि के अधीन असंपोषणीय है। अत:, याचीगण का दांडिक अभियोजन घोर अन्याय के समान है, तद्नुसार सी॰ जे॰ एम॰, सरायकेला के समक्ष लंबित परिवाद सी॰/2 केस सं॰ 73 वर्ष 2007 और परिवाद सी॰/2 केस सं॰ 78 वर्ष 2007 में याचीगण के दांडिक अभियोजन को अभिखंडित किया जाता है और दोनों याचिकाओं को अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

राजेन्द्र प्रधान

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 468 of 2010. Decided on 14th February, 2011.

जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001—खंड 6 (1) एवं 6(4)—खंडो 6 (1) एवं 6 (4) के अभिकथित उल्लंघन के लिए पी॰ डी॰ एस॰ करार का रद्दकरण—लाइसेंस इस आधार पर रद्द किया गया था कि अधिहरण मामले में पी॰ डी॰ एस॰ आदेश एवं एकीकरण आदेश का उल्लंघन उपकमिश्नर द्वारा पाया गया था और याची द्वारा दाखिल कारण बताओ संतोषजनक नहीं था—अनुज्ञापन प्राधिकारी को कारण बताओ नोटिस पर विचार करना था और किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा किए गए अनुचिंतन के आधार पर इसे आदेश पारित नहीं करना था—आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैराएँ 3 एवं 4)

निर्णयज विधि.—2000 (3) PLJR 321—Distinguished.

अधिवक्तागण.—Mr. P. D. Agarwal, For the Petitioner; JC to S.C. 1, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री अग्रवाल ने निम्नलिखित निवेदन किया। जन वितरण प्रणाली (नियंत्रण) आदेश, 2001 (संक्षेप में पी॰ डी॰ एस॰ आदेश, 2001) की धारा 6(2) के अभिकथित उल्लंघन के लिए दिनांक 6.1.2009 को याची पर नोटिस तामील किया गया था। याची ने अपना कारण-पृच्छा दाखिल किया। मेमो सं॰ 176 में अंतर्विष्ट दिनांक 8.7.2009 के आक्षेपित आदेश द्वारा बिहार व्यापारिक वस्तु (अनुज्ञप्ति एकीकरण) आदेश, 1984 (संक्षेप में एकीकरण आदेश) के अधीन याची का लाइसेंस और पी॰ डी॰ एस॰ योजना के अधीन करार भी यह कहते हुए कि यह एकीकरण आदेश का उल्लंघन है पी॰ डी॰ एस॰ आदेश की धारा 6(1) सह-पठित 6 (4) के अभिकथित उल्लंघन के आधार पर रद्द कर दिया गया था। एकीकरण आदेश के खंड 11(2) के मुताबिक प्रस्तावित रद्दकरण के संबंध में नोटिस दिया जाना है किंतु उक्त नोटिस इसलिए जारी की गयी थी कि क्यों नहीं रद्दकरण की कार्यवाही आरंभ की जाए और इस प्रकार अनुज्ञापन अधिकारी ने लाइसेंस रद्द करने का मन बना लिया था और नोटिस औपचारिकता मात्र थी। धारा 11 सह-पठित आदेश के परिशिष्ट के पैराग्राफ 7 के निबंधनानुसार पी॰ डी॰ एस॰ आदेश के अधीन राज्य सरकार द्वारा कोई अपीलीय प्राधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था। प्रति शपथ पत्र के मुताबिक कारण-पृच्छा दिनांक 27.8.2009 को दाखिल किया गया था, जबकि दिनांक

8.7.2009 के आक्षेपित आदेश में यह कहा गया था कि कारण–पृच्छा संतोषजनक नहीं था। कोई कारण नहीं दिया गया है कि क्यों याची का कारण–पृच्छा संतोषजनक नहीं पाया गया था। इसके अतिरिक्त, अधिहरण मामले में पारित आदेश में अंतर्विष्ट उपकमिश्नर के निर्देश पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है और इसलिए उसके समक्ष अपील दाखिल किया जाना भी औपचारिकता मात्र होगा। इसके अतिरिक्त, अपील में अधिहरण आदेश अपास्त कर दिया गया था। इससे भी बढ़कर, यह अभिकथित नहीं किया गया है कि किस विधि के किस प्रावधान का याची द्वारा उल्लंघन किया गया है। उन्होंने 2000 (3) PLJR 321 में प्रकाशित **बैजू प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** मामले के निर्णय पर विश्वास किया।

2. दूसरी ओर, आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हुए राज्य के विद्वान अधिवक्ता निम्नलिखित निवेदन करते हैं। विधि के अधीन, तीनों कार्यवाहियाँ अर्थात् दांडिक मामला, अधिहरण मामला और लाइसेंस के रद्दकरण के लिए कार्यवाही स्वतंत्र कार्यवाहियाँ हैं। इस मामले में, एक दांडिक मामला दर्ज किया गया था जब यह पाया गया था कि याची पी॰ डी॰ एस॰ के अधीन वितरण के लिए चावल को काला बाजार में बेचने का प्रयास कर रहा था। अधिहरण मामले में, याची ने भाग नहीं लिया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि याची पी॰ डी॰ एस॰ आदेश, 2001 की धारा 6 (1) सह–पठित धारा 6 (4) के उल्लंघन का दोषी था। तद्नुसार, अधिहरण आदेश पारित किया गया था और लाइसेंस के रद्दकरण के लिए कार्यवाही शुरू करने के लिए अनुज्ञापन प्राधिकारी को सही प्रकार से निर्देश दिया गया था। याची के कारण–पृच्छा से यह प्रतीत होगा कि उसके पास कोई बचाव नहीं था। उसने अपने विरुद्ध किए गए अभिकथनों के विरुद्ध कोई कारण नहीं दर्शाया था बल्कि उसने मात्र यह निवेदन किया था कि एक दांडिक मामला और अपील अधिहरण मामले के विरुद्ध लंबित है; और इसलिए यदि याची ने अभिकथनों के विरुद्ध अपनी बात नहीं रखी थी, वह कैसे शिकायत कर सकता है कि लाइसेंस को रद्द करते समय कोई कारण नहीं दिया गया था और यह सही प्रकार से कहा गया था कि कारण–पृच्छा संतोषजनक नहीं था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्रति शपथपत्र अधिहरण मामले (परिशिष्ट–4) में दिनांक 21.8.2009 को दाखिल कारण–पृच्छा को निर्दिष्ट करता है और न कि लाइसेंस के रद्दकरण के लिए कार्यवाही में याची द्वारा दाखिल कारण–पृच्छा को।

3. श्री अग्रवाल के निवेदन स्वीकार्य नहीं हैं। याची को कारण बताने के लिए कहा गया था कि उसमें किए गए अभिकथनों की दृष्टि में विधि के अनुरूप उसके लाइसेंस के रद्दकरण के लिए कार्यवाही क्यों नहीं की जाए। इस प्रकार कारण–पृच्छा एकीकरण आदेश के खंड 11 (2) के निबंधनानुसार प्रस्तावित रद्दकरण के विरुद्ध था। तब प्रति शपथ पत्र अधिहरण मामले में दिनांक 21.8.2009 को याची द्वारा दाखिल कारण–पृच्छा को निर्दिष्ट करता है और न कि लाइसेंस के रद्दकरण के लिए कार्यवाही में दाखिल कारण बताओ को। याची के कारण–पृच्छा से प्रतीत होता है कि उसने मात्र इतना कहा कि अधिहरण आदेश के विरुद्ध एक अपील एवं अभिकथनों के सम्बन्ध में एक दाण्डिक मामला लंबित था और इसलिए लाइसेंस को रद्द करना समुचित नहीं होगा। इस प्रकार, उसने कारण–पृच्छा नोटिस में किए गए अभिकथनों के विरुद्ध अपना मामला नहीं रखा था और इसलिए यह सही प्रकार से अभिनिर्धारित किया गया था कि कारण–पृच्छा संतोषजनक नहीं पाया गया था। यदि यह स्वीकार कर भी लिया जाए कि लाइसेंस के रद्दकरण के लिए कार्यवाही अधिहरण मामले में पारित उपकमिश्नर के निर्देश के निबंधनानुसार आरंभ की गयी थी, फिर भी कारण–पृच्छा नोटिस इसलिए जारी किया गया था कि विधि के अनुरूप कार्यवाही क्यों नहीं की जाए। आक्षेपित आदेश नहीं दर्शाता है कि लाइसेंस उप कमिश्नर द्वारा जारी किसी निर्देश के आधार पर रद्द किया गया था। लाइसेंस इस आधार पर रद्द किया गया था कि अधिहरण मामले में उप कमिश्नर द्वारा पी॰ डी॰ एस॰ आदेश एवं एकीकरण आदेश का उल्लंघन पाया गया था और कि याची द्वारा दाखिल कारण–पृच्छा संतोषजनक नहीं था। इन परिस्थितियों में, याची द्वारा विश्वास किया गया **बैजू प्रसाद (ऊपर)** में निर्णय उसकी कोई मदद नहीं करता है। उस मामले में, यह पाया गया था कि उप कमिश्नर ने लाइसेंस के रद्दकरण के लिए अनुज्ञापन प्राधिकारी को निर्देश देते हुए एक स्पष्ट आदेश पारित किया था क्योंकि उस मामले में दाखिल कारण बताओ संतोषजनक नहीं पाया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुज्ञापन प्राधिकारी को कारण बताओ पर विचार करना था और इसे किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा दिए गए अनुचिंतन के आधार पर आदेश पारित नहीं करना था।

4. किन्तु, अधिहरण मामले में पारित उप कमिश्नर का आदेश लाइसेंस रद्द करने के लिए इस आधार के अतिरिक्त कि कारण-पृच्छा संतोषजनक नहीं पाया गया था, आधारों में से एक है किन्तु यह प्रतीत होता है कि अधिहरण अपील सं॰ 1 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 12 अगस्त, 2009 के आदेश द्वारा विद्वान जिला न्यायाधीश ने दिनांक 11.12.2008 के उप कमिश्नर के आदेश को अपास्त कर दिया है और पक्षों की सुनवाई के बाद नया आदेश पारित करने के लिए मामला उनको वापस भेज दिया है।

5. इन परिस्थितियों में, दिनांक 8.7.2009 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से छह सप्ताह के भीतर शीघ्रातिशीघ्र विधि के अनुरूप पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद सकारण आदेश पारित करने के लिए मामला वापस अनुज्ञापन प्राधिकारी को भेजा जाता है। याची को आज के दिन से दो सप्ताह के भीतर अनुज्ञापन प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रति के साथ पूरक कारण-पृच्छा दाखिल करने की अनुमति दी जाती है।

इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ इस रिट याचिका को निपटाया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

समीर कुमार घोष

बनाम

नालंदा सेरामिक्स इंडस्ट्रीज लि॰ एवं अन्य

W.P. (C) No. 3443 of 2003. Decided on 8th March, 2011.

बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914—धारा 14—मांग नोटिस–विद्युत बकाया–याची ने निदेशक के रूप में पद त्याग दिया था और तत्पश्चात विद्युत आपूर्ति के लिए बोर्ड ने कंपनी के साथ करार किया–किसी बकाया की वसूली से संबंधित मामले में याची के विरुद्ध अग्रसर नहीं हुआ जा सकता है–आक्षेपित नोटिस अभिखंडित। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. P. Modi, For the Petitioner; M/s V.P. Singh, Mukesh Kumar, Ravi Kumar Singh, For the J.S.E.B.; Mr. Lakhan Sharma, For the Official Liquidator.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता श्री पी॰ मोदी, विद्युत बोर्ड के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ पी॰ सिंह और शासकीय समापक के विद्वान अधिवक्ता, श्री लखन शर्मा को सुना गया।

2. आज दिए गए तर्कों को ध्यान में लेने से पहले इस न्यायालय के दिनांक 28.2.2011 के आदेश के अधीन नोट किए गए मामले के तथ्यों को ध्यान में लिया जाए जो निम्नलिखित है:

''याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची नालंदा सेरामिक्स एवं इंडस्ट्रीज लि॰ का निदेशक था। बाद में, दिनांक 21.9.1981 के प्रभाव से वह निदेशक नहीं रहा। किंतु आश्चर्यजनक रूप से उसने बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम की धारा 7 के निबंधनानुसार जारी नोटिस प्राप्त किया जिसके द्वारा 44,76,846.18/-रुपयों की राशि की वसूली याची से किया जाना इप्सित किया गया था यद्यपि याची समय के प्रासंगिक बिन्दु पर अर्थात् जनवरी 1986 से दिसंबर 1989 तक, जब विद्युत बकाया का भुगतान करने में व्यतिक्रम किया गया था, निदेशक नहीं था और कि बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम की धारा 7 के निबंधनानुसार

नोटिस जारी करने के पहले स्वयं कंपनी के नाम पर प्रमाण पत्र तैयार किया गया था। फिर भी धारा 7 के अधीन इस याची को नोटिस दिया गया था और, इसलिए, याची दिनांक 24.4.2003 के मेमो सं० 153 (परिशिष्ट-6) में अंतर्विष्ट उक्त नोटिस के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय के पास आया है।

याची के विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि वर्ष 1984-85 में बोर्ड ने 500 के० वी० ए० की विद्युत आपूर्ति के लिए कंपनी के साथ करार किया था और उस कारण कंपनी के विरुद्ध जो भी राशि बकाया थी, वह नए करार के संबंध में थी जिससे याची का कुछ लेना-देना नहीं था और इस प्रकार याची सर्टिफिकेट राशि का भुगतान करने के लिए दायी नहीं है। यह तर्क भी किया गया है कि उक्त कंपनी समापन के अधीन है और कंपनी के परिसमापन से संबंधित आदेश वर्ष 1989 में पहले ही पारित किया जा चुका है और इसलिए, कंपनी न्यायालय की अनुमति लिए बिना कंपनीज अधिनियम की धारा 446 (1) में अंतर्विष्ट प्रावधान के कारण किसी बकाया की वसूली से संबंधित मामले में कंपनी के विरुद्ध अग्रसर नहीं हुआ जा सकता है।''

3. विद्युत बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ पी॰ सिंह निवेदन करते हैं कि वस्तुत: याची वह व्यक्ति था जिसने वर्ष 1974 में कंपनी की ओर से करार का एक विलेख निष्पादित किया था और इसलिए बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम की धारा 7 के निबंधनानुसार नोटिस जारी किया गया था जब अनेक अवसरों पर भेजी गयी नोटिस का कंपनी की ओर से किसी ने प्रत्युत्तर नहीं दिया, और उस स्थिति में, कोई अवैधता नहीं है यदि इस याची से बकाया की वसूली के लिए बोर्ड अग्रसर हो रहा है।

4. इसके विरुद्ध, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यह सत्य है कि याची ने वर्ष 1974 में कंपनी की ओर से बोर्ड के साथ करार किया था किंतु याची ने दिनांक 21.9.1981 को पद त्याग दिया था और तत्पश्चात् वर्ष 1984-85 में 500 के॰ वी॰ ए॰ विद्युत आपूर्ति के लिए दिनांक 12.10.1985 को बोर्ड ने करार किया था और उस करार के परिणामस्वरुप विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति कंपनी को की गयी थी किन्तु बिजली बिल जमा करने में कंपनी की ओर से हुई विफलता के कारण 44,76,846.10/-रुपयों की राशि की वसूली के लिए सर्टिफिकेट कार्यवाही आरंभ की गयी थी और इन समस्त तथ्यों के कारण उक्त राशि की वसूली के लिए अग्रसर होने के लिए याची दायी नहीं है और इस प्रकार बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम की धारा 7 के निबंधनानुसार जारी नोटिस अपास्त होने का दायी है।

5. इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं उठाया गया है कि याची ने दिनांक 21.9.1981 को निदेशक के रूप में पद त्याग दिया था और इस तथ्य के संबंध में भी कि तत्पश्चात बोर्ड ने दिनांक 12.10.1985 को विद्युत आपूर्ति के लिए कंपनी के साथ करार किया था और आगे कि सर्टिफिकेट कंपनी के नाम में, और न कि याची के विरुद्ध तैयार किया गया था और कि कंपनी के परिसमापन से संबंधित आदेश वर्ष 1989 में पारित किया गया और इन स्थितियों में ऊपर कथित ताथ्यिक पहलू के कारण किसी बकाया की वसूली से संबंधित मामले में याची के विरुद्ध अग्रसर नहीं हुआ जा सकता है विशेषत: जब याची के नाम पर कोई सर्टिफिकेट नहीं तैयार किया गया है। इसके अतिरिक्त कंपनी के परिसमापन से संबंधित आदेश वर्ष 1989 में पारित किया गया है और इसलिए, मामले के उस दृष्टिकोण में, कंपनी अधिनियम की धारा 446 (1) में यथा अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में कंपनी न्यायालय की अनुमति के बिना कोई बकाया वसूल नहीं किया जा सकता है। ऐसा होने के कारण, परिशिष्ट-6 में अंतर्विष्ट नोटिस को अपास्त किया जाता है।

6. आदेश से अलग होने के पहले, यह दर्ज किया जाता है कि विद्युत बोर्ड विधि के अनुरूप बकाया की वसूली के लिए इसको उपलब्ध विधि का सहारा लेने की स्वतंत्रता होगी।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

प्राचार्या, दिल्ली पब्लिक स्कूल, डी॰ पी॰ एस॰ धनबाद

बनाम

सैयद मोहम्मद सरफुल्ला एवं अन्य

A.C. (S.B.) No. 11 of 2010. Decided on 3rd March, 2011.

शैक्षणिक विधि—शुल्क संरचना—हस्तक्षेप की गुंजाईश—अध्यापन शुल्क एवं प्रवेश शुल्क में बढ़ोत्तरियों पर केवल 15 प्रतिशत के स्तर तक का निर्बंधन—सरकार द्वारा शुल्क संरचना का कोई कठोर निर्धारण नहीं हो सकता—संस्थान के पास अनिवार्यतः अपनी स्वयं की शुल्क संरचना निर्धारित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए—अपीलार्थी गैर सहायता प्राप्त निजी संस्थान है—प्रबंध के पास प्रशासन के पहलुओं का विनियमन करने का पूर्ण प्राधिकार होना चाहिए—नियंत्रण का नियामक उपाय न्यूनतम होना चाहिए—जेट (JET) द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अपास्त क्योंकि यह शुल्क संरचना के निर्धारण में हस्तक्षेप के तुल्य है, विशेषकर जब छठे वेतन आयोग के अनुपात में वेतन में बढ़ोत्तरी के कारण संस्थान वित्तीय कठिनाई का सामना कर रहा है—अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 8, 9, 12 एवं 13)

निर्णयज विधि.—2011 (1) JCR 61 (Jhr)—Distinguished; (2008)8 SCC 82; 2003 (1) JLJR (SC) 1; AIR 2003 SC 3724—Referred.

अधिवक्तागण.—M/s A. K. Mehta, Ashutosh Anand, A. K. Sinha, For the Appellant; J. C. to G.P. II, For the State; M/s Deepak Roshan, Ratnesh Kumar, For the Respondent No. 1.

आदेश

अपीलार्थी-दिल्ली पब्लिक स्कूल (डीपीएस) की ओर से प्रस्तुत होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ मेहता एवं प्रत्यर्थी सं॰ 1 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री दीपक रौशन को सुना।

2. वर्तमान अपील केस सं॰ 26 वर्ष 2009 में झारखंड शैक्षणिक अधिकरण (JET), रांची द्वारा पारित दिनांक 19.3.2010 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दाखिल है। विपक्षियों द्वारा दाखिल याचिका आंशिका रूप से अनुज्ञात की गयी थी यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वित्तीय वर्ष 2009-10 के लिए अध्यापन शुल्क एवं प्रवेश शुल्क में बढ़ोत्तरी को बिल्कुल पिछले वर्ष 2008-2009 में ऐसी दरों के संदर्भ में केवल 15 प्रतिशत अधिक के स्तर पर रखा जाना था। शैक्षणिक सत्र 2009-10 के लिए विभिन्न शुल्क संरचना के पुनरीक्षण को चुनौती देते हुए झारखण्ड राज्य के भीतर दिल्ली पब्लिक स्कूल की विभिन्न शाखाओं के निर्णय को चुनौती देते हुए झारखंड शैक्षणिक अधिकरण (JET) के समक्ष इसी प्रकार के कई मामले दाखिल किये गये थे। विद्यालय शुल्क में बढ़ोत्तरी को 1.4.2009 के प्रभाव से क्रियान्वित किया जाना था। शुल्क में बढ़ोत्तरी को मनमाना एवं असामान्य रूप से उच्च होने और सुसंगत विधियों/उपविधियों/अनुदेशों इत्यादि, विशेषकर केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) के संबद्धता उपविधियों को असंगत बताते हुए चुनौती दी गयी थी। अधिकरण के विरुद्ध याचिका अभिकथित रूप से इस आधार पर दाखिल की गयी थी कि शुल्क में वृद्धि के क्रियान्वयन को रोकने के लिए भारी विरोध हो रहा था और आवाजें उठ रही थी।

3. वर्तमान अपील दिल्ली पब्लिक स्कूल, डीपीएस, धनबाद से संबंधित है। विपक्षी किसी अरहम नाबिल (डीपीएस धनबाद की छट्ठी कक्षा का छात्र) का पिता है। उसने शुल्क संरचना को चुनौती देते

हुए एक आवेदन दाखिल किया जिसके द्वारा वार्षिक अध्यापन शुल्क को 820 रुपये प्रति माह से बढ़ाकर 1190 रुपये प्रतिमाह कर दिया गया था जिसकी गणना किये जाने पर 45 प्रतिशत की एक वृद्धि सामने आती थी। चुनौती यह थी कि शुल्क में बढ़ोत्तरी अयुक्तिसंगत एवं अत्यधिक थी और राज्य सरकार से अनुमति के बिना की गयी थी।

4. अपीलार्थी का मामला यह है कि डीपीएस, धनबाद समग्र विकास के लिए गुणवत्ता युक्त शिक्षा एवं अन्य पाठ्यक्रम संबंधित गतिविधियों के विस्तारण के मुख्य उद्देश्य के साथ सोसाइटी निबंधन अधिनियम, 1860 के अधीन निर्बंधित दिल्ली पब्लिक स्कूल सोसाइटी का एक संयुक्त उपक्रम है। समझौता भारत कोकिंग कोल लिमिटेड के साथ है, जो भारत सरकार का एक उपक्रम है, कोलफील्ड शैक्षणिक न्यास के नाम से पंजीकृत एक न्यास विद्यालय चलाता है। डीपीएस, धनबाद केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबद्ध है और यह एक निजी गैर सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थान है। भारत सरकार ने छठे वेतन आयोग की अनुशंसाओं के अनुरूप वेतनमानों के पुनरीक्षण की अनुशंसा की थी जिसे केन्द्र सरकार द्वार सम्यक् रूप से अनुमोदित किया गया था और 1.1.2006 से प्रभावी बनाया गया था। उक्त अनुशंसाओं के आलोक में, डीपीएस सोसाईटी ने संस्थान में भी छठे वेतन आयोग की अनुशंसाओं को क्रियान्वित करने का एक निर्णय लिया था। रिट याचिका का परिशिष्ट 2 प्रति-उपाध्यक्ष, डी०पी०एस० विद्यालयों को संबोधित सचिव, डी०पी०एस०एस० की एक संसूचना है जो संदर्भ सं० डी०पी०एस०एस०/प्रशासन/5198 दिनांक 27.2.2009 की है। उक्त पत्र के अनुसरण में दिनांक 31.3.2009 की इसकी बैठक में छठे वेतन आयोग को क्रियान्वित करने का एक निर्णय लिया गया था। प्रबंध समिति की इस बैठक में माता पिता की ओर से दो प्रतिनिधियों द्वारा भी भाग लिया गया था और अंतत: इसे प्रति-उपाध्यक्ष, दिल्ली पब्लिक स्कूल, धनबाद द्वारा सम्यक् रूप से अनुमोदित किया गया था। सम्यक् अनुमोदन प्रदान किये जाने के उपरांत यथा निर्णित या क्रियान्वित शुल्कों की बढ़ोत्तरी को JET के समक्ष चुनौती दी गयी थी और JET ने एक विस्तृत निर्णय पारित किया था (दिनांक 19.3.2010 का जेट का आदेश केस सं० 26 वर्ष 2009 में है) तथा अधिकरण के समक्ष उठे विचारण के लिये 3 बिंदु निम्नवत् प्रगणित हैं :

(a) क्या प्रत्यर्थी-विद्यालय, दिल्ली पब्लिक स्कूल, धनबाद ने शैक्षणिक सत्र 2009-10 के लिये 1.4.2009 के प्रभाव से अपनी संशोधित विद्यालय शुल्क संरचना का निर्णय करके और क्रियान्वित करके मनमाने रूप से कार्य किया है,

(b) क्या शुल्क की ऐसी बढ़ोत्तरी असामान्य थी जो इसके साथ जुड़े कारकों के संगत न होने के तुल्य थी,

(c) क्या शुल्क की ऐसी बढ़ोत्तरी का अंतर्निहित रूप से कोई लाभ कमाने का उद्देश्य था; और

(d) क्या शुल्क की ऐसी बढ़ोत्तरी पर निर्णय करते समय सुसंगत नियमों/अनुदेशों/निर्देशों इत्यादि में अंतर्विष्ट प्रावधानों का सम्यक् रूप से अनुपालन किया गया था।

5. निर्णय के परिशीलन पर, यह परिलक्षित होता है कि प्रश्न सं० (a) का संस्थान के पक्ष में निर्णय किया गया था, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि डीपीएस प्रबंध समिति ने शुल्क संरचना को बढ़ाते समय मनमाने रूप से कार्य नहीं किया था। प्रश्न सं० (b) पर निर्णय भी संस्थान के पक्ष में था इस निष्कर्ष पर आकर कि चूँकि पिछले कई सालों से विद्यालय वित्तीय घाटे में चल रहा था और, अतएव, वित्तीय कठिनाईयों को एक असामान्य घटना नहीं बताया जा सकता यद्यपि यह उच्चतर पक्ष की ओर था। प्रश्न सं० (c) का निष्कर्ष भी बिल्कुल स्पष्ट था कि संस्थान का लाभ कमाने का कोई आशय या मंशा नहीं थी और अध्यापन एवं वार्षिक शुल्क की बढ़ोत्तरी के पीछे कोई गैरकानूनी लाभ कमाने का निहित आशय नहीं था। तथापि, प्रश्न सं० (d) का निर्णय करते समय, जेट का यह मत था कि डीपीएस सोसाईटी या

प्रत्यर्थी संस्थान ने CBSE के उपविधियों के सुसंगत प्रावधानों का अनुपालन करने का कोई प्रयास नहीं किया था और अंतत: ठीक पिछले वर्ष 2008-09 में शुल्कों की दरों के संदर्भ में केवल 15 प्रतिशत अधिक के स्तर पर वित्तीय वर्ष 2009-10 के लिये शुल्कों में बढ़ोत्तरी प्रदान करते हुए प्रत्यर्थी के पक्ष में मामला अनुज्ञात कर दिया था। इस प्रकार, शुल्क संरचना में बढ़ोत्तरी काफी कम कर दी गयी थी। स्पष्टत:, जेट ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि CBSE के उपविधियों के सुसंगत प्रावधानों का अनुपालन न करने के कारण डी॰पी॰एस॰ सोसाइटी दोषी थी, जेट प्रत्यर्थी द्वारा दी गयी चुनौती के मुकाबिल उपविधियों की परीक्षा करने में विफल रहा है। उपविधियों का शीर्षक निम्नवत् है:

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड

''सम्बद्धता उपविधियाँ''

6. यह उपविधि केवल विभिन्न संस्थानों को CBSE द्वारा दी गयी सम्बद्धता के संबंध में है और उक्त उपविधियों के अध्याय I नियम 1 उपनियम (3) में यथा उल्लिखित किसी विद्यालय या किसी अन्य व्यक्ति, सोसाइटी, कम्पनी या संगठन की संबद्धता से संबंधित किसी भी बात के मामले में उठने वाले किसी मुद्दे या इसके वापस लिये जाने, सम्बद्धता के प्रत्याख्यान/उन्नयन से भी संबंधित है। अध्याय VI नियम 19 सोसाईटी/न्यास की भूमिका/उद्देश्यों से संबंधित है और त्वरित संदर्भ के लिए जिस विनिर्दिष्ट नियम पर जेट ने अपीलार्थी के विरुद्ध निष्कर्ष पर पहुंचने में भरोसा किया है वह नीचे प्रगणित है :

1. ''विद्यालय चलाने वाली सोसाईटी/न्यास की अपने लक्ष्य एवं उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विद्यालय में एक उत्तम तथा स्वस्थ वातावरण उपलब्ध कराने में एक अति महत्वपूर्ण तथा मौलिक भूमिका निभानी होती है तथा कर्मचारी को गुणवत्तायुक्त शिक्षा उपलब्ध कराने में सक्षम बनाने में और शैक्षणिक उत्कृष्टता का एक केन्द्र बनाने में भी ऐसा करना होता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए न्यास/सोसाईटी की भूमिका एवं उत्तरदायित्व निम्नवत् परिभाषित है :

** इसका विद्यालय प्रबंध समिति पर नियंत्रण होना चाहिए और विद्यालय के लिए बजट/अध्यापन शुल्क एवं वार्षिक प्रभारों इत्यादि का इसे अनुमोदन करना है।*

** यह विद्यालय की आवश्यकताओं के लिए धन की उगाही करेगी चाहे यह अनावर्ती हो या आवर्ती हो।''*

7. मैं जेट द्वारा भरोसा किये गये नियम के मुकाबिल आक्षेपित निर्णय/आदेश की परीक्षा करने की कार्यवाही करती हूँ इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या शुल्कों का वर्धन अत्यधिक अभिनिर्धारित करते हुए नियम के निर्वचन का हस्तक्षेप के लिए दायी होना सही है या नहीं?

8. अधिकरण का रवैया केवल खंड (v) एवं (vii) पर आधारित प्रतीत होता है, जो प्रावधान करता है कि CBSE का विद्यालय प्रबंध पर नियंत्रण होगा जो बजट, अध्यापन शुल्क एवं विद्यालय के वार्षिक प्रभारों इत्यादि को अनुमोदित करेगा और यह भी सुनिश्चित करेगा कि संस्थान विद्यालय की आवश्यकता के लिये धन की उगाही करने में सक्षम हो चाहे यह आवर्ती हो या अनावर्ती। चूँकि नियमावली संस्थान की संबद्धता से संबंधित है और, अतएव, मेरे विचार में CBSE बोर्ड के समक्ष जो एकमात्र प्रश्न उठता है वह यह है कि या तो सम्बद्धता प्रदान कर दी जाए या सम्बद्धता प्रदान करने के उपरांत उक्त सम्बद्धता या केवल किसी विशिष्ट संस्थान की सम्बद्धता से संबंधित किसी अन्य निर्णय को वापस ले लिया जाए। जेट द्वारा यह निर्वचन की इसका प्रबंध पर नियंत्रण होगा, पूर्णत: त्रुटिपूर्ण है क्योंकि शुल्क इत्यादि के वर्धन समेत संस्थान के कार्यकलाप में निर्णय लेने के लिए प्रबंध एकमात्र प्राधिकार है और, अतएव, मेरे विचार में शुल्कों में बढ़ोत्तरी भी प्रबंध का एक अनन्य अधिकार क्षेत्र है। मैंने आक्षेपित आदेश की भी परीक्षा की है और यह प्रकट है कि जेट का यह दृष्टिकोण था कि संस्थान ने मनमाने रूप से कार्य नहीं किया था या शुल्कों के वर्धन के इसके निर्णय में लाभ कमाने की कोई मंशा अंतर्निहित नहीं थी। चूँकि प्रश्न

सं॰ (a), (b) एवं (c) के संबंध में अधिकरण का निष्कर्ष संस्थान के पक्ष में है और बिंदु (d) पर यह निष्कर्ष कि CBSE के उपविधियों के सुसंगत प्रावधानों का अनुपालन न करके सोसाइटी ने त्रुटि की थी, बरकरार नहीं रखा जा सकता। अपीलार्थी-संस्थान एक गैर सहायता प्राप्त निजी संस्थान है और, अतएव, प्रबंधन के पास प्रशासन के पहलुओं का विनियमन करने के लिए पूर्ण प्राधिकार होना चाहिए। नियंत्रण की नियामक मात्रा न्यूनतम होनी चाहिए, यद्यपि अनुशंसा की शर्त्तों तथा बोर्ड से संबद्धता की शर्तों का भी अनुपालन करना है। दिन-प्रतिदिन के मामलों में, प्रशासनिक नियंत्रण में हस्तक्षेप करके प्रबंध बाधित नहीं किया जाना चाहिए। इसके पास संस्थानों के विभिन्न मामलों का प्रबंध करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए और कोई बाहरी नियंत्रण अभिकरण नहीं होना चाहिए। इन परिस्थितियों में, जेट का निर्णय/आदेश अवैधानिक है और शुल्क संरचना को नियंत्रित एवं निर्धारित करने का प्रयास करके इसने अपनी अधिकारिता से आगे जाकर कार्य किया जिसे संस्थान कठिनाई से ही निपट सकता है। प्रत्येक संस्थान के पास संस्थान को चलाने के लिए धन उगाहने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए और छात्रों के लाभ के लिये आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिए अनिवार्य रूप से अपनी शुल्क संरचना निर्धारित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह भी स्थापित विधि है कि ऐसे संस्थानों के प्रबंधन को कुछ अतिरिक्त धन उगाहने की स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए जिनका शैक्षणिक संस्थानों की बेहतरी एवं विकास के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

9. इसे दृष्टिगत रखते हुए, जेट द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष निरस्त किये जाने योग्य है, क्योंकि यह शुल्क संरचना के निर्धारण में हस्तक्षेप के तुल्य है, विशेषकर जब अधिकरण को समाधान था कि छठे वेतन आयोग के अनुपात में वेतन में बढ़ोत्तरी के कारण संस्थान वित्तीय कठिनाई का सामना कर रहा था। प्रबंधन के निर्णय में हस्तक्षेप करना पूर्णत: अवैधानिक है जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों ने ऐसे संस्थानों के प्रबंध में नियमाक प्राधिकार के हस्तक्षेप की आलोचना करते हुए सिद्धांत अधिकथित किया है।

10. विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णय पर भरोसा किया है, पहले **कोचिन विज्ञान एवं प्रद्यौगिकी विश्वविद्यालय एवं एक अन्य बनाम थॉमस पी॰ जॉन एवं अन्य** के मामले पर विचार करते हैं जो निम्नवत् है और **(2008) 8 SCC 82** में रिपोर्ट किया गया था:

> *पूर्वोक्त निर्णयों का एक पठन प्रकट करेगा कि व्यापक सिद्धांत यह है कि शुल्क के निर्धारण के मामले में शैक्षणिक संस्थान को अनिवार्यतः इसकी ही युक्तियों पर छोड़ देना है यद्यपि लाभ कमाने या कैपिटेशन शुल्क लगाने को खारिज करना है और यह कि अतिरेक धन के तौर पर एक संस्थान को उपलब्ध कुछ राशि की अनिवार्यतः अनुमति दी जानी है और इनका आकलन किया जाना है, परन्तु अनुमान द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि अगर शुल्क के निर्धारण के संबंध में व्यापक सिद्धांतों को अपनाया जाता है, एक शैक्षणिक संस्थान को प्राप्तियों एवं खर्चों का स्पष्टीकरण देने के लिए इस प्रकार नहीं कहा जा सकता कि जैसे उसे एक चार्टर्ड एकाउंटेंट के समक्ष बुलाया गया हो। हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय की खंडपीठ का यह संपरीक्षण कि 2 वर्षों के लिए एक उच्चतर शुल्क के निर्धारण के लिए कोई तार्किक आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है, शैक्षणिक संस्थान पर एक भार अधिरोपित करता है, जिसका इसके लिए सटीकता के साथ उन्मोचन करना कठिन होगा।''*

11. जिन अन्य निर्णयों पर भरोसा किया गया है वे 2003 (1) JLJR 1 (SC) में रिपोर्ट किये गये **टी॰एम॰ए॰ पाई फाउन्डेशन बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले और **AIR 2003 SC 3724** में रिपोर्ट किये गये **इस्लामीक शैक्षणिक अकादमी बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले में दिये गये निर्णय हैं।

12. इस प्रकार, इस तथ्य को सामने रखकर कि स्वयं अधिकरण का ही यह दृष्टिकोण था कि लाभ कमाने का कोई उद्देश्य नहीं था और वृद्धि उन विवशताओं के कारण थी जिनका संस्थान लंबे समय

से सामना कर रहा था और वर्तमान व्यवस्था में जहां वेतन संरचना में बढ़ोत्तरी की जानी थी, शुल्कों का वर्धन अवश्यंभावी था और, अतएव संस्थान के पास कोई अन्य विकल्प नहीं था। सरकार द्वारा शुल्क संरचना का कोई कठोर निर्धारण नहीं किया जा सकता। संस्थान को चलाने के लिए धन उगाहने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर और छात्र के लाभ के लिए सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु संस्थान के पास अपनी शुल्क संरचना निर्धारित करने की अनिवार्यत: स्वतंत्रता होनी चाहिए। याची द्वारा इस अपील में डी॰पी॰एस॰, धनबाद में कमी सिद्ध करने के लिए विभिन्न आंकड़े एवं तालिकाएं प्रस्तुत की गयी थीं जो 45 प्रतिशत थीं और, अतएव, शुल्क संरचना को बढ़ाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था। CBSE संबद्धता नियमावली के आधार पर वर्धन की दर को नीचे लाते समय अधिकरण पूर्णत: त्रुटि पर था। विभिन्न डी॰पी॰एस॰ संस्थानों, जैसे कि भागलपुर, पटना, द्वारिका, दिल्ली, जमशेदपुर, बोकारो, धनबाद, रांची, बिंदनगर, मध्यप्रदेश इत्यादि के डीपीएस संस्थानों के शुल्क संरचना दर्शाने वाली कॉन्टैबुलर तालिका इस तथ्य का पर्याप्त प्रमाण है कि अपीलार्थी लाभ कमाने में संलिप्त नहीं है।

13. विद्वान अधिवक्ता यह सिद्ध करने में सफल रहे हैं कि धनबाद की शुल्क संरचना निम्नतम स्तर पर है और छठे वेतन आयोग के अनुपात में वेतन संरचना में बढ़ोत्तरी की दृष्टि में और वित्तीय कठिनाईयों के सामने यह प्रकटत: औचित्यपूर्ण है।

14. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर भरोसा किया है जिनमें से एक **2011 (1) JCR 61(Jhr.)** में रिपोर्ट किया गया **डि नोबिली विद्यालय मुगमा, धनबाद बनाम सतीश कुमार एवं अन्य** का मामला हैं। उक्त मामले में अध्यापन शुल्क में बढ़ोत्तरी आवांछित पायी गयी थी और, अतएव, इस न्यायालय ने हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया था।

15. मेरा विचार है कि पूर्वोक्त निर्णय की वर्तमान मामलों के तथ्यों पर कोई प्रयोज्यता नहीं है जहां अधिकरण का यह मत था कि अध्यापन शुल्क में बढ़ोत्तरी आवश्यक थी। यह लाभ कमाने का एक मामला नहीं था और न ही कैपिटेशन शुल्क की कोई मांग थी। इसके अतिरिक्त, वित्तीय कठिनाईयों के अधीन बढ़ोत्तरी की गयी थी इसे एक असामान्य घटना नहीं बताया जा सकता था। अतएव, एक बार स्वयं अधिकरण ने जब संस्थान के पक्ष में एक दृष्टिकोण अपना लिया था परन्तु शुल्कों में बढ़ोत्तरी को कम कर दिया था उन सुसंगत कारणों एवं तालिकाओं और उस कमी को ध्यान में रखे बिना जिनका कई वर्षों से संस्थान सामना कर रहा था और केवल अंतिम विकल्प के तौर पर छठे वेतन पुनरीक्षण की अनुशंसाओं के क्रियान्वयन के परिणाम के तौर पर वास्तविक अतिरिक्त वार्षिक वित्तीय भारों के कारण विशेष रूप से शुल्क का वर्धन किया गया था।

16. जो उपर कथन किया गया है उसकी दृष्टि में वर्तमान अपील में आक्षेपित निर्णय प्रकटत: अवैधानिक है और निरस्त किये जाने योग्य है। शुल्क में वर्धन पूर्णत: औचित्यपूर्ण है और अधिकरण एक आक्षेपित आदेश के माध्यम से इसे कम नहीं कर सकता था। तदनुसार, अपील सफल होती है और चुनौती के अधीन आदेश निरस्त किया जाता है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

बैजनाथ साव @ बैजनाथ शॉ एवं एक अन्य

बनाम

प्रदीप कुमार खेतान एवं अन्य

S. A. No. 126 of 2007. Decided on 4th November, 2010.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 11—पूर्व न्याय—टाइटल की घोषणा और कब्जा की संपुष्टि के लिए वाद—यही विवाद्यक एक अन्य टाइटल वाद में विनिश्चित किया गया था जिसे द्वितीय अपीलीय न्यायालय तक संपुष्ट किया गया था–भूमि के क्षेत्रफल में अंतर तात्विक नहीं है क्योंकि वर्तमान मामले में विवाद्यक उन्हीं पक्षों के बीच पूर्व वाद में प्रत्यक्षतः और सारतः अंतर्ग्रस्त थे—वादीगण के पास कोई वाद हेतुक नहीं है–वाद पूर्वन्याय द्वारा वर्जित–अपील खारिज। (पैराएँ 10 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Rohit Roy, For the Appellants; Mr. Prashant Kr. Singh, For the Respondents.

आदेश

टाइटल अपील सं॰ 150/05 में विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित अभिपुष्टि के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध यह वादी की दूसरी अपील है।

2. वादीगण ने टाइटल की घोषणा और कब्जे की संपुष्टि के लिए डिक्री की प्रार्थना करते हुए विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश, धनबाद के समक्ष वाद दाखिल किया था। उन्होंने प्रतिवादीगण के विरुद्ध स्थायी व्यादेश की डिक्री के लिए भी प्रार्थना की थी। वाद भूमि सी॰ एस॰ भूखंड सं॰ 1525, खाता सं॰ 136, मौजा हीरापुर, जिला धनबाद से संबंधित है।

3. वादीगण का मामला यह था कि वाद भूमि झरिया राज एस्टेट की खतियानी भूमि थी और पूर्व भूस्वामी ने अनेक व्यवस्थापन किया था और किराएदारों को स्थापित किया था। वाद भूमि का पाँच कट्ठा क्षेत्र मूल वादी कलवा देवी, जिसकी मृत्यु वाद के लंबित रहने के दौरान हो गयी थी, के नाम पर व्यवस्थापित की गयी थी। तब से वादीगण पूर्व भूस्वामी को और बाद में राज्य सरकार को किराया के भुगतान पर वाद भूमि पर काबिज थे। वादीगण के पास वैध अधिकार और वाद भूमि पर टाइटल था। आगे कथन किया गया था कि प्रतिवादीगण ने व्यवस्थापन के आधार पर वाद भूमि के ऊपर अपने अधिकार और टाइटल का अवैध और झूठा दावा किया था। वादीगण ने दावा किया कि प्रतिवादीगण ने टाइटल वाद सं॰ 121/258 वर्ष 1960-62 में अपने पक्ष में डिक्री प्राप्त कर लिया था और यह कि प्रतिवादीगण निष्पादन केस सं॰ 98/1973 में उक्त डिक्री की ताकत पर वादीगण को कब्जाविहीन करने का प्रयास कर रहे हैं।

4. प्रतिवादीगण ने अन्य बातों के साथ साथ यह कथन करते हुए वाद का प्रतिवाद किया कि वर्तमान वाद टाइटल वाद सं॰ 12/1960-63 जिसका वादी के पति द्वारा प्रतिवाद किया गया था, में पारित डिक्री को निष्फल करने के लिए दाखिल किया गया है। विचारण न्यायालय में पारित डिक्री को एस॰ ए॰ सं॰ 697/1966 में द्वितीय अपीलीय न्यायालय तक संपुष्ट किया गया था। प्रतिवादीगण के वाद भूमि के ऊपर अधिकार और टाइटल को उक्त वाद में पक्षों द्वारा दिए गए मौखिक और अन्य दस्तावेजी साक्ष्य पर और वादीगण के व्यवस्थापन पर पूरी तरह विचार करने के बाद घोषित किया गया था। वादीगण ने इसी विवाद्यक को पुनः उठाना इप्सित किया है जिसे उक्त टाइटल वाद में अंतिम रूप से विनिश्चित किया गया था और द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय तक संपुष्ट किया गया था।

5. विद्वान विचारण न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों, साक्ष्यों और सामग्रियों पर पूरी तरह विचार करने और चर्चा करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि वाद पूर्व न्याय के सिद्धान्त द्वारा वर्जित है। टी॰ एस॰ सं॰ 121/1960 में सक्षम अधिकारिता के सिविल न्यायालय द्वारा पहले ही विनिश्चित किया गया था कि वादीगण के पास वर्ष 1944 में पूर्व भूस्वामी द्वारा किए गए व्यवस्थापन (प्रदर्श 3) के फलस्वरूप वाद संपत्ति पर कोई अधिकार, टाइटल अथवा और हित नहीं था। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादीगण वाद के लिए किसी वैध वाद हेतुक को सिद्ध करने में विफल रहे और वाद पोषणीय नहीं है। अतः, विचारण न्यायालय ने वादीगण का वाद खारिज कर दिया।

6. तब वादीगण ने जिला न्यायाधीश, धनबाद के समक्ष अपील टाइटल अपील सं० 150/05 दाखिल किया। उक्त अपील अंतत: विद्वान षष्टम अपर जिला न्यायाधीश, धनबाद द्वारा सुना और विनिश्चित किया गया था।

7. विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्य पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि वादीगण का वाद पोषणीय नहीं था और यह पूर्व न्याय के सिद्धान्त द्वारा वर्जित था क्योंकि वाद संपत्ति पर प्रतिवादीगण–वादीगण का अधिकार, टाइटल पहले ही टाइटल वाद सं० 121/1960 में विनिश्चित और डिक्री किया जा चुका था। विचारण न्यायालय के डिक्री को द्वितीय अपीलीय न्यायालय तक संपुष्ट किया गया था। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि वादीगण वाद भूमि पर अपने अधिकार, टाइटल को सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुए हैं और वादीगण किसी अनुतोष के हकदार नहीं है। अत: विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील खारिज कर दिया।

8. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री रोहित राय ने निवेदन किया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने और विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया है और वादीगण–अपीलार्थीगण का दावा खारिज करने में पूर्व न्याय के सिद्धान्त को गलत रूप से लागू किया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि पूर्व वाद में यही भूमि अंतर्ग्रस्त थी, पर भूमि का क्षेत्रफल भिन्न था। वर्तमान वाद में, भूमि का क्षेत्रफल पूर्व वाद के विषय वस्तु की तुलना में अधिक था। पूर्व न्याय के सिद्धान्त यदि प्रयोज्य भी है तो भी इसे उस क्षेत्रफल की सीमा तक नहीं बढ़ाया जा सकता है जो पूर्व वाद में अंतर्ग्रस्त नहीं थी।

9. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रशांत कुमार सिंह ने दूसरी ओर निवेदन किया कि पूर्व न्याय के सिद्धान्त को लागू करने के लिए क्षेत्रफल एक महत्वपूर्ण विचार नहीं है। विवाद्यक जो वर्तमान वाद में उद्‌भूत हुए, बिल्कुल समरुप थे और एक ही पक्षों के बीच थे और उन्होंने एक ही टाइटल के अधीन मुकदमा किया था। पूर्व न्याय के सिद्धांत की प्रयोजनीयता में यह कोई भिन्नता नहीं लाता है भले ही कुछ अधिक क्षेत्रफल को वर्तमान मामले में दर्शाया गया है। अन्य वर्णन वही और समरुप है और विवाद्यक भी एक ही है जिसे सक्षम अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णीत किया गया है और जिसकी डिक्री को उच्च न्यायालय तक संपुष्ट किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि द्वितीय अपील को सुनते हुए यह न्यायालय साक्ष्यों का पुनर्आकलन नहीं कर सकता है भले ही साक्ष्यों के पठन पर कोई अन्य निष्कर्ष संभव हो। विद्वान विचारण न्यायालय ने और विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने भी विस्तारपूर्वक तथ्यों, सामग्रियों और साक्ष्यों पर चर्चा की है और उन्होंने समवर्ती रुप से वादीगण–अपीलार्थीगण के विरुद्ध तथ्यों के अपने निष्कर्षों को दर्ज किया है। उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध द्वितीय अपील ग्रहण करने के लिए आधार नहीं दिया गया है।

10. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अवर अपीलीय न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और डिक्री का परिशीलन किया है। अभिलेख से, स्पष्ट है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने और विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने भी अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों और साक्ष्यों पर पूरी तरह चर्चा की है और उन्होंने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि टाइटल वाद सं० 121/1960 में पारित निर्णय और डिक्री में यही विवाद्यक पहले ही विनिश्चित किया गया था जिसे द्वितीय अपीलीय न्यायालय तक संपुष्ट किया गया था, तथ्यों का समवर्ती निष्कर्ष दर्ज किया है।

11. मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों में सार पाता हूँ कि पूर्व न्याय के सिद्धान्त को सक्षम न्यायालय के समुचित न्याय निर्णयण द्वारा पक्षों के बीच विनिश्चित विवाद्यक के आधार पर लागू करना होगा। भूमि के क्षेत्रफल में अंतर तात्विक नहीं है क्योंकि वर्तमान मामले के विवाद्यक उन्हीं पक्षों

के बीच पूर्व वाद में प्रत्यक्षत: और सारत: अंतर्ग्रस्त थे जिसे विधि के सक्षम न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया था। इसी विवाद्यक को पश्चातवर्ती वाद में फिर से उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय मामले के समस्त प्रासंगिक पहलुओं पर विचार करके सही प्रकार से इस निष्कर्ष पर आया कि वादीगण के पास कोई वाद हेतुक नहीं है और वाद पूर्व न्याय के सिद्धान्त द्वारा वर्जित है और सही प्रकार से अपील खारिज कर दिया।

12. मैं विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई गलती नहीं पाता हूँ जो इस द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा विधि के सारभूत प्रश्न को विरचित और विनिश्चित करने के लिए उद्भूत करता हो।

तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

धनंजय शर्मा

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 4837 of 2002. Decided on 11th February, 2011.

(क) सेवा विधि— स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति—स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति इप्सित करने के लिए आग्रह एक प्रस्ताव है—इस पर तभी कार्रवाई की जा सकती है जब इसे नियोक्ता द्वारा स्वीकार किया जाए। (पैरा 16)

(ख) सांविधिक विधि—परंतुक—परंतुक का सटीक कार्य यह है कि एक अपवाद का प्रावधान करके यह मुख्य अधिनियमन की व्यापकता को विशेषित करता है। (पैरा 17)

(ग) भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 309—जहाँ अनुच्छेद 309 के अधीन विरचित नियमों के बीच एक अंतराल हो, राज्य सरकार द्वारा या संघ सरकार द्वारा परिपत्र या कार्यकारी आदेश निर्गत किये जा सकते हैं—कार्यकारी अनुदेश केवल नियमावली द्वारा आच्छादित नहीं किये गये अंतरालों को भर सकते हैं और सांविधिक नियमों का अल्पीकरण नहीं कर सकते। (पैरा 19)

(घ) प्रशासनिक विधि—जब कर्मचारीगण के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए राज्य नियमावली अधिकथित कर रहा हो, इसके लिए इनका पूर्ण रूप से अनुपालन करना बाध्यकारी होता है। (पैरा 20)

(ड़) सेवा विधि—अनुशासनिक कार्यवाही—कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के उपरांत, पेंशन नियमावली या प्रवर्तित किसी अन्य विधि के निबंधनों में के सिवाय, प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई अनुशासनिक कार्रवाई नहीं की जा सकती—विधि के प्रावधानों के अधीन याची के विरुद्ध कार्यवाही करने की प्रत्यर्थीगण को स्वतंत्रता के साथ आक्षेपित आदेश निरस्त। (पैराएँ 25 एवं 26)

निर्णयज विधि.—(2006)7 SCC 666—Distinguished; (1999)4 SCC 923; (2001)3 SCC 290; (2009)10 SCC 518; 1992 Supp. (1) SCC 304; (2009)13 SCC 758; 1995 Supp. (2) SCC 407; (1998)2 SCC 109—Relied.

अधिवक्तागण.—M/s Ajit Kumar, Dhananjay Kumar Pathak, Prabhat Singh, Rahul Kumar, For the Petitioner; Rakesh Kumar Shahi, For the Respondents.

आदेश

पक्षकारों को सुना।

2. पक्षकारों ने यह स्वीकार किया है कि याची, जो प्रत्यर्थीगण के विभाग में एक लिपिक के तौर पर कार्य कर रहा था, ने दिनांक 13.12.2001 के आवेदन के माध्यम से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने के लिए एक आवेदन दाखिल किया था और यह प्रत्यर्थीगण के विभाग के क्षेत्रीय निदेशक को संबोधित था जिसे प्रत्यर्थीगण के विभाग द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी को अग्रसारित किया गया था। उक्त आवेदन में यह संसूचना अंतर्विष्ट थी कि याची 3 महीनों की नोटिस के उपरांत 31 मार्च, 2002 के प्रभाव से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने के लिए आवेदन करता है। यह भी स्वीकार किया गया है कि उक्त आग्रह के अस्वीकरण की अनुबद्ध अवधि के भीतर याची द्वारा कोई संसूचना प्राप्त नहीं की गयी थी। 16.5.2002 को, याची द्वारा एक संसूचना प्राप्त की गयी जिसके माध्यम से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने वाला उसका आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था और उसे अपने कर्त्तव्यों में योगदान देने को कहा गया था तथा उसने रिट याचिका दाखिल किया था। रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान उसे निलंबित कर दिया गया था और उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गयी थी तथा दंड अधिरोपित किया गया था।

3. विचारण के लिए मूल प्रश्न इस संबंध में उठता है कि बिहार पेंशन नियमावली के नियम 74 (b) तथा बिहार सरकार द्वारा निर्गत दिनांक 27.4.1979 के परिपत्र का वास्तविक प्रभाव एवं तात्पर्य तथा परिधि क्या है? इसको लेकर कि क्या कर्मचारी द्वारा इप्सित स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति कर्मचारी को तामिला की गयी नोटिस की अवधि के अवसान पर प्रभावी बन जाती है या स्वीकरण का कोई आदेश कर्मचारी के आग्रह को प्रभावी बनाने के लिए एक पूर्व शर्त है। परिचर्चा में प्रवेश करने से पहले, मैं बिहार पेंशन नियमावली के नियम 74 के सुसंगत प्रावधानों को निम्नवत् निर्दिष्ट करना चाहूंगा:

''74. (a) राज्य सरकार किसी ऐसे सरकारी सेवक के लिए सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त होना अनिवार्य बना सकती है अगर उसने उसकी पहली नियुक्ति की तिथि से गणना करने पर कुल सेवा के 25 वर्ष एवं ड्यूटी के 21 वर्ष पूरे कर लिये हों, अगर यह समझती है कि उसकी कार्यकुशलता या आचरण ऐसा नहीं है कि यह उसे सेवा में बनाये रखने को औचित्यपूर्ण सिद्ध करे। अगर किसी सरकारी सेवक के लिए इस प्रकार सेवानिवृत्त होना आवश्यक हो जाता है तो किसी विशेष प्रतिकर का कोई दावा ग्रहण नहीं किया जायेगा।

(b) (i) पूर्वगामी उपनियम में अंतर्विष्ट किसी भी प्रावधान के बावजूद एक सरकारी सेवक कम से कम 3 महीनों की पूर्वीक नोटिस सम्बद्ध नियुक्ति प्राधिकारी को लिखित में देने के उपरांत सेवा से निवृत्त हो सकता है उस तिथि को जब ऐसा सरकारी सेवक अर्हता सेवा के 30 वर्ष पूरे कर लेता है या 50 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है या नोटिस में विनिर्दिष्ट किये जाने वाली इसके उपरांत किसी भी तिथि परः

परन्तु यह कि राज्य सरकार के विनिर्दिष्ट अनुमोदन के बगैर निलम्बन के अधीन कोई सरकारी सेवक सेवानिवृत्त नहीं होगाः

परन्तु यह भी कि पटना उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों एवं सेवकों (राँची की सर्किट शाखा के पदाधिकारियों एवं सेवकों समेत) के मामले में मुख्य न्यायाधीश का प्राधिकार बनाने वाली नियम के अधीन मुख्य न्यायाधीश के विनिर्दिष्ट अनुमोदन के बिना ऐसा कोई पदाधिकारी एवं सेवक सेवानिवृत्त नहीं होगा।

(ii) सम्बद्ध नियुक्ति प्राधिकार सरकारी सेवक को ऐसी नोटिस के बदले में कम से कम तीन महीने का वेतन एवं भत्ता प्रदान करने के उपरांत उसे सार्वजनिक हित

में सेवा से निवृत्त होना आवश्यक कर सकता है। उस तिथि को जब ऐसा सरकारी सेवक अर्हता सेवा के 30 वर्ष पूरे कर लेता है या 50 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है या नोटिस में विनिर्दिष्ट की जाने वाली इसके उपरांत किसी भी तिथि को।

(iii) एक सरकारी सेवक जो इस नियम के अधीन 50 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर, या 30 वर्षों की अर्हता सेवा पूरी कर लेने पर, सार्वजनिक हित में आवश्यक रूप से सेवानिवृत्त किया जाता है, सेवानिवृत्ति पेंशन एवं मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति उपदान का अधिकारी होगा।''

4. 27.4.1979 का परिपत्र जो पेंशन नियमावली के नियम 74 के अधीन सरकार द्वारा निर्गत किया गया है निम्नवत् पठित है :

1. एक सरकारी सेवक जिसकी अर्हता सेवा 20 वर्ष से कम नहीं है, सक्षम नियुक्ति प्राधिकार को 3 महीने की पूर्वीक नोटिस प्रदान करके सेवानिवृत्ति ले सकता है।

यह योजना पूर्णतः स्वैच्छिक है जिसमें स्वयं सरकारी सेवक को ही पहल करनी होती है और सरकार के पास इस योजना के अधीन सरकारी सेवकों को सेवानिवृत्त करने का कोई विकल्प नहीं होता है।

2. इस योजना के अधीन सेवानिवृत्त होने वाले सरकारी सेवकों को पेंशन देय होगी।

6. स्वैच्छिक रूप से कोई नियोक्ता प्राधिकार की सहमति से सेवानिवृत्ति की अपनी नोटिस वापस ले सकता है बशर्ते कि नोटिस उपलब्ध कराने के 3 महीनों के अवसान के पहले वापस लिये जाने का ऐसा आग्रह किया जाए।

*7. **अर्हता सेवा के 20 वर्षों के उपरांत स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस उपलब्ध कराने में सक्षम नियुक्ति प्राधिकार का अनुमोदन आवश्यक है.**-अगर सेवानिवृत्ति की तिथि ऐसी नोटिस के अवसान की तिथि से पहले पड़ती है, उस तिथि को जब विद्यमान नियमों (अर्थात् बिहार सेवा संहिता का नियम 74(B) के अनुसार इस संबंध में सरकारी सेवक स्वैच्छिक रूप से सेवानिवृत्त हो गया होता, बिहार पेंशन नियमावली एवं बिहार पेंशन नियमावली के नियम 130 तथा अन्य इसी प्रकार के नियमावली के अधीन उदारीकृत पेंशन योजना, 1950 के खंड 1 के पैरा 2 के अधीन सभी मामलों में ऐसा अनुमोदन सामान्यतः दिया जा सकता है। निम्नांकित ''क'' एवं ''ख'' की कोटि के मामलों को छोड़कर।)*

(क) ऐसे मामलों में जिनमें एक सरकारी सेवक को बड़ा दंड सुनाने को ध्यान में रखते हुए अनुशासनिक कार्रवाई की गयी है या ऐसी कोई कार्रवाई लंबित है और अगर अनुशासनिक कार्रवाई का संचालन करने वाले पदाधिकारी की यह राय है कि सम्बद्ध मामले में आरोपों (उसके विरुद्ध विरचित) के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए उक्त सरकारी सेवक की बर्खास्तगी एवं सेवा समाप्ति का दंड सुनाना अनिवार्य है।

(ख) ऐसे मामलों में जब सरकारी सेवक के विरुद्ध अभियोजन अपेक्षित है अभियोजन के उस न्यायालय में जहां यह प्रारंभ किया गया है।

परन्तु इस कोटि के मामले में अगर ऐसी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस को स्वीकार करने का प्रस्ताव है तब कोटि ('क') एवं ('ख') के अधीन आने वाले सरकारी सेवक के मामले में प्रभारी मंत्री का अनुमोदन लिया जा सकता है। इनसे इतर मामलों में विभागाध्यक्ष का अनुमोदन आवश्यक है।

ऐसे मामलों में जिनमें नियोक्ता प्राधिकार से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए नोटिस का अनुमोदन लिया जाना आवश्यक है, ऐसे मामलों में भी नोटिस देने वाले सरकारी सेवकों के संबंध में इस प्रभाव का अनुमोदन अनुमोदित किया गया माना जायेगा बशर्ते कि नोटिस देने की तिथि से पहले सक्षम प्राधिकार द्वारा कोई प्रतिकूल आदेश पारित नहीं किया जाता है। ऐसे मामलों में उल्लिखित तिथि से सेवानिवृत्ति की तिथि का प्रभावी होना माना जायेगा।

5. सरकारी सेवक सम्बद्ध नियुक्ति प्राधिकार को लिखित में कम से कम 3 महीनों की नोटिस देकर उस तिथि से सेवानिवृत्त हो सकता है जिस तिथि को सरकारी सेवक अर्हता सेवा के 30 वर्ष पूरे कर लेता है या 50 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है या इसके उपरांत किसी भी तिथि को जिसे नोटिस में विनिर्दिष्ट किया जाना है। तत्पश्चात् एक कार्यकारी आदेश निर्गत किया गया था जिसके अधीन नियम शिथिल किया गया था और परिपत्र में 30 वर्षों के स्थान पर केवल 20 वर्षों की अर्हता सेवा विहित की गयी थी और इसके उपरांत सरकारी सेवक के पास एक नोटिस देने का एक विकल्प था और उक्त नियमों में एक प्रावधान था कि नोटिस के अवसान की तिथि से पहले अगर सक्षम प्राधिकार द्वारा कुछ प्रतिकूल प्राप्त नहीं किया जाता है, सेवानिवृत्ति ऐसी नोटिस में उल्लिखित तिथि से प्रभावी मानी जायेगी।

6. इस प्रकार, मूल प्रश्न जिसे प्रारंभ में ही इंगित किया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष बार बार उठा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(1999) 4 SCC 923** में रिपोर्ट किये गये **हरियाणा राज्य एवं एस॰ के॰ सिंघल** के मामले में अपने निर्णय में सभी पूर्वीक निर्णयों पर विवेचना की है। इस मामले में, प्रत्यर्थी एक चिकित्सा पदाधिकारी था और उसने अर्हता सेवा के 25 वर्ष पूरे करने के उपरांत पंजाब लोक सेवा नियम के नियम 5.32B के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करते हुए 16.8.1995 को 3 महीने की नोटिस का तामिला किया था। याची–राज्य ने उक्त अवधि के दौरान उक्त नोटिस के किसी अस्वीकरण आदेश या प्रतिकूल संसूचना का तामिला नहीं किया। इसके उपरांत, 13.12.1995 को उसे सूचित किया गया कि उसके आग्रह पर विचार नहीं किया जा सकता था, अतएव यह विवाद उत्पन्न हुआ कि क्या उस मामले में प्रत्यर्थी को सेवानिवृत्त हुआ माना जाए या अगर वह सेवानिवृत्त नहीं हुआ है तो उक्त नियमों का प्रभाव क्या होगा। पंजाब लोक सेवा नियमावली का सुसंगत नियम 5.32(B) बिहार पेंशन नियमावली के नियम 74 B एवं उस परिपत्र के सदृश है जिसे उपरोक्त उत्कथित किया गया है। पंजाब लोक सेवा नियम का नियमावली 5.32(b) निम्नवत् पठित है :–

"5.32(B)(1) किसी भी समय एक सरकारी कर्मचारी अगर 20 वर्षों की अर्हता सेवा पूरा कर चुका हो, वह नियुक्ति प्राधिकार को लिखित में कम से कम 3 महीनों की नोटिस देकर सेवा से निवृत्त हो सकता है। तथापि, एक सरकारी कर्मचारी 3 महीनों से कम की नोटिस को स्वीकार करने का नियुक्ति प्राधिकार से लिखित में इसका कारण बताते हुए आग्रह कर सकता है। ऐसे आग्रह की प्राप्ति पर, नियुक्ति प्राधिकार गुणावगुणों पर 3 महीने की नोटिस की अवधि को कम किये जाने के ऐसे आग्रह पर विचार कर सकता है और अगर इसे समाधान हो कि नोटिस की अवधि को कम किये जाने से कोई प्रशासनिक असुविधा कारित नहीं होगी, नियोक्ता प्राधिकार 3 महीनों की नोटिस की आवश्यकता का शिथिलीकरण कर सकता है इस शर्त पर कि सरकारी कर्मचारी 3 महीनों की नोटिस की अवधि के अवसान के पहले अपने पेंशन के एक हिस्से के रूपांतरण के लिए आवेदन नहीं करेगा।

2. <u>उपनियम (1) के अधीन दी गयी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस के लिए पंजाब लोक सेवा नियमावली भाग II के नियम 2.2 के अध्यधीन नियुक्ति प्राधिकार द्वारा स्वीकरण आवश्यक होगा:</u>

<u>परन्तु यह कि जहाँ नियोक्ता प्राधिकार उपनियम (1) (ऊपर) में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान के पहले सेवानिवृत्ति प्रदान करने से इंकार नहीं करता है, सेवानिवृत्ति उक्त अवधि की अवसान की तिथि से प्रभावी बन जायेगी :</u>

परन्तु यह भी कि उपनियम (1) के संदर्भ में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस देने से पहले सरकारी कर्मचारी स्वयं को उपयुक्त प्राधिकार को संदर्भ करके संतुष्ट करने की वस्तुतः पेंशन के लिए अर्हता सेवा के 20 वर्ष पूरे कर लिये हैं।''

7. उक्त नियम में, उपखण्ड 2 स्पष्टत: जोर देता है कि कर्मचारी द्वारा दी गयी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस के लिए नियुक्ति प्राधिकार द्वारा स्वीकरण आवश्यक होगा।

पंजाब लोक सेवा नियमावली के उप नियम 2.2(a) का पैरा 7 निम्नवत् पठित है :

''2.2(a) भावी सदाचार पेंशन प्रदान किये जाने के प्रत्येक मामले की एक विवक्षित शर्त है। नियुक्ति प्राधिकार अपने पास पेंशन या इसके किसी भाग को रोके रखने या वापस लेने का अधिकार सुरक्षित रखते हैं अगर पेंशनभोगी गंभीर अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाए या गंभीर कदाचार का दोषी हो। समूची पेंशन या पेंशन के किसी भाग को रोके रखने या वापस लेने के किसी प्रश्न पर इस नियम के अधीन नियुक्ति प्राधिकार का निर्णय अंतिम एवं निश्चायी होगा।''

8. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त नियम 5.32(B) का निर्वचन सामने आया। उक्त नियम में, एक प्रावधान है, जहां नियोक्ता प्राधिकार उपधारा 1 की स्थिति के अनुसार अगर विनिर्दिष्ट अवधि से सेवानिवृत्त होने की अनुमति प्रदान करने से इंकार नहीं करता है, सेवानिवृत्ति उक्त अवधि के अवसान की तिथि से प्रभावी बन जायेगी। इस प्रकार, यह नियम बिहार राज्य के नियम (झारखंड राज्य में प्रयोज्य) के सदृश हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय उपरोक्त उक्त निर्णय में पैराएँ 9,13,14 एवं 16 में यथा वर्णित विवाद से निपटते हुए निम्नवत् उत्कथित किया :

"9. सरकारी सेवकों का नियोजन नियमों द्वारा संचालित होता है। ये नियम सेवानिवृत्ति की एक विशिष्ट आयु का एक प्रावधान करते हैं। फिर भी, नियम सेवानिवृत्ति की तिथि से पहले एक कर्मचारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर देने का अधिकार सरकार को प्रदान करते हैं। बशर्ते कि कर्मचारी ने एक विशिष्ट आयु प्राप्त कर ली हो या अर्हता सेवा के वर्षों की एक विशिष्ट संख्या पूरी कर ली हो उस स्थिति में जब यह पाया जाता है कि उसकी सेवा संतोषजनक नहीं पायी गयी है। नियमावली यह भी प्रावधान करता है कि कोई कर्मचारी जिसने अपनी आयु की उक्त संख्या पूरी कर ली हो या जिसने अर्हता सेवा के वर्षों की विहित संख्या पूरी कर ली हो, वह 3 महीनों की नोटिस दे सकता है कि वह 3 महीनों की उक्त अवधि के अवसान पर सुरक्षित रूप से सेवानिवृत्त हो जायेगा। कुछ नियम ऐसी भाषा से युक्त हैं जिसके परिणामतः कर्मचारी की नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान पर कर्मचारी की स्वतः सेवानिवृत्ति हो जाती है। दूसरी ओर, कुछ अन्य विभागों में कतिपय नियम ऐसी भाषा से युक्त हैं जो यह स्पष्ट करता है कि नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान पर भी सेवानिवृत्ति अपने

आप नहीं हो जायेगी और अनुमति प्रदान करने वाला एक स्पष्ट आदेश आवश्यक है और संसूचित किया जाना है। बाद वाले नियमों में ऐसे स्वीकरण को संसूचित किये जाने तक नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के उपरांत भी स्वामी एवं सेवक का संबंध जारी रहता है, 3 महीनों के उपरांत अनुमति से इंकार भी संसूचित किया जा सकता है और कर्मचारी सेवा में बना रहता है। (1977) 4 SCC 441 में रिपोर्ट किये गये दिनेश चंद्र संगमा बनाम असम राज्य, (1978) 2 SCC 202 में रिपोर्ट किये गये बी०जे० सिलत बनाम गुजरात राज्य और (1995) Suppl. (1) SCC 76 में रिपोर्ट किये गये भारत संघ बनाम सैयद मुजफ्फर मीर जैसे मामले पहले वाली कोटि से संबंधित हैं जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अवधि के अवसान पर, स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति स्वचालित रूप से प्रभावी हो जाती है क्योंकि नोटिस अवधि के भीतर अस्वीकरण का कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। दूसरी ओर, (1996) 4 SCC 584 में रिपोर्ट किये गये एच० पी० बागवानी उत्पाद विपणन एवं प्रसंस्करण निगम लि० बनाम सुमन बिहारी शर्मा जैसा मामला द्वितीय कोटि से संबंधित हैं जहां उपनियमों का निर्वचन ''सेवानिवृत्त होने'' का एक विकल्प प्रदान करने के तौर पर नहीं किया गया बल्कि केवल सेवानिवृत्ति ''इप्सित'' करने के एक सीमित अधिकार का प्रावधान किया गया जिसका अर्थ हुआ कि नोटिस की अवधि के अवसान के उपरांत भी नियोक्ता के एक सहमति की आवश्यकता है।

10, 11, 12.....

13. इस प्रकार, पूर्वोक्त तीनों नियमों से यह स्पष्ट है कि अगर दिनेश चंद्र संगमा मामले की स्थिति के अनुसार सुसंगत नियमों द्वारा स्वैच्छिक रूप से सेवानिवृत्त होने का अधिकार आत्यंतिक रूप से प्रदत्त है और कतिपय आकस्मिकताओं में अनुमति रोके रखने का नियमों में कोई प्रावधान नहीं है, नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान पर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्वतः प्रभावी हो जाती है। तथापि, अगर, जैसा कि बी०जे० शिलत के मामले और सैयद मुजफ्फर मीर के मामले की स्थिति है, सम्बद्ध प्राधिकार को सेवा निवृत्त होने की अनुमति देने को रोके रखने की शक्ति है अगर कतिपय स्थितियाँ मौजूद हो जैसे कि कर्मचारी निलम्बन के अधीन हो या एक विभागीय जाँच लंबित हो या अनुध्यात हो, मात्र निलम्बन या विभागीय जांच का लंबित रहना या इसके अनुध्यात होने से विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान पर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के नोटिस प्रभावी न होने का परिणाम नहीं आता। जिस बात की अतिरिक्त रूप से आवश्यकता है वह यह है कि सम्बद्ध प्राधिकार के लिये सेवानिवृत्ति की अनुमति देने से रोकने वाला एक सकारात्मक आदेश पारित करना अनिवार्य है और इसे कर्मचारी को संसूचित भी करना अनिवार्य है जैसा कि बी० जे० शिलत के मामले में और सैयद मुजफ्फर मीर के मामले में कथन किया गया है और ऐसा नोटिस की अवधि के अवसान के पहले करना है। परिणामतः, कर्मचारी को नोटिस के स्वीकरण के एक आदेश को संसूचित किये जाने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही यह कहा जा सकता है कि स्वीकरण की गैर संसूचना अनुमति को रोके रखने के तुल्य मानी जानी चाहिए।

14. मामलों की द्वितीय कोटि को निर्दिष्ट करने से पहले जहां नियम स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस के एक सकारात्मक स्वीकरण एवं इसकी संसूचना को आवश्यक बनाते हैं, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रबल रूप से भरोसा किये गये (1997) 1 SCC 754 में रिपोर्ट किये गये बलजीत सिंह (डॉ.) बनाम हरियाणा राज्य में तथा (1997) 4 SCC 280 में रिपोर्ट किये गये ऊर्जा वित्त निगम लि० बनाम प्रमोद कुमार भाटिया के मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करना आवश्यक है। पहले वाला मामला पंजाब लोक सेवा नियमावली के नियम 5.32(B) के अधीन उद्भूत हुआ था। पहले प्रस्तुत किये गये इस नियम में उप नियम (2) के परंतुक में एक स्पष्ट प्रावधान अंतर्विष्ट है कि सेवानिवृत्ति स्वतः प्रभावी हो जाती है अगर 3 महीनों के भीतर

अस्वीकरण संसूचित नहीं किया जाता है। उस स्थिति में, जब कर्मचारी ने 20.9.1993 को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस दी थी, उसके विरुद्ध दांडिक मामले लंबित था। 3 महीनों के अवसान के उपरांत 25.2.1994 को सक्षम प्राधिकार ने नोटिस स्वीकार करने से इंकार कर दिया। तथापि इस न्यायालय की एक दो न्यायाधीशों वाली एक पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस अवधि के अवसान पर स्वतः प्रभावी नहीं हो जाती बल्कि यह सरकार द्वारा नोटिस के स्वीकरण पर ही प्रभावी हो सकती है और यह कि स्वीकरण अनिवार्य रूप से संसूचित भी किया जाना है और तबतक स्वामी एवं सेवक का कानूनी रिश्ता बना रहता है। इस न्यायालय ने केवल सैयद मुजफ्फर मीर के मामले में दो सदस्यीय पीठ के निर्णय को निर्दिष्ट किया था और कहा था कि मामले को केवल इसके ही तथ्यों तक सीमित रखा जाना था। बलजीत सिंह के मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों वाली पीठ के ध्यान में यह नहीं आया कि दिनेश चंद्र संगमा एवं शिलत के मामलों में 2–3 न्यायाधीशों वाली पीठ थी इसी प्रकार के नियमों के अधीन ऐसा दृष्टिकोण अपनाने वाली कि सेवानिवृत्ति की अनुमति को रोके रखने का एक सकारात्मक आदेश नोटिस अवधि के भीतर पारित किया जाना था और यह कि उक्त आदेश को उक्त अवधि के भीतर कर्मचारी को संसूचित भी किया जाना था। यह कहकर कि नोटिस के स्वीकरण का एक आदेश आवश्यक था और उक्त स्वीकरण को अनिवार्यतः कर्मचारी को संसूचित भी किया जाना था और तबतक न्यायिक संबंध जारी रहना था और 3 महीनों की अवधि के अवसान पर ये संबंध अपने आप समाप्त नहीं हो जाते थे, हमारे विचार में 2 सदस्यीय न्यायधीशों वाली पीठ 3 न्यायाधीशों वाली पीठ के निर्णयों के विरुद्ध चली गयी है जिन्हें इसके ध्यान में नहीं लाया गया था। उपरोक्त परिस्थितियों में, हमारे समक्ष प्रस्तुत मामले का निर्णय करने के लिए हम 2–3 न्यायाधीशों वाली पीठ का अनुसरण करते हैं।

15.....

16. अब हम मामलों की दूसरी कोटि पर आते हैं जहां नियम आवश्यक बनाते हैं कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति को प्रभावी बनाने के लिए नोटिस के स्वीकरण का एक आदेश पारित किया जाना होता है। इसे ध्यान में लिया जा सकता है कि एच० पी० एम० सी० बनाम सुमन बिहारी शर्मा में दिनेश चंद्र संगमा के मामले का सिद्धांत स्वीकार किया गया था परन्तु मामले को इस आधार पर अलग माना गया था कि एच० पी० एम० सी० मामले में उप नियम 3.8(2) ने भिन्न प्रावधान किया था और उस उपनियम के अधीन एक कर्मचारी को 25 वर्षों की सेवा पूरे होने पर या 50 वर्ष की आयु पर आग्रह पर सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी जा सकती थी। कथित उपनियम 3.8 का पैरा (5) निम्नवत् है : (SCC पृष्ठ 588, पैरा 7)।

"(5) उपरोक्त पैरा 2 के अधीन प्रावधान के बावजूद निगम के ऐसे कर्मचारी भी, जिनका 20 वर्षों का एक संतोषजनक सेवा इतिहास रहा है, यथोचित प्राधिकार को लिखित में 3 महीनों की नोटिस देने के उपरांत निगम की सेवा से निवृत्ति इप्सित कर सकते हैं। निलम्बन के अधीन व्यक्ति इस खंड के अधीन सेवानिवृत्त नहीं किये जाएंगे जबतक कि उनके विरुद्ध मामले की कार्यवाही को अंतिम रूप न दिया जाए।

9. इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अगर कोई संसूचना प्राप्त नहीं की गयी है, याची को सेवा से निवृत्त माना जायेगा। अपने पूर्व के निर्णयों में परिचर्चा किये गये निर्णयाधार पर विवेचना करते हुए, जो पूर्व के निर्णय मेरे समक्ष प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्दिष्ट किये गये थे उनका उपरोक्त निर्णय के पैरा 4 में पहले ही निपटारा किया जा चुका है।

10. यह मामला पुनः **(2001) 3 SCC 290** में रिपोर्ट किये गये **टेक चंद बनाम दिलेराम** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया जिसमें निक्का राम अपने नामांकन पत्र के दाखिले एवं संवीक्षा के दिन सरकार का एक कर्मचारी था। इस प्रकार मामला मूलतः चुनाव याचिका से संबंधित था और इस संबंध में एक प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या निक्का राम राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद

धारण किये हुए था। निक्का राम ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने के लिए 5.12.1994 को 3 महीने की एक नोटिस का तामीला किया। उसने आग्रह किया कि उसे 28.2.1995 के प्रभाव से सेवा निवृत्त कर दिया जाए। उसने उक्त तिथि को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का एक आवेदन अधीक्षण अभियंता, सिंचाई विभाग के समक्ष रखा। उक्त आवेदन 3 महीनों की एक नोटिस इंगित करता था इस आग्रह के साथ कि उसे 28.2.1995 के प्रभाव से सेवानिवृत्त होने की अनुमति दी जाए। तदनुसार, प्रत्यर्थीगण ने विधायक के पद पर चुनाव को चुनौती देते हुए एक चुनाव याचिका दाखिल किया कि निक्का राम की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति तब तक सरकार द्वारा स्वीकार नहीं की गयी थी और निक्का राम को सरकारी सेवा में बना रहा माना जायेगा और निक्का राम का उक्त आग्रह 26.3.1998 को अस्वीकार कर दिया गया था। इस प्रकार, यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या निक्का राम को 28.2.1995 के प्रभाव से राज्य सरकार की सेवा से निवृत्त माना जाएगा। यह मामला हिमाचल प्रदेश के नियम 48-A से संबंधित है। हिमाचल प्रदेश लोक सेवा नियमावली निम्नवत् पठित है:

"31. यह विवादित नहीं है कि नियोक्ता प्राधिकार ने निक्का राम द्वारा दिये गये दिनांक 5.12.1994 के उक्त आवेदन में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान से पहले सेवानिवृत्ति की अनुमति प्रदान करने से इंकार नहीं किया था। इसके अलावा, उक्त अवधि के भीतर उसे किसी भी प्रकार की संसूचना नहीं दी गयी थी। उच्च न्यायालय के समक्ष जिरह के अनुक्रम में, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने निःसंदेह स्वयं अपनी व्याख्या रखते हुए नियमावली के नियम 48-A को निर्दिष्ट किया। चूँकि उक्त नियम तात्विक है और अभिनिर्धारित किये जाने वाले प्रश्न पर प्रभाव रखता है, इसे नीचे प्रस्तुत किया गया है:

*"48-A **20 वर्षों की अर्हता सेवा के समापन पर सेवानिवृत्ति.**-(1) किसी भी समय एक सरकारी सेवक 20 वर्षों की अर्हता सेवा पूरी कर लेने के उपरांत नियोक्ता प्राधिकार को लिखित में कम से कम 3 महीनों की नोटिस देकर सेवानिवृत्त हो सकता है:*

परन्तु यह कि यह उपनियम वैज्ञानिक या तकनीकी विशेषज्ञ समेत एक ऐसे सरकारी सेवक पर लागू नहीं होगा जो-

(i) विदेशी मामलों के मंत्रालय के भारतीय तकनीकी एवं आर्थिक सहयोग (ITEC) कार्यक्रम के अधीन तथा अन्य सहायता कार्यक्रमों के अधीन कार्यों में संलग्न है।

(ii) मंत्रालयों/विभागों के विदेश आधारित कार्यालयों में विदेश में पदस्थापित है।

(iii) एक विदेशी सरकार के एक विनिर्दिष्ट संविदात्मक कार्य भार पर है, जबतक कि भारत में स्थानांतरित कर दिये जाने के उपरांत उसने भारत में पद का कार्यभार संभाल नहीं लिया हो और 1 वर्ष से अधिक की अवधि तक कार्य न किया हो।

(2) उपनियम (1) के अधीन दी गयी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस के लिए नियुक्ति प्राधिकार द्वारा स्वीकरण आवश्यक होगा:

परन्तु यह कि जहां नियुक्ति प्राधिकार उक्त नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान के पहले सेवानिवृत्ति के लिए अनुमति प्रदान करने से इंकार नहीं करता है, सेवानिवृत्ति उक्त अवधि के अवसान की तिथि से प्रभावी बन जाएगी।"

11. यह नियम 48-A, उपखंड 1 स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने के लिए अर्हता सेवा एवं अन्य शर्त का भी प्रावधान करता है। उपखण्ड 2 प्रावधान करता है कि खंड 1 के अधीन दी गयी स्वैच्छिक सेवा की नोटिस के लिए नियुक्ति प्राधिकार द्वारा स्वीकरण आवश्यक होगा और उक्त खंड में एक परंतुक

जुड़ा है कि अगर नियुक्ति प्राधिकार उक्त नोटिस में अवधि के अवसान के पहले स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए अनुमति प्रदान करने से इंकार नहीं करता है, सेवानिवृत्ति उक्त अवधि के अवसान की तिथि से प्रभावी बन जायेगी। इस प्रकार, खंड 2 भी उपरोक्त नियम 74(b) एवं बिहार राज्य द्वारा निर्गत परिपत्र (झारखंड राज्य में प्रयोज्य) के भी सदृश्य है। उक्त नियम के परिशीलन से, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि नियुक्ति प्राधिकार के लिए उक्त खंड 1 के लिए दी गयी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस को स्वीकार करना आवश्यक है। नियुक्ति प्राधिकार के लिए उसे उपलब्ध किसी भी आधार पर इंकार करने का भी विकल्प खुला है, परन्तु ऐसा अस्वीकरण नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान से पहले किया जाना है, जैसा कि उपनियम 2 के परंतुक से स्पष्ट है। अगर नियुक्ति प्राधिकार उक्त नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान से पहले सेवानिवृत्ति की अनुमति प्रदान करने से इंकार नहीं करता है, इप्सित सेवानिवृत्ति उक्त अवधि के अवसान की तिथि से प्रभावी बन जाती है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि स्वीकार्यत: नियुक्ति प्राधिकार ने दिनांक 5.12.1994 की नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान के भीतर सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने से इंकार नहीं किया था, अत: माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि निक्का को 28.2.1995 के प्रभाव से सेवानिवृत्त माना जायेगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय के पैराएँ 33, 34 एवं 35 में निम्नवत् अभिनिर्धारित किया।

> *"33. नियम के उप-नियम (2) से यह स्पष्ट है कि नियुक्ति प्राधिकार के लिए उपनियम (1) के अधीन दी गयी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस स्वीकार करना अपेक्षित है। नियुक्ति प्राधिकार के लिए इससे उपलब्ध किसी भी आधार पर इंकार करने का भी विकल्प खुला है, परन्तु नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान के पहले ऐसा इंकार किया जाना है। उपनियम (2) का परंतुक स्पष्ट है और अपने निबंधनों में निश्चित है। अगर नियुक्ति प्राधिकार उक्त नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान के पहले सेवानिवृत्ति के लिए अनुमति प्रदान करने से इंकार नहीं करता है, इप्सित सेवानिवृत्ति उक्त अवधि के अवसान की तिथि से प्रभावी बन जाती है। इस मामले में, स्वीकार्यत:, नियुक्ति प्राधिकार ने दिनांक 5.12.1994 की नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान के पहले निक्का राम की सेवानिवृत्ति के लिए अनुमति प्रदान करने से इंकार नहीं किया था। प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने तर्क रखा कि सभी मामलों में नियुक्ति प्राधिकार द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का स्वीकरण आज्ञापक होता है। ऐसे स्पष्ट स्वीकरण की अनुपस्थिति में सरकारी सेवक सेवा में बना रहता है। इस निवेदन के समर्थन में, उन्होंने हमारा ध्यान मौलिक नियमावली के नियम 56(K) की ओर आकर्षित किया। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि स्वीकरण एक बाद की तिथि पर भी हो सकता है, यानी की, नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान भी और सेवानिवृत्ति नोटिस में विनिर्दिष्ट तिथि से प्रभावी हो सकती है। चूँकि नियम 48-A के उपनियम (2) का परंतुक अपने आप में स्पष्ट है और उक्त नियम 48-A स्वपरिपूर्ण है, हमारे विचार में अन्य प्रावधानों की ओर देखना अनावश्यक है, विशेषकर, इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के आलोक में। यह तर्क कि नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान की तिथि के काफी उपरांत भी स्वीकरण हो सकता है। और यह कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस में विनिर्दिष्ट तिथि से प्रभावी बन सकती है, एक विसंगतिपूर्ण स्थिति की ओर ले जायेगा। एक मामले पर विचार करते हैं, अगर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन नोटिस में विनिर्दिष्ट तिथि से कुछ वर्ष उपरांत स्वीकार किया जाता है और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस अवधि के ही अवसान की तिथि से प्रभावी बन जाती है, तो नोटिस अवधि के अवसान की तिथि से नियोक्ता प्राधिकार द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के स्वीकरण की तिथि*

तक की अवधि के दौरान ऐसे सरकारी सेवक की क्या स्थिति या दर्जा होगा? कोई या तो सेवा में बना रहता है या सेवा में नहीं बना रहता है। ऐसा नहीं हो सकता कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस में उल्लिखित अवधि के अवसान की तिथि से प्रभावी हो सकती है और फिर भी एक सरकारी सेवक स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्वीकार किये जाने तक सेवा में बना रह सकता है। नियम 48-A के उपनियम (2) का परंतुक ऐसी स्थिति को स्वीकार करता है।

34. इस न्यायालय ने (1999) 4 SCC 293 में रिपोर्ट किये गये हरियाणा राज्य बनाम एस० के० सिंघल के मामले में इस न्यायालय के कुछ पूर्वीक निर्णयों को निर्दिष्ट करने के उपरांत हाल के ही एक निर्णय में विवाद के इसी बिन्दु को स्पष्ट करते हुए निर्णय के पैरा 13 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया हैः (SCC पृष्ठ 303)

"13. इस प्रकार, पूर्वोक्त तीनों निर्णयों से यह स्पष्ट है कि अगर सुसंगत नियमों द्वारा दिनेश चंद्र संगमा बनाम असम राज्य, (1977) 4 SCC 441 की स्थिति के अनुसार स्वैच्छिक रूप से सेवानिवृत्त होने का अधिकार आत्यंतिक निबंधनों में प्रदत्त है और कतिपय आकस्मिकताओं में अनुमति रोके रखने के लिए नियमों में कोई प्रावधान नहीं है। तब स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान पर अपने आप प्रभावी हो जाती है। तथापि, अगर, जैसा कि बी०जे० शिलत के मामले और सैयद मुजफ्फर मीर के मामले में दिखाया गया है, संबद्ध प्राधिकार अनुमति रोके रखने में सशक्त है। अगर कतिपय स्थितियां विद्यमान हो, जैसे कि कर्मचारी के निलम्बन के अधीन होने की स्थिति में या एक विभागीय जांच के लंबित रहने या अनुध्यात होने की स्थिति में, मात्र निलम्बन या विभागीय जांच के लंबित रहने या इसके अनुध्यात होने से विनिर्दिष्ट अवधि के अवसान पर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की नोटिस का अप्रभावी हो जाने का परिणाम उत्पन्न नहीं हो जाता। जिस और बात की आवश्यकता है वह यह है कि सम्बद्ध प्राधिकार को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त होने की अनुमति रोकते हुए एक सकारात्मक आदेश पारित करना है और नोटिस अवधि के अवसान के पहले इसे अनिवार्य रूप से कर्मचारी को भी संसूचित करना है जैसा कि बी०जे० सिलत के मामले और सैयद मुजफ्फर मीर के मामले में कहा गया है। परिणामतः, नोटिस के स्वीकरण के एक आदेश को कर्मचारी को संसूचित किये जाने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही ऐसा कहा जा सकता है कि स्वीकरण को संसूचित नहीं किये जाने को अनुमति देने के तुल्य माना जाना चाहिए।"

35. हमारे विचार में, यह निर्णय इस संबंध में अपीलार्थी की ओर से रखे गये तर्क का पूर्णतः समर्थन करता है। इस निर्णय में, यह संपरीक्षित किया गया है कि नोटिस के उपरांत स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने से संबंधित नियमों की कोटियां हैं। पहली कोटि में, नोटिस अवधि के अवसान पर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति अपने आप प्रभावी हो जाती है। दूसरी कोटि में भी, सेवानिवृत्ति प्रभावी हो जाती है जब तक कि सेवानिवृत्ति की अनुमति रोके रखने का एक आदेश नोटिस अवधि के दौरान पारित न कर दिया जाए और तीसरी कोटि में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति प्रभावी नहीं होती है जबतक कि सक्षम प्राधिकार द्वारा इस प्रभाव की अनुमति प्रदान न की जाए। ऐसी स्थिति में, अनुमति से इंकार करने का नोटिस अवधि के अवसान के उपरांत भी संसूचित किया जा सकता है। यह सब कुछ सुसंगत नियमों पर निर्भर करता है। निर्णित मामले में, सुसंगत नियम नियुक्ति प्राधिकार द्वारा नोटिस का स्वीकरण आवश्यक बनाता है और नियम के परंतुक ने यह भी अभिकथित किया था कि सेवानिवृत्ति अपने आप प्रभावी हो जायेगी अगर नोटिस अवधि के दौरान नियुक्ति प्राधिकार ने अनुमति से इंकार नहीं किया था। अस्वीकरण नोटिस अवधि के दौरान प्रत्यर्थी को संसूचित नहीं किया गया था और न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि नोटिस अवधि के अवसान पर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति प्रभावी हो जाती हैं और उसे संसूचित आदेश कि उसे स्वैच्छिक रूप से

सेवानिवृत नहीं माना जा सकता था। कोई प्रभाव नहीं रखता था। वर्तमान मामला लगभग पूरी तरह पूर्वोक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा निर्णित मामले के सदृश है।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2009) 10 SCC 518** में रिपोर्ट किये गये **पाडुबिदरी दामोदर शिनाय बनाम इंडियन एअरलाईन्स लिमिटेड** के मामले में यही दृष्टिकोण दोहराया है।

13. यह विवाद रिट याचिका सेवा संख्या 3079 वर्ष 2004 में भी इस न्यायालय के समक्ष उठा था। न्यायालय की सहवर्ती पीठ ने भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के आलोक में याची के पक्ष में प्रश्न का निर्णय किया।

14. विधि की उपरोक्त प्रतिपादनाओं के विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति तीन कोटियों के अंतर्गत आती है। प्रथमत:, क्या स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति नोटिस की अवधि के अवसान पर अपने आप प्रभावी हो जाती है। द्वितीयत:, क्या स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति अवधि के अवसान पर प्रभावी हो जाती है जबतक कि सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने को रोकने वाला एक आदेश नोटिस अवधि के भीतर पारित न कर दिया जाए और तृतीयत:, क्या स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति प्रभावी नहीं होती जबतक कि नियंत्रक प्राधिकार द्वारा इस प्रभाव की अनुमति प्रदान न कर दी जाए। प्रथम दो कोटियों के मामले **एस॰ के॰ सिंघल** एवं **टेक चंद के मामले (ऊपर)** हैं जबकि तीसरी कोटि में **बी॰ जे॰ शिलत (ऊपर)** का मामला आता है। प्रथम दो मामलों में, स्वत: सेवानिवृत्ति के लिए प्रावधान था अगर प्रत्यर्थीगण से कोई प्रतिकूल संसूचना प्राप्त नहीं की गयी है। तीसरी कोटि के मामलों से **पी॰ डी॰ शिनाय के मामले (ऊपर)** में निपटा गया है जहां नियम बिल्कुल विनिर्दिष्ट थे कि प्रत्यर्थीगण-नियोक्ता द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्तियों को स्वीकार किया जाना था और प्राधिकार द्वारा असंसूचना की स्थिति में सेवानिवृत्ति को न मानने का कोई प्रावधान नहीं था जैसा कि मामले के प्रथम दोनों कोटियों में प्रावधान किया गया था।

15. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **2006(7) SCC 666** में रिपोर्ट किये गये **न्यास बोर्ड, विशाखापटनम पत्तन न्यास एवं अन्य बनाम टी॰ एस॰ एन॰ राजू एवं एक अन्य** के मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया। विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार रूप से उक्त निर्णय में किये गये संपरीक्षण पर भरोसा किया कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना एक प्रस्ताव या एक पेशकश नहीं थी बल्कि यह केवल कर्मचारियों द्वारा आवेदन दाखिल करने का एक आमंत्रण थी। इसे नियोक्ता द्वारा अनिवार्यत: स्वीकार किया जाना चाहिए था और तत्पश्चात् उक्त प्रस्ताव पर कार्रवाई की जा सकती है।

16. इस मामले में, VRS योजना के अधीन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने के लिए न्यास बोर्ड, विशाखापटनम के समक्ष अपीलार्थी द्वारा एक पत्र दिया गया था। यह अनुभव किया गया था कि उक्त बंदरगाह में अतिरेक जनशक्ति थी और VRS योजना को लागू किया जाना चाहिए और VRS के लिए एक पत्र निर्गत किया गया था। विद्वान अधिवक्ता परिपत्र से यह नहीं दर्शा सके कि बिहार पेंशन नियमावली के नियम 74(b) एवं परंतुक के परिपत्र के सदृश एक धारणा प्रावधान है या जिसका पंजाब लोक सेवा नियमावली 5.32 (2) में या हिमाचल प्रदेश सिविल सेवा नियमावली 48(B)(2) में प्रावधान किया गया है। VRS योजना केवल यह प्रावधान करती है कि अगर बंदरगाह का कोई कर्मचारी, जिसने अर्हता सेवा पूरी कर ली हो, VRS इप्सित करने के लिए आवेदन कर सकता है और इसे स्वीकार करने या न करने का अधिकार प्रत्यर्थीगण को था। इस प्रकार, यह उपरोक्त यथा प्रगणित तीसरी कोटि के भीतर आता है। VRS योजना के अनुसार स्वीकरण या इन्कार से संबंधित एक विनिर्दिष्ट आदेश की आवश्यकता थी। इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि VRS इप्सित करने का आग्रह एक प्रस्ताव है और इस पर केवल तभी कार्रवाई की जा सकती है जब पत्तन न्यास द्वारा इसे स्वीकार कर लिया जाए।

प्रस्तुत मामले में एक धारणा प्रावधान है कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्वत: प्रभावी हो जाती है अगर अनुबद्ध अवधि के भीतर प्रत्यर्थीगण से कोई प्रतिकूल आदेश प्राप्त नहीं किया जाता है। इस प्रकार, यह निर्णय इस मामले में लागू नहीं होता है।

17. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता इस पर बल देने का प्रयास करते हैं कि परिपत्र अनुध्यात करता है कि अगर अर्हता सेवा के 20 वर्ष के उपरांत कर्मचारी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने के लिए अपनी नोटिस जमा करता है, नियुक्ति प्राधिकार का अनुमोदन आवश्यक होता है जिसे उक्त आदेश के उपखंड 7 में प्रावधान किया गया है, याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस तर्क का खंडन किया और तर्क रखा कि खंड 7 परंतुक 2 में जोड़ा गया परंतुक इस पर स्पष्ट है कि नोटिस के अस्वीकरण या अनुमोदन के बारे में प्रत्यर्थीगण से कोई संसूचना प्राप्त न होने की स्थिति में कर्मचारी को सेवानिवृत्त माना जाएगा बशर्ते कि नोटिस अवधि की तिथि से पहले सक्षम प्राधिकार द्वारा कोई प्रतिकूल आदेश पारित न किया जाए। सेवानिवृत्ति की तिथि उसमें उल्लिखित तिथि से प्रभावी मानी जायेगी। मैंने **श्री सिंघल, (ऊपर)** एवं **टेक चंद (ऊपर)** के मामले में ऊपर परिचर्चा की है, दोनों मामलों में यह प्रावधान था कि स्वीकरण आवश्यक था। उक्त खंड के साथ एक ऐसा परंतुक भी था कि अगर नोटिस अवधि के भीतर नियोक्ता द्वारा इससे इंकार नहीं किया जाता है, सेवानिवृत्ति उक्त अवधि के अवसान की तिथि से प्रभावी बन जायेगी। बिहार नियम उपरोक्त नियमों के सदृश है। माननीय न्यायालय ने मामले के उक्त पहलु पर विचार किया और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सामान्य नियम यह है कि अनुमोदन आवश्यक होता है जहां एक ऐसा परंतुक हो जो याची या कर्मचारी के पक्ष में एक ऐसा स्वीकरण प्रदान करता है कि अगर कोई प्रतिकूल संसूचना प्राप्त नहीं की जाती है, कर्मचारी को नोटिस के अवसान की तिथि से सेवानिवृत्त माना जाएगा। विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि परंतुक का प्रकार्य अपवाद करना होता है और एक ऐसी स्थिति से निपटना होता है जो अन्यथा मुख्य अधिनियमन की सामान्य भाषा के भीतर आयेगी, और इसका प्रभाव उस स्थिति तक सीमित रहने का होता है। एक परंतुक का उचित प्रकार्य यह है कि एक अपवाद का प्रावधान करके यह मुख्य अधिनियमन की व्यापकता को विशेषित करता है और मुख्य अधिनियमन से एक हिस्से को इस प्रकार बाहर करता है जो परंतुक न होने के कारण मुख्य अधिनियमन के भीतर आता। सामान्यत: परंतुक के उपयुक्त प्रकार्य का इस प्रकार पठित किया जाना कि यह एक युक्ति का प्रावधान करके किसी बात का प्रावधान करता है या एक ऐसे विषय से संबंधित है जो मुख्य अधिनियमन के बाहर है, असंगत है। **1992 Supp. (1) SCC 304** में रिपोर्ट किये गये **ए॰एन॰ सेहगल बनाम राजा राम सोरन** में पैराएँ 14 एवं 15 में निम्नवत् अभिनिर्धारित किया गया है:

> *14. निर्वचन का यह आधारभूत नियम यह है कि एक संविधि के एक विशिष्ट प्रावधान का एक परंतुक केवल उसी क्षेत्र से संबंधित होता है जो मुख्य प्रावधान द्वारा आच्छादित है। यह मुख्य प्रावधान का एक अपवाद प्रस्तुत करता है जिसके लिए इसे परंतुक द्वारा अधिनियमित किया गया है और किसी अन्य का नहीं। एक परंतुक का उपयुक्त प्रकार्य अपवाद करना और एक ऐसी स्थिति से निपटना है जो अन्यथा मुख्य अधिनियमन की सामान्य भाषा के भीतर आती, और इसका प्रभाव उस मामले तक सीमित रहने का होता है। जहां मुख्य अधिनियमन की भाषा स्पष्ट एवं संदेहरहित है, परंतुक का मुख्य अधिनियमन के निर्वचन पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं होगा इस प्रकार की विवक्षा द्वारा इससे कुछ ऐसा अपवर्जित हो जाए जो स्पष्ट रूप से इसके अभिव्यक्ति निबंधनों के भीतर आता हो।*
>
> *15. अतएव, परंतुक की परिधि मुख्य अधिनियम का एक अपवाद तैयार करना है और यह किसी ऐसी चीज को अपवर्जित करता है जो अन्यथा नियम के भीतर आती है। इसे उसी क्षेत्र में कार्य करना होता है और अगर मुख्य अधिनियमन की भाषा स्पष्ट है, परंतुक को मुख्य अधिनियमन से अलग नहीं किया जा सकता और न ही विवक्षा*

द्वारा शून्यकृत करने के लिए इसका इस्तेमाल किया जा सकता है जो अधिनियम स्पष्ट रूप से कहता है और न ही मुख्य अधिनियमन के वास्तविक उद्देश्य को प्रभावहीन कर सकता है जबतक कि परंतुक के शब्द ऐसे हो कि यही इसका आवश्यक प्रभाव हो।

टेक चंद (ऊपर) में, पैरा 37 में निम्नवत् अभिनिर्धारित किया गया है:

"37. अगर हम प्रत्यर्थी के विद्वान वरीय अधिवक्ता का तर्क स्वीकार करते हैं, तो अगर नोटिस में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति से अस्वीकृति संसूचित नहीं किया जाता है, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति प्रभावी नहीं हो सकती जबतक कि नियुक्ति प्राधिकार द्वारा इसे स्वीकार नहीं किया जाए, और नियम 48A के उपनियम (2) के परंतुक को कोई अर्थ या प्रभाव नहीं प्रदान किया जा सकता। अर्थान्वयन का यह बुनियादी सिद्धांत है कि एक संविधि या एक नियम की प्रावधानों की व्याख्या करने में किसी भी शब्द या प्रावधान को अनुपयोगी या निरर्थक नहीं माना जाना चाहिए।

उपरोक्त की दृष्टि में, मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में कोई बल नहीं पाता हूँ।

18. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क रखा कि याची का दावा मात्र 27.4.1979 के कार्यकारी अनुदेश पर आधारित है और संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन बनाये गये नियम पर नहीं। यह नियोक्ता को कोई वैधानिक अधिकार प्रदान नहीं करता। याची के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क का खंडन किया।

19. विधि की यह स्थापित स्थिति है कि जहां संविधान के अनुच्छेद 309 के अधीन विरचित नियम में एक अंतराल हो, राज्य सरकार या संघ सरकार द्वारा परिपत्र या कार्यकारी आदेश निर्गत किये जा सकते हैं। यह भी विधि की स्थापित स्थिति है कि कार्यकारी अनुदेश केवल नियमों द्वारा आच्छादित नहीं किये गये अंतरालों को भर सकते हैं और सांविधिक नियमों का अल्पीकरण नहीं कर सकते। मैं विनिर्दिष्ट रूप से राज्य के विद्वान अधिवक्ता से यह जानना चाहता हूं कि क्या दिनांक 27.4.1979 का परिपत्र, जो कर्मचारी को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने में सशक्त बनाता है, सांविधिक नियमों का अल्पीकरण करता है या यह सांविधिक नियम में योग के तौर पर है। राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि उक्त अनुदेश अल्पीकरण के लिए नहीं है और यह नियम के वर्धन के लिए है। इसे भी नोट किया जाए कि संविधान में निहित प्रस्तावना और संविधान में अंतर्विष्ट अनुच्छेद प्रतिबिम्बित करते हैं कि राज्य एक कल्याणकारी राज्य है, अत: सभी नियम एवं विनियमनों तथा परिपत्रों, जो कर्मचारी के पक्ष में प्राधिकारों को शक्ति प्रदान करते हैं, का इस प्रकार पठन किया जाना चाहिए कि ये इस विषय में कल्याण के संबंध में शक्ति प्रदान करते हैं और इनका संविधान के अनुरूप पठन किया जाना चाहिए। यह विवादित नहीं है कि राज्य ने उसी समय उक्त परिपत्र निर्गत किया है, राज्य तर्क दे रहा है कि वह उक्त परिपत्र द्वारा आबद्ध नहीं है अपितु वे यह कह रहे हैं कि याची उक्त परिपत्र का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। प्रथमत:, क्या इस प्रक्रम पर राज्य ऐसा अभिवाक् ले सकता है इसमें मुझे संदेह है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **(2009) 13 SCC 758** में रिपोर्ट किये गये **स्वर्ण सिंह चंद बनाम पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य** के मामले में, जिसमें अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिये मार्गनिर्देश अधिकथित करते हुए वर्ष 1981 में सरकार द्वारा परिपत्र निर्गत किया गया था, अभिनिर्धारित किया था कि राज्य को सेवाओं से कर्मचारियों को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करते समय उक्त मार्ग निर्देशों का अनुसरण करना है।

20. विधि की यह स्थापित स्थिति है कि जब राज्य कर्मचारी के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए नियमावली अधिकथित कर रहा है, इसके लिए इनका पूर्ण रूप से पालन करना अनिवार्य है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि राज्य द्वारा निर्गत मार्गनिर्देश इस पर बाध्यकारी होते हैं; उस मामले में अपीलार्थी, जिसे अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त होने का निर्देश दिया गया था, के संबंध

में राज्य को मार्ग निर्देशों का अनुपालन करना था और इस प्रकार आदेश निरस्त कर दिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य बनाम संजय ठाकरे एवं एक अन्य,** जो **1995 Supp. 2 SCC 407** में रिपोर्ट किया गया था, के मामले में पैरा 7 में जो अभिनिर्धारित किया है वह निम्नवत् अधिकथित है:

"7. श्री भंडारे का यह तर्क कि सम्बद्ध प्रावधान कोई सांविधिक बल न रखने वाले कार्यकारी अनुदेश हैं और जिनके कारण राज्य निर्णयाधार से विचलित हो सकता है, तर्क से रहित हैं और खारिज किये जाने योग्य है। इस तथ्य के अलावा कि इसका तथ्यपरक रूप से अभिवाक् एवं प्रतिवाद अधिकरण के समक्ष नहीं किया गया था, राज्य द्वारा निर्णयाधार अधिकथित कर दिये जाने से, यद्यपि यह कार्यकारी अनुदेशों द्वारा ही क्यों न हो, राज्य के पास यह तर्क रखने का आधार नहीं रह गया है कि अनुदेशों में सांविधिक बल न होने के कारण से विचलन किया जा सकता है।"

इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण का उपरोक्त तथ्य टिकने योग्न नहीं है।

21. यह भी स्वीकार किया गया है कि उक्त परिपत्र सामान्य नियम का अल्पीकरण नहीं है और यह प्राधिकारों को उन कर्मचारियों को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का लाभ प्रदान करने में सशक्त बनाता है जिन्होंने 20 वर्षों की अर्हता सेवा पूरी कर ली हो। इस प्रकार, अर्हता सेवा को शिथिल करके उक्त परिपत्र द्वारा ड्यूटी पर 21 वर्ष और 25 वर्ष की सेवा से 20 वर्ष की सेवा कर दिया गया था। बिहार पेंशन नियमावली के उक्त नियम 74(b) का कार्यक्षेत्र व्यापक कर दिया गया था। यह नहीं कहा जा सकता कि परिपत्र नियम का अल्पीकरण है। वस्तुत:, यह नियम 74(b) का वर्धन है। इस संबंध में, मामला **(1998) 2 SCC 109** में रिपोर्ट किये गये **नागा जन मानव अधिकार आंदोलन बनाम भारत संघ** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के समक्ष आया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मुद्दे से निपटते हुए अभिनिर्धारित किया है कि अधीनस्थ विधान एवं कार्यकारी अनुदेश निर्गत किये जाने पर सांविधिक प्रावधान में अंतरालों को भर सकते हैं। कतिपय अनुदेश केन्द्र सरकार द्वारा सशस्त्र बलों को कुछ करने एवं न करने को लेकर निर्गत किये गये थे और इसे चुनौती दी गयी थी कि इन अनुदेशों में सांविधिक बल नहीं थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैरा 53 में सभी करने वाले कार्यों एवं न करने वाले कार्यों को प्रगणित किया है और पैराएँ 55 से 58 में जो अभिनिर्धारित किया है वह निम्नवत् उत्कथित है:

"55. विद्वान महान्यायवादी ने निवेदन किया है कि ये अनुदेश सशस्त्र बलों में एक पदाधिकारी को केन्द्रीय अधिनियम के अधीन प्रदत्त शक्तियों के दुरुपयोग या अनुपयोग के विरुद्ध एक प्रभावी नियंत्रण उपलब्ध कराते हैं क्योंकि इन अनुदेशों का उल्लंघन सेना अधिनियम, 1950 की धाराएँ 41, 42(e) 63 एवं 64(f) के अधीन दंडनीय है।

56. (1977) 4 SCC 345 में रिपोर्ट किये गये उत्तर प्रदेश राज्य बनाम चंद्र मोहन निगम में इस न्यायालय ने अखिल भारतीय सेवाओं (मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभ) नियमावली, 1958 के नियम 16(3) की वैधता पर विचार करते हुए, जिसने अखिल भारतीय के सेवा के एक सदस्य को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने में केन्द्र सरकार को सशक्त बनाया था, सरकार द्वारा निर्गत अनुदेशों को ध्यान में रखा और संपरीक्षित किया : (SCC पृष्ठ 355, पैरा 26)

"चूँकि नियम 16(3) अपने आप में किसी मार्ग निर्देश, निर्देश या मापदंड अंतर्विष्ट नहीं करता, सरकार द्वारा निर्गत अनुदेश नियम को लागू करने में एकरूपता प्राप्त करने के उद्देश्य के लिए एक आवश्यक तथा प्रशंसनीय प्रक्रिया उपलब्ध कराते हैं। यह अनुदेश वास्तव में प्रावधानों में लंबे-लंबे अंतरालों को भरते हैं और सेवा की शर्तों में निहित हैं। यह सरकार पर बाध्यकारी हैं और सरकारी सेवक को हानि पहुंचाते हुए इनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता।"

57. सर्वोच्च न्यायालय एडवोकेट ऑन रिकार्ड संघ बनाम भारत संघ के मामले, जो (1993) 4 SCC 441 में रिपोर्ट किया गया था, में हममें से एक न्यायमूर्ति वर्मा, (जो कि उस समय विद्वान मुख्य न्यायाधीश थे), ने यह इंगित करने के उपरांत कि वास्तविक परिपाटी में उच्चतर न्यायाधीशों के मामले में वास्तविक जवाबदेही भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की है और कार्यपालिका की नहीं, बहुमत के लिए बोलते हुए कहा है : (SCC पृष्ठ 694, 695 पैरा 455)।

''455. अगर यह उच्चतर न्यायाधीशों की नियुक्तियों से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों की वास्तविक परिपाटी में स्थिति हैं जहां स्वयं कार्यपालिका ऐसा मत रखती है कि यह भारत के मुख्य न्यायाधीश को प्रमुखता प्रदान करती है और जवाबदेही के मामले में भी यह भारत के मुख्य न्यायाधीश का प्राथमिक उत्तरदायित्व इंगित करती है, यह तर्क के अुनसार है कि वास्तविक परिपाटी को संवैधानिक योजना के संगत होने के कारण अनुज्ञेय संवैधानिक निर्वचन द्वारा वैधानिक स्वीकृति भी प्रदान कर दी जाए।''

"58. ''करने वाले कार्यों या न करने वाले कार्यों'' के रूप में अनुदेशों, जिनको विद्वान न्यायवादी द्वारा निर्दिष्ट किया गया है, को बाध्यकारी अनुदेशों के तौर पर माना जाना होगा जिनका केन्द्रीय अधिनियम के अधीन शक्तियों का इस्तेमाल करने में सशस्त्र बलों के सदस्यों द्वारा अनुपालन किया जाना आवश्यक है और अनुदेशों के उल्लंघन को गंभीर रूप से लिया जाना चाहिए और ऐसे उल्लंघन के लिए पाये गये उत्तरदायी व्यक्ति को सेना अधिनियम, 1950 के अधीन उपयुक्त रूप से दंडित किया जाना चाहिए।''

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि करने वाले कार्य और न करने वाले कार्य सरकार द्वारा बनाये गये हैं और इन्हें एक बाध्यकारी अनुदेश माना जाना होगा जिनका केन्द्रीय अधिनियम के अधीन शक्ति का इस्तेमाल करने वाले सशस्त्र बलों के सदस्यों द्वारा अनुपालन किया जाना आवश्यक हैं और ऐसे अनुदेश के उल्लंघन को गंभीरता से लिया जाना चाहिए तथा जिम्मेदार पाये गये व्यक्तियों को दंडित किया जाना चाहिए। उपरोक्त की दृष्टि में, मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में कोई बल नहीं पाता।

23. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति इप्सित करने के लिए उक्त नोटिस का तामिला क्षेत्रीय निदेशक को किया गया था जो याची का नियुक्ति प्राधिकार नहीं था। इसे अनिवार्यत: नियुक्ति प्राधिकार को दिया जाना था। उन्होंने यह भी तर्क रखा कि जब उक्त नोटिस को क्षेत्रीय निदेशक से प्राप्त करने के उपरांत निदेशक–नियुक्ति प्राधिकार द्वारा प्राप्त किया गया था, निदेशक द्वारा 3 महीनों के भीतर उक्त प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस तर्क का खंडन किया और उपरोक्त यथा निर्दिष्ट नियमों पर भरोसा किया। परिपत्र में, यह प्रावधान नहीं किया गया है कि इसे अनिवार्य रूप से नियुक्ति प्राधिकार को दिया जाना है या सुपुर्द किया जाना है। परिपत्र प्रावधान करता है कि इसे सक्षम प्राधिकार को सौंपा जाना चाहिए न कि नियुक्ति प्राधिकार को। जब क्षेत्रीय निदेशक को नोटिस दी गयी थी, इसे निदेशक, पशुपालन को भेज देना उनका कर्त्तव्य था। सरकारी आचरण नियम सरकारी कर्मचारियों के लिए भी आज्ञापक होता है कि अगर उच्चतर प्राधिकारों को कोई संसूचना दी जाती है, वह इसे अपने निकटस्थ उच्चतर पदाधिकारी के माध्यम से भेजेगा जो अपनी ओर से इसे उच्चतर प्राधिकार को अग्रसारित करेगा। चूँकि, उक्त संसूचना सक्षम प्राधिकार द्वारा प्राप्त की गयी थी, यह उक्त परिपत्र का प्रर्याप्त अनुपालन है। इस प्रकार, उपरोक्त की दृष्टि से, मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के उक्त तर्क में कोई बल नहीं पाता।

24. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क रखा कि उक्त परिपत्र में अंतर्विष्ट है कि दो आकस्मिकताओं में इंकार किया जा सकता है जैसा कि (क) एवं (ख) में प्रावधान किया गया है। याची के विरुद्ध एक मामला लंबित था और इस कारण याची उक्त परिपत्र का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस तर्क को खंडित किया। उक्त परिपत्र के पैरा 7 के परिशीलन से यह प्रकट है कि सामान्य नियम का प्रावधान किया गया है कि परिपत्र के 'क' एवं 'ख' में उल्लिखित स्थिति को छोड़कर सभी मामलों में नियुक्ति प्राधिकार अनुमति/अनुमोदन प्रदान करेंगे। 'क' एवं 'ख' के तौर पर प्रगणित दोनों आकस्मिकताओं का मेरे निर्णय के पूर्वगामी पैराओं में उल्लेख किया गया है। उक्त परिपत्र इस पर स्पष्ट है कि उक्त प्रत्याख्यान अनिवार्य रूप से नोटिस की अवधि के भीतर होना है, उसके बाद नहीं। इस प्रकार, उपरोक्त की दृष्टि में, मैं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में कोई बल नहीं पाता हूँ।

25. उक्त स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति को स्वीकार करने वाले दिनांक 18.5.2002 के आदेश के उपरांत उसके विरुद्ध विभागीय जांच आरंभ की गयी थी। इस आधार पर कि नियोक्ता-प्रत्यर्थी तथा कर्मचारी-याची के बीच कानूनी संबंध था। यह विधि की स्थापित स्थिति है कि कर्मचारी के सेवानिवृत्ति के उपरांत, बिहार पेंशन नियमावली या प्रवर्तित किसी अन्य विधि के निबंधनों को छोड़कर किसी अन्य स्थिति में प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई अनुशासनिक कार्रवाई नहीं की जा सकती। विभागीय जांच में प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित सभी पारिणामिक आदेश एतद द्वारा निरस्त किये जाते हैं तथा प्रत्यर्थी विभाग के पास उसे प्रत्यर्थी का एक सेवानिवृत्त कर्मचारी मानते हुए विधि के प्रावधान के अधीन उसके विरुद्ध कार्यवाही करने की एक स्वतंत्रता होगी। प्रत्यर्थी शीघ्रतापूर्वक आगे कार्रवाई करेगा अगर उसके विरुद्ध आगे कोई कार्रवाई की जानी है।

26. ज्ञापांक सं॰ 626 में अंतर्विष्ट दिनांक 18.5.2002 का आदेश एतद् द्वारा निरस्त किया जाता है और सेवा से याची को हटाने का दंड अधिरोपित करने वाला आदेश भी निरस्त किया जाता है सभी पारिणामिक लाभों के साथ जो रिट याचिका के दिनांक 15.11.2003 के आदेश (अंतर्वर्ती आवेदन सं॰ 2491 वर्ष 2003 से परिशिष्ट a) में अंतर्विष्ट है। प्रत्यर्थीगण के पास 30 मार्च, 2002 के प्रभाव से उसे प्रत्यर्थीगण का एक सेवानिवृत्त कर्मचारी मानते हुए विधि के अनुसार विधि के प्रावधानों के अधीन याची के विरुद्ध कार्यवाही करने की स्वतंत्रता होगी। इस प्रकार, रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि अगर उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही की जानी है, तो यह शीघ्रतापूर्वक की जाए। व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

प्रमोद कुमार एवं अन्य

बनाम

भारत कोकिंग कोल लिमिटेड एवं अन्य

Civil Review No. 42 of 2009. Decided on 1st March, 2011.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–नियुक्ति–जूनियर ओवरमैन और माइनिंग सरदार के पद पर–यह निष्कर्ष दर्ज करने में त्रुटि थी कि याचीगण के पास अपेक्षित क्षमता का ओवरमैनशिप प्रमाण पत्र नहीं था–फिर भी, याचीगण किसी अनुतोष के हकदार नहीं है क्योंकि उन्होंने जूनियर

ओवरमैन और माइनिंग सरदार के पद पर नियुक्ति से संबंधित जारी विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन नहीं दिया था–संप्रेक्षणों के साथ पुनर्विलोकन आवेदन निपटाया गया। (पैराएँ 9 से 12)

निर्णयज विधि.–1995 SCC (L & S) 387—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Lalan Kumar Singh, For the Petitioners; Mr. Ananda Sen, For the B.C.C.L..

आदेश

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5585 वर्ष 2007 वाली यह रिट याचिका याचीगण की ओर से जूनियर ओवरमैन एवं माइनिंग सरदार के पद, जिन्हें विज्ञापन सं॰ 1762 (एन॰ ई॰ ई॰) दिनांक 6.1.2007 के तहत भरे जाने के लिए विज्ञापित किया गया था, पर याचीगण को नियुक्त करने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश देते हुए परमादेश की प्रकृति का रिट जारी करने के लिए दाखिल किया गया था।

2. याचीगण के मामले के मुताबिक, उन्हें माइनिंग एवं माइन्स में डिप्लोमा अर्जित करने पर बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ की विभिन्न कोलियरी में शिक्षु अधिनियम, 1961 के अधीन ट्रेनी अप्रेंटिस के रूप में नियुक्त किया गया था। प्रशिक्षण की समाप्ति के बाद और वैध प्राथमिक उपचार प्रमाणपत्र एवं गैस टेस्टिंग प्रमाण पत्र धारण करने पर उन्हें कोल माइंस रेगुलेशन, 1957 के अधीन सक्षमता का ओवरमैन प्रमाण पत्र प्रदान किया गया था। सक्षमता का ओवरमैन प्रमाणपत्र प्राप्त करने के अनेक वर्षों बाद, जूनियर ओवरमैन और माइनिंग सरदार के पद पर चयन के लिए आवेदनों को आमंत्रित करते हुए वर्ष 2007 में एक विज्ञापन दिया गया था जिसके द्वारा अधिकतम आयु 30 वर्ष विहित की गयी थी। चूँकि ट्रेनी अप्रेंटिस की आयु के शिथिलीकरण के लिए कोई प्रावधान नहीं था और न ही ट्रेनी अप्रेंटिसों को लिखित परीक्षा में उपस्थित होने की छूट दी गयी थी, याचीगण ने **यू॰ पी॰ एस॰ आर॰ टी॰ सी॰ बनाम यू॰ पी॰ परिवहन निगम शिक्षुक बेरोजगार संघ, [1995 SCC (L & S) 387],** में प्रकाशित मामले में दिए गए निर्णय के प्रकाश में उनको लिखित परीक्षा देने से मुक्त करने और आयु सीमा शिथिल करने के लिए उसमें प्रार्थना करते हुए अभ्यावेदन दिया था। जब कोई निर्णय नहीं लिया गया था, याचीगण ऊपर कथित अनुतोष के लिए इस न्यायालय की शरण में आए।

3. उक्त रिट आवेदन में, प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया था जिसमें यह कथन किया गया था कि कोल माइंस विनियमन, 1957 के प्रावधान के मुताबिक महानिदेशक, माइंस सेफ्टी, धनबाद द्वारा संचालित सक्षमता के ओवरमैन प्रमाण पत्र परीक्षा में उपस्थित होने के लिए किसी भूमिगत माइन्स में एक वर्ष की अवधि के लिए व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करना डिप्लोमा धारकों से अपेक्षित है कि याचीगण के पास अपेक्षित अर्हता नहीं है और कि विज्ञापित पदों को पहले ही भर दिया गया है जबकि याचीगण ने विज्ञापन के निबंधनानुसार अपना आवेदन तक प्रस्तुत नहीं किया था।

4. पक्षों के मामले पर विचार करते हुए, दिनांक 4.9.2008 के आदेश में अभिनिर्धारित किया गया था कि याचीगण के पास सक्षमता का वैध ओवरमैन प्रमाणपत्र नहीं है और उन्होंने उन पदों के लिए आवेदन नहीं दिया था जिन्हें विज्ञापित किया गया था और भर दिया गया था और इसलिए रिट आवेदन खारिज कर दिया गया था।

5. उसके विरुद्ध एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 391 वर्ष 2008 दाखिल की गयी थी जिसमें अभिवचन किया गया था कि एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने में अभिलेख की गलती किया कि याचीगण के पास वैध ओवरमैन प्रमाण पत्र नहीं है। न्यायालय ने वस्तुतः अभिनिर्धारित किया कि यदि ऐसा है, याचीगण को पुनर्विलोकन के लिए प्रार्थना करनी चाहिए थी। इस प्रकार यह पुनर्विलोकन आवेदन दाखिल किया गया है।

6. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि समस्त याचीगण के पास वैध ओवरमैन प्रमाण पत्र नहीं है और उन प्रमाण पत्रों को केवल तब प्रदान किया गया था जब याचीगण

ने प्रशिक्षण प्राप्त किया और प्राथमिक उपचार और गैस टेस्टिंग के प्रमाण पत्रों को अर्जित किया। किन्तु इस न्यायालय ने दिनांक 4.9.2008 के आदेश के तहत अन्यथा निष्कर्ष दर्ज किया और इसलिए, यदि उस निष्कर्ष को परिवर्तित/पुनर्विलोकित नहीं किया जाता है, याचीगण पर गंभीर प्रतिकूलता कारित होगी क्योंकि याचीगण की क्षमता के ओवरमैन प्रमाण पत्र सदैव संदेहमय बने रहेंगे। इस आवेदन के साथ उपाबद्ध ओवरमैन प्रमाण पत्र और वैद्य प्राथमिक उपचार तथा गैस टेस्टिंग प्रमाण पत्र दर्शाएँगे कि ओवरमैन प्रमाण पत्र प्राधिकारी द्वारा वैध रूप से जारी किया गया था।

7. आगे इंगित किया गया था कि चूँकि आयु के शिथिलीकरण के संबंध में कोई अनुबंध नहीं था जैसा विज्ञापन के अधीन अनुबंधित किया गया है, याचीगण ने ऊपर निर्दिष्ट सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में प्राधिकारी के समक्ष आयु के शिथिलीकरण के लिए और परीक्षा में उपस्थिति होने से उनको छूट देने के लिए अभ्यावेदन दिया था किन्तु प्राधिकारी ने इस संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया था। उस स्थिति के अधीन, याचीगण ने इस न्यायालय की शरण ली थी किन्तु जिस समय तक आदेश पारित किया गया था, पदों को भरा जा चुका था किन्तु यदि उस निष्कर्ष को परिवर्तित नहीं किया जाता है, याचीगण नियुक्ति के हकदार नहीं होंगे जब अगली बार रिक्ति विज्ञापित की जाती है। अत: उस प्रभाव का निष्कर्ष कि याचीगण के पास अपेक्षित ओवरमैन प्रमाणपत्र नहीं है, का पुनर्विलोकन अपेक्षित है।

8. उसके विरुद्ध, बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि केवल पूर्वोक्त आधार पर ही रिट याचिका खारिज नहीं किया गया था बल्कि रिट याचिका को अन्य आधार पर भी खारिज किया गया था कि याचीगण ने पदों के लिए आवेदन कभी नहीं दिया था और पदों को पहले ही भरा जा चुका था।

9. पक्षों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, मैं वस्तुत: पाता हूँ कि बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ की ओर से दाखिल प्रति शपथ पत्र में दिए गए बयान से आश्वस्त कराये जाने के कारण कि यद्यपि याचीगण के पास सक्षमता का ओवरमैनशीप प्रमाण पत्र तो है किन्तु, उन्होंने किसी भूमिगत खान में एक वर्ष का व्यवहारिक प्रशिक्षण नहीं लिया है, अत: प्रमाणपत्र को ओवरमैन के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए अपेक्षित अर्हता नहीं माना जा सकता था, जब उनके पास प्राथमिक उपचार और गैस टेस्टिंग प्रमाण पत्र नहीं है, आदेश पारित किया गया था कि याचीगण के पास सक्षमता का अपेक्षित ओवरमैनशीप प्रमाणपत्र नहीं है क्योंकि प्राथमिक उपचार और गैस टेस्टिंग प्रमाणपत्र को उपाबद्ध नहीं किया गया था यद्यपि प्रति शपथ पत्र के उत्तर में बयान दिया गया था कि उनके पास वस्तुत: प्राथमिक उपचार और गैस टेस्टिंग प्रमाण पत्र है। उन प्रमाण पत्रों को अब पुनर्विलोकन आवेदन के साथ उपाबद्ध किया गया है। क्षमता का प्रमाणपत्र स्पष्टत: दर्शाता है कि याचीगण ने विभिन्न खानों में व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त, कोल माइंस विनियमन, 1957 के खंड 15 के निबंधनानुसार ओवरमैन और सरदार प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए बोर्ड द्वारा संचालित परीक्षा में उम्मीदवार के रूप में प्रवेश करने की इजाजत नहीं दी जा सकती है। जिसका तद्द्वारा अर्थ है कि प्राथमिक उपचार और गैस टेस्टिंग प्रमाण पत्र का होना ओवरमैन प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए परीक्षा देने के लिए अपेक्षित अर्हता है। याचीगण के पास सक्षमता के ओवरमैनशिप होने से संबंधित तथ्य भी बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ की ओर से दाखिल प्रति शपथ पत्र में स्वीकार किया गया है। इस प्रकार, यह बिल्कुल प्रकट है कि यह निष्कर्ष दर्ज करने में अभिलेख की गलती थी कि याचीगण के पास सक्षमता का अपेक्षित ओवरमैनशिप प्रमाणपत्र नहीं है। अत: रिट आवेदन में दिए गए निष्कर्ष को निश्चय ही प्रकट गलती कहा जा सकता है और इसलिए इसे अपास्त किया जाता है। फिर भी याचीगण रिट आवेदन में दावा किए गए अनुतोष के हकदार नहीं है क्योंकि

याचीगण ने जूनियर ओवरमैन और माइनिंग सरदार के पद पर नियुक्ति से संबंधित जारी विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन नहीं दिया था। रिट आवेदन में याचीगण द्वारा इस तथ्य को स्वीकार भी किया गया है। इसके अतिरिक्त, पदों को पहले ही भरा जा चुका है। अत: यह अभिनिर्धारित करने के बावजूद कि याचीगण के पास सक्षमता का अपेक्षित ओवरमैन प्रमाणपत्र है, वे रिट आवेदन में दावा किए गए अनुतोष के हकदार नहीं है।

10. किन्तु आदेश से अलग होने के पहले यहाँ यह उल्लिखित करना उपयोगी होगा कि **यू॰ पी॰ एस॰ आर॰ टी॰ सी॰ बनाम यू॰ पी॰ परिवहन निगम शिक्षुक बेरोजगार संघ (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह ध्यान में लेने के बाद कि शिक्षु प्रशिक्षण की योजना शिक्षित बेरोजगार व्यक्तियों के रोजगार के अवसरों को बढ़ाने के लिए लायी गयी है और यदि नियोक्ता अर्हित शिशुओं को रोजगार प्रदान नहीं करेंगे, यह विकसित मानव संसाधन को विनष्ट करने की कोटि में आएगा, वस्तुत: अभिनिर्धारित किया कि अपने प्रशिक्षण को सफलतापूर्वक पूरा कर लेने के बाद रोजगार पाने के लिए प्रशिक्षुओं के दावे पर विचार करते हुए निम्नलिखित को ध्यान में रखना होगा।

(1) ''अन्य चीजों के बराबर होने पर प्रशिक्षित शिक्षु को सीधे नियुक्त लोगों पर प्राथमिकता देनी चाहिए।

(2) इसके लिए, प्रशिक्षण पाने वाले व्यक्ति से किसी रोजगार कार्यालय द्वारा उसका नाम प्रायोजित करवाने की अपेक्षा नहीं की जाएगी। भारत संघ बनाम एन० हरगोपाल में इस न्यायालय का निर्णय इसकी अनुमति देगा।

(3) यदि प्रशिक्षु के रास्ते में आयु वर्जना आएगी, इसे इस संबंध में संबंधित सेवा नियम, यदि हो, में जो भी कहा गया है उसके अनुरुप शिथिल किया जाएगा। यदि सेवा नियम इस पहलू पर मौन है, उस अवधि जिस तक शिक्षु ने प्रशिक्षण प्राप्त किया था, की सीमा तक शिथिलता दी जाएगी।

(4) प्रशिक्षण संस्थान वर्षवार प्रशिक्षित किए गए व्यक्तियों की सूची रखेगा। पहले प्रशिक्षित व्यक्तियों को बाद में प्रशिक्षित व्यक्तियों से वरीय के रूप में माना जाएगा। प्रशिक्षित शिक्षुओं के बीच उनको प्राथमिकता दी जाएगी जो वरिष्ठ हैं।''

11. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धान्तों का पालन जूनियर ओवरमैन/माइनिंग सरदार के पद पर अप्रेन्टिस ट्रेनीज के नियुक्ति के मामले में किया जाएगा।

12. तद्नुसार, यह पुनर्विलोकन आवेदन निपटाया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

ओरियेन्टल इंश्योरेंस कं॰ लि॰

बनाम

डॉ॰ ठाकुर सुरेन्द्र कुमार सिंह एवं एक अन्य

M. A. No. 148 of 2009. Decided on 7th March, 2011.

मोटर यान अधिनियम, 1988—धारा 168—दुर्घटना–स्थायी नि:शक्तता–अधिकरण द्वारा 16,48,887/- रुपया मुआवजा अधिनिर्णीत–दावेदार एक विशेषज्ञ शल्य चिकित्सक है और उसने 70% नि:शक्तता पायी–शल्य चिकित्सा वह हुनर है जिसकी आत्यधिक मांग है–यदि दावेदार

शल्य चिकित्सक के रूप में कार्य करता रहता, उसके पास निश्चय ही असीमित आय का अवसर था–दावा अधिकरण ने सही प्रकार से भावी आय क्षमता की ओर 14,63,207/- रुपया अधिनिर्णीत किया–अपील खारिज। (पैराएँ 11 से 14)

निर्णयज विधि.–1999 ACJ 287; 2001 (3) TAC 361 (Mad); 2007 (3) TAC 33 (Raj); AIR 2000 Karnataka 324; 2003 AIR SCW 4198; 2011 (1) TAC 329; (2011) 1 SCC 343—Referred to.

अधिवक्तागण.–Mr. Alok Lal, For the Appellant; M/s Arbind Kumar Lal, Rajiv Prasad, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान अपील मुआवजा केस सं॰ 35 वर्ष 2003 में पीठासीन अधिकारी, मोटर यान दुर्घटना दावा अधिकरण, राँची द्वारा पारित दिनांक 17 दिसम्बर, 2008 के निर्णय और अधिनिर्णय से उद्‌भूत होती है। अपील ओरियेन्टल इंश्योरेंस कं॰ लि॰ द्वारा 16,48,887/-रुपयों की राशि, जो बीमाकर्ता-अपीलार्थी द्वारा विपक्षी पक्षकार जिसने स्थायी नि:शक्तता प्राप्त की है, भुगतान किए जाने का दायी था, के अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है।

2. मामले के तथ्य यें है कि दावेदार डॉ॰ ठाकुर सुरेन्द्र कुमार सिंह अपनी रजिस्ट्रेशन सं॰ बी॰ आर॰ 26A-0949 वाले मारुति कार में लातेहार से राँची जा रहे थे। जब उसने NH-75 पर ग्राम हूटप नदी पूल के पास पहुँचे, तभी रजिस्ट्रेशन सं॰ जे॰ एच॰ 03A-1124 वाला ट्रक, जिसे चालक द्वारा तीव्र गति से और उपेक्षापूर्वक चलाया जा रहा था, विपरीत दिशा से आया और उनकी मारुति कार से जोर से टकराया, जिसके परिणामस्वरुप डॉक्टर/दावेदार ने अपने शरीर पर गंभीर उपहतियों को प्राप्त किया और कार भी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गयी थी। डॉ॰ ठाकुर सुरेन्द्र कुमार सिंह को प्राथमिक उपचार के लिए लातेहार में निकट के अस्पताल में ले जाया गया और बाद में उन्हें आर॰ एम॰ सी॰ एच॰, राँची निर्दिष्ट किया गया था। ट्रक के चालक के विरुद्ध दिनांक 10.12.2002 को प्राथमिकी भी दर्ज की गयी थी। अन्वेषण के बाद पुलिस ने चालक बृजनंदन प्रसाद मेहता के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 279 और 338 के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया।

3. घायल द्वारा स्थापित किया गया मामला यह था कि वह आर॰ एम॰ सी॰ एच॰, राँची में डॉक्टर के रूप में पदस्थापित था और 15,098/-रुपयों का वेतन पा रहा था। दुर्घटना के समय वह शल्य चिकित्सक था। उसने अपनी छाती और चेहरे सहित अपने शरीर के लगभग समस्त अंगों पर अनेक गंभीर फ्रैक्चर उपहतियों को प्राप्त किया था। उसे अंतत: अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नयी दिल्ली निर्दिष्ट किया गया था और सफदरगंज मेडिकल अस्पताल, नयी दिल्ली और पूना में भी उसका इलाज हुआ था। दावेदार द्वारा प्राप्त फ्रैक्चर उपहतियाँ प्लेटिंग, नेलिंग और स्क्रूइंग आपरेशन तथा अपने दाएँ पैर के एड़ी से छाती तक प्लास्टर सहित बड़ी सर्जरी आवश्यक बनाती थी। दावेदार को अपने शरीर पर अनेक अन्य ऑपरेशनों को भी करवाना पड़ा था। वह शारीरिक पीड़ा और मानसिक संताप से पीड़ित था और आठ माह तक बिस्तर पर पड़ा रहा था। वह अपना दैनिक कर्म करने में अक्षम था और उपचार विशिष्टीकृत सर्जरी की अपेक्षा करता था। दावेदार स्वयं सर्जन था और सर्जरी में मास्टर डिग्री पास किया था। उसके पास एनेस्थोलोजिस्ट का डिप्लोमा भी था किन्तु दुर्घटना के बाद वह सर्जरी करने में अक्षम था क्योंकि उसकी नि:शक्तता 70% की सीमा तक थी। उसका नि:शक्तता प्रमाण पत्र अभिलेख पर है।

4. दावा याचिका ट्रक के स्वामी और बीमा कंपनी द्वारा प्रतिवादित की गयी थी। लिखित बयान इस प्राख्यान के साथ दाखिल किया गया था कि कोई वाद हेतुक नहीं था और दुर्घटना स्वयं दावेदार की गलती

के कारण हुई थी क्योंकि वह तीव्र शक्ति से उपेक्षापूर्वक अपनी मारुति कार चला रहा था। अधिकरण के समक्ष विपक्षी पक्षकार का प्रतिवाद यह था कि ट्रक अत्यन्त सावधानीपूर्वक सामान्य गति से चलाया जा रहा था और दुर्घटना ट्रक के चालक की गलती के कारण नहीं हुई थी। अभिलेख पर यह भी लाया गया था कि ट्रक दुर्घटना के समय पॉलिसी सं॰ 2152/2003 के तहत ओरियेन्टल इंश्योरेंस कं॰ लि॰ (अपीलार्थी) के साथ बीमाकृत था और यह दिनांक 14.11.2002 से दिनांक 13.11.2003 तक के लिए प्रभाव में था। बीमा पॉलिसी की प्रति भी अभिलेख पर लायी गयी थी और, इसलिए, बीमा कंपनी दावेदार को क्षतिपूर्ति करने का दायी था।

5. अनेक विवाद्यकों को विरचित किया गया था और दावा याचिका को अनुज्ञात किया गया था और अधिनिर्णय दिया गया था, जिसे वर्तमान अपील में चुनौती दी गयी है।

6. वर्तमान अपील में चुनौती का मुख्य आधार यह है कि अधिकरण ने गलत प्रकार से भावी उपार्जन सामर्थ्य की हानि की ओर अत्यधिक राशि अधिनिर्णीत किया है। उक्त राशि अधिनियम की अनुसूची के अनुरुप अधिनिर्णीत की जानी चाहिए थी और, इसलिए, अनेक निर्णयों में अधिकथित सिद्धांतों के आधार पर 14,63,207/-रुपयों की राशि अत्यधिक और बहुत ज्यादा है।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया प्रतिवाद यह है कि दावेदार के अर्जित आय में कमी नहीं हुई है। वह सरकारी डॉक्टर के रूप में कार्यरत था और वह अभी भी कार्यरत है और इसलिए गुणक को लागू करते हुए धनीय भावी आय की हानि के लिए अधिनिर्णय का परिणाम अधिनिर्णय के आधिक्य में हुआ है जिसे घटना इप्सित किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने जोर देकर कहा है कि दावेदार अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि तक कार्य करता रहेगा और वह सेवानिवृत्ति पश्चात लाभ को भी प्राप्त करेगा। इस प्रकार वह 14,63,207/- रु॰ की राशि का हकदार नहीं है, विशेषत: उसके वेतन प्रमाण पत्र को देखते हुए जो उपदर्शित करता है कि उसकी पारिश्रमिक में कोई हानि नहीं हुई है। बीमा कंपनी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रथमत: निवेदन किया है कि भावी आय के सामर्थ्य को इस बात को विचार में लेने के बाद संगणित किया जाना चाहिए था क्योंकि दावेदार का रैंक नीचा नहीं किया गया था। इसके विपरीत उसे डॉक्टर के रूप में काम करते रहने की अनुमति दी गयी थी, यद्यपि एनेस्थेटिस्ट, न कि सर्जन, के रूप में। दूसरा तर्क गुणक के अपर्याप्त प्रयोज्यता के संबंध में था और तीसरा तर्क दावेदार की शारीरिक नि:शक्तता के संबंध में था।

8. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने अनेक निर्णयों पर विश्वास किया है; प्रथमत: **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं॰ लि॰ पुथुर त्रिची बनाम वेलिंगिरि एवं अन्य, 2011 (1) टी॰ ए॰ सी॰ 329 (Mad);** दूसरा, **बी॰ एच॰ रंगैय्या बनाम एच॰ आर॰ वी॰ बासवराजू एवं एक अन्य, AIR 2000 कर्नाटक 324,** में प्रकाशित मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय का एक अन्य निर्णय; तथा तीसरा निर्णय **हरियाणा राज्य एवं एक अन्य बनाम जसबीर कौर एवं अन्य, 2003 AIR SCW 4198** है और सिविल अपील सं॰ 8981 वर्ष 2010(एस॰ एल॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 10383 वर्ष 2007 से उद्भूत) **राज कुमार बनाम अजय कुमार एवं एक अन्य (अब 2011 (1) SCC Pg 343** में प्रकाशित) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित एक अन्य अप्रकाशित निर्णय पर भी विश्वास किया गया है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ 10 पर जोर दिया है जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

> *''वास्तविक उपार्जन सामर्थ्य पर स्थायी नि:शक्तता के प्रभाव का अभिनिश्चय तीन कदमों को अंतर्ग्रस्त करता है। अधिकरण को प्रथमत: यह अभिनिश्चित करना होगा*

कि स्थायी नि:शक्तता के बावजूद दावेदार क्या गतिविधियाँ कर सकता था और स्थायी नि:शक्तता के परिणामस्वरुप वह क्या नहीं कर सकता था (यह जीवन की सुविधाओं की हानि के शीर्ष के अधीन मुआवजा अधिनिर्णीत करने के लिए प्रासंगिक है) दूसरा कदम दुर्घटना के पहले उसका धंधा, पेशा और काम की प्रकृति और उसकी आयु अभिनिश्चित करना है। तीसरा कदम यह पता लगाना है कि (i) क्या दावेदार किसी प्रकार का उपार्जन अर्जित करने से पूर्णतः नि:शक्त हो गया है, अथवा (ii) क्या स्थायी नि:शक्तता के बावजूद दावेदार प्रभावकारी रूप से उन गतिविधियों और कार्यों को कर सकता था जो वह पहले कर रहा था, अथवा (iii) क्या उसे अपने पूर्व कार्यों और गतिविधियों का निर्वहन करने से रोका अथवा निर्बंधित कर दिया गया था किन्तु कुछ अन्य अथवा कम स्तर की गतिविधियाँ कर सकता था ताकि वह अर्जन करना जारी रखे अथवा अपना जीवन यापन अर्जित कर सके। उदाहरणस्वरुप, यदि दावेदार का बायाँ हाथ काट दिया जाता है, स्थायी शारीरिक अथवा कार्यात्मक नि:शक्तता लगभग 60% निर्धारित की जा सकती है। यदि दावेदार चालक अथवा बढ़ई था, उपार्जन सामर्थ्य की वास्तविक हानि लगभग शत-प्रतिशत होगी यदि वह वाहन चलाने अथवा बढ़ईगिरी करने में सक्षम नहीं है। दूसरी ओर, यदि दावेदार सरकारी सेवा में लिपिक था, उसके बाएँ हाथ का नुकसान रोजगार की हानि में परिणत नहीं हो सकता है और वह लिपिक के रूप में काम करना जारी रख सकता है क्योंकि वह अपने लिपिकीय कृत्यों को कर सकता है; और उस स्थिति में उपार्जन सामर्थ्य का नुकसान 100% नहीं होगा जैसा चालक अथवा बढ़ई के मामले में है, और न ही 60% होगा जो उपार्जन सामर्थ्य का नुकसान 100% नहीं होगा जैसा चालक अथवा बढ़ई के मामले में है, और न ही 60% होगा जो वास्तविक शारीरिक नि:शक्तता है बल्कि उससे भी कम होगा। वस्तुतः 'भावी आय के नुकसान' के शीर्ष के अधीन किसी मुआवजा को अधिनिर्णीत करने की आवश्यकता नहीं होगी यदि दावेदार सरकारी सेवा में बना रहता है यद्यपि अपना हाथ खोने के परिणामस्वरुप सुविधा के नुकसान के शीर्ष के अधीन उसे मुआवजा अधिनिर्णीत किया जा सकता है। कभी-कभी घायल दावेदार को सेवा में बनाए रखा जा सकता है किन्तु उसे उस पद अथवा काम से जुड़े कर्तव्यों के निर्वहन के लिए उसकी नि:शक्तता के कारण उपयुक्त नहीं पाया जा सकता है जिसे वह पहले कर रहा था और इसलिए उसे किसी अन्य उपयुक्त किन्तु निम्नतर पद पर निम्नतर पारिश्रमिक के साथ शिफ्ट कर दिया जा सकता है जिस स्थिति में घटे हुए उपार्जन सामर्थ्य को ध्यान में लेते हुए भावी उपार्जन सामर्थ्य के नुकसान के शीर्ष के अधीन सीमित अधिनिर्णय दिया जा सकता है। यह ध्यान में लिया जा सकता है कि जब भावी उपार्जन सामर्थ्य के नुकसान को शत-प्रतिशत (अथवा 50% से अधिक) के रूप में मानते हुए मुआवजा अधिनिर्णीत किया जाता है, तब सुविधाओं के नुकसान अथवा प्रत्याशित आयु के नुकसान के शीर्ष के अधीन पृथक रूप से मुआवजा अधिनिर्णीत करने की आवश्यकता नहीं हो सकती है और परिणामस्वरुप सुविधाओं के नुकसान अथवा प्रत्याशित आयु के नुकसान के शीर्ष के अधीन केवल एक टोकन अथवा नाममात्र राशि अधिनिर्णीत की जा सकती है अन्यथा मुआवजा के अधिनिर्णय में दोहरापन हो सकता है। चाहे जो भी हो।''

10. अपीलार्थी के अधिवक्ता के तर्कों पर प्रत्यर्थीगण की ओर से जोरदार विवाद किया गया है। प्राख्यान यह है कि चूँकि दावेदार एक विशेषज्ञ सर्जन था, किंतु अपनी नि:शक्तता के कारण अब वह सर्जरी करने में अक्षम है, जो उपार्जन सामर्थ्य की ओर निश्चय ही बड़ा पेशा था और सर्जन के रूप में वह अपने निजी व्यवसाय के अवसर का लाभ उठा सकता था और निश्चय ही सर्जन के रूप में उसकी आय सरकारी डॉक्टर के रूप में उसकी आय से कहीं ज्यादा होगी। अधिवक्ता ने अपने तर्क पर भी जोर दिया है कि वर्तमान में अपनी नि:शक्तता के कारण दावेदार के पास सीमित अर्जन के भीतर सरकारी सेवा में बने रहने के अतिरिक्त और कोई अन्य विकल्प नहीं है क्योंकि वह केवल एनेस्थेटिस्ट के रूप में कार्य

कर रहा है, जबकि उसके पास सर्जरी और एनेस्थीशिया दोनों में विशिष्ट अर्हता है। **न्यू इंडिया एश्योरेंस कं॰ लि॰ बनाम ललित कुमार भूटानी एवं अन्य, 2007 (3) TAC 33 (Raj)** में प्रकाशित मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय पर और **क्लॉस मिटेलबेचर्ट एवं अन्य बनाम ईस्ट इंडिया होटल्स लि॰ एवं अन्य, 1999 ACJ 287** के मामले में प्रकाशित दिल्ली उच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर विश्वास किया गया है। निर्णय भावी उपार्जन की संभाव्यता और आयुर्विज्ञान की शाखाओं में से एक में विशिष्ट अर्हता पर आधारित हैं। दावेदार किसी अन्य देश के प्रस्ताव का लाभ उठा सकता था और निजी क्लिनिक में सर्जरी करके अथवा स्वयं अपना नर्सिंग होम स्थापित करके अपनी आय बढ़ा सकता था। विद्वान अधिवक्ता ने **बी॰ इम्तियाज अहमद बनाम जी॰ बानुमति एवं एक अन्य, 2001 (3) TAC 361 (Mad)** के मामले में प्रकाशित मद्रास उच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय पर भी विश्वास किया है।

11. मैंने दावा अधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय और अधिनिर्णय और मेरे समक्ष प्रस्तुत उद्धरणों का परिशीलन किया है। नि:संदेह, सर्वोच्च न्यायालय ने स्थायी नि:शक्तता की ओर मुआवजा अधिनिर्णीत करते हुए कतिपय मार्गदर्शक सिद्धांतों को दिया है, किन्तु मैं इस तथ्य कि दावेदार ने 70% नि:शक्तता प्राप्त की है और यह तथ्य कि डॉ॰ ठाकुर सुरेन्द्र कुमार सिंह ने अपना एम॰ बी॰ बी॰ एस॰ डिग्री पूरा करने के बाद सर्जरी में स्नातकोतर डिग्री और एनेस्थेशिया में डिप्लोमा प्राप्त किया है, को नजरअंदाज नहीं कर सकता हूँ। निश्चय ही, सर्जरी में मास्टर्स डिग्री डॉक्टर को सर्जन के रूप में भावी उच्च उपार्जन सामर्थ्य के लिए सक्षम बनाती है। एनेस्थेशिया में डिप्लोमा ने उसे सरकारी काम में बने रहने दिया है किन्तु इसने उन्हें एनेस्थेटिस्ट के रूप में कार्य करने के लिए सीमित कर दिया है, जो निश्चय ही सर्जन की तुलना में उसे कम आय प्रदान करेगा। यदि दावेदार सर्जन के रूप में बना रहता तो, उसके पास असीमित आय अर्जित करने का अवसर निश्चय ही होता, क्योंकि सर्जरी ऐसा हुनर है जिसकी अत्यधिक मांग है। आजकल सर्जन अनेक निजी नर्सिंग होम में काम कर रहे हैं और सरकारी अस्पताल के सरकारी डॉक्टर की तुलना में कहीं ज्यादा अर्जित कर रहे हैं। यह प्रकट है यद्यपि इन्हें इन शब्दों में व्यक्त नहीं किया गया है, किन्तु इन्हें अधिकरण द्वारा विचार में लिया गया है और भावी उपार्जन सामर्थ्य के मद में अतिरिक्त राशि प्रदान करते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धान्त के आधार पर उन कारणों से अधिनिर्णय उच्चतर पक्ष पर संगणित किया गया था। ये वैध कारक हैं जिन्हें तौलना होगा और इसलिए मेरा दृष्टिकोण है कि दावा अधिकरण ने भावी उपार्जन सामर्थ्य की ओर 14,63,207/- रुपया सही प्रकार से अधिनिर्णीत किया है और इसे अत्यधिक बिल्कुल नहीं कहा जा सकता है।

12. ऊपर किए गए कथन की दृष्टि में, मेरा सुविचारित मत है कि दावा अधिकरण द्वारा सही प्रकार से दावा याचिका विनिश्चित की गयी है और बीमा कंपनी (अपीलार्थी) की ओर से उठायी गयी आपत्ति कि भावी उपार्जन सामर्थ्य के मद में संगणित अधिनिर्णय अत्यधिक है, स्वीकार नहीं की जा सकती है।

13. मैं अपीलार्थी बीमा कंपनी की ओर से किए गए निवेदनों के साथ सहमत नहीं हूँ। अपील में कोई गुणागुण नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है। बीमा कंपनी मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 140 के अधीन पहले ही जमा की जा चुकी राशि अथवा किसी अन्य आदेश के अनुसरण में जमा की जा चुकी राशि को काटने के बाद राशि का तुरन्त वितरण करने का दायी है।

14. तद्नुसार, यहाँ ऊपर दिए गए कारणों से, वर्तमान अपील खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

कमरुद्दीन अंसारी

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 709 of 2010. Decided on 24th February, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 414/34—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 154 एवं 482—चुराये गए वाहन का कब्जा—दो प्राथमिकियाँ पोषणीय नहीं थी क्योंकि पूर्वतर मामले के आई॰ ओ॰ द्वारा दर्ज, पश्चातवर्ती मामले को प्रासंगिक सामग्रियों के रूप में नहीं माना जाएगा—पश्चातवर्ती प्राथमिकी अपास्त—याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 7)

निर्णयज विधि.—(2001) 6 SCC 181—Relied.

अधिवक्तागण.—Mr. P.P.N. Roy, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.—याची ने उसी वाद हेतुक के लिए द्वितीय प्राथमिकी होने के कारण दिनांक 1.9.2009 को दर्ज जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 159 वर्ष 2009, जी॰ आर॰ सं॰ 1842 वर्ष 2009 के तत्सम, के संबंध में प्राथमिकी और संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है यद्यपि उसी पुलिस थाना में दिनांक 23.6.2009 को जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 111 वर्ष 2009, जी॰ आर॰ सं॰ 1313 वर्ष 2009 के तत्सम, के तहत भारतीय दंड संहिता की धारा 414/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए प्राथमिकी दर्ज की गयी थी जो सी॰ जे॰ एम॰, गिरिडीह के न्यायालय में लंबित है।

2. जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 111 वर्ष 2009 भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 279/337/338/304(a) के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 23.6.2009 को दर्ज की गयी थी जिसमें मोटर साइकिल सवार रामचंद्र मंडल की मृत्यु बी॰ आई॰ आर॰ 6363 नम्बर वाला ''मारुति वैन'' जिसे तेज गति से उपेक्षापूर्वक चलाया जा रहा था, द्वारा कारित दुर्घटना में हो गयी थी और उक्त वैन के अज्ञात चालक के विरुद्ध मामला संस्थापित किया गया था जिसका अन्वेषण जमुआ पुलिस थाना का ए॰ एस॰ आई॰ जावेद सिद्दीकी कर रहे थे।

3. जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 159 वर्ष 2009 को उद्भूत करने वाले वर्तमान मामले के तथ्य पूर्वतर पुलिस केस अर्थात् जमुआ पुलिस केस सं॰ 111 वर्ष 2009 के साथ निरंतरता में थे कि जब वर्तमान मामले के सूचक अर्थात् पूर्व मामले के अन्वेषण अधिकारी ने पता लगाया कि मारुति वैन सं॰ बी॰ आई॰ आर॰ 6363 का चालक वाहन को वहाँ छोड़कर भाग गया था जब गाँव के ''चौकीदार'' ने उसको रोकने का प्रयास किया और वाहन को दिनांक 10.6.2009 को स्टेशन डायरी में प्रविष्टि सं॰ 185 के तहत जब्त कर लिया गया था। उक्त वाहन के चालक युनूस मियाँ ने दिनांक 30.6.2009 को न्यायालय में आत्मसमर्पण किया और अपना जमानत प्राप्त किया। सूचक ने आगे बताया कि यह पता लगाया जा सका था कि उक्त मारुति वैन किसी सुलेमान मियाँ और उसके पुत्र कमरुद्दीन की थी जो भाड़े पर चलायी जाती थी किन्तु अपने बयानों कि वे विगत एक वर्ष से वाहन चला रहे थे को छोड़कर इस बात के समर्थन में कि वे वाहन के रजिस्टर्ड स्वामी थे, कोई प्रासंगिक दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहे थे और यह कि उनके द्वारा कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया गया था कि वे कैसे वाहन के स्वामी बन गए थे जिसने इस युक्तियुक्त संदेह को उत्पन्न किया कि वाहन सुलेमान मियाँ और उसके पुत्र कमरुद्दीन मियाँ द्वारा चुराया गया था।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री पी॰ पी॰ एन॰ रॉय ने निवेदन किया कि धारा 414/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 159 वर्ष 2009 के तहत वर्तमान मामला पूर्वतर जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 111 वर्ष 2009 का परिणाम है जो मोटरसाईकिल और ''मारुति वैन'' सं॰ बी॰ आई॰ आर॰ 6363 के बीच टक्कर के चलते मोटर दुर्घटना से संबंधित थी। वर्तमान मामले के सूचक जो पहले मामले का अन्वेषण अधिकारी था, द्वारा याची को उक्त वाहन का स्वामी उपधारित किया गया था। वैसी स्थिति में नयी प्राथमिकी दर्ज करने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि अभिकथित दुर्घटना में उक्त ''मारुति वैन'' की बरामदगी भी पूर्व मामले के अन्वेषण की विषय वस्तु थी और इसलिए वाहन के स्वामी के विरुद्ध उसी हेतु के लिए नए मामले की संस्थापना अनपेक्षित थी।

5. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री रॉय ने **(2001)6 सुप्रीम कोर्ट केसेज 181** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने **टी॰ टी॰ एंटोनी बनाम केरल राज्य एवं अन्य** में संप्रेक्षित किया:

''सामान्यतः दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 154 की उपधारा (1) के अधीन दी गयी सूचना को प्राथमिकी के रूप में जाना जाता है यद्यपि संहिता में इस शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। यह एक बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज है। और जैसा कि इसका नाम सुझाता है यह पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी द्वारा दर्ज किसी संज्ञेय अपराध की सबसे पहले दी गयी पहली सूचना है। यह दांडिक विधि को गति में लाता है और अन्वेषण के आरंभ को चिन्हित करता है जो दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 169 अथवा 170, जैसा भी मामला हो, के अधीन मत के सृजन में और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 के अधीन पुलिस रिपोर्ट को अग्रसारित करने में समाप्त होता है। यह बिल्कुल संभव है और ऐसा प्रायः नहीं होता है कि एक अथवा एक से अधिक संज्ञेय अपराधों को अंतर्ग्रस्त करते हुए एक ही घटना के संबंध में पुलिस थाना के प्रभारी पुलिस अधिकारी को एक से अधिक सूचना दी जाती है। ऐसी स्थिति में उनमें से प्रत्येक को स्टेशन हाऊस डायरी में प्रविष्ट करना उसके लिए आवश्यक नहीं है और यह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 154 में विवक्षित है। किसी फोन कौल अथवा संक्षिप्त टेलीग्राम द्वारा दी गयी अस्पष्ट सूचना के अतिरिक्त, इस उद्देश्य के लिए रखी गयी स्टेशन हाऊस डायरी में पुलिस थाना के प्रभारी-अधिकारी द्वारा प्रविष्ट प्रथम सूचना रिपोर्ट दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 154 द्वारा प्रतिपादित प्राथमिकी है। प्राथमिकी में उल्लिखित तथ्यों से प्रकट संज्ञेय अपराध में अन्वेषण आरंभ होने के बाद मौखिक रूप से अथवा लिखित में दी गयी और पुलिस अधिकारी द्वारा स्टेशन हाऊस डायरी में प्रविष्ट की गयी अन्य समस्त सूचनाएँ अथवा ऐसे अन्य संज्ञेय अपराध, जो अन्वेषण के दौरान उसके ध्यान में आ सकते हैं, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 162 के अधीन आने वाले बयान होंगे। ऐसे किसी सूचना/बयान को समुचित रूप से प्राथमिकी के रूप में नहीं माना जा सकता है और इन्हें पुनः स्टेशन हाऊस डायरी में प्रविष्ट नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह प्रभाव में द्वितीय प्राथमिकी होगी और यह दं॰ प्र॰ सं॰ की योजना के साथ संगति में नहीं होगी।

दं॰ प्र॰ सं॰ की योजना यह है कि पुलिस थाना के प्रभारी अधिकारी को संज्ञेय अपराध किए जाने की जानकारी मिलने पर दर्ज की गयी प्राथमिकी के आधार पर अन्वेषण शुरू करना होगा जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 156 और 157 में प्रावधानित किया गया है। अन्वेषण पूरा करने पर और संग्रहित साक्ष्य के आधार पर उसे दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 169 अथवा 170, जैसा भी मामला हो, के अधीन मत निर्मित करना होगा और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 (2) के अधीन अपना रिपोर्ट संबंधित दंडाधिकारी को

अग्रसारित करना होगा। किन्तु, ऐसा रिपोर्ट दाखिल करने के बाद भी यदि वह अतिरिक्त सूचना अथवा सामग्री प्राप्त करता है, नयी प्राथमिकी दर्ज करना उसके लिए आवश्यक नहीं है; सामान्यतः न्यायालय की अनुमति के साथ, आगे अन्वेषण करने के लिए सशक्त है और जहाँ वह आगे अन्वेषण के दौरान अतिरिक्त साक्ष्य, मौखिक अथवा दस्तावेजी, संग्रहित करता है, वह एक अथवा अधिक अतिरिक्त रिपोर्ट के साथ इसे अग्रसारित करने के लिए बाध्य हैं, दं० प्र० सं० की धारा 173 की उपधारा (8) का यही भावार्थ है।

आगे संप्रेक्षित किया गया थाः

''न्यायालय को संविधान के अनुच्छेदों 19 और 21 के अधीन नागरिकों के मौलिक अधिकार और संज्ञेय अपराध का अन्वेषण करने की पुलिस की अनन्य शक्ति के बीच न्यायोचित संतुलन स्थापित करना ही होगा। अन्वेषण करने की व्यापक शक्ति दं० प्र० सं० की धारा 173 (2) के अधीन अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने के पहले अथवा बाद में उत्तरोत्तर प्राथमिकियों के दर्ज किए जाने के परिणामस्वरुप एक अथवा अधिक संज्ञेय अपराधों को उद्‌भूत करने वाले एक ही घटना के संबंध में पुलिस द्वारा नागरिक को प्रत्येक समय नए अन्वेषण के अध्यधीन करने की अपेक्षा नहीं करती है। यह दं० प्र० सं० की धारा 154 और 156 के कार्य क्षेत्र के स्पष्टतः परे होगा बल्कि दिए गए मामले में अन्वेषण करने की सांविधिक शक्ति के दुरुपयोग का मामला होगा। एक ही संव्यवहार के क्रम में अभिकथित रूप से किए गए एक ही अथवा संबंधित संज्ञेय अपराधों के संबंध में दाखिल द्वितीय अथवा उत्तरोत्तर प्राथमिकियों पर आधारित नए अन्वेषण का मामला प्रति मामला नहीं होने के कारण और जिसके संबंध में प्रथम प्राथमिकी के अनुसरण में अन्वेषण जारी है अथवा धारा 173 (2) के अधीन अंतिम रिपोर्ट दंडाधिकारी को अग्रसारित कर दिया गया है, दं० प्र० सं० की धारा 482 के अधीन अथवा संविधान के अनुछेदों 226/227 के अधीन शक्ति के प्रयोग के लिए सुयोग्य मामला हो सकता है।''

6. विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, सुश्री अनिता सिन्हा ने निवेदन किया कि दो प्राथमिकी को विभिन्न वाद हेतुक के लिए दाखिल किया गया था अर्थात् जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 111 वर्ष 2009 के तहत पहली प्राथमिकी मोटर दुर्घटना से संबंधित थी जिसे वाहन के चालक के विरुद्ध उसकी तीव्र गति से एवं उपेक्षापूर्वक वाहन चलाने, जिससे मोटरसाईकिल सवार की मृत्यु कारित हुई, के कारण संस्थापित किया गया था, जबकि दूसरी प्राथमिकी वर्तमान मामले के याची और उसके पिता के विरुद्ध दाखिल की गयी है क्योंकि वह ''मारुति वैन'' के रजिस्ट्रेशन बुक और किसी प्रासंगिक दस्तावेज को प्रस्तुत करने में विफल रहा था, और इसलिए दो विभिन्न प्राथमिकियों के संस्थापन के लिए हेतुक सुभिन्न थे।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, याची की ओर से दिए गए तर्क में सार प्रतीत होता है और **टी॰ टी॰ एन्टोनी के मामले (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विश्वास करते हुए मैं पाता हूँ कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में दो प्राथमिकियाँ पोषणीय नहीं है क्योंकि पहले मामले के अन्वेषण अधिकारी द्वारा दिनांक 1.9.2009 को दर्ज जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 159 वर्ष 2009 के तहत पश्चातवर्ती मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के अधीन प्रासंगिक सामग्री के रूप में माना जाएगा और जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 111 वर्ष 2009 का अन्वेषण अधिकारी ऐसी सामग्री पर याची के विरुद्ध भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (2) के अधीन अंतिम फॉर्म दाखिल करने से प्रवारित नहीं किया जाएगा। ऊपर कथित कारणों से, जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 159 वर्ष 2009 के तहत पश्चातवर्ती प्राथमिकी विधि का बल नहीं होने के कारण पोषणीय नहीं है। तद्‌नुसार, जमुआ पी॰ एस॰ केस सं॰ 159 वर्ष 2009 की प्राथमिकी अपास्त की जाती है और याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

रामायण पांडे

बनाम

भारत संघ सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cr. Revision No. 911 of 2010. Decided on 3rd March, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 120B, 471 एवं 409 सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 13(2) एवं 13(1)(c)—कूटरचना और न्यास का दांडिक भंग—अननुपातिक आस्तियों का कब्जा—उन्मोचन आवेदन की खारिजी—विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि अन्वेषण के दौरान संग्रहित मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य स्पष्टतः अपराध का किया जाना याची के विरुद्ध स्थापित करते हैं—याची द्वारा उठाए गए बिन्दु इस चरण पर मान्य नहीं है—पुनरीक्षण आवेदन खारिज। (पैराएँ 7 से 9)

अधिवक्तागण.—M/s Indrajit Sinha, Bibhash Sinha, For the Petitioner; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the C.B.I.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन विशेष न्यायाधीश (सी॰ बी॰ आई॰)-सह-ए॰ डी॰ जे॰ प्रथम, धनबाद के न्यायालय में लंबित आर॰ सी॰ केस सं॰ 21(A)/91(R) के संबंध में भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 120B, 471, 409 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) सह-पठित धारा 13(1)(c) के अधीन अपराधों के लिए उसके उन्मोचन के लिए याची को आवेदन अस्वीकार करने वाले दिनांक 21.8.2010 के आदेश को अपास्त करने के लिए दाखिल किया है।

3. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि संक्षेप में प्राथमिकी में याची के विरुद्ध अभिकथन यह है कि याची वर्ष 1972 से विभिन्न हैसियत में भारत कोकिंग कोल लिमिटेड में काम कर रहा था और वर्तमान में बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के क्षेत्र VIII में आरक्षी अभियन्ता (ई॰ एन्ड एम॰) के रूप में काम कर रहा है और बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ में विभिन्न हैसियत से पदस्थापित रहते और कार्य करते हुए उसने भ्रष्ट और अवैध साधनों द्वारा आस्तियों को अर्जित किया है जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अननुपात में है और जिसका श्री पांडे संतोषजनक लेखा नहीं दे सके हैं। बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ में कोलियरी अभियता, कार्यपालक अभियन्ता, वरीय कार्यपालक अभियन्ता और आरक्षी अभियन्ता के रूप में विभिन्न हैसियत में अपने कार्यरत रहने के दौरान उन्होंने लगभग 3,50,000/-रुपयों का नेट वेतन अर्जित किया है। इसके अतिरिक्त, उसके विभाग से भवन निर्माण कर्ज के रूप में 1,25,000/-रुपयों की राशि ली है और यह भी घोषित किया है कि उन्होंने संबंधियों से 60,000/-रुपयों का कर्ज लिया है। इस प्रकार, समस्त ज्ञात स्रोतों से उसकी कुल आय लगभग 5,35,000/-रुपया है। प्रश्नगत अवधि के दौरान श्री रामायण पांडे का दैनिक घरेलू खर्चों और अपने चार संतानों की शिक्षा पर व्यय लगभग 3,20,000/-रुपयों की सीमा तक रहा है। इस प्रकार, 5,35,000/-रुपयों की कुल आय से 3,20,000/-रुपयों के कुल व्यय को काटने के बाद श्री रामायण पांडे की संभावित बचत केवल 2,15,000/-रुपया होती है। उक्त संभावित बचत राशि के विरुद्ध श्री रामायण पांडे ने कुसुम विहार, धनबाद में दो मंजिला मकान, एक एम्बेसेडर कार, हीरोहोन्डा मोटरसाइकिल, टी॰ वी॰, वी॰ सी॰ आर॰, रेडियो, स्वर्णाभूषण,

रेफ्रिजेरेटर, आदि के रूप में 7,15,000/- रुपया मूल्य वाली आस्तियाँ अभिकथित रूप से अर्जित किया है और इस प्रकार वह लगभग 5,00,000/- रुपयों की राशि के अननुपातिक आस्तियों पर काबिज है जिसका श्री पांडे संतोषजनक लेखा नहीं दे सकते हैं।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता आगे यह निवेदन करते हैं कि याची के विरुद्ध अन्वेषण एजेन्सी द्वारा दाखिल आरोप-पत्र पूर्णत: असद्भावपूर्व, प्रेरित और समुचित अन्वेषण एवं तथ्यों तथा साक्ष्यों के समुचित सत्यापन के बिना है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि लोकसेवक के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान अर्जित संपत्ति को स्पष्ट करने का कोई अवसर याची को नहीं दिया गया है। उन्होंने यह भी निवेदन किया है कि उसके भाई श्री देवबंश पांडे, जिनकी कोई संतान नहीं है, ने वर्ष 1988 में धनबाद में नोटरी पब्लिक के समक्ष अपने शपथपत्र में शपथ लिया है जहाँ उन्होंने उक्त शपथ पत्र में विनिर्दिष्टत: घोषित किया है कि चूँकि उसकी कोई संतान नहीं है, वह अपने भाई (याची) अर्थात श्री राजकुमार पांडे के पुत्र की देख-भाल कर रहा था और उसके समस्त शैक्षणिक एवं अन्य व्यय को उठा रहा है।

5. याची ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा दाखिल प्रति शपथ पत्र का प्रत्युत्तर दाखिल किया है जिसमें यह कथन किया गया है वर्तमान मामले के सूचक और आई० ओ० श्री नारायण झा, तत्कालीन डी० एस० पी०, सी० बी० आई० याची के विरुद्ध पूर्वाग्रहग्रस्त हैं क्योंकि याची कोल माइंस ऑफिसर्स एसोसियेशन, बी० सी० सी० एल० का अध्यक्ष था और वर्ष 1983 के दौरान सोसाइटीज अधिनियम के अधीन निजी व्यक्तियों से भूमि अर्जित करने और आवासीय उद्देश्य से सहकारी सोसाइटी के सदस्यों को इसे देने के लिए सहकारी सोसाइटी रजिस्टर्ड की गयी थी। बाहरी लोग, जो सहकारी समिति के सदस्य नहीं थे और न ही बी० सी० सी० एल० के कर्मचारी थे, सहकारी सोसाइटी से भूमि पाने के हकदार नहीं थे। किन्तु इसके उल्लंघन में वर्ष 1988 में श्री नारायण झा की पत्नी श्रीमती शांति झा, जो सहकारी सोसाइटी की सदस्य नहीं थी और न ही बी० सी० सी० एल० की कर्मचारी थी, के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था और इसका याची द्वारा विरोध किया गया था। उक्त प्रत्युत्तर में यह निवेदन भी किया गया है कि वर्ष 1985-86 के दौरान बी० सी० सी० एल० में एक योजना थी कि सी० एम० डी० उच्च शिक्षा के लिए कर्मचारी के नाम की अनुशंसा करते थे और इसका लाभ लेते हुए श्री नारायण झा के संबंधियों में से एक अर्थात् आशा नन्द झा ने एच० आर० डी० विभाग से स्पांसरशिप की अनुशंसा के बिना स्वयं को बी० आई० टी० मेसरा में दाखिल करवाया था। याची ने इसका विरोध भी किया था। इन दो उदाहरणों के लिए, श्री नारायण झा, जो वर्तमान मामले के सूचक और आई० ओ० है और जो याची के विरुद्ध पूर्वाग्रह ग्रस्त है, ने केवल बदला लेने के लिए वर्तमान याची के विरुद्ध इस मामले को दर्ज किया है।

6. यह तर्क भी किया गया है कि इस मामले में सूचक और अन्वेषण अधिकारी एक ही व्यक्ति हैं किन्तु यह विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि सूचक और आई० ओ० एक ही व्यक्ति नहीं हो सकता है और यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

7. सी० बी० आई० की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री खान निवेदन करते हैं कि आक्षेपित आदेश में यह आया है कि अन्वेषण के दौरान, कस्तूर क्षेत्र के टेली-कम्यूनिकेशन कार्यालय में प्रश्नगत तीन एअर कंडीशनरों को स्थापित नहीं किया गया था, जिसके लिए, इन्हें तलब और जारी किया गया था। प्रश्नगत तीन एअर कंडीशनरों में से एक रामायण पांडे के घर में पाया गया था और शेष दो को श्री बी० के० सिंह के निवासस्थान पर भेजा गया था जिनका पता नहीं लगाया जा सका था और जिन्हें ठिकाने

लगा दिया गया था। इस प्रकार, उक्त एअरकंडीशनरों को वर्तमान याचीगण द्वारा एक अन्य सह-अभियुक्त के साथ दांडिक षडयन्त्र करके 78,069.75/- रुपयों का दुर्विनियोग किया गया था। श्री खान ने आगे निवेदन किया है कि केवल यही नहीं, जाँच में यह भी आया है कि याची अपने निवास स्थान पर किसी एअर कंडीशनर का हकदार बिल्कुल नहीं था और इस प्रकार भंडार से उक्त एअर कंडीशनरों को वर्तमान याची को जारी किए जाने का प्रश्न उद्भूत ही नहीं होता था। श्री खान ने आगे निवेदन किया है कि पूर्वोक्त धाराओं के अधीन आरोप विरचित करने के लिए याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्रियाँ है। इसलिए, अवर न्यायालय ने उसके उन्मोचन याचिका उचित रूप से अस्वीकार किया है।

8. श्री खान ने आगे निवेदन किया है कि याची के अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रतिवाद के संबंध में कि आई॰ ओ॰ श्री नारायण झा को निजी शिकायत थी, कोई गुणागुण नहीं है क्योंकि वे उसके द्वारा आई॰ ओ॰ के विरुद्ध लगाए गए पूर्णत: व्यक्तिगत अभिकथन हैं। दूसरी ओर, अन्वेषण के दौरान संग्रहित मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य स्पष्टत: अपराध का किया जाना अभियुक्त याची के विरुद्ध स्थापित करते हैं। श्री खान ने आगे प्रतिवाद किया है कि वर्तमान मामला एस॰ पी॰ सी॰ बी॰ आई॰, राँची के आदेश के अधीन श्री नारायण झा, उप-आरक्षी निरीक्षक एस॰ पी॰ ई॰/सी॰ बी॰ आई॰/राँची द्वारा अन्वेषण किए जाने के लिए रजिस्टर्ड किया गया है। अत: वर्तमान मामले में उनके द्वारा किए गए अन्वेषण में कोई अवैधता अथवा अनियमितता नहीं है।

9. आक्षेपित आदेश से, मैं पाती हूँ कि विचारण न्यायालय केस अभिलेख और आरोप पत्र पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया है कि अन्वेषण के दौरान संग्रहित मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों से अपराध का किया जाना याची के विरुद्ध स्पष्टत: स्थापित होता है। इसके अतिरिक्त, याची द्वारा उठाए गए पूर्वोक्त बिन्दु इस चरण पर मान्य नहीं है। अत:, मैं आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता अथवा अनियमितता नहीं पाती हूँ। तद्नुसार, इस पुनरीक्षण आवेदन को खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

शंभु राम

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 702 of 2010. Decided on 24th February, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 376/313—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 227—बलात्कार एवं गर्भपात–विवाह के झूठे बहाने पर यौन संबंध–उन्मोचन आवेदन की खारिजी–अभियोक्त्री वयस्क युवती थी जिसके पास अपनी भागीदारी के महत्व को समझने हेतु पर्याप्त विवेक था–संभोग के लिए उसकी सम्मति धारा 376 के कार्यक्षेत्र के भीतर नहीं आ सकता है–किंतु भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन अभिकथन तथ्यों पर आधारित विवाद्यक है जिसे केवल विचारण न्यायालय द्वारा ही विनिश्चित किया जा सकता है–याचिका खारिज। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–(2003)4 SCC 46; (2007)7 SCC 413; (2008)15 SCC 341—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Nilesh Kumar, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Indrajit Sinha, For the O.P. No. 2.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण डोरंडा पी॰ एस॰ केस सं॰ 137 वर्ष 2009 से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 487 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 17.6.2010 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध

दाखिल किया गया है जिसके द्वारा विद्वान अपर न्यायिक कमिश्नर एफ॰ टी॰ सी॰–X, राँची ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 376/313 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन दाखिल याची की याचिका को अस्वीकार कर दिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने दिनांक 13.4.2009 को डोरंडा पुलिस थाना के समक्ष लिखित परिवाद दाखिल करके अभिकथित किया कि याची ने उससे विवाह करने का झूठा वादा करके यौन संबंध स्थापित किया और विगत दो वर्षों तक यह जारी रहा और जब वह गर्भवती हो गयी, याची उसे 'काँटाटोली' अस्पताल ले गया जहाँ उसे दवा दी गयी और गर्भपात के बाद उसका डी॰ एन॰ सी॰ किया गया था जिसके परिणामस्वरुप वह काफी कमजोर हो गयी थी। उसने आगे अभिकथित किया कि याची शंभु राम इसके बाद भी उसे यह आश्वासन देते हुए कि वह अपने बड़े भाई के विवाह के बाद उससे विवाह कर लेगा, उसके साथ सहवास जारी रखा। उसने आगे अभिकथित किया कि जब कभी भी उसने विवाह के लिए जोर दिया, याची ने उसके साथ विवाह करने से इनकार कर दिया। तब उसने अपने समाज के ''मुखिया'' को मामले के बारे में सूचित किया और कि जब इस विवाद्यक पर बैठक बुलायी जानी थी, उसने पुलिस थाना को मामले का रिपोर्ट करना चुना। उसने यह आरोप लगाते हुए उसे धमकाया गया था कि यदि उसने अपने गर्भपात के बारे में अपने परिवार के किसी सदस्य को बताया तो उसे और उसके परिवार को बरबाद कर दिया जाएगा, लिखित रिपोर्ट दाखिल किया।

3. भारतीय दंड संहिता की धाराओं 313/376 के अधीन याची के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया था और आई॰ ओ॰ ने अन्वेषण के बाद अपराध की इन्हीं धाराओं में आरोप–पत्र दाखिल किया और मामले को अपर न्यायिक कमिश्नर, एफ॰ टी॰ सी॰–X, राँची के न्यायालय को सुपुर्द कर दिया गया था जहाँ याची ने अपने उन्मोचन के लिए इस आधार पर याचिका दाखिल किया कि सूचक वयस्क युवती थी और वह उसके साथ संभोग के लिए सहमत पक्ष थी और इसलिए अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है। आगे कथन किया गया था कि सूचक वि॰ प॰ सं॰ 2 के गर्भपात के संबंध में कोई सामग्री अथवा साक्ष्य नहीं था जो भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन अपराध आकृष्ट करता हो।

4. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन उसके उन्मोचन के लिए याची की प्रार्थना को आक्षेपित आदेश द्वारा न केवल अस्वीकार कर दिया गया था बल्कि विचारण न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि तथ्यों और परिस्थितियों में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 417/506 के अधीन भी अपराध आकृष्ट होता था और इसलिए याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 376/313/417/506 के अधीन आरोप का सामना करने के लिए कहा गया था यद्यपि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 417/506 के अधीन अपराध का संज्ञान नहीं लिया गया था।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर आक्षेपित आदेश का विरोध किया कि विद्वान ए॰ जे॰ सी॰ ने **2007 (4) Eastern Criminal Cases 230** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास करते हुए उन्मोचन याचिका को अस्वीकार कर दिया था और विद्वान ए॰ जे॰ सी॰ ने संप्रेक्षित किया था,

> *''मिथ्या व्यपदेशन कि अभियुक्त का आशय विवाह करना था, के अनुसरण में पीड़िता द्वारा दी गयी सहमति को तथ्य के भ्रम के अधीन दी गयी सहमति के रूप में माना जा सकता था और इस प्रकार यह विधि में सहमति नहीं है।''*

6. मैं पाता हूँ कि ऊपर निर्दिष्ट निर्णय **(2007)7 सुप्रीम कोर्ट केसेज 413** में प्रकाशित किया गया है जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 90 के प्रति निर्देश में सहमति की व्याख्या करते हुए एक बिल्कुल

भिन्न प्रतिपादना दी गयी है। यह धारा भ्रम अथवा भय के अधीन दी गयी सहमति पर विचार करती है:–''कोई सहमति वैसी सहमति नहीं है जैसा इस संहिता के किसी धारा द्वारा आशयित है यदि उपहति के भय के अधीन अथवा तथ्य के भ्रम के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा सहमति दी गयी है और यदि कृत्य करने वाला व्यक्ति जानता है अथवा उसके पास विश्वास करने का कारण है कि सहमति ऐसे भय अथवा भ्रम के परिणामस्वरुप दी गयी थी, इसे मुक्त सहमति अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। यह प्रतिपादित किया गया था कि उपहति के भय के अधीन अथवा तथ्य के भ्रम के अधीन दी गयी सहमति बिल्कुल नहीं हो सकती थी।'' सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया,

''अधिकतर निर्णयों में जिसमें दंड संहिता के अधीन अभिव्यक्ति 'सहमति' पर चर्चा की गयी थी स्ट्राउड का शब्दकोष, इंग्लिश विधि, शब्दों एवं मुहावरों पर जोविट के शब्दकोष, स्थायी संस्करण और अन्य विधि शब्दकोषों में आने वाले उद्धरणों को निर्दिष्ट किया गया था। स्ट्राउड सहमति को ''प्रत्येक पक्ष पर अच्छा-बुरा को दिमागी तौर पर तौलते हुए सोच-विचार कर तर्क के कृत्य के रूप में परिभाषित करते हैं। जोविट उसी भाषा का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित जोड़ते हैं:

सहमति तीन चीजों□शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति और उनके मुक्त एवं गंभीर प्रयोग को उपधारित करती है। अतः यदि सहमति अभित्रास, बल, पूर्व चिंतित अधिरोपण, परिवंचना, आश्चर्य अथवा अनुचित प्रभाव द्वारा प्राप्त की जाती है, इसे भ्रांति के रूप में मानना होगा और न कि विवेक का सुविचारित और मुक्त कृत्य।''

7. सहमति के विवाद्यक पर चर्चा करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने **''उदय बनाम कर्नाटक राज्य (2003)4 SCC 46** में प्रकाशित मामले के संबंध में अपने पूर्व निर्णय पर विश्वास किया और इसे नीचे उद्धृत किया जाता है,

''यहाँ परिवादी का अभिकथन यह है कि अभियुक्त उसके घर आता था और उससे विवाह करने का प्रस्ताव किया था। उसने इस विश्वास पर कि अभियुक्त वस्तुतः उसके साथ विवाह करेगा, अभियुक्त के साथ यौन संभोग की अनुमति दी। किन्तु एक चीज जो हमें चौंकाती है.....उसने क्यों अपने माता-पिता से यह बात छुपाए रखा यदि उसका इस वादा में वस्तुतः विश्वास था। यह उपधारित करते हुए कि उसने अभियुक्त का विश्वास किया था जब उसने वादा किया था, यदि उसने ऐसा किया था, ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि उस समय पर अभियुक्त का अपना वादा पूरा करने का आशय नहीं था। ऐसा हो सकता है कि बाद में जब युवती गर्भवती हो गयी, अभियुक्त ने अन्यथा महसूस किया होगा। किंतु तब भी परिवादी की याचिका में मामला यह है कि अभियुक्त तब तक पीछे नहीं हटा था। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि तब तक अभियुक्त का परिवादी के साथ विवाह करने का आशय नहीं था यदि उसने कोई वादा किया भी था जैसा अभिकथित किया गया है।''

8. उदय के मामले (ऊपर) में सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया,

''उन कारणों से जो साक्ष्य पर पूरी तरह स्पष्ट नहीं है भविष्य की अनिश्चित तिथि पर वादा पूरा करने में विफलता सदैव स्वयं कृत्य के आरंभ में तथ्य के भ्रम की कोटि में नहीं आता है। तथ्य के भ्रम की कोटि के अर्थ के अंतर्गत आने के लिए तथ्य को तत्समय' प्रासंगिकता होनी होगी। मामला भिन्न होगा यदि सहमति ऐसा विश्वास कि वे पहले से ही विवाहित थे, सृजित करके प्राप्त किया गया था। ऐसे मामले में सहमति को तथ्य के भ्रम से परिणामित हुआ कहा जा सकता है। किंतु यहाँ अभिकथित तथ्य विवाह का वादा है जो हम नहीं जानते हैं कि कब किया गया था। यदि कोई वयस्क युवती विवाह का वादा किए जाने पर यौन संभोग का कृत्य करती है और ऐसी गतिविधि में

तब तक लगी रहती है जब तक वह गर्भवती नहीं हो जाती है, यह उसकी ओर से किया गया स्वच्छंद संभोग है और न कि तथ्य के भ्रम द्वारा प्रेरित कृत्य। युवती के कृत्य को क्षमा करने के लिए और दूसरे पर दांडिक दायित्व डालने के लिए ऐसे मामले में भा० दं० सं० की धारा 90 की मदद नहीं ली जा सकती है जब तक न्यायालय को आश्वासन नहीं दिया जाय कि आरंभ से ही अभियुक्त का आशय उसके साथ विवाह करने का नहीं था।''

9. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे जोड़ा,

''किंतु हमें यहाँ कहना ही होगा कि यह विनिश्चित करने के लिए कोई सर्वमान्य फार्मूला नहीं है कि क्या अभियोक्त्री द्वारा यौन संभोग के लिए दी गयी सहमति स्वैच्छिक है अथवा क्या इसे तथ्य के भ्रम के अधीन दिया गया है। अंतिम विश्लेषण में, सहमति के प्रश्न पर विचार करते हुए न्यायालयों द्वारा अधिकथित परीक्षाएँ अधिकतम न्यायिक विवेक के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती हैं, किंतु किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले न्यायालय को प्रत्येक मामले में अपने समक्ष दिए गए साक्ष्य और इर्द-गिर्द की परिस्थितियों पर विचार करना होगा क्योंकि प्रत्येक मामले के स्वयं अपने विशिष्ट तथ्य हैं जिनका इस प्रश्न पर प्रभाव हो सकता है कि क्या सहमति स्वैच्छिक थी अथवा तथ्य के भ्रम के अधीन दी गयी थी। इस तथ्य कि अपराध के प्रत्येक अवयव तथा सहमति की अनुपस्थिति उनमें से एक है, को सिद्ध करने का भार अभियोजन पर है, को दृष्टि में रखते हुए इसे साक्ष्य को तौलना भी होगा।''

10. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विचारण न्यायालय को अन्वेषण के दौरान संग्रहित सामग्रियों के विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है बल्कि इसे प्रथम दृष्टया मामले का पता लगाना है कि क्या केस डायरी और अभिलेख में दर्ज सामग्रियों पर आरोप-पत्र में अनुशंसित आरोप को संपोषित किया जा सकता था। आरोप विरचित करने के समय पर लघु विचारण करना सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **''इंदु जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य'', (2008)15 सुप्रीम कोर्ट केसेज 341,** में प्रकाशित मामले में निंदित किया गया है।

11. राज्य की ओर से विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को सुना गया।

12. मैं पाता हूँ कि अभियोक्त्री वयस्क युवती थी जिसके पास अपनी भागीदारी और नैतिक मूल्य के महत्व को समझने का पर्याप्त विवेक था, वह यौन संभोग स्थापित करने के लिए याची को सहमति दे रही थी, भले ही यह विवाह की प्रेरणा और वादा के चलते हो, और इसलिए यौन संभोग के लिए उसकी सहमति भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत नहीं आ सकती है। किंतु, भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन परिभाषित छल के अपराध को गठित करने के लिए प्रथम दृष्टया तत्व प्रतीत होते हैं जो याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 417 के अधीन दण्ड आकृष्ट करते हैं। अभियोक्त्री के गर्भपात के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन अभिकथन के संबंध में, मैं पाता हूँ कि यह तथ्यों पर आधारित विवाद्यक है जिसका विनिश्चय केवल विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन पर किया जा सकता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अधीन प्रस्तावित आरोप पर कोई मत निर्मित किए बिना इस दांडिक पुनरीक्षण को खारिज किया जाता है, फिर भी, मैं ऊपर कथित कारणों से पाता हूँ कि याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन कोई अपराध आकृष्ट नहीं होता है। विचारण न्यायालय को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 313 और 417 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित करने के बाद विधि के अनुरुप अग्रसर होने के लिए निर्देश दिया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

ब्रह्मानन्द सिंह

बनाम

मणि लाल वर्मा

C.R. No. 48 of 2004. Decided on 9th March, 2011.

बिहार मकान (पट्टा, किराया एव बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धाराएँ 11(1)(c) एवं 14—निजी आवश्यकता के आधार पर बेदखली—मकान मालिक पेशेवर वकील है और कार्यालय एवं वास-सुविधा के लिए स्थान चाहता है—आंशिक बेदखली उसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है—अवर न्यायालय ने सही प्रकार से बेदखली के लिए आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री पारित किया—पुनरीक्षण याचिका खारिज। (पैराएँ 6 से 12)

अधिवक्तागण.—Mr. B. P. Jaiswal, For the Petitioner; Mr. Om Prakash Tiwari, For the Opp.party.

आदेश

प्रतिवादी/किराएदार-याची की ओर से और वादी-मकानमालिक/विपक्षी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. वर्तमान पुनरीक्षण बेदखली वाद सं॰ 58 वर्ष 1988 (मणिलाल वर्मा बनाम ब्रह्मनन्द सिंह) ने मुंसिफ गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 10 फरवरी, 2004 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध दाखिल किया गया है।

3. बेदखली वाद बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 (इसमें इसके बाद ''अधिनियम'' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 11(1)(C) सह-पठित धारा 14 में संगणित आधार पर दाखिल किया गया था। मकान मालिक गढ़वा में पेशेवर वकील है किन्तु इस कारण से कि प्रश्नगत वास-सुविधा किराएदार के अधिभोग में है, उसे प्रत्येक दिन गढ़वा से डाल्टेनगंज, जहाँ वह वर्तमान में निवास कर रहा है, आना-जाना पड़ता है।

4. किराएदार ने आरंभ में दावा किया कि प्रश्नगत वास-सुविधा उसके श्वसुर की है और लंबे समय से अपने ससुर की अनुमति से उक्त वास-सुविधा में निवास कर रहा था और वह 'घरजमाई' है।

5. अवर न्यायालय ने प्रश्न पर विवाद्यक सं॰ 3 विरचित किया कि क्या वादी और प्रतिवादी के बीच मकान मालिक और किराएदार के संबंध का अस्तित्व है। दोनों पक्षों द्वारा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया गया था। किराएदार-याची के दावा पर अवर न्यायालय द्वारा पूरी तरह विचार किया गया था और विवाद्यक सं॰ 3 वादी के पक्ष में विनिश्चित किया गया था। अवर न्यायालय मौखिक साक्ष्य और दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् अग्रिम धन के रूप में 400/-रुपए के किराए और किराए के रूप में 120/-रु॰ प्रतिमाह का भुगतान की सूक्ष्मतापूर्वक संवीक्षण करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि पक्षों के बीच मकान मालिक और किराएदार के संबंध का अस्तित्व है। यद्यपि किराएदार ने नियमित रूप से किराया का भुगतान नहीं किया है किन्तु इसके बावजूद इस प्रभाव का निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि याची/प्रतिवादी विवादित वास सुविधा का किराएदार है। प्रदर्श-2 विवादित वास सुविधा के संबंध में पक्षों के बीच सम्यक् रूप से निष्पादित किरायानामा है। किरायानामा में संगणित निबंधनों और शर्तों पर वास-सुविधा (किरायानामा पर) दी गयी थी और, तद्नुसार, मकानमालिक के पक्ष में निश्चित निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि पक्षों के बीच मकानमालिक और किराएदार का संबंध है।

6. विवाद्यक संख्या 4 और 5 सद्भावपूर्ण आवश्यकता के प्रश्न से संबंधित है और क्या मकानमालिक सद्-विश्वास में वास-सुविधा चाहता है। किराया पर दी गयी वास सुविधा का उपयोग निवास के उद्देश्य से किया जाता है जो तीन कमरों का एक छोटा पूजा कक्ष, एक भंडार, एक किचेन, एक आंगन और एक शौचालय से गठित है। अवर न्यायालय द्वारा प्राप्त निष्कर्ष यह है कि वादी को एक कमरा अपने कार्यालय के लिए, एक ड्राइंग कम गेस्ट रूम, एक छोटा पूजा कक्ष, एक रसोईघर, एक स्टोर तथा शौचालय की जरूरत है। यह कहना अनावश्यक है कि सुखी जीवन के लिए छोटे परिवार की यह मूल आवश्यकता है।

7. अवर न्यायालय ने प्रश्न सं० 5 के रूप में वास-सुविधा के आंशिक बेदखली के प्रश्न को भी विचार में लिया है और असंदिग्ध रूप से इस निष्कर्ष पर आया है कि वादी को अपने निजी आवास और कार्यालय के लिए संपूर्ण वास-सुविधा की आवश्यकता थी और वास-सुविधा की आंशिक बेदखली उसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं था क्योंकि एक कमरे की जरूरत कार्यालय-सह-चैम्बर के उद्देश्य के लिए थी।

8. किराएदार की ओर से निवेदन करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को कतिपय दस्तावेजों के बारे में बताने का प्रयास किया। यद्यपि पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग में पुनरीक्षण न्यायालय की शक्ति अत्यन्त संकुचित नहीं है किन्तु इसे प्रथम अपील के विस्तार तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। मैं अवर न्यायालय द्वारा पहुँचे गए निष्कर्ष के साथ सहमत हूँ कि वादी और प्रतिवादी के बीच मकान मालिक और किराएदार का संबंध है और इस तथ्य से भी कि वादी-मकानमालिक को प्रश्नगत वास सुविधा की आवश्यकता है और इसलिए अवर न्यायालय ने याची-किराएदार को वाद परिसर का रिक्त कब्जा मकान मालिक-विपक्षी पक्षकार को सौंपने का निर्देश देते हुए सही प्रकार से आक्षेपित निर्णय और डिक्री को पारित किया है और इसमें इस न्यायालय के किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने अनुरोध किया कि चूँकि प्रतिवादी-याची प्रश्नगत वास-सुविधा में लंबे अरसे से निवास कर रहा है, उसे अपना निवास स्थान बदलने के लिए वैकल्पिक वास-सुविधा खोजने के लिए युक्ति-युक्त समय की जरूरत है। वादी-विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने मेरे ध्यान में लाया है कि पुनरीक्षण आवेदन काफी पहले वर्ष 2004 में दाखिल किया गया था और वर्तमान बेदखली वाद भी वर्ष 1988 से लंबित है और मकान मालिक अपूरणीय क्षति से पीड़ित है और, इसलिए, प्रश्नगत परिसर को खाली करने के लिए किराएदार को थोड़ा ही समय अनुज्ञात किया जा सकता है।

10. मामले के समस्त पहलूओं और तथ्यों एवं परिस्थितियों को विचार में लेने के बाद मैं समझती हूँ कि वैकल्पिक वास-सुविधा खोजने के लिए छह माह की अवधि किराएदार-याची को दिया जाना पर्याप्त है। तद्नुसार, किराएदार-याची को वास सुविधा खाली करने और इसका कब्जा मकानमालिक को सौंपने के लिए छह माह की अवधि अनुज्ञात की जाती है। प्रश्नगत वास सुविधा को दिनांक 30 सितम्बर, 2011 तक मकान मालिक-विपक्षी पक्षकार को सौंप देना होगा जिसमें विफल रहने पर मकानमालिक विपक्षी पक्षकार को इसे जबरन खाली करवाने की स्वतंत्रता होगी।

11. मुझे सूचित किया गया है कि निष्पादन न्यायालय के समक्ष निष्पादन मामला पहले से ही लंबित है। यह निर्देश दिया जाता है निष्पादन मामले की कार्यवाही को निपटाया जा सकता है किन्तु दिनांक 30 सितम्बर, 2011 के पहले बल प्रयोग द्वारा खाली कब्जा दिलाए जाने का रिट प्रदान नहीं किया जाएगा।

12. पूर्वोक्त संप्रेक्षण और किराएदार-याची को दी गयी सीमित स्वतंत्रता के साथ पुनरीक्षण खारिज किया जाता है और अवर न्यायालय का आदेश संपुष्ट किया जाता है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय सुशील हरकौली, एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

सनातन राणा एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal (Jail) Appeal No. 1523 of 2004. Decided on 9th March, 2011.

सत्र केस सं॰ 173 वर्ष 2003 में श्री राम शंकर शुक्ला, पंचम अपर सत्र न्यायाधीश, (एफ॰ टी॰ सी॰), दुमका द्वारा पारित दिनांक 20.3.2004 के निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–आजीवन कारावास–परिस्थितिजन्य साक्ष्य–दुश्मनी इतनी गंभीर नहीं थी कि जिसका परिणाम दो अभियुक्तों द्वारा एकमात्र मृतक पर किसी प्रकार के प्रहार में होता–मंशा दुर्बल है और बरामदगी पर पहले ही अविश्वास किया गया है–दुर्बल हेतु और अपीलार्थीगण के घर के सामने मृत शरीर का पाया जाना वैसी परिस्थितियाँ नहीं हैं जो अपीलार्थीगण के दोष को दर्शाते हुए पूर्ण श्रृंखला निर्मित करती है–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 14)

निर्णयज विधि.–2004 SCC (Cri) 1167—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Lakhan Sharma, For the Appellants; A.P.P., For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–इस अपील में दो अपीलार्थी हैं। अपीलार्थी सं॰ 2 अपीलार्थी सं॰ 1 की पत्नी है।

2. अपीलार्थीगण को मलय कांत विश्वास की हत्या के लिए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन पंचम अपर सत्र न्यायाधीश (एफ॰ टी॰ सी॰), दुमका द्वारा दिनांक 20.3.2004 के निर्णय द्वारा दोषसिद्ध किया गया है और आज्ञापक जुर्माना के बिना आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया है।

3. हमने विद्वान न्यायमित्र और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना है। प्राथमिकी, (फर्दबयान प्रदर्श–4), मृतक के पिता बिमल कान्त विश्वास द्वारा दिनांक 22.5.2002 को प्रात: 8:30 बजे दर्ज किया गया था।

4. प्राथमिकी के अनुसार, अभियुक्त और मृतक के बीच एक मामला न्यायालय में लंबित था। अपीलार्थी सं॰ 2 दिनांक 21.5.2002 को सायं लगभग 5 बजे कालीकंदार गाँव में सूचक के घर आयी और मामले में सुलह करने के लिए मृतक को अपने साथ अपने गाँव खैरबानी चलने को कहा। मृतक रात में वापस नहीं लौटा। प्रात: सूचक को उसके छोटे भाई श्यामल कांत विश्वास (अ॰ सा॰ 12) द्वारा सूचित किया गया था कि दोनों अभियुक्त अपीलार्थीगण ने मृतक को अपने घर के सामने एक पेड़ से बांध दिया था और लाठी, डंडा और टांगी (तेजधार वाला हथियार) द्वारा उसपर प्रहार करके उसकी हत्या कर दी थी। तदुपरांत उस पर, सूचक खैरबानी गाँव गया जहाँ उसने अपीलार्थीगण के घर के सामने पेड़ के नीचे मृतक का मृत शरीर पड़ा पाया। पूछ–ताछ करने पर, सूचक को पता चला कि दिनांक 21.5.2002 को रात्रि लगभग 10.30 बजे ऊपर बताए गए तरीके से मृतक की हत्या कर दी गयी थी। प्राथमिकी के अनुसार दुश्मनी के कारण यह अपराध किया गया था।

5. कोई चश्मदीद गवाह नहीं है, और मामला केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। अभियोजन द्वारा स्थापित एकमात्र चश्मदीद गवाह अ॰ सा॰ 4 चंकी देवी पक्षद्रोही हो गयी है और अभियोजन

द्वारा उसके प्रति परीक्षण में कुछ भी लाभकारी नहीं निकाला जा सका था। अन्यथा भी, यदि उसने दिनांक 21.5.2002 को रात्रि 10.30 बजे हत्या किए जाते देखा होता, उसने अन्य गाँववालों को यह बताया होगा, और उस स्थिति में हत्या और मृत शरीर के बारे में अगली सुबह मृतक के परिवार द्वारा की गयी खोज की तुलना में पहले ही पता चल गया होता। अ॰ सा॰ 5 उज्जवल कुमार डे के साक्ष्य में लाया गया एक अन्य तथ्य यह है कि अभियुक्त के घर, जिसके सामने अभिकथित रूप से हत्या की गयी है, से सटे गोपाल राना का घर है और अ॰ सा॰ 3 परगना मुर्मू का घर 20 कदम की दूरी पर है। अब यदि मृतक को पेड़ से बांधा गया होता और लाठी, डंडा और टांगी से उसपर प्रहार किया गया होता, वह निश्चय ही हल्ला करता अथवा चिल्लाता जो इन पड़ोसियों को घटनास्थल पर लाता।

6. व्यक्ति, जिसने हत्या के बारे में आरंभिक सूचना सूचक को दी, अर्थात् श्यामल कांत विश्वास जो सूचक का छोटा भाई है, को अ॰ सा॰ 12 के रूप में प्रस्तुत किया गया है किंतु वह कहता है कि उसने स्वयं इस सूचना को अपने भतीजे पार्थो विश्वास से पाया था जिसे अ॰ सा॰ 6 के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह गवाह कहता है कि इस सूचना को पाने पर वह घटनास्थल गया। जहाँ उसने मृतक को रस्सी से बंधा मृत पड़ा पाया और मृत शरीर के निकट लाठी और कुल्हाड़ी (टांगी) पड़ी हुई थी। तत्पश्चात् वह सूचक अ॰ सा॰ 14 को सूचित करने गया। अ॰ सा॰ 12 के इस बयान के विरूद्ध, पार्थों विस्वास अ॰ सा॰ 6 अपने मुख्य परीक्षण में कहता है। अ॰ सा॰ 12 श्यामल विश्वास को हत्या के बारे में पहले पता चला था। सूचक का परीक्षण अ॰ सा॰ 14 के रूप में किया गया है। अपने प्रति-परीक्षण के पैराग्राफ 2 में उसने कथन किया है कि मृतक अपीलार्थी सं॰ 2 के साथ अकेला गया था। उसने विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि दुश्मनी के बावजूद कोई भी मृतक के साथ नहीं गया था जब वह अपीलार्थी सं॰ 2 के साथ गया था। प्रथम दृष्टया यह आचरण उपदर्शित करता है कि जब मृतक अपीलार्थी सं॰ 2 के साथ अकेला जा रहा था, मृतक अथवा उसके परिवार के सदस्यों को आशंका नहीं हुई थी कि उसकी हत्या कर दी जाएगी। प्रथम दृष्टया इसका अर्थ होगा कि पक्षों के बीच दुश्मनी इतनी गंभीर नहीं थी जो ऐसी आशंका कारित कर सके और, इसलिए, मृतक को अकेला एक दूसरे गाँव को जाने की अनुमति दी गयी थी।

7. यह मामूली बात है कि गवाह झूठ बोल सकते हैं किन्तु परिस्थितियाँ नहीं। अत: मृतक और उसके परिवार के सदस्यों का आचरण प्रथम दृष्टया सुझाता है कि दुश्मनी इतनी गंभीर नहीं थी जिसका परिणाम दोनों अभियुक्तों द्वारा एकमात्र मृतक पर किसी प्रकार के प्रहार में हो सके।

8. दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा विश्वास की गयी एक अन्य मजबूत परिस्थिति अभियुक्त-अपीलार्थीगण के घर से रक्तरंजित लाठी, टांगी और नाइलन की रस्सी की बरामदगी है जैसा अ॰ सा॰ 8 भारत दत्तो द्वारा परिसाक्ष्य दिया गया है। घर के भीतर से यह बरामदगी (जैसा अ॰ सा॰ 16 आई॰ ओ॰ द्वारा अभिसाक्ष्य दिया गया है) इस तथ्य की दृष्टि में संदेहास्पद है कि अपने प्रति परीक्षण के पैराग्राफ 3 में सूचक ने कथन किया है कि मृतक को जूट की रस्सी से एक पेंड़ से बंधा पाया गया था और पेड़ के नीचे लाठी, डंडा और टांगी पड़े हुए पाए गए थे। प्रहार के हथियारों के स्थान के बारे में समरुप बयान अ॰ सा॰ 12 श्यामल कांत विश्वास और अ॰ सा॰ 13 सहदेव दत्ता द्वारा दिया गया है। यदि प्रहार के ये हथियार पेड़ के नीचे पड़े हुए थे, तब घर के भीतर से इनकी बरामदगी का प्रश्न ही नहीं उठता है। इसके अतिरिक्त जब मृतक को पेड़ से जूट की रस्सी से बंधा पाया गया था, नाइलन रस्सी, जिसे अभियुक्त के घर के अंदर से बरामद किया गया बताया जाता है, अपनी प्रासंगिकता खो बैठता है।

पुलिस द्वारा जूट की रस्सी बरामद नहीं की गयी है। अपने प्रति परीक्षण के इसी पैराग्राफ में सूचक ने कथन किया है कि मृतक का वस्त्र रक्तरंजित नहीं था और वह कह नहीं कह सकता है कि लाठी, डंडा और टांगी रक्तरंजित था या नहीं। सूचक नहीं कहता है कि वह अभियुक्त के घर के भीतर गया था और, इसलिए, यदि प्रहार के हथियार घर के भीतर होते, वह इन्हें देख सकता था जैसा उसके अभिसाक्ष्य में कहा गया है। अभिकथित बरामदगी के गवाह अ॰ सा॰ 3 परगना मुर्मू और अ॰ सा॰ 9 भारत दत्तो अपने अभिसाक्ष्य में रस्सी और लाठी की, न कि टांगी की बरामदगी के बारे में उल्लेख करते हैं।

9. कपड़ों का रक्तरंजित नहीं होना प्रासंगिक बन जाता है जब इसे अ॰ सा॰ 10, जो मृतक की माता है, के बयान के साथ देखा जाता है जिसको सुझाया गया था, यद्यपि इससे इनकार किया गया था, कि मृतक रोमांटिक चित्त का व्यक्ति था और उसकी हत्या कहीं और की गयी थी और मृत शरीर को उस स्थान पर फेंक दिया गया था जहाँ यह पाया गया था। अ॰ सा॰ 6, अ॰ सा॰ 7, अ॰ सा॰ 8 और अ॰ सा॰ 12 द्वारा भी ऐसे ही सुझावों से इनकार किया गया है। तर्क यह है कि मृतक की गतिविधियों के कारण उसकी हत्या कहीं और की गयी थी और उसका शरीर उस स्थान पर फेंका गया था जहाँ इसे पाया गया था और चूँकि वास्तविक हमलावर ज्ञात नहीं थे, इसलिए दुश्मनी के कारण अभियुक्तगण को आलिप्त किया गया था। इस संबंध में यह इंगित किया गया है कि अन्वेषण अधिकारी विनोद कुमार, अ॰ सा॰ 16, ने अपने अभिसाक्ष्य के पैरा 4 में कथन किया है कि उसने पेड़ पर खून का धब्बा नहीं पाया था, और घटनास्थल पर यहाँ-वहाँ खून की कुछ बूंदें थी। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 6 कहता है कि जब उसने मृत शरीर को देखा, उस पर केवल लुंगी और जांघिया था। स्पष्टत: मृतक किसी दूसरे गाँव इतने कम वस्त्रों में नहीं जा सकता था। पुलिस ने उसके शेष वस्त्रों को बरामद नहीं किया है।

10. पुन: सूचक ने अपनी प्राथमिकी में कथन किया है कि जब वह घटनास्थल पर पहुँचा, उसने मृत शरीर को जमीन पर पड़ा हुआ पाया किन्तु अ॰ सा॰ 14 के रूप में अपने अभिसाक्ष्य में वह कहता है कि उसने मृत शरीर पेड़ से बंधा पाया था। अ॰ सा॰ 7 भगीरथ मंडल, अ॰ सा॰ 11 धुनी राम मुर्म और अ॰ सा॰ 12 श्यामल कांत विश्वास ने भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उन्होंने मृत शरीर को पेड़ से बंधा देखा था। किन्तु अ॰ सा॰ 9 जियाराम मंडल कहता है कि मृत शरीर अभियुक्त के घर के दरवाजे पर जमीन पर पड़ा हुआ था और इसका हाथ रस्सी से बंधा था। अ॰ सा॰ 13 सहदेव दत्ता कहता है कि मृत शरीर पेड़ के निकट पड़ा हुआ था। यद्यपि यह एक लघु अंतर है किंतु तथ्य बना रहता है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला होने के कारण हमें यह देखना है कि क्या परिस्थितियों की श्रृंखला संपूर्ण है। सामने लायी गयी परिस्थितियाँ ये हैं कि कुछ दुश्मनी थी जो इतनी गंभीर नहीं थी जो मृतक अथवा उसके परिवार के सदस्यों के मन में कोई बड़ी आशंका उत्पन्न कर सके। अत: मंशा दुर्बल है। बरामदगी पर ऊपर पहले ही अविश्वास किया गया है और, इसलिए, अन्य परिस्थिति केवल यह है कि मृत शरीर अभियुक्त-अपीलार्थीगण के घर के बाहर पाया गया था।

11. अभियोजन द्वारा विश्वास किया गया एक अन्य परिस्थिति यह है कि अभियुक्त ने पुलिस के देखने पर भागने का प्रयास किया। इस परिस्थिति को पुलिस के भय द्वारा स्पष्ट किया जा सकता था, विशेषत: ऐसी परिस्थिति में जब अभियुक्त के घर के बाहर मृत शरीर पाया गया है।

12. अनिल कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य, 2004 SCC (Cri)1167, में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अधिकथित किया है:

> *''यह सुनिश्चित है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर दोषसिद्धि आधारित करने के लिए अपराधों में फँसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति को विश्वसनीय और निर्णायक साक्ष्य द्वारा स्पष्टतः स्थापित करना होगा और इस तरह सिद्ध की गयी परिस्थितियों को घटना*

की ऐसी श्रृंखला निर्मित करना होगा जो अभियुक्त के दोष को छोड़कर किसी और निष्कर्ष की अनुमति नहीं देगा और परिस्थितियों को अभियुक्त के दोष को छोड़कर किसी अन्य प्राक्कल्पना द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। न्यायालय को सतर्क रहना होगा और मात्र संदेह को, चाहे यह कितना भी मजबूत क्यों न हो, प्रमाण का स्थान लेने की अनुमति देने के जोखिम से बचना होगा। मात्र नैतिक दोषसिद्धि अथवा संदेह, चाहे यह कितना भी गंभीर क्यों न हो, प्रमाण का स्थान नहीं ले सकता है।''

13. विचारण न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय में पहले ही अभियुक्त-अपीलार्थी सं॰ 2 की न्यायिकेतर संस्वीकृति पर अविश्वास किया है जिसे अ॰ सा॰ 1 सुधीर पाल, अ॰ सा॰ 2 राजेन्द्र प्रसाद साह और अ॰ सा॰ 7 भगीरथ मंडल के माध्यम से सिद्ध करना इप्सित किया गया था। यह संस्वीकृति अभिकथित रूप से तब की गयी थी जब मृत शरीर की बरामदगी के कुछ ही देर बाद पुलिस घटनास्थल पर आयी थी जिसका अर्थ यह है कि कम से कम अपीलार्थी सं॰ 2 वहाँ पर उपस्थित था किंतु अ॰ सा॰ 10 बंशी विश्वास, मृतक की माता, अ॰ सा॰ 11 धुनी राम मुर्मू, अ॰ सा॰ 12 श्यामल कांत विश्वास और अ॰ सा॰ 13 सहदेव दत्ता अपने-अपने अभिसाक्ष्य में कहते हैं कि जब वे और अन्य व्यक्ति घटनास्थल पर पहुँचे, अभियुक्तगण अपने घर में नहीं थे जो बंद था। अतः, संक्षेप में, ऊपर इंगित किया गया दुर्बल हेतु और अपीलार्थीगण के घर के सामने मृत शरीर का पाया जाना ऐसी परिस्थितियाँ नहीं है जो एक पूर्ण श्रृंखला निर्मित करती हैं जो केवल एक ही निष्कर्ष अर्थात् अभियुक्त के दोष की ओर ले जाता है जो अन्य प्रत्येक निष्कर्ष से असंगत है।

14. इन परिस्थितियों में, हम इस अपील को अनुज्ञात करते हैं और दोनों अभियुक्त-अपीलार्थीगण को आरोपों से दोषमुक्त करते हैं। चूँकि अभियुक्त-अपीलार्थीगण जेल में है और इस अपील के लंबित रहने के दौरान उन्हें जमानत देने से इनकार किया गया है, उनको तुरन्त आजाद किया जाएगा यदि किसी अन्य मामले में, उनकी आवश्यकता नहीं है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

बजरंग चिरानिया

बनाम

कृषि उत्पाद विपणन कमिटि एवं अन्य

W.P. (C) No. 3044 of 2010. Decided on 9th March, 2011.

झारखंड कृषि उत्पाद विपणन अधिनियम, 2000—धारा 18—पट्टा-विधि का सहारा लिए बिना बाजार कमिटि द्वारा बेदखली नोटिस जारी किया गया-आरंभ में, याची को 11 माह के लिए पट्टा प्रदान किया गया था और तत्पश्चात, याची को किराया देने पर पट्टाधृत संपत्ति में बने रहने की अनुमति दी गयी थी-धारा 18 (2) (iii) को यह अर्थ लगाने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है कि कमिटि को पट्टा रद्द करने और पट्टेदार को बेदखल करने की शक्ति थी-आक्षेपित नोटिस अभिखंडित। (पैराएँ 2 एवं 3)

अधिवक्तागण.-Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioner; Mr. V.P. Singh, For the Respondents.

आदेश

याची के अधिवक्ता, श्री सिन्हा ने निवेदन किया कि याची को वर्ष 1997 में विपणन कमिटि द्वारा गोदाम का पट्टा ग्यारह माह के लिए प्रदान किया गया था किंतु तत्पश्चात उसे किराया स्वीकार करने पर बने रहने की अनुमति दी गयी थी। किराया बढ़ाया भी गया था। जनवरी, 2010 में जून, 2010 तक का किराया जमा और स्वीकार जमा किया गया था किंतु विधि का सहारा लिए बिना उसे गोदाम खाली करने के लिए कहते हुए दिनांक 3.6.2010 को पत्र जारी किया गया था।

उसने **उ॰ प्र॰ राज्य एवं अन्य बनाम महाराज धर्मेन्दर प्रसाद सिंह, (1989)2 SCC 505** में प्रकाशित मामले में निर्णय के पैराग्राफ 30 पर विश्वास किया जिसका पठन निम्नलिखित है:

''सर्वोत्तम टाइटल के साथ पट्टाकर्त्ता को समपहरण अथवा अन्यथा द्वारा अवसान अथवा पट्टा की पूर्व समाप्ति के बाद भी पट्टेदार से बल प्रयोग द्वारा न्यायिकेतर रूप से फिर से कब्जा करने का अधिकार नहीं है। पट्टा विलेख में अभिव्यक्ति 'पुनः प्रवेश' का प्रयोग फिर से कब्जा करने के लिए न्यायिकेतर तरीकों को प्राधिकृत नहीं करता है। विधि के अधीन, अवसान अथवा इसकी पूर्व समाप्ति के बाद भी पट्टेदार का कब्जा विधिक कब्जा है और बलपूर्वक बेकब्जा करना प्रतिषिद्ध है; विधि के सम्यक् क्रम को छोड़कर पट्टेदार को बेकब्जा नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, यह तथ्य कि पट्टाकर्ता राज्य है, इसे किसी बेहतर अथवा उच्चतर अवस्था में नहीं लाता है। इसके विपरीत, यह इस अपेक्षा कि सरकार और सरकारी प्राधिकारीगण की समस्त कार्रवाईयाँ 'लीगल पेडिग्री' होनी चाहिए, से उद्भूत होते अतिरिक्त भार के अधीन हैं। बिशन दास बनाम पंजाब राज्य, (SCR, पृष्ठ 79-80) में इस न्यायालय ने कहा:

अतः हमें इस प्रतिवाद कि याचीगण अतिचारी थे और इन्हें कार्यपालिका आदेश के द्वारा हटाया जा सकता है, पर आधारित तर्क को ठुकराना होगा। यह तर्क अपनी विवक्षा एवं विधि व्यवस्था पर अपने प्रभाव के कारण न केवल छद्मपूर्ण है बल्कि अत्यधिक खतरनाक भी है.....।

इस मामले से अलग होने के पहले हम महसूस करते हैं कि यह कहना हमारा कर्तव्य है कि राज्य एवं इसके अधिकारियों द्वारा इस मामले में की गयी कार्यपालिका कार्रवाई विधि के शासन के मूल सिद्धांत का विध्वंस करता है।''

उन्होंने **राम गाउडा (मृत) एल॰ आर॰ के माध्यम से बनाम एम॰ वरदप्पा (मृत) एल॰ आर॰** के माध्यम से, **(2004)1 SCC 769,** में प्रकाशित निर्णय के पैराग्राफों 7 और 8 पर भी विश्वास किया है।

2. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री वी॰ पी॰ सिंह ने निवेदन किया कि स्थानीय प्रशासन ने अनेक लाभकारी जन योजनाओं के अधीन वितरण के लिए अर्थित खाद्यान्नों को रखने के लिए भंडारण स्थान प्रदान करने के लिए विपणन कमिटि से अनुरोध किया और इस प्रकार लोक उद्देश्य के लिए उक्त गोदाम की आवश्यकता थी और तद्नुसार सही प्रकार से उक्त नोटिस को जारी किया गया था और तत्पश्चात् याची को बने रहने का अधिकार नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि वस्तुतः किसी पट्टे का अस्तित्व नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि श्री सिन्हा द्वारा विश्वास किए गए निर्णय इस मामले पर प्रयोज्य नहीं हैं क्योंकि पक्षगण विशेष संविधि अर्थात् कृषि उत्पाद बाजार अधिनियम एवं इसके अधीन विरचित नियमावली से शासित होते हैं। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि आबंटन की शक्ति रद्दकरण की शक्ति सम्मिलित करती है और बेदखल करने की शक्ति धारा 18 (2) (iii) में अंतर्विष्ट है जिसका पठन निम्न है:

***18.** विपणन कमिटि के कर्तव्य तथा शक्तियाँ*

***[(1)** .....*

***(2)** पूर्वगामी प्रावधान की व्यापकता के प्रति पूर्वाग्रह के बिना, विपणन समिति]:–* .....

***(iii)** प्रधान विपणन क्षेत्र तथा उप विपणन क्षेत्र को बनाये रखना एवं प्रबंध करना तथा इस अधिनियम एवं इसके अधीन बनायी गई उप-विधियों के प्रावधानों के अनुरूप कृषकों एवं अनुज्ञप्तिधारियों के हित में विपणन चलाना;*

3. यह विवादित नहीं है कि आरंभ में याची को वर्ष 1997 में ग्यारह माह के लिए पट्टा प्रदान किया गया था और तत्पश्चात् किराया स्वीकार करने पर याची को पट्टा धृत संपत्ति में बने रहने की अनुमति दी गयी थी; किराया वृद्धि भी की गयी थी। अत:, श्री सिंह का निवेदन कि पट्टा अस्तित्वहीन था, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह अर्थ लगाने के लिए धारा 18(2)(iii) को खींचा नहीं जा सकता है कि कमिटि को पट्टा रद्द करने और पट्टेदार को बेदखल करने की शक्ति थी। ऐसी परिस्थिति में और श्री सिन्हा द्वारा विश्वास किए गए निर्णयों की दृष्टि में बाजार कमिटि के पास उपलब्ध एकमात्र उपचार सामान्य विधि का सहारा लेना था। अत: यह अभिनिर्धारित करना ही होगा कि आक्षेपित नोटिस मनमानी और अवैध है। यह सूचित किया गया था कि आक्षेपित नोटिस जारी करने के बाद बाजार कमिटि ने गोदाम का आंशिक कब्जा ले लिया था।

परिणामस्वरुप, आक्षेपित नोटिस अभिखंडित किया जाता है और प्रत्यर्थीगण को आज के दिन से 15 दिनों के भीतर उक्त अंश को खाली करने का निर्देश दिया जाता है। किंतु, यह आदेश विधि के अनुरूप पट्टा को रद्द करने में प्रत्यर्थीगण के रास्ते में नहीं आएगा।

इन संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ इस रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

प्रमोद कुमार सिंह एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 7693 of 2006. Decided on 9th March, 2011.

सेवा विधि–वरीयता–पुनर्नियुक्त दलपति वरीयता और उस तिथि, जिससे उनकी सेवाओं को अभिमुक्त कर दिया गया था, से अपनी सेवाओं की निरंतरता का दावा कर रहे हैं–दिनांक 9.2.1998 के सरकारी आदेश के निबंधनानुसार दलपतियों को उनके द्वारा दी गयी विगत सेवाओं का कोई लाभ नहीं मिलेगा और उन्हें पुनर्नियुक्ति की तिथि के पहले का कोई धनीय लाभ नहीं मिलेगा–याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Kashyap, Ravi Prakash, For the Petitioners; J.C. to G.P.III, For the Respondents.

आदेश

यह याचिका निम्नलिखित अनुतोषों के लिए दाखिल की गयी है:

(i) वर्ष 1993 की उनकी नियुक्ति पर विचार करने के लिए समुचित स्थान में याचीगण की वरीयता को तुरन्त रखने के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति का रिट अथवा समुचित रिट/आदेश/निर्देश जारी करने के लिए, क्योंकि याचीगण और अन्य को सरकार के निर्णय के निबंधनानुसार और नियम एवं मार्गदर्शक सिद्धांतों के निबंधनानुसार भी पुनर्नियुक्त किया गया है, अतः नियुक्ति की तिथि से वरीयता की गणना करनी होगी, किंतु याचीगण का मामला अनदेखा किया गया है और उन्हें क्रमशः क्रम संख्या 87, 81 और 80 पर रखा गया है;

(ii) और/अथवा मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों और न्याय के हित में समुचित रिट, आदेश, निर्देश जारी करने के लिए जो माननीय न्यायाधीश समुचित मानते हों।

2. संक्षेप में याचीगण अपनी वरीयता और अपनी सेवाओं की निरंतरता का दावा उस तिथि से कर रहे हैं अर्थात् दिनांक 9.2.1998 से जब से उनकी सेवाओं को अभिमुक्त कर दिया गया है। याचीगण को दलपतियों के रूप में नियुक्त किया गया था और तत्पश्चात उनकी सेवाओं को अभिमुक्त कर दिया गया था। सरकार ने दिनांक 14.11.2004 के आदेश के तहत उन दलपतियों को पुनर्नियुक्त किया जिनकी सेवाएँ सरकार द्वारा पहले ही अभिमुक्त कर दी गयी थी। याचीगण वर्ष 1993 से अपनी नियुक्ति पर विचार करके समुचित स्थान में उनको रखे जाने और वर्ष 1998 से वर्ष 2005 की अवधि को उनकी सेवाओं की ओर गणना किए जाने का दावा कर रहे हैं।

3. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद का खंडन किया है और प्रति शपथ पत्र में प्रकथन किया है कि याचीगण, जिन्हें वर्ष 1993 में नियुक्त किया गया था, की सेवाओं को तत्कालीन बिहार सरकार के दिनांक 9.2.1998 के आदेश द्वारा अभिमुक्त कर दिया गया है। तत्पश्चात्, झारखंड पंचायती राज अधिनियम, 2001 दिनांक 10.5.2001 के प्रभाव से प्रवर्तित हुआ था और ग्राम रक्षा दल नियमावली, 2002 दिनांक 1.6.2002 के प्रभाव से प्रवर्तित हुआ। इस न्यायालय ने एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 533 वर्ष 2002 में निर्देश दिया कि छँटनीग्रस्त दलपतियों को पुनर्नियुक्त किया जा सकता है यदि सरकार ऐसा करना चाहती है और इस संबंध में निर्णय लेने का निर्देश दिया। सरकार ने भी वर्ष 2004 में निर्णय लिया है जिसमें सक्षम प्राधिकारी द्वारा दलपतियों की पुनर्नियुक्ति का निर्देश दिया गया था और परिपत्र में यह भी उपदर्शित किया गया था कि दलपतियों के रूप में उनकी पुनर्नियुक्ति के पहले दी गयी सेवा अवधि की गणना नहीं की जाएगी और न ही उस अवधि के लिए कोई भुगतान किया जाएगा। जी॰ ओ॰ में आगे उपदर्शित किया गया था कि उनको पुनर्नियुक्ति के बाद अपनी सेवाओं को ग्रहण करने की तिथि से ही वित्तीय लाभ प्रोद्भूत होंगे और नयी नियुक्ति के बाद उनकी पूर्व सेवाओं की गणना नहीं की जाएगी। अंत में, प्रत्यर्थीगण ने याचिका को खारिज करने के लिए प्रार्थना की।

4. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख का परिशीलन किया है। पक्षों द्वारा स्वीकार किया गया है कि वर्ष 1993 में याचीगण को दलपतियों के रूप में नियुक्त किया गया था और तत्पश्चात वर्ष 1998 में उनकी सेवाएँ अभिमुक्त कर दी गयी थी। तत्पश्चात्, सरकार ने दिनांक 14.11.2004 को परिपत्र (परिशिष्ट–1) जारी करके उन दलपतियों, जिनकी सेवाएँ दिनांक 9.2.1998 के सरकारी आदेश द्वारा छाँट दी गयी थी, को पुनर्नियुक्त किया था।

5. विचारार्थ केवल एक प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या दलपति, जिन्हें सरकारी आदेश (रिट याचिका के परिशिष्ट–1) के अनुसरण में पुनर्नियुक्त किया गया था, वर्ष 1998 से वर्ष 2005 तक की सेवा की निरंतरता का लाभ पा सकते हैं। क्या वर्ष 1993 में उनकी नियुक्ति को विचार में लेते हुए उनको वरीयता सूची में समुचित स्थान पर स्थापित किया जा सकता है। पैरा 'क' में अंतर्विष्ट सरकारी आदेश (परिशिष्ट–1) निम्नलिखित है:–

'क' दिनांक 23.8.93 से नियुक्त निरस्त दलपति/पंचायत सेवक अधिसूचित क्षेत्र/गैर अधिसूचित क्षेत्र को उनको पुनर्नियुक्ति की जाए तथा पुनर्नियुक्ति के फलस्वरुप उनके योगदान देने की तिथि से आर्थिक लाभ तय होगा। पुनर्नियुक्ति के पूर्व की अवधि में की गयी सेवा किसी प्रयोजन के लिए परिगणित नहीं की जाएगी और न ही उक्त अवधि के लिए किसी प्रकार का भुगतान अनुमान्य पंचायत सचिव (नियुक्ति सेवा शर्त एवं कर्तव्य) नियमावली, 2002 में प्रावधानित अधिकतम उम्र सीमा दलपति से पंचायत सेवक के पद पर नियुक्ति के लिए ही मान्य होगा।''

6. उक्त उद्धृत अंश से यह स्पष्ट है कि दलपति अपने द्वारा दी गयी विगत सेवा का लाभ नहीं पाएँगे और पुनर्नियुक्ति की तिथि के पहले उन्हें कोई धनीय लाभ नहीं मिलेगा। अत: सरकार का उक्त उद्धृत आदेश स्पष्ट है, इसलिए याचीगण विगत सेवा के किसी लाभ का हकदार नहीं है।

7. इस प्रकार, यह याचिका खारिज किए जाने का दायी है। तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है। व्यय का कोई आदेश नहीं।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

किशोर तिवारी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 7367 of 2006. Decided on 9th March, 2011.

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—रैयती भूमि पर रोपे गए पेड़ों का काटा जाना—वन विभाग की अनुमति से पेड़ों को काटा गया—याची प्रत्यर्थीगण को खुले बाजार में लकड़ी बेचने और याची को भुगतान करने अथवा वैकल्पिक रूप से, याची को इसे बेचने की अनुमति देने का निर्देश इप्सित कर रहा है—वर्ष 2005 से लकड़ी वन डिपो में पड़ी है—याची को इस संबंध में आवश्यक कार्रवाई के लिए डी॰ एफ॰ ओ॰ के पास जाने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.—M/s V. Shivnath, Santosh Kr. Tiwary, For the Petitioner; G.P.I, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि ग्राम-हरिनामढ़ टोला-पाँचपहाड़ी, पी॰ एस॰—चैनपुर, जिला-पलामू के भूखंड सं॰ 4, 21, 23, 24, 26, 27, 28, 30, 31, 33, 29, 36, 107, 108, 111, 112, 114 और 117 के 59.22 एकड़ माप वाले रैयती भूमि पर स्व॰ राजेश्वर तिवारी द्वारा तीन हजार से अधिक खैर के वृक्ष लगाये थे। जब वे वृक्ष परिवक्व हो गए तथा काटने एवं बेचने लायक हो गए तो कोई राम कृष्ण तिवारी पुत्र स्व॰ राजेश्वर तिवारी ने वन विभाग के पदाधिकारियों से अनुमति इप्सित किए किंतु उस समय पर उक्त रामकृष्ण तिवारी के भाईयों और बहनों द्वारा आपत्ति उठायी गयी थी। जब आपत्ति उठाए जाने के कारण अनुमति प्रदान नहीं की गयी थी, याची डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 3746 वर्ष 2003 के तहत इस न्यायालय के समक्ष आया और खैर लकड़ी को काटने और खुले बाजार में बेचने के लिए अनुमति देने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को देने के लिए प्रार्थना किया। उक्त मामले में, रामकृष्ण तिवारी के भाई-बहन उपस्थित हुए और अभिवचन किया कि पेड़ों को काटने की अनुमति प्रदान करने पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। इस पर, मामले को निपटाया गया और याची को भाइयों एवं बहनों की अनापत्ति के साथ समुचित आवेदन देने का निर्देश दिया गया ताकि मामले में अनुमति प्रदान करने के लिए प्राधिकारीगण द्वारा आवश्यक निर्णय लिया जा सके। इस पर सक्षम प्राधिकारी ने यह ध्यान में लेते हुए कि रामकृष्ण तिवारी के भाइयों और बहनों द्वारा अनापत्ति प्रदान की गयी थी, खैर वृक्षों को काटने की अनुमति रामकृष्ण चौधरी को प्रदान की गयी थी।

3. तत्पश्चात, रामकृष्ण तिवारी ने पेड़ों को काटने और राज्य ट्रेडिंग डिविजन के डिपो में इन्हें ले जाने के लिए उसको प्राधिकृत करते हुए याची के पक्ष में वर्ष 2005 में मुख्तारनामा विलेख निष्पादित किया। याची के पक्ष में उस ट्रांजिट परमिट को जारी किए जाने के अनुसरण में भूखंडों, समस्त भूखंडों के नहीं, पर स्थित पेड़ों को काटा गया था और राज्य ट्रेडिंग डिविजन, चैनपुर के डिपो पर ले जाया गया था ताकि निगम द्वारा इन्हें बेचा जा सके और कमीशन काटकर आगम को याची को सौंपा जा सके।

4. इस पर विभाग द्वारा लकड़ी का मूल्य मूल्यांकित किया गया था। ऐसे मूल्यांकन पर निगम केंद्र, चैनपुर में राशि जमा करने के लिए मुख्यालय द्वारा निर्देश जारी किया गया था। किन्तु ऐसा किया जाना कभी प्रतीत नहीं होता है और इसलिए, इन लकड़ियों को बेचने के मामले में वन व्यापार निगम अग्रसर नहीं हुआ था जिसके परिणामस्वरुप यह वन व्यापार खंड, चैनपुर के डिपो में ज्यों का त्यों पड़ा रहा। अत:, इन स्थितियों के अधीन याची वर्तमान रिट आवेदन दाखिल करके इस न्यायालय के समक्ष आया और खुले बाजार में लकड़ी बेचने के लिए और याची को भुगतान किए जाने के लिए अथवा वैकल्पिक रूप से याची को इसे बेचने की अनुमति देने के लिए प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिए जाने की प्रार्थना की।

5. प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है, जिसमें, याची की ओर से कहे गए तथ्य को लगभग स्वीकार किया गया है। किंतु, इस प्रभाव का बयान भी दिया गया है कि केंद्र में भंडारित लकड़ी को बेचा नहीं जा सकता था क्योंकि रामकृष्ण तिवारी के सह-अंशधारियों द्वारा कतिपय आपत्तियों को उठाया गया था। आगे कथन किया गया है कि चैनपुर डिपो का प्रभार झारखंड वन विकास निगम द्वारा ले लिया गया है। आगे, प्रति शपथ पत्र के पैरा 29 में निम्नलिखित कथन किया गया है:-

> *''अब प्रश्नगत खैर लकड़ी के भुगतान के लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं। <u>खैर लकडी के मूल्य का निर्धारण करने के लिए और निर्धारित राशि के लिए मांग पत्र भेजने के लिए निगम के संबंधित अधिकारियों</u> को निर्देश देते हुए प्रबंध निदेशक वन विकास निगम द्वारा मेमो सं० 161 दिनांक 5.2.2007 वाला पत्र लिखा गया है। खैर लकड़ी का मूल्य निर्धारित किया गया है और आवश्यक कार्रवाई करने के लिए डी० एफ० ओ० गढ़वा (दक्षिण खंड) द्वारा डिविजनल मैनेजर, लघु वन उत्पाद, गढ़वा से पत्र सं० 726 दिनांक 13.2.2007 के तहत अनुरोध किया गया है।*

6. इस प्रकार वस्तुत: यह प्रतीत होता है कि सक्षम प्राधिकारी की सम्यक् अनुमति पर काटे जाने के बाद खैर लकड़ी को ट्रांजिट परमिट के अधीन वन व्यापार खंड, चैनपुर के डिपो में लाया गया था जिसे पूर्व एंटीटी वन व्यापार खंड, चैनपुर द्वारा कभी नहीं बेचा गया था और न ही उत्तरजीवी एंटीटी झारखंड वन विकास निगम द्वारा ही इसे बेचा गया है यद्यपि इन्हें बाजार में बेचा जाना और इसके आगम का भुगतान उन्हें किया जाना था। किन्तु, ऐसा नहीं किया जा सका था क्योंकि प्रत्यर्थीगण के अनुसार, भू-धारक के सह-अंशधारियों द्वारा कतिपय आपत्तियों को उठाया गया था, किन्तु यह स्वीकृत अवस्था है कि लकड़ी वर्ष 2005 से वन डिपो, चैनपुर में पड़ी हुई है जिसे निश्चय ही उस तरीके से ठिकाने लगाए जाने की आवश्यकता है जिसे निगम के प्राधिकारी सुयोग्य और समुचित समझते हैं ताकि आगम सही दावेदार को दिया जा सके।

7. तद्नुसार, इस रिट याचिका को याची को इस निर्देश के साथ निपटाया जाता है कि वह भूधारक के सह-अंशधारियों की अनापत्तियों के साथ खैर लकड़ी, जो वन डिपो, चैनपुर में पड़ी हुई है, को निर्मुक्त करने के लिए अथवा स्वयं विभाग द्वारा लकड़ी को बेचकर आगम का भुगतान करने के लिए वैकल्पिक प्रार्थना के साथ समुचित आवेदन देते हुए डिविजनल वन अधिकारी, गढ़वा, दक्षिण खंड, पलामू के समक्ष

जाए। ऐसा आवेदन दाखिल किए जाने पर डिविजनल वन अधिकारी, गढ़वा दक्षिण डिविजन, पलामू आवेदन की प्राप्ति की तिथि से एक माह के भीतर इसे विभाग के माध्यम से बेचने और याची को आगम का भुगतान करने अथवा यह संतुष्ट होने पर कि किसी अन्य सह-अंशधारी को कोई आपत्ति नहीं है, याची के पक्ष में इसे निर्मुक्त करने का निर्णय लेगा।

8. इस प्रकार, यह आवेदन निपटाया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

झारखंड राज्य आवासीय बोर्ड एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W.P. (C) No. 1866 of 2009. Decided on 4th March, 2011.

परिसीमा अधिनियम, 1963—धारा 5—विलम्ब की माफी–अपील दाखिल करने में 15 दिनों का विलम्ब–जब कभी भी किसी लोक निकाय द्वारा विलंब की माफी के लिए आवेदन दिया जाता है, इसे उदारतापूर्वक माफ किया जाना चाहिए–अपील दाखिल करने वाले लोक निकाय और अपील दाखिल करने वाले निजी निकाय के बीच विशाल भिन्नता है–विलम्ब माफ–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Sachin Kumar, For the Petitioner; G.P.-I, For the Respondent-State; Mr. A.K. Choudhary, For the Respondent No.2.

आदेश

वर्तमान याचिका टाइटल अपील सं॰ 12 वर्ष 2008 में जिला न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन याचीगण द्वारा दाखिल की गयी है। यह टाइटल अपील जिला न्यायाधीश द्वारा अपील दाखिल करने में हुए 15 दिनों के विलंब को माफ नहीं करते हुए खारिज कर दी गयी है और इसलिए, वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गयी है।

2. याची के अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि वस्तुतः, टाइटल वाद सं॰ 17 वर्ष 2004 प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थी अर्थात् प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा संस्थापित किया गया था। दिनांक 30 जुलाई 2008 को विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया था। दिनांक 14 अगस्त, 2008 को डिक्री प्रदान की गयी थी। प्रमाणित प्रति के लिए दिनांक 20 अगस्त 2008 को आवेदन दिया गया था जिसे 28 अगस्त, 2008 को तैयार कर दिया गया था। तत्पश्चात, दिनांक 23 सितम्बर, 2008 को अवर अपीलीय न्यायालय में टाइटल अपील दाखिल किया गया था। इस प्रकार, वस्तुतः, डिक्री की तिथि से, यदि तिथियों की गणना की जाती है, कोई विलंब नहीं हुआ है। अन्यथा भी, अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा इंगित किए गए 15 दिनों के विलम्ब को भी लंबित टाइटल अपील जो याचिका के मेमो के परिशिष्ट-1 पर है, में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन याची द्वारा दाखिल विलम्ब माफी आवेदन के पैराग्राफों 4 और 6 में कथित कारणों के लिए माफ कर दिया जाना चाहिए था। इस पहलू का अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा समुचित रूप से अधिमूल्यन नहीं किया गया है और इसलिए आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है। पंद्रह दिनों के विलंब को माफ किया जा सकता है और अपील को नए सिरे से सुनने का निर्देश दिया जा सकता है।

3. प्रत्यर्थी सं॰ 2 के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विलम्ब को समुचित रूप से स्पष्ट किया गया है और इसलिए, अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश पूर्णत: सत्य, सही और विधि के अनुकूल है। राज्य के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने निवेदन किया कि तथ्यों, विशेषत: विलम्ब माफी आवेदन में कथित कारणों को देखते हुए अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा विलंब को माफ कर दिया जाना चाहिए था।

4. दोनों पक्षों को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं टाइटल अपील सं॰ 12 वर्ष 2008 में दिनांक 6 दिसम्बर, 2008 को जिला न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित आदेश को मुख्यत: निम्नलिखित तथ्यों और कारणों पर एतद् द्वारा अभिखंडित करता हूँ:–

(i) प्रत्यर्थी सं॰ 2 मूल वादी है जिसने टाइटल वाद सं॰ 17 वर्ष 2004 संस्थापित किया है जिसे वादी के पक्ष में डिक्री किया गया था। अपील विलंब माफी आवेदन के साथ वर्तमान याचीगण द्वारा दाखिल की गयी थी।

(ii) टाइटल वाद सं॰ 17 वर्ष 2004 में विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 30 जुलाई, 2008 को निर्णय दिया गया था। डिक्री दिनांक 14 अगस्त, 2008 को प्रदान की गयी थी। प्रमाणित प्रति के लिए दिनांक 20 अगस्त, 2008 को आवेदन दिया गया था जिसे दिनांक 28 अगस्त, 2008 को तैयार किया गया था और दिनांक 23 सितंबर, 2008 को टाइटल अपील दाखिल की गयी थी।

(iii) इस प्रकार, इन तिथियों को देखते हुए अपील दाखिल करने में कोई विलम्ब नहीं हुआ है। फिर भी यह प्रतीत होता है कि टाइटल अपील दाखिल करने में 15 दिनों के विलम्ब को माफ करने के लिए याची द्वारा आवेदन दाखिल किया गया था। तिथियों को देखते हुए और विलंब माफी आवेदन के पैराग्राफों 4 और 6 में कथित कारणों को देखते हुए, इसे अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया जाना चाहिए था।

(iv) जिला न्यायाधीश द्वारा बहुत ज्यादा तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाना चाहिए था जब कोई लोक निकाय अपील दाखिल करता है और वह भी टाइटल वाद में। सार्वजनिक संस्थान निर्णय लेने में सदैव कुछ समय लेते हैं। जिला न्यायाधीश को यह ध्यान में रखना चाहिए था कि मशीनरी को पूरी गति में लाना आसान नहीं है। जब कोई लोक निकाय अपील दाखिल करता है, उक्त निकाय को ईमानदार और गैर ईमानदार, उत्साही और आलसी दोनों व्यक्तियों से काम लेना होता है। कभी-कभी अधिकारी ईमानदार किंतु सुस्त होता है। इस प्रकार के अधिकारियों के संचित प्रभाव के कारण, विलम्ब कारित होता है और इसलिए, जब कभी भी लोक निकाय की ओर से विलंब माफी आवेदन दिया जाता है, इसे उदारतापूर्वक माफ कर दिया जाना चाहिए था। अन्यथा भी, अनेक नकारात्मक कारक है जो लोक निकाय के विरुद्ध ब्रेक का काम करेंगे। ऐसा हो सकता है कि लोक निकाय का ईमानदार किंतु सुस्त अधिकारी फाइल को कुछ दिनों तक अपने पास रोके रख सकता है और लोक निकाय का अपील काल वर्जित होगा। अपील दाखिल करने वाले लोक निकाय और अपील दाखिल करने वाले निजी व्यक्ति के बीच विशाल भिन्नता है।

(v) आक्षेपित आदेश को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि मामले के पूर्वोक्त पहलू का अधिमूल्यन जिला न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा समुचित रूप से नहीं किया गया है। विलम्ब माफी आवेदन में कथित कारण विलम्ब की माफी के लिए दिए गए युक्तियुक्त कारण हैं।

5. इन तथ्यों की दृष्टि में, मैं टाइटल अपील सं॰ 12 वर्ष 2008 में जिला न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा दिनांक 6 दिसम्बर, 2008 को पारित निर्णय एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त करता हूँ। एतद्द्वारा विलम्ब को माफ किया जाता है और अपील को इसकी मूल फाइल में पुनर्स्थापित किया जाता है। मैं जिला न्यायाधीश, सरायकेला को टाइटल अपील सं॰ 12 वर्ष 2008 को इसके अपने गुणागुण पर नए सिरे से सुनवाई करने का निर्देश एतद् द्वारा देता हूँ।

6. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

गोबिन्द साहू

बनाम

बैजनाथ साहू एवं अन्य

W.P.(C) No. 2856 of 2005. Decided on 1st March, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XXVI, नियम 9—प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति—याचिका की खारिजी—किसी विवादग्रस्त मामले के विशदीकरण अथवा किसी संपत्ति के बाजार मूल्य को अभिनिश्चित करने के उद्देश्य से आदेश XXVI, नियम 9 के प्रावधान के निबंधनानुसार स्थानीय अन्वेषण के लिए कमिश्नर नियुक्त किया जाता है—यह एक सुयोग्य मामला है जो यह अभिनिश्चित करने के लिए स्थानीय अन्वेषण करने के लिए प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति की अपेक्षा करता है कि क्या विवादग्रस्त भूमि पर कच्चा घर जैसा वादी द्वारा दावा किया गया है अथवा चारदीवार के साथ पक्का घर जैसा प्रतिवादी द्वारा दावा किया गया है, विद्यमान है—आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैराएँ 11 एवं 12)

अधिवक्तागण.—Mr. Rajan Raj, For the Petitioner; Mr. Tripuraari Prasad, For the Respondent No.1; Mr. Prakash Chandra, For the Respondent No. 3.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, प्रत्यर्थी सं॰ 1 के विद्वान अधिवक्ता और प्रोफॉर्मा प्रतिवादी प्रत्यर्थी सं॰ 3 के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची-वादी ने वादी द्वारा निर्मित कच्चा घर सहित भूखंड पर अधिकार, हक एवं हित की घोषणा और कब्जा की संपुष्टि के लिए मुंसिफ के न्यायालय, गिरिडीह में अभिधान वाद सं॰ 148 वर्ष 2002 दाखिल किया। संपत्ति का मूल्य 5,000/-रुपया दिया गया था।

3. प्रतिवादी ने उपस्थित होकर लिखित कथन दाखिल किया जिसमें अभिवचन किया गया था कि प्रश्नगत गृह का निर्माण वादी द्वारा कभी नहीं किया गया था, बल्कि इसे प्रतिवादी द्वारा निर्मित किया गया था और यह स्थायी निर्माण है जिसका मूल्य 5,00,000/-रुपया है। ऐसे अभिवचन पर, आरंभिक विवाद्यक के रूप में संपत्ति का मूल्य विनिश्चित करने के लिए प्रार्थना की गयी थी।

4. संपत्ति से संबंधित मामला न्यायालय द्वारा सुना गया था जिसमें दोनों पक्ष अपने दावा पर कायम रहते हुए अपने साक्ष्यों को दिया था और इसलिए, याची ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXVI, नियम 9 के अधीन इस प्रार्थना के साथ आवेदन दाखिल किया कि इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए कि

प्रश्नगत भूमि पर कच्चा घर है या निर्मित गृह, प्लीडर कमिश्नर को नियुक्त किया जाए ताकि संपत्ति का बाजार मूल्य अभिनिश्चित किया जा सके।

5. वादी द्वारा की गयी उस प्रार्थना पर प्रतिवादी द्वारा यह अभिवचन करते हुए आपत्ति की गयी थी कि साक्ष्य दिया जा रहा है और इसलिए, पक्षों की ओर से दिए गए साक्ष्य के आधार पर इसे विनिश्चित किया जाए।

6. न्यायालय ने दिनांक 18.1.2005 के अपने आदेश के तहत प्रतिवादी की ओर से किए गए अभिवचन को स्वीकार किया और प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति के लिए याची की ओर से दाखिल याचिका को अस्वीकार कर दिया।

7. उस आदेश से व्यथित होकर, वादी-याची ने यह आवेदन दाखिल किया है।

8. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि एक ओर, याची का दावा यह है कि वाद भूमि पर एक कच्चा/झोपड़ीनुमा घर है जिसे वादी द्वारा निर्मित किया गया है जबकि दूसरी ओर, प्रतिवादी अभिवचन कर रहा है कि उसके द्वारा पक्के घर का निर्माण किया गया है जिसका चारदीवारी के साथ मूल्य 5,00,000/-रुपया है।

9. इस प्रकार, यह निवेदन किया गया है कि जबतक यह अभिनिश्चित नहीं किया जाता है कि क्या वाद भूमि पर कच्चा/झोपड़ीनुमा घर है या निर्मित गृह, न्यायालय संपत्ति के मूल्य से संबंधित सही निष्कर्ष पर नहीं आ सकता है और इसलिए, अवर न्यायालय ने याची की ओर से की गयी प्रार्थना को गलत रूप से अस्वीकार कर दिया है।

10. इसके विरुद्ध, प्रतिवादी-प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं है क्योंकि जब पक्षगण अपने-अपने साक्ष्यों को दे रहे थे, किसी प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

11. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर यह वस्तुत: प्रतीत होता है कि एक ओर वादी-याची अपना दावा कर रहा है कि वाद भूमि पर कच्चा/झोपड़ीनुमा घर निर्मित किया गया है जिसका मूल्य 5,000/-रुपया है जबकि दूसरी ओर, प्रतिवादी ने अभिवचन किया है कि वाद भूमि पर पक्के घर और चारदीवारी का निर्माण किया गया है जिसका मूल्य 5,00,000/- रुपया है। ऐसे परस्पर विरोधी दावों पर, न्यायालय ने संपत्ति के मूल्य से संबंधित विवाद्यक को आर्रभिक विवाद्यक के रूप में सुना जिस पर पक्षों ने अपने साक्ष्यों को दिया और दोनों पक्ष अपने दावों पर डटे हुए हैं। वैसी स्थिति में, न्यायालय के लिए सही निष्कर्ष पर आना मुश्किल होगा जब तक यह अभिनिश्चित नहीं किया जाता है कि विवाद ग्रस्त भूमि पर पक्का घर है या कच्चा घर जिसका अभिनिश्चय बाजार मूल्य का निर्धारण करने के लिए विनिश्चयकारी कारक होगा और उस स्थिति के अधीन, विचारण न्यायालय ने याची की ओर से दाखिल याचिका को अस्वीकार करने की अवैधता की क्योंकि किसी विवादग्रस्त मामले के विशदीकरण अथवा किसी संपत्ति के बाजार मूल्य को अभिनिश्चित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के प्रावधान के निबंधनानुसार स्थानीय अन्वेषण के लिए कमिश्नर नियुक्त किया जाता है। इन परिस्थितियों के अधीन, यह सुयोग्य मामला है जो यह अभिनिश्चित करने के लिए स्थानीय अन्वेषण हेतु प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति की अपेक्षा करता है कि क्या वाद भूमि पर कच्चा घर है जैसा वादी द्वारा दावा किया गया है अथवा चारदीवारी के साथ पक्का घर है जैसा प्रतिवाद द्वारा दावा किया गया है ताकि प्रश्नगत संपत्ति का बाजार मूल्य निर्धारित किया जा सके।

12. तद्नुसार, टाइटल वाद सं॰ 148 वर्ष 2002 में मुंसिफ, गिरिडीह द्वारा पारित दिनांक 18.1.2005 का आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। विचारण न्यायालय प्लीडर कमिश्नर की नियुक्ति के लिए अग्रसर होगा। तद्नुसार, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया, न्यायमूर्ति

प्रभुनाथ तिवारी एवं अन्य

बनाम

राँची क्षेत्रीय विकास प्राधिकार एवं अन्य

W.P.C. No. 4016 of 2010. Decided on 1st March, 2011.

झारखंड क्षेत्रीय विकास प्राधिकार अधिनियम, 2000—धाराएँ 37 एवं 38—उप-विधि का खंड 7.5 धारा 38 के अधीन दाखिल आवेदन पर पारित आदेश के विरुद्ध अपील प्रावधानित नहीं करता—याचीगण द्वारा दाखिल यू॰ सी॰ एक अथवा दूसरे रूप में विनिश्चित किया जाना चाहिए था किंतु इसे रोका नहीं जा सकता था—आक्षेपित आदेश अपास्त—सकारण आदेश पारित करने के लिए मामला उपाध्यक्ष को वापस भेजा गया। (पैराएँ 9 से 11)

अधिवक्तागण.—M/s P.K. Prasad, S.N. Prasad, Abhishek, For the Petitioner; Mr. Jai Prakash, For the Respondent No.4; Mr. Amar Kr. Sinha, For the Respondents; Mr. P.K. Singh, For the RRDA.

आदेश

निम्नलिखित तथ्य विवाद में नहीं हैं।

2. अन्य बातों के साथ साथ टाइटल वाद सं॰ 266/2006 वाला वाद याचीगण द्वारा प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं॰ 4 मो॰ अनवर के विरुद्ध संस्थापित किया गया था जो वाद में उपस्थित हुआ। तत्पश्चात, उसने नक्शा की मंजूरी के लिए आवेदन दाखिल किया जिसे दिनांक 8.3.2008 को मंजूर किया गया था। वाद भूमि और भूमि जिसके लिए नक्शा मंजूर किया गया था एक ही है। किन्तु मंजूरी के लिए आवेदन में, प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने उक्त वाद के लंबित रहने के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया था। याचीगण ने दिनांक 29.8.2008 को अथवा इसके आस-पास झारखंड क्षेत्रीय विकास प्राधिकार अधिनियम (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 38 का अवलम्ब लेते हुए आवेदन दाखिल किया जिसे यू॰ सी॰ केस सं॰ 43 वर्ष 2008 के रूप में दर्ज किया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ अभिकथन किया गया था कि वाद के लंबित रहने का तथ्य दबाया गया था और इस प्रकार यह प्रत्यर्थी सं॰ 4 की ओर से तात्विक दुर्व्यपदेशन था और, इसलिए, अधिनियम की धारा 38 के अधीन उसके विरुद्ध कार्रवाई की जाए। दिनांक 21.11.2008 को प्रत्यर्थी सं॰ 4 की ओर से समय याचिका दाखिल की गयी थी, जिसे अनुज्ञात किया गया था किन्तु इसी बीच यह आदेश दिया गया था कि कोई निर्माण कार्य नहीं किया जाएगा। दिनांक 26.11.2008 को, संपदा अधिकारी को कागजात के परीक्षण का निर्देश दिया गया था और अंतिम सुनवाई के लिए अगली तिथि मुकर्रर की गयी थी।

3. संपदा अधिकारी ने दिनांक 15.1.2009 को अपने मत के साथ रिपोर्ट दाखिल किया कि उक्त आवेदन पर निर्णय केवल वाद के निपटारे के बाद लिया जाए।

4. उक्त रिपोर्ट को निर्दिष्ट करते हुए याचीगण द्वारा दाखिल उक्त यू॰ सी॰ केस को दिनांक 17.1.2009 के आक्षेपित आदेश द्वारा छोड़ दिया गया था।

5. याचीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया कि उक्त यू॰ सी॰ केस को गलत रूप से छोड़ दिया गया था और आर॰ आर॰ डी॰ ए॰ के उपाध्यक्ष को विनिश्चित करना चाहिए था कि अधिनियम की धारा 38 का उल्लंघन किया गया है या नहीं?

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं॰ 4 की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री जय प्रकाश ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और निवेदन किया कि याचीगण ने उक्त वाद में व्यादेश के लिए याचिकाओं को दाखिल किया था किन्तु उन पर किसी आदेश को प्राप्त नहीं कर सके थे; और, कि उपाध्यक्ष यू॰ सी॰ केस छोड़ देने में न्यायोचित थे। उन्होंने आगे निवेदन किया कि धारा 37 के अधीन प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा प्रस्तुत सूचना में कोई तात्विक दुर्व्यपदेशन अथवा कपटपूर्ण बयान नहीं है।

7. आर॰ आर॰ डी॰ ए॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ सिंह ने उपविधि के खंड 7.5 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि याचीगण के पास अपील का उपचार है; और कि चूँकि प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने प्रथम दृष्टया स्वामित्व/टाइटल के बारे में आर॰ आर॰ डी॰ ए॰ को संतुष्ट किया था और दस्तावेजों को प्रस्तुत किया था जैसा उपविधि के खंड 5.3 (v) के अधीन प्रावधानित है, अत: योजना मंजूर की गयी थी।

8. उत्तर में, श्री प्रसाद ने निवेदन किया कि उपविधि का उक्त खंड 7.5 वर्तमान मामले में प्रयोज्य नहीं है और अपील का प्रावधान नहीं है। उन्होंने यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया कि किन परिस्थितियों के अधीन व्यादेश मामले को नहीं सुना गया था और प्रस्तुत नहीं किया गया था।

9. मैं श्री प्रसाद के निवेदन के साथ सहमत होने का इच्छुक हूँ कि उपविधि का खंड 7.5 अधिनियम की धारा 38 के अधीन दाखिल आवेदन पर पारित आदेश के विरुद्ध अपील प्रावधानित नहीं करता है।

10. मेरे मत में, उक्त यू॰ सी॰ केस सं॰ 43/2008 को एक या दूसरे रूप में विनिश्चित किया जाना चाहिए था किन्तु इसे छोड़ा नहीं जा सकता था। चूँकि मामला वापस भेजा जा रहा है, मैं उसके गुणागुण पर कोई मत अभिव्यक्त नहीं कर रहा हूँ।

11. परिणामस्वरुप, दिनांक 17.1.2009 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से चार सप्ताह के भीतर शीघ्रातिशीघ्र पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद विधि के अनुरूप तर्कसंगत आदेश पारित करने के लिए उपाध्यक्ष को मामला वापस भेजा जाता है।

12. पूर्वोक्तानुसार, उपाध्यक्ष द्वारा मामला विनिश्चित किए जाने तक यथास्थिति का अंतरिम आदेश जारी रहेगा।

13. पक्षगण दिनांक 8 मार्च, 2011 को प्रात: 11 बजे इस आदेश की प्रति के साथ उपाध्यक्ष के समक्ष उपस्थित होंगे। पक्षों को मामले के शीघ्र निपटारे के लिए सहयोग करने का निर्देश दिया जाता है।

14. यह स्पष्ट किया जाता है कि यह आदेश मामले को छोड़ते हुए दिनांक 17.1.2009 के आक्षेपित आदेश की वैधता की परीक्षा करते हुए पारित किया गया है और यह आर॰ आर॰ डी॰ ए॰ के उपाध्यक्ष के समक्ष पक्षों के अपने-अपने मामलों पर प्रतिकूलता कारित नहीं करेगा।

माननीय डी॰ के सिन्हा, न्यायमूर्ति

दुशासन महतो एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (S.J.) No. 883 of 2002. Decided on 25th February, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 329 वर्ष 1999 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा पारित दिनांक 17.12.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 493 एवं 323—प्रवंचनापूर्ण यौन संभोग एवं नुकसान–दोषसिद्धि–अपीलार्थी और परिवादी के बीच प्रेम प्रसंग–न तो विवाह के लिए धार्मिक कृत्य का अनुष्ठान किया गया था और न ही परिवादी के पास यह विश्वास करने का कोई कारण था कि वह उसकी विधितः विवाहित पत्नी है–प्रहार के अभिकथन के समर्थन में कोई संपुष्टि कारक साक्ष्य नहीं है–दोनों गणनाओं पर दोषसिद्धि असंपोषणीय है–अपील अनुज्ञात।

(पैराएँ 12 एवं 13)

अधिवक्तागण.–Mr. R.C.P. Sah, For the Appellants; Miss. Anita Sinha, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–यह दांडिक अपील खरसावाँ पी॰ एस॰ केस सं॰ 5 वर्ष 1999, जी॰ आर॰ सं॰ 52 वर्ष 1999 के तत्सम, से उद्भूत सत्र विचारण सं॰ 329 वर्ष 1999 में प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला-खरसावाँ द्वारा दिनांक 17.12.2002 को दर्ज दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अपीलार्थी सं॰ 1 दुशासन महतो को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 493 एवं 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और पाँच वर्षों की अवधि के लिए कठोर कारावास भुगतने और व्यतिक्रम अनुबंध के साथ 10,000/-(दस हजार) रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने का तथा इसके अतिरिक्त, भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन उसकी दोषसिद्धि के लिए तीन माह का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था। अपीलार्थी सं॰ 2 सरस्वती महतैन को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था किंतु उसे एक वर्ष तक अच्छा आचरण बनाए रखने और एक वर्ष तक शांति बनाए रखने के लिए समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ 2,000/-रुपयों का परीवीक्षा बंधपत्र निष्पादित करने पर अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अधीन निर्मुक्त करने का निर्देश दिया गया था।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि परिवादी अ॰ सा॰ 2 पंतुआ कुमारी ने ए॰ सी॰ जे॰ एम॰ सरायकेला के समक्ष अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए सी॰/1 केस सं॰ 107 वर्ष 1998 के तहत परिवाद प्रस्तुत किया कि वह बारीडीह गाँव की निवासी थी जबकि अभियुक्त दुशासन महतो और उसकी बहन सरस्वती महतानी खरसावाँ पुलिस थाना के अंतर्गत चमरुडीह गाँव में निवास कर रहे थे। अपीलार्थी सं॰ 1 टाटानगर में पदस्थापित दक्षिण-पूर्व रेलवे का कर्मचारी था जबकि अपीलार्थी सं॰ 2 सरस्वती महतानी, यद्यपि उसका विवाह दो बार हुआ था किंतु उसने अपना दांपत्यगृह छोड़ दिया था, और अंततः अपने भाई के साथ वहाँ रहने लगी थी। अपीलार्थी सं॰ 1 का शंकर महतो के घर आना-जाना था जो परिवादी का निकट पड़ोसी था और उस क्रम में वह नियमित रूप से उसके घर आने-जाने लगा जो बाद में उनके अंतरंग संबंध में परिवर्तित हो गया था। उनके ऐसे संबंध का पता अंत में दिनांक 15.10.1998 को लगाया जा सका था जिसको लेकर परिवादी के कहने पर ''पंचायती'' की गयी थी जिसमें अपीलार्थी सं॰ 1 दुशासन महतो उपस्थित हुआ था जहाँ वह गवाहों की उपस्थिति में परिवादी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करने को तैयार हुआ और उस दृष्टि में विवाह के प्रमाण में उसने ''कबूलनामा'' निष्पादित किया किंतु परिवादी और अपीलार्थी सं॰ 1 दुशासन महतो के बीच विवाह का कोई अनुष्ठान संपन्न नहीं किया जा सका था। तब उसे अपीलार्थी दुशासन महतो के घर ले जाया गया था जहाँ उसके साथ अपीलार्थी सं॰ 2 सरस्वती महतानी द्वारा दुर्व्यवहार किया गया था और दुशासन महतो ने दिनांक 15.10.1998 से दिनांक 16.11.1998 के बीच उसके साथ संभोग किया था। उसके साथ दुर्व्यवहार और बुरा बर्ताव किया गया था और उस पर प्रहार किया गया था। यह अभिकथित किया गया था कि उसे भोजन दिए बिना एक कमरे में बंद रखा गया था और उसे गाँववालों से मिलने-जुलने नहीं दिया जाता था और अंततः दिनांक 16.11.1998 को यह कहते हुए कि वह दुशासन महतो की विधिपूर्वक विवाहिता पत्नी नहीं है, घर से निकाल दिया गया था। यद्यपि परिवादी के पिता ने विवाद सुलझाने और

मामला शांत करने का प्रयास किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ और इसलिए अपीलार्थी सं॰ 1 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 493/376/323 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए तथा अपीलार्थी सं॰ 2 के विरूद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 के अधीन परिवाद दर्ज किया गया था। प्राथमिकी के संस्थापन के लिए परिवाद को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अधीन खरसावाँ पुलिस थाना भेजा गया था। तद्नुसार, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 493/376/496/323 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 2.2.1999 को खरसावाँ पी॰ एस॰ केस सं॰ 5 वर्ष 1999 दर्ज किया गया था।

3. अपीलार्थी सं॰ 1 दुशासन महतो के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 376/496/493 के अधीन आरोप विरचित किया गया था जबकि अपीलार्थी सं॰ 2 सरस्वती महतानी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 323/498A के अधीन आरोप विरचित किया गया था और दोनों का विचारण किया गया था। यह उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा कि विचारण के दौरान अपीलार्थी दुशासन महतो के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 498/323 के अधीन पृथक आरोप विरचित किया गया था।

4. यद्यपि चमरुडीह के निवासी अ॰ सा॰ 2 लक्ष्मी नारायण महतो ने स्वीकार किया कि वह दुशासन महतो और पंतुआ कुमारी को जानता था किंतु उसने इस बात के प्रति अपनी अनभिज्ञता जाहिर किया कि उसके गाँव में कोई ''पंचायती'' की गयी थी। फिर भी उसने पंचनामा पर अपना हस्ताक्षर (प्रदर्श 1) स्वीकार किया और इसके अतिरिक्त ''पंचायती'' में अंतर्ग्रस्त विवाद्यकों के बारे में अनभिज्ञता अभिव्यक्त किया। उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया था और उसके बयान कि उसे प्रभारी-अधिकारी के कहने पर पुलिस थाना में पंचनामा पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, को छोड़कर उसके प्रति परीक्षण में कुछ भी तात्विक नहीं निकाला जा सका था।

5. मामले की परिवादी/सूचक अर्थात् अ॰ सा॰ 2 पंतुआ कुमारी ने परिसाक्ष्य दिया कि उसने घटना की तिथि और समय प्रकट करते हुए दुशासन महतो और सरस्वती महतानी के विरुद्ध मामला संस्थापित किया था। उसने परिसाक्ष्य दिया कि ''कार्तिक'' माह में दुशासन महतो उसके घर आया था और पहली बार बलपूर्वक उसके साथ बलात्कार किया था और उसके शोर मचाने पर गवाहगण राजा राम महतो, गुरुआ महतो और बनवाली महतो वहाँ आए और दुशासन महतो को पकड़ लिया। अभियुक्त दुशासन महतो ने उनके समक्ष उससे विवाह करने का प्रस्ताव किया। उसके प्रस्ताव के अनुसरण में गाँव में ''पंचायती'' की गयी थी जिसमें दुशासन महतो उपस्थित हुआ था और उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया था और उसे अपने घर ले गया था जहाँ उसे 15 दिनों तक रखा गया था। उसने आगे परिसाक्ष्य दिया कि 15 दिनों तक उसने उसके साथ संभोग किया किंतु उसे भोजन नहीं दिया। जब एक दिन दुशासन महतो अपनी ड्यूटी पर बाहर गया था, सरस्वती महतानी द्वारा उस पर प्रहार किया गया था। उसने घटना के बारे में बताया जब दुशासन महतो घर वापस आया था किंतु उसे यह कहते हुए कि वह उसे नहीं रखेगा, दुशासन महतो द्वारा घर से निकाल दिया गया था। वह अपने मायके वापस चली आयी और उसका पिता उसे पुनः दुशासन महतो के घर ले गया किन्तु जब उसने उसे स्वीकार नहीं किया, उसने परिवाद दर्ज किया था। उसने दुशासन महतो को कठघरे में पहचाना, किंतु, उसने सह-अभियुक्त सरस्वती महतानी को पहचानने का दावा किया था। प्रति-परीक्षण में, उसने स्वीकार किया कि अभिकथित घटना के संबंध में सूचना पुलिस थाना में दी गयी थी जहाँ उसका बयान दर्ज किया गया था और उसने अपने अंगूठे का निशान लगाया था। तब उसे सरायकेला अस्पताल में लेडी डॉक्टर के पास भेजा गया था और यह कि उसका साया-साड़ी जब्त कर लिया गया था जिसके लिए अभिग्रहण सूची तैयार की गयी थी। उसने अभिकथित घटना के लगभग एक माह बाद न्यायालय में एक परिवाद दाखिल किया। उसने स्वीकार किया कि उसका बयान पुलिस द्वारा दर्ज किया गया था। प्रति-परीक्षण के अधीन पैराग्राफ 14 में उसने स्वीकार किया कि दुशासन महतो ने कभी उसके साथ सहवास नहीं किया जब वह उसके साथ उसके घर गयी थी। सिवाय

पहली बार के जब उसके घर पर ऐसा किया गया था, उसके द्वारा उसके साथ दूसरी बार संभोग नहीं किया गया था और यह कि उसका उसके साथ विवाह कभी नहीं हुआ था और यह कि दुशासन महतो द्वारा उसपर प्रहार कभी नहीं किया गया था बल्कि सरस्वती महतानी ने उस पर प्रहार किया था।

6. अ॰ सा॰ 3 राजा राम महतो ने अभिसाक्ष्य दिया कि घटना रात के लगभग 10 बजे लगभग 10 माह पहले हुई थी। वह उसके द्वारा शोर मचाए जाने पर पंतुआ महतानी के घर गया और दुशासन महतो और पंतुआ महतानी दोनों को नग्न पाया। दोनों ने विगत एक माह से अंतरंग संबंधी की बात स्वीकार किया था। उन्हें पुलिस थाना ले जाया गया था। गाँव में ''पंचायती'' भी की गयी थी जहाँ दुशासन महतो और अन्य गवाहों द्वारा सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित विलेख तैयार किया गया था। ''पंचायती'' में लिए गए निर्णय के अनुसार वह पंतुआ कुमारी को अपने घर ले गया जहाँ उसे 15-20 दिनों तक रखा गया था और तत्पश्चात उस पर प्रहार किए जाने के बाद दुशासन महतो और सरस्वती महतानी द्वारा उसे घर से निकाल दिया गया था। उसे दुशासन महतो के घर पुनः ले जाया गया था किंतु उसने उनकी उपस्थिति में पंतुआ कुमारी पर प्रहार किया, और इसलिए परिवाद दाखिल किया गया था। उसने स्वीकार किया कि पंतुआ कुमारी रिश्ते में उसकी भतीजी है और दुशासन महतो का घर लगभग आधा कि॰ मी॰ की दूरी पर एक अन्य गाँव में था। गवाह ने स्वीकार किया कि उसने गाँव में घटना की अभिकथित रात्रि के पहले दुशासन महतो को नहीं देखा था और वह पंतुआ कुमारी की आयु नहीं बता सकता था।

7. अ॰ सा॰ 4 गुरुआ महतो ने रात की घटना को स्वीकार किया जो लगभग तीन वर्ष पहले हुई थी जब वह अपने दांपत्य गृह में था। वह उसके शोर मचाने पर पंतुआ कुमारी के घर गया था और उसने अभियुक्त दुशासन महतो को पंतुआ कुमारी के साथ बलात्कार करते पाया था। गाँव के चौकीदार को बुलाया गया था जो दुशासन महतो को पुलिस थाना ले गया था। गाँव में ''पंचायती'' भी की गयी थी जिसमें दुशासन महतो ने उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया था और पंतुआ कुमारी को अपने घर ले गया था जहाँ उसे 15-20 दिनों तक रखा गया था और तत्पश्चात् उसके द्वारा उसे निकाल दिया गया था। उसने प्रति-परीक्षण में स्वीकार किया कि घटना की अभिकथित तिथि के पहले दुशासन महतो को उसके दांपत्य गृह में कभी नहीं देखा गया था और यह कि पंतुआ कुमारी उसकी पत्नी की बड़ी बहन थी और उसकी आयु लगभग 20 वर्ष थी। उसने पुलिस के समक्ष इस बात को बताना स्वीकार किया कि अभिकथित घटना के पहले दुशासन महतो और पंतुआ कुमारी के बीच प्रेम प्रसंग चल रहा था और यह कि उसने राजा राम महतो के साथ दुशासन महतो को पकड़ा था और गाँव के चौकीदार को बुलाया था। दुशासन महतो पहले से विवाहित था और यह कि पुलिस थाना में विलेख तैयार किया गया था जिसपर दुशासन महतो ने पृष्ठांकित किया था और पंतुआ कुमारी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया था।

8. अ॰ सा॰ 5 फतह महतो परिवादी/सूचक पंतुआ कुमारी का पिता था जिसने अभिसाक्ष्य दिया कि घटना तीन वर्ष पहले रात में हुई थी जब वह अपने कमरे में सो रहा था और उसकी पुत्री पंतुआ कुमारी एक अन्य कमरे में सो रही थी जहाँ दुशासन महतो ने उसके साथ बलात्कार किया था जिस पर उसकी पुत्री ने शोर मचाया था जिस पर राजा राम महतो और गुरुआ महतो वहाँ पर आए थे, दुशासन महतो को पकड़ा था और गाँव के ''चौकीदार'' की मदद से पुलिस थाना ले गए थे। पुलिस थाना में दुशासन महतो ने पुलिस के समक्ष स्वीकार किया कि वह पंतुआ के साथ विवाह करेगा। गवाह ने अपनी पुत्री को दुशासन महतो के साथ जाने दिया। तद्नुसार, दुशासन महतो उसे अपने घर ले गया किंतु 15 दिनों बाद उसे घर से निकाल दिया। वह अपने मायके वापस लौट गयी। वह पुनः पंतुआ कुमारी को दुशासन महतो के घर ले गया किंतु उसने उसे स्वीकार नहीं किया और उसकी बहन सरस्वती महतानी ने उस पंतुआ कुमारी

पर प्रहार किया और केवल तब न्यायालय में परिवाद दर्ज किया गया था। गवाह ने स्वीकार किया कि उसने दो बार विवाह किया था और पहली पत्नी से उसे चार पुत्रियाँ थी। उसने अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह किया था और पंतुआ कुमारी उसकी पहली पत्नी की दूसरी पुत्री थी। वह अविवाहित थी और उसकी आयु 25-26 वर्ष थी। गवाह ने स्वीकार किया कि घटना के पहले वह दुशासन महतो को नहीं जानता था और यह कि दुशासन महतो ने पुलिस थाना में पंतुआ को अभिरक्षा में लिया था।

9. अ॰ सा॰ 6 रामाशीष मिश्रा मामले का अन्वेषण अधिकारी, ने अभिसाक्ष्य दिया कि दिनांक 2.2.1999 को वह खरसावाँ पुलिस थाना में प्रभारी-अधिकारी के रूप में पदस्थापित था। उस दिन उसने परिवादी पंतुआ कुमारी द्वारा दाखिल परिवाद केस सं॰ 107 वर्ष 1998 प्राप्त किया जिसके लिए उसने न्यायालय के अनुदेश के अधीन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 376/493/496/323 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए खरसावाँ पी॰ एस॰ केस सं॰ 5 वर्ष 1999 संस्थापित किया। उसने परिवाद याचिका प्रदर्श 3 और प्राथमिकी प्रदर्श 4 पर पृष्ठांकन सिद्ध किया। गवाह ने स्वीकार किया कि अन्वेषण के क्रम में उसने पंचनामा प्राप्त किया था जो परिवाद याचिका के साथ संलग्न था। प्रति-परीक्षण में, अन्वेषण अधिकारी ने इनकार किया कि घटना के अगले दिन पंतुआ कुमारी चौकीदार और अन्य गवाहों के साथ पुलिस थाना आयी थी और गवाहों की उपस्थिति में अपना बयान दिया था।

10. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आर॰ सी॰ पी॰ साह ने आरंभ में निवेदन किया कि यह पक्षों के बीच सहमतिपूर्वक संभोग का मामला था और जब गवाहों द्वारा उनको पकड़ा गया था, अपीलार्थी दुशासन महतो ने उसे स्वीकार करने की सहमति दी थी और उसे अपने घर ले गया था किन्तु उसने बिना किसी कारण से स्वेच्छा से उसका घर छोड़ दिया था। उसने अपने अभिसाक्ष्य में स्वीकार किया था कि अपीलार्थी दुशासन महतो के घर में उसके रुकने के दौरान कोई यौन संभोग नहीं हुआ था और यह कि कोई विवाह संपन्न नहीं हुआ था। यह वैसा मामला नहीं था जिसमें उसने स्वीकार किया था कि वह इस ख्याल अथवा विश्वास के अधीन थी कि अपीलार्थी दुशासन महतो के साथ उसका विवाह हुआ था और ऐसे विश्वास पर दुशासन महतो ने उसके साथ संभोग किया था ताकि भारतीय दंड संहिता की धारा 493 के अधीन अपराध आकृष्ट हो। अपने परिवाद में उसने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया था कि विगत अनेक माह से उसके और दुशासन महतो के बीच प्रेमप्रसंग चल रहा था और इस तथ्य को गवाहों की उपस्थिति में दोनों पक्षों द्वारा पंचनामा (प्रदर्श-1) में स्वीकार किया गया था यद्यपि अन्य गवाहों ने परिसाक्ष्य दिया कि उसके द्वारा शोर मचाये जाने पर वे रात में पंतुआ कुमारी के घर आए थे और उनको संभोग करता पाया था। स्वीकृत रूप से स्वयं अपना निर्णय लेने के लिए दोनों वयस्क थे और यह कि इन तथ्यों और परिस्थितियों में, संभोग के लिए पंतुआ कुमारी द्वारा दी गयी मुक्त सहमति की दृष्टि में अपीलार्थी के विरुद्ध कोई अपराध आकृष्ट नहीं होता है। पक्षों के बीच प्रेमप्रसंग यह नहीं बताता था कि रीति-रिवाज के साथ विवाह संपन्न किया गया था। सिवाय इस बात के कि वह दुशासन महतो के घर में रह रही थी, पंतुआ कुमारी ने दुशासन महतो के साथ अपना विवाह संपन्न किए जाने से निष्पक्षत: इनकार किया। मामले के उस दृष्टि में, न तो भारतीय दंड संहिता की धारा 493 और न ही धारा 323 के अधीन अपीलार्थी सं॰ 1 दुशासन महतो के विरुद्ध इन कारणों और उसके बयान कि दुशासन महतो द्वारा उस पर प्रहार कभी नहीं किया गया था, की दृष्टि में अपराध आकृष्ट नहीं किया जा सकता था। अत: भारतीय दंड संहिता की धारा 493 और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 के अधीन अपीलार्थी दुशासन महतो की दोषसिद्धि विधि के अधीन असंपोषणीय है। जहाँ तक भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन अपीलार्थी सरस्वती महतानी की दोषसिद्धि का संबंध है, मैं पाता हूँ कि परिवादी/अभियोक्त्री ने इस अभिकथन को

सिद्ध किया है कि दुशासन महतो की उपस्थिति में उसके द्वारा उस पर उपहति के बिना प्रहार किया गया था और संपोषणकारी साक्ष्य की अनुपस्थिति में सरस्वती महतानी को भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करना समुचित नहीं होगा। जब अभिकथन के दूसरे अंश को सिद्ध नहीं किया जा सका था।

11. प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, सुश्री अनीता सिन्हा ने निष्पक्षत: स्वीकार किया कि सिवाय इसके कि अपीलार्थी दुशासन महतो ने उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया था और विवाह के किसी रीति-रिवाज का अनुसरण किए बिना उसे अपने घर ले गया था, दुशासन महतो और परिवादी पंतुआ कुमारी के बीच विवाह संपन्न नहीं किया गया था किंतु परिवादी-अभियोक्त्री निरक्षर होने के कारण पंचायती के समक्ष अपीलार्थी के बयान की दृष्टि में इस ख्याल के अधीन थी कि वह दुशासन महतो की विवाहिता पत्नी थी और इसलिए अपीलार्थी दुशासन महतो को उसके दांडिक दायित्व से विमुक्त नहीं किया जा सकता है और इसलिए, उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 493 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया गया है।

12. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि अपीलार्थी सं॰ 1 दुशासन महतो को भारतीय दंड संहिता की धारा 493/322 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और अपीलार्थी सं॰ 2 सरस्वती महतानी को भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था। स्वीकृत रूप से, दुशासन महतो और पंतुआ कुमारी के बीच विवाह संपन्न नहीं हुआ था और न ही पंतुआ कुमारी के पास इसपर विश्वास करने का कारण था कि वह उसकी विधिपूर्वक विवाहिता पत्नी थी ताकि अपीलार्थी दुशासन महतो के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 493 के अधीन अपराध आकृष्ट हो। धारा 493 विवाह से संबंधित अपराध के संबंध में अध्याय-XX के अधीन आती है जो प्रवंचनापूर्वक विधिवत् विवाह का विश्वास उत्पन्न करते हुए किसी पुरुष द्वारा कारित सहवास पर विनिर्दिष्टत: विचार करती है:

> *''हर पुरूष, जो किसी स्त्री को, जो विधिपूर्वक उससे विवाहित न हो, प्रवंचना से यह विश्वास कारित करेगा कि वह विधिपूर्वक उससे विवाहित है और इस विश्वास में उस स्त्री का अपने साथ सहवास या मैथुन कारित करेगा वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।''*

13. वर्तमान मामले में, परिवादी-अभियोक्त्री ने स्वीकार किया है कि वह अपीलार्थी दुशासन महतो की विधिवत विवाहिता पत्नी नहीं थी और विवाह के किसी अनुष्ठान का पालन किए बिना अपनी पत्नी के रूप में अपीलार्थी दुशासन महतो द्वारा उसको स्वीकार किए जाने के बाद उसने स्वीकार किया कि समय के किसी भी बिंदु पर अपीलार्थी दुशासन महतो के घर में उसके साथ सहवास नहीं किया गया था। मामले के उस दृष्टिकोण में और अपीलार्थी दुशासन महतो के विरुद्ध अभिकथित अपराध गठित करने के लिए प्रासंगिक साक्ष्य की कमी के कारण मैं पाता हूँ कि भारतीय दंड संहिता की धारा 493 के अधीन उसकी दोषसिद्धि को विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है और ऐसी दोषसिद्धि घोर अन्याय के तुल्य होगी और, इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 493 के अधीन उसकी दोषसिद्धि से उसे दोषमुक्त किया जाता है। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि के संबंध में, मैं पाता हूँ कि अपने सारवान साक्ष्य में, अभियोक्त्री पंतुआ कुमारी ने स्वीकार किया कि दुशासन महतो द्वारा उस पर प्रहार कभी नहीं किया गया था यद्यपि घर से निकाले जाते समय अपीलार्थी सं॰ 2 सरस्वती महतानी द्वारा उस पर प्रहार किया गया था किंतु फिर भी दोनों अपीलार्थीगण को बिना किसी सम्पोषण के भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था। मैं पाता हूँ कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में भारतीय दंण्ड संहिता की धारा 323 के अधीन अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि असंपोषणीय हैं और युक्तियुक्त संदेह

सृजित होता है कि क्या सरस्वती महतानी ने वस्तुतः उस पर प्रहार किया था क्योंक अन्य गवाह ऐसे विवाद्यक (आरोप) पर मौन थे। उक्त कथित कारणों से, दोनों अपीलार्थीगण को खरसावाँ पी॰ एस॰ केस सं॰ 5 वर्ष 1999, जी॰ आर॰ सं॰ 52 वर्ष 1999 के तत्सम, से उद्भूत एस॰ टी॰ सं॰ 329 वर्ष 1999 में दोषमुक्त किया जाता है। तद्नुसार, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, सरायकेला द्वारा भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 493 एवं 323 के अधीन उनकी दोषसिद्धि को अपास्त किया जाता है और अपील अनुज्ञात की जाती है। उनके जमानत बंधपत्रों को उन्मोचित किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

सुबीर घोष एवं अन्य

बनाम

आरक्षी अधीक्षक, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

Cr.M.P. No. 839 of 2010. Decided on 10th February, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 120B, 420 एवं 471 सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 13(2) एवं 13(1) (d)—बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ को अनुचित नुकसान और परिवाहक को अनुचित लाभ कारित करते हुए पद का दुरुपयोग–अवर न्यायालय केस डायरी सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि अभियुक्तगण के विरुद्ध अपराध का प्रथम दृष्टया मामला बनता है–संज्ञान लेने वाले आदेश में हस्तक्षेप का कारण नहीं है–याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s Indrajit Sinha, Bibhash Sinha, For the Petitioner; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the C.B.I.

आदेश

याची के अधिवक्ता और सी॰ बी॰ आई॰ के अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने वर्तमान याचिका आर॰ सी॰ केस सं॰ 07 (A)/09-D के संबंध में याचीगण के विरुद्ध आरंभ की गयी समस्त दांडिक कार्यवाहियों के अभिखंडन के लिए और भारतीय दंड संहिता की धाराओं 120B, 420 और 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराओं 13 (2) सह-पठित 13(1)(d) के अधीन याचीगण के विरुद्ध अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-XIII–सह-विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा पारित दिनांक 22.6.2010 के संज्ञान लेने वाले आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री इंद्रजीत सिन्हा निवेदन करते हैं कि जहाँ तक याची सं॰ 1 अर्थात् सुबीर घोष का संबंध है, आरोप-पत्र में उसके विरुद्ध अभिकथित किया गया है कि उसने इस तथ्य के बावजूद कि मेसर्स नटराज कोल ट्रांसपोर्ट (प्रा॰) लि॰ ने एम॰ ओ॰ यू॰ के प्रावधानों, जो उसकी जानकारी में थे, का और ई॰ एस॰ एम॰ कंपनी के लिए डी॰ जी॰ आर॰ द्वारा विहित शर्तों का पालन नहीं किया था, जून, 2008 में समाप्त होने वाली अवधि के लिए द्विवार्षिक रिपोर्ट और दिनांक 11.11.2008 के अनुपालन रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किया और ई॰ एस॰ एम॰ कंपनी के कार्यपालन और रिपोर्टों को ''संतोषजनक' श्रेणीकृत किया। उसने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने के पहले सत्यापन भी नहीं किया था जो अन्वेषण के दौरान झूठी

और मनगढ़ंत पायी गयी थी। इस प्रकार, उसने बी० सी० सी० एल०, धनबाद को अनुचित हानि और मेसर्स नटराज कोल ट्रांसपोर्ट (प्रा०) लि० को अनुचित लाभ कारित करने हेतु अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग किया।

जहाँ तक याची सं० 2 अर्थात बिभाश चन्द्र माजी का सम्बन्ध है आरोप पत्र में उसके विरूद्ध अभिकथन किया गया है कि इस बात को अच्छी तरह से जानते हुए कि कंपनी एम० ओ० यू० के प्रावधानों का तथा डी० जी० आर० के कार्यालय द्वारा विहित शर्तों का अनुपालन नहीं कर रहा था, 1.4.2008 से 28.2.2009 तक की अवधि के दौरान कोयले के परिवहन के लिए मेसर्स नटराज कोल ट्रांसपोर्ट (प्रा०) लि० को आदेश निर्गत किए। उसने कोयले के परिवहन के लिए उक्त ई० एस० एम० कंपनी को अग्रेतर आदेश निर्गत किए तथा निजी परिवाहकों/पक्षकारों से वाहनों को किराया पर लेने की अनुमति दी। इस प्रकार, उसने बी० सी० सी० एल० को अनुचित क्षति तथा मेसर्स नटराज कोल ट्रांसपोर्ट (प्रा०) लि० को अनुचित लाभ कारित करने में अपनी आधिकारिक स्थिति का दुरूपयोग किया।

जहाँ तक याची सं० 3 अर्थात् तरुणकांति बंद्योपाध्याय उर्फ तरुण कांति बंद्योपाध्याय का संबंध है, उसके विरुद्ध आरोप-पत्र में अभिकथित किया गया है कि उसने इस तथ्य के बावजूद कि पूरी तरह यह जानते हुए कि मेसर्स नटराज ट्रांसपोर्ट (प्रा०) लि० ने द्विवार्षिक रिपोर्टों को दाखिल नहीं किया था जिसके लिए उक्त ई० एस० एम० कंपनी को उसके द्वारा पत्रों को जारी किया गया था, दिनांक 28.2.2009 को नोट शीट के तहत दिए गए प्रस्ताव में कंपनी के कार्यपालन को ''संतोषजनक'' विनिर्दिष्टत: उल्लेख करते हुए उक्त ई० एस० एम० कंपनी की कार्यावधि को एक अन्य टर्म के लिए बढ़ाने के लिए अनुशंसा किया था।

4. श्री सिन्हा ने आगे प्रतिवाद किया कि कोयला समनुषंगियों में यूनियन मुक्त कैप्टिभ परिवहन संगठन बनाने और पुनर्व्यवस्थापन के लिए एक्स-सर्विस मेन को अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से वर्ष 1979 में तत्कालीन ऊर्जा मंत्रालय और रक्षा मंत्रालय के बीच एक्स-सर्विस मेन (ई० एस० एम०) परिवहन कंपनी बनाने के लिए योजना विरचित की गयी थी। योजना दोनों पक्षों के प्रति सफल और परस्पर लाभदायी थी। यद्यपि एक्स-सर्विस मेन कोल परिवहन कंपनियों को चलाने के लिए अनुदेश/मार्गदर्शक सिद्धान्त विद्यमान थे, फिर भी इन कंपनियों के निर्माण को शासित करने वाले निबंधनों और शर्तों को पुनर्व्यवस्थापन के महानिदेशक और कोल इंडिया लिमिटेड द्वारा पुनरीक्षित किया गया था और दिनांक 16.4.1999 को मेमोरैंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग निष्पादित किया गया था जो आज की तिथि तक लागू है। दिनांक 16.4.1999 का उक्त एम० ओ० यू० याचिका के साथ परिशिष्ट-3 के रूप में उपाबद्ध है।

5. श्री सिन्हा ने निवेदन किया है कि दिनांक 16.4.1999 के पूर्वोक्त एम० ओ० यू० के खंड-4 के अनुसार यह सुनिश्चित करना डी० जी० आर० का उत्तरदायित्व था कि केवल प्राईवेट लिमिटेड का निर्माण करने वाले अथवा इसमें भाग लेने वाले समस्त व्यक्ति ई० एस० एम०/विधवाएँ/आश्रित ही इसके हकदार हैं और वे उपयुक्त तथा वित्तीय रूप से समर्थ हैं और इसी प्रकार, उक्त एम० ओ० यू० का खंड 7 प्रावधानित करता है कि ई० एस० एम० कंपनी में ई० एस० एम० कर्मचारियों की संख्या कुल नियमित कर्मचारियों का न्यूनतम 75% होगी और इसके अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए डी० जी० आर० रैंडम स्पॉट चेक्स का प्रबंध करेंगे। उक्त एम० ओ० यू० खंड 20 (c) के तहत आगे प्रावधानित करता है कि डी० जी० आर० और सी० आई० एल०/कोयला अनुषंगियाँ पूर्ण सहयोग करेंगे और एम० ओ० यू० के अनेक प्रावधानों और समय-समय पर एम० ओ० डी०/सी० आई० एल० द्वारा अधिकथित अन्य शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए उपाय बनाने का निरंतर प्रयास करेंगे। इसके अतिरिक्त डी० जी० आर० एक्स सर्विस मेन और उनके वाहनों को तैनात करने, उनके भुगतान और निदेशक बोर्ड के गठन से संबंधित एम० ओ० यू० के प्रावधानों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए प्रणाली विकसित करेंगे। यदि डी० जी० आर० इन पर एम० ओ० यू० के प्रावधानों से भिन्न कुछ भी पाता है, उनका कार्यालय सी० आई० एल० को सूचित करेगा और उपयुक्त कार्रवाई आरंभ करेगा। इसके अतिरिक्त एम० ओ० यू० का खंड 21(a) आज्ञा देता है कि ई० एस० एम०

कंपनी डी० जी० आर० द्वारा जारी प्रोफॉर्मा में अर्धवार्षिक रिटर्न दाखिल करेंगी। इसके अतिरिक्त, खंड 21 (b) प्रावधानित करता है कि कोयला अनुषंगियों से संबंधित रिपोर्ट के विनिर्दिष्ट/प्रासंगिक अंश को कोयला अनुषंगी के प्राधिकृत प्रतिनिधि द्वारा अधिप्रमाणित किया जाएगा। दिनांक 16.4.1999 के एम० ओ० यू० का खंड 21 (c) कथन करता है कि अन्य के साथ-साथ इन रिपोर्टों का लक्ष्य वाहनों/उपकरणों की तैनाती, इ० एस० एम० का प्रतिशत, अनियमितता, यदि हो, का पता लगाना है और डी० जी० आर० द्वारा ई० एस० एम० कंपनी की प्रगति को मॉनिटर करना है। अंत में, खंड 21 (d) प्रावधानित करता है कि विनिर्दिष्ट रिपोर्टों का अप्रस्तुतीकरण अथवा अशुद्ध तथ्यों/आँकड़ों के दिए जाने का परिणाम स्पांसरशिप के रद्दकरण/संविदा के अनवीनीकरण में हो सकता है। उक्त एम० ओ० यू० का खंड 10 संविदा की अवधि के बारे में कथन करता है। आरंभिक संविदा कार्य आरंभ करने की तिथि से पाँच वर्षों तक के लिए वैध हो सकती है। खंड 11 संविदा के नवीनीकरण के संबंध में है। संविदा का अगले चार वर्षों तक के लिए नवीनीकरण पर कोयला अनुषंगी और डी० जी० आर० द्वारा संयुक्त रूप से विचार किया जा सकता है बशर्ते ई० एस० एम० कंपनी का विगत कार्यपालन और क्रियाकलाप संतोषजनक रहा हो और एक्स सर्विस मेन का नियोजन अधिकथित नीति के मुताबिक है और इसके लिए कोल अनुषंगी को डी० जी० आर० को प्रस्ताव में भेजा जाना चाहिए।

6. श्री सिन्हा ने प्रतिवाद किया है कि पूर्वोक्त एम० ओ० यू० के निबंधनों के मुताबिक याचीगण किसी भी रूप में दायी नहीं हो सकते हैं और न ही वे किसी बाध्यता के अधीन है बल्कि डी० जी० आर० ही वह व्यक्ति है जो उत्तरदायी है और पूर्वोक्त एम० ओ० यू० के निबंधनों और शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए बाध्यता के अधीन है। अत:, याचीगण को दांडिक रूप से दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और इसलिए उनके विरुद्ध संस्थापित दांडिक कार्यवाही और लिया गया संज्ञान पूर्णत: अवैध है और उनके विरुद्ध आरंभ की गयी संपूर्ण दांडिक कार्यवाही और संज्ञान लेने वाले आदेश को अभिखंडित और अपास्त कर देना चाहिए।

7. सी० बी० आई० के विद्वान अधिवक्ता, श्री मुख्तार खान निवेदन करते हैं कि एम० ओ० यू० का पूर्वोक्त खंड 20 (c) स्पष्टत: दर्शाता है कि डी० जी० आर० और सी० आई० एल०/कोयला अनुषंगियाँ एम० ओ० यू० के अनेक प्रावधानों का और समय-समय पर एम० ओ० डी०/सी० आई० एल० द्वारा अधिकथित अन्य शर्तों का अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। अत: यह नहीं कहा जा सकता है कि याचीगण जिम्मेदार नहीं हैं। श्री खान ने आगे निवेदन किया है कि संज्ञान लेने वाला आदेश स्पष्टत: दर्शाता है कि अवर न्यायालय केस डायरी सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों का परिशीलन करने और विचार में लेने के बाद इस निष्कर्ष पर आया कि भारतीय दंड संहिता की पूर्वोक्त धाराओं 120B, 420 एवं 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 13 (2) सह-पठित 13(1)(d) के अधीन अपराध का प्रथम दृष्टया मामला याचीगण सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध बनता है।

8. श्री खान ने आगे निवेदन किया है कि संज्ञान लेने के लिए केवल प्रथम दृष्टया मामला स्थापित करना होगा। अधिसंभाव्यताओं अथवा अनधिसंभाव्यताओं के विस्तारपूर्वक परीक्षण की आवश्यकता नहीं है।

9. पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-XIII-सह-विशेष न्यायाधीश, सी० बी० आई० द्वारा पारित दिनांक 22.6.2010 के संज्ञान लेने वाले आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, इस दांडिक विविध याचिका को एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

राम चन्द्र यादव एवं एक अन्य

बनाम

शाहिद आलम एवं अन्य

S.A. No. 274 of 2009. Decided on 10th March, 2011.

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882—धारा 58(c)—सशर्त विक्रय–तीन विक्रय विलेखों को एक ही तिथि पर निष्पादित किया गया था जिसके बाद मूल प्रतिवादी के पक्ष में करार विलेख किया गया था–संव्यवहार सशर्त्त विक्रय द्वारा किसी भी रूप में बंधक गठित नहीं कर सकता है–वादी ने संपूर्ण प्रतिफल धन के पुनर्भुगतान के लिए मूल प्रतिवादी को अवसर दिया और केवल तब ही वह वाद संपत्ति के प्रतिहस्तांतरण के लिए वादी बाध्य होता–यह ऐसी संविदा है जहाँ समय सार है और विक्रय संपूर्ण हो गया है–अवर अपीलीय न्यायालय ने सही प्रकार से वादी का वाद डिक्री किया–अपील खारिज। (पैराएँ 16 से 18)

निर्णयज विधि.–(2006) 4 SCC 432—Relied; 2006 JLJR (SC) 178—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Manjul Prasad, Arbind Kumar Sinha, For the Appellants; M/s P.K. Prasad, Ayush Aditya, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान द्वितीय अपील सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 41, नियम 11 के अधीन ग्रहण किए जाने के लिए सूचीबद्ध है। प्रत्यर्थीगण–प्रतिवादीगण का प्रतिनिधित्व किया गया है और अवर न्यायालय के अभिलेख भी उपलब्ध हैं। इन परिस्थितियों में, अपीलार्थीगण और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता अंतिम रूप से द्वितीय अपील पर तर्क करने के लिए तैयार हैं। अत: अंतिम सुनवाई के लिए अपील अग्रसर होता है।

2. विधि का सारभूत प्रश्न, जो वर्तमान द्वितीय अपील में उद्भूत होता है, को दिनांक 20.1.2011 को विरचित किया गया था। यद्यपि विद्वान अधिवक्ता ने विधि के अनेक सारभूत प्रश्नों को विरचित किया है किन्तु अपील को केवल विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्न पर सुना जा रहा है:–

> *''क्या तीनों संव्यवहार सशर्त विक्रय के जरिए बंधक है अथवा पुनर्क्रय की शर्त के साथ विक्रय है?''*

3. टाइटल वाद सं॰ 16 वर्ष 1997 वादपत्र के अनुसूची–1 में वर्णित वाद भूमि पर उसके दावा की घोषणा करने के लिए अनुतोषों का दावा करते हुए और प्रतिवादीगण को बेदखल करने के बाद वाद संपत्ति पर वादी को कब्जा देने के लिए और प्रतिवादीगण के वाद संपत्ति के विधिविरुद्ध प्रतिधारण के कारण वादी द्वारा सहे गए नुकसान के कारण जुलाई, 1994 से मई, 1997 तक के प्रभाव से 200/-प्रतिमाह की दर पर निर्धारित 6800/-रुपयों की प्राप्ति के लिए डिक्री किए जाने के लिए और कब्जा दिए जाने तक वादकालीन और भविष्य के नुकसान की 200/-रुपया प्रतिमाह की दर से प्राप्ति के लिए भी और वाद संपत्ति पर किसी अंतरण विलेख अथवा विल्लंगम निष्पादित करने से प्रतिवादीगण को निर्बंधित करते हुए स्थायी व्यादेश के लिए डिक्री किए जाने के लिए भी शाहिद आलम द्वारा प्रतिवादीगण–अपीलार्थीगण के विरुद्ध दाखिल किया गया था।

4. संक्षेप में, वादी का मामला यह है कि उसने मूल प्रतिवादी भिखारी महतो उर्फ भिखारी यादव से दिनांक 14.6.1989 के विक्रय विलेख सं॰ 5187, 5188 और 5189 के तहत तीन विक्रय विलेखों

के माध्यम से वाद संपत्ति को खरीदा था। यह अनुबंधित करते हुए कि वादी को वाद संपत्तियों के उपयोग और अधिभोग की स्वतंत्रता थी, किन्तु वह किराया प्राप्त करने अथवा स्वयं अपने नाम में किराया रसीदों को जारी करवाने का हकदार नहीं होगा, प्रतिवादीगण के पक्ष में वादी द्वारा उसी दिन अर्थात् दिनांक 14.6.1989 को एक अन्य करार विलेख रजिस्टर्ड किया गया था। वे अंतरण अथवा किसी बैंक इत्यादि को बंधक द्वारा वाद संपत्तियों को विल्लंगमित नहीं करेंगे और दिनांक 14.6.1989 से दिनांक 13.6.1994 तक की अवधि के अंतर्गत पूर्वोल्लिखित तीन विक्रय विलेखों में वर्णित वाद संपत्तियों के 43,500/-रुपयों के प्रतिफल धन का पुनर्भुगतान करेंगे। पुनर्भुगतान किए जाने पर वादी प्रतिवादीगण के पक्ष में वाद संपत्तियों को प्रतिहस्तांतरित करेगा, जिसमें विफल होने पर विक्रय विलेखों को पक्के और आत्यंतिक विलेखों में परिवर्तित कर दिया जाएगा।

5. वाद संपत्तियाँ पक्के घर से गठित है और दो किरायेदारों के कब्जा में है जो अपने रेडियो और साइकिल की दुकानों को चला रहे हैं। वादी ने उन किराएदारों से दोनों दुकानों को खाली करवा लिया था और वह इन पर काबिज था जहाँ से वादी आवश्यक मरम्मत, जोड़ और परिवर्तन करने के बाद स्वयं अपना व्यवसाय कर रहा है।

6. अभिवचन उल्लिखित करते हैं कि प्रतिवादीगण दिनांक 14.6.1989 के रजिस्टर्ड करार विलेख के मुताबिक, जिसके द्वारा उनसे दिनांक 14.6.1994 से पहले करार विलेख के अनुपालन में संपूर्ण भुगतान करने की अपेक्षा की जाती थी, संविदा के अपने हिस्से का पालन करने के लिए कोई भी कदम उठाने में विफल रहे और, इसलिए, वादी दावा करता है कि वह वाद संपत्ति का संपूर्ण स्वामी था और वादी के पक्ष में प्रतिवादीगण द्वारा रजिस्टर्ड विक्रय विलेखों के निष्पादन की तिथि से उसका टाइटल वैध था। वाद संपत्तियों के संबंध में वादी का नाम भी नामांतरित किया गया था।

7. प्रतिवादीगण ने वर्तमान रूप में वाद की पोषणीयता को चुनौती देते हुए लिखित कथन दाखिल किया और दावा किया कि वाद तुच्छ और भ्रमित आधार पर था और परिसीमा, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, विबंध के सिद्धांत तथा उपमति द्वारा वर्जित था। यह स्वीकार किया गया है कि वाद संपत्ति मूलत: विक्रय विलेख के माध्यम से दुखी महतो द्वारा अर्जित की गयी थी और भिखारी महतो ने इसे विरासत में पाया था। प्रतिवादीगण ने दावा किया कि वे वाद संपत्ति के अनन्य स्वामी नहीं थे और, इसलिए, उन्हें इसे स्वयं अंतरित करने का अधिकार नहीं है और इस प्रकार तीनों विक्रय विलेख वादी को कोई वैध टाइटल प्रदान नहीं करते हैं। किन्तु, प्रतिवादीगण ने स्वीकार किया कि वादी साइकिल दुकान के रूप में ज्ञात एक कमरे के अधिभोग में है और चूँकि वादी 16,500/-रुपयों की बकाया राशि को समायोजित करने में विफल रहा, अत: उन्होंने वाद संपत्ति पर अधिकार एवं टाइटल अर्जित नहीं किया था।

8. वाद अधीनस्थ न्यायाधीश-II, कोडरमा द्वारा इस निष्कर्ष पर आते हुए खारिज कर दिया गया था कि वादी और प्रतिवादीगण के बीच हुआ अंतरण विलेख सशर्त विक्रय के साथ बंधक था और न कि पुनर्खरीद की शर्त के साथ विक्रय विलेख था।

9. वादी ने अपर जिला न्यायाधीश (एफ॰ टी॰ सी॰), कोडरमा के न्यायालय में टाइटल अपील सं॰ 1 वर्ष 2006 दाखिल किया। अपीलीय न्यायालय ने विनिश्चय किए जाने के लिए केवल एक प्रश्न विरचित किया कि ''क्या करार विलेख (प्रदर्श-2) द्वारा अनुसरित तीन विक्रय विलेख (प्रदर्श-4 श्रृंखला) पुनर्खरीद की शर्त के साथ विक्रय है अथवा सशर्त विक्रय के जरिए बंधक?''

10. प्रतिवादीगण-अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय के निर्णय का समर्थन किया है और वह निवेदन करते हैं कि विक्रय विलेख और पुनर्हस्तान्तरण का करार एक ही

तिथि पर सफलतापूर्वक निष्पादित किया गया था। घटनाओं का क्रम जैसा दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किया गया है और करार के निबंधन स्पष्टत: विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को स्पष्टत: प्रकट करता है। कोई संपूर्ण विक्रय नहीं था, और यदि तीन विक्रय विलेखों द्वारा वाद संपत्तियों का अंतरण करने का कोई आशय था, उसी तिथि पर पुनर्हस्तान्तरण के लिए कोई करार नहीं किया गया होता, और इस प्रकार, वादी और प्रतिवादीगण दोनों सहमत हुए थे कि प्रतिवादीगण द्वारा विक्रय प्रतिफल वादी को सौंप दिया जाएगा और इसके बदले में वादी पुन: अंतरण का विलेख निष्पादित करेगा और, इस प्रकार, एकमात्र निष्कर्ष स्पष्टत: यह है कि संव्यवहार संपूर्ण विक्रय नहीं था बल्कि बंधक था, और, इस प्रकार, वाद सही प्रकार से खारिज किया गया है।

11. फिर भी एक अन्य परिस्थिति इंगित की गयी है कि अंतरक को अनन्य अधिकार था चूँकि प्रश्नगत संपत्ति उसके पिता दुखी महतो द्वारा खरीदी गयी थी। विक्रय विलेख निष्पादित करने के बावजूद अंतरक काबिज बना हुआ था और, इस प्रकार, वह स्पष्टत: सुझाता है कि विक्रय विलेख अत्यन्त लापरवाह तरीके से निष्पादित किया गया था। यह इंगित भी किया गया था कि वादी ने टाइटल वाद सं॰ 12 वर्ष 1994 संस्थापित किया था और जब प्रतिवादीगण संपूर्ण प्रतिफल राशि का भुगतान करने के लिए तैयार थे, वाद वापस ले लिया गया था। यह एक अन्य परिस्थिति है जो इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि प्रश्नगत संव्यवहार सशर्त विक्रय के जरिए बंधक है और विक्रय विलेख (प्रदर्श-4 श्रृंखला) के आधार पर वाद संपत्ति पर वादी का दावा नहीं हो सकता है।

12. प्रतिवाद करते हुए वादी-प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने आरंभ में ही पूर्वोक्त तर्क पर विवाद किया है। उन्होंने संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1982 की धारा 58 (c) के परन्तुक को इंगित और अवलोकित किया है जिसका पठन निम्न है:

> *''परन्तु यह कि ऐसा कोई संव्यवहार बंधक नहीं समझा जाएगा, जबतक दस्तावेज में शर्त नहीं जोड़ी जाती है जो विक्रय को प्रभावशील बनाता है अथवा विक्रय को प्रभावशील बनाना तात्पर्यित करता है।''*

13. अवर अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के निर्णय के साथ सहमत नहीं हुआ और इसका दृष्टिकोण था कि वादी के पक्ष में प्रतिवादीगण द्वारा अंतरण सशर्त विक्रय द्वारा बंधक नहीं था–चूँकि तीन विक्रय विलेखों और विक्रय करार को एकल दस्तावेज में सन्निविष्ट नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त, अन्य परिस्थितियों को भी विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को अपास्त करने के पहले विचार में लिया गया था और विनिर्दिष्ट तर्कों को दिया गया था।

14. प्रतिवादीगण ने निर्णय के पूर्व अंश में उल्लिखित विधि के सारवान प्रश्न पर वर्तमान द्वितीय अपील को दाखिल किया है। वर्तमान अपील में स्वीकृत अवस्था यह है कि तीन विक्रय विलेखों को एक ही तिथि पर निष्पादित किया गया था जिसका अनुसरण वादी द्वारा मूल प्रतिवादी भिखारी महतो के पक्ष में करार विलेख द्वारा किया गया था। दिनांक 14.6.1989 का करार तीन विक्रय-विलेख सं॰ 5187, 5188 और 5189 से संबंधित है। उक्त विक्रय विलेखों ने वाद संपत्ति के उपयोग और अधिभोग को स्वतंत्रता प्रदान किया था किन्तु अनुबंधित अवधि अर्थात् दिनांक 14.6.1989 से दिनांक 13.6.1994 तक के लिए वाद संपत्ति का किराया पाने और स्वयं अपने नाम में किराया रसीदों को जारी करने से निर्बंधित किया था। अंतरिति-वादी को वाद संपत्ति को विल्लंगमति करने से भी निर्बंधित किया गया था किन्तु केवल पूर्वोक्त अनुबंधित अवधि के लिए जैसा प्रदर्श-2 में उल्लिखित है। यह अनुबंधित भी किया गया था कि प्रतिफल धन सहमत समय अर्थात् दिनांक 14.6.1989 से दिनांक 13.6.1994 तक के भीतर पुनर्भुगतान किए जाने

का दायी था अन्यथा विक्रय संपूर्ण होगा। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि स्वयं दस्तावेज, जिसकी व्याख्या अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा की गयी थी, कर्ज की प्रकृति में था और विक्रेता एवं क्रेता का संबंध लेनदार एवं देनदार का था। यह स्वयं वादी, जो खरीदार था, द्वारा दिया गया पुनर्हस्तान्तरण का अधिकार था किंतु एकमात्र वर्जन समय सीमा थी जिसका पालन करने में प्रतिवादीगण स्वीकृत रूप से विफल रहे। पूर्व वाद सं॰ 12 वर्ष 1994 को वापस लिए जाने का ऐसा दूरगामी प्रभाव नहीं हो सकता है जो इस निष्कर्ष पर लाए कि यह बंधक था और न कि संपूर्ण विक्रय। टाइटल वाद सं॰ 12 वर्ष 1994 के वाद पत्र की प्रमाणित प्रति को स्वयं प्रतिवादी द्वारा दाखिल किया गया था और इसके सरल परिशीलन पर अपीलीय न्यायालय भिखारी महतो के आशय का पता लगाने में सक्षम था। अपीलीय न्यायालय के निर्णय का परिशीलन स्पष्टत: स्थापित करता है कि दर्ज निष्कर्ष साक्ष्य के सही आकलन पर आधारित है। इसके अतिरिक्त, निष्कर्ष ठोस तर्कों और विचारण न्यायालय के निष्कर्षों के विनिर्दिष्ट निराकरण पर आधारित है। विचारण न्यायालय संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 58 (c) के परन्तुक को ध्यान में लेने में पूरी तरह विफल रहा है और संक्षिप्त तरीके से प्रतिवादीगण के पक्ष में निष्कर्ष पर आया है जिसको अपीलीय न्यायालय ने ध्यान में लिया है और विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त करने के लिए विस्तृत निष्कर्षों और तर्कों को दिया है।

15. अधिवक्ता ने **तुलसी एवं अन्य बनाम चंद्रिका प्रसाद एवं अन्य,** 2006 JLJR (SC)178, में प्रकाशित मामले में निर्णय पर विश्वास किया है। इस मामले में निर्णय देते हुए **बिश्वनाथ प्रसाद सिंह बनाम राजेन्द्र प्रसाद एवं एक अन्य, (2006)4 SCC 432,** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण यह था कि इस निष्कर्ष कि संव्यवहार सशर्त विक्रय के जरिए बंधक अंतर्ग्रस्त करता है, पर आने के लिए पुरोभाव्य शर्त यह है कि इसे प्रत्यक्ष विक्रय होना होगा और इसमें इस शर्त को अंतर्विष्ट करना होगा कि निश्चित तिथि पर बंधक धन के भुगतान के व्यतिक्रम पर विक्रय संपूर्ण हो जाएगा अथवा इस शर्त पर कि ऐसा भुगतान किए जाने पर खरीदार संपत्ति अंतरित करेगा। वर्तमान मामले में यह स्थिति नहीं है।

16. विश्वनाथ प्रसाद सिंह (ऊपर) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के पैराग्राफ 44 में सिद्धांत अधिकथित किया है जिसे यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:

> *''संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 58 (c) पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि दृश्यमान विक्रय विलेख का अर्थ सशर्त विक्रय द्वारा बंधक के रूप में लगाए जाने के लिए यह शर्त कि विक्रेता द्वारा प्रतिफल के पुनर्भुगतान पर खरीदार विक्रेता को संपत्ति अंतरित करेगा, दस्तावेज में सन्निविष्ट किया जाता है जो इसे प्रभावशील बनाता है अथवा प्रभावशील बनाने के लिए तात्पर्यित है। इसे पंडित चुनचुन झा बनाम शेख इबादत अली एवं एक अन्य, (1995) (1) SCR 174) में भी इस न्यायालय द्वारा यह कथन करते हुए स्पष्ट किया गया है कि ''यदि विक्रय और पुनर्खरीद के करार को पृथक दस्तावेजों में सन्निविष्ट किया जाता है, तब संव्यवहार बंधक नहीं हो सकता है चाहे दस्तावेजों को समकालीन रूप से निष्पादित किया गया हो अथवा नहीं किया गया हो।'' अत:, यह स्पष्ट है कि इस मामले में अंतर्ग्रस्त चीज विक्रय थी जो संपत्ति के पुनर्हस्तांतरण के लिए समकालीन करार द्वारा अनुसरित की गयी थी। पुनर्हस्तांतरण का ऐसा करार विकल्प संविदा है और इसके लिए प्रावधानित परिसीमा की अवधि के भीतर अधिकार का प्रयोग करना होगा। यह अभिनिर्धारित भी किया गया है कि प्रतिहस्तांतरण के ऐसे करार में समय संविदा का सार है। पुनर्हस्तांतरण के समय के भीतर वादीगण*

द्वारा मुकदमा नहीं किए जाने के चलते उनको यह घोषणा इप्सित करने की छूट नहीं होगी कि खरीदार द्वारा निष्पादित पुनर्हस्तांतरण के पृथक करार के आलोक में अर्थ अर्थान्वित उनके द्वारा किए गए विक्रय के संव्यवहार को बंधक के रूप में घोषित किया जाना चाहिए। ऐसा वाद अधिनियम की धारा 92 में अंतर्विष्ट अपवादों के अध्यधीन साक्ष्य अधिनियम की धारा 91 द्वारा भी हिट होगा।''

17. पहले दर्ज किए गए निष्कर्षों की दृष्टि में और अवर न्यायालयों के दो निर्णयों का परिशीलन करने के बाद, मैं विचारण न्यायालय के निष्कर्षों के साथ सहमत नहीं हूँ। परिस्थितियाँ जो अप्रतिसंहरणीय निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि संव्यवहार किसी भी रूप में सशर्त विक्रय द्वारा बंधक गठित नहीं करता है। पुनर्हस्तांतरण की शर्त एक और उसी दस्तावेज में अधिनियम की धारा 58 (c) के परन्तुक की दृष्टि में सम्मिलित किए जाने का दायी था और चूँकि यह पहलू स्पष्टत: अनुपस्थित है, इसे सशर्त विक्रय द्वारा बंधक निष्कर्षित नहीं किया जा सकता है। स्वीकृत रूप से तीन विक्रय विलेख हैं और चौथा विलेख, जो कर्ज धन के पुनर्भुगतान के लिए करार के रूप में है, धारा 58 (c) के परन्तुक में सम्मिलित शर्त को परिपूर्ण नहीं करता है। वादी के वाद को डिक्री करके अवर अपीलीय न्यायालय न्यायोचित निष्कर्ष पर आया है। वादी ने संपूर्ण प्रतिफल धन का पुनर्भुगतान करने के लिए मूल प्रतिवादी को अवसर दिया और केवल तब वादी वाद संपत्ति को पुनर्हस्तांतरित करने के लिए बाध्य होता और वह भी तब जब धन का भुगतान दिनांक 14.6.1989 से दिनांक 13.6.1994 तक की अवधि के बीच किया जाना था। ऐसा नहीं किया गया था और इसलिए, वर्तमान अपील में उठाया गया प्रश्न कि वर्तमान मामले में किया गया अंतरण सशर्त विक्रय द्वारा बंधक था, का उत्तर नकारात्मक रूप में दिया जाता है बल्कि यह पुन: खरीद की शर्त के साथ विक्रय था जो दिनांक 13.6.1994 को संपूर्ण हो गया था। यह उन मामलों में से एक है जहाँ पक्षों का आशय अत्यन्त स्पष्ट होता है और यह एक ऐसी संविदा है जहाँ समय सार है और, इसलिए, दिनांक 13.6.1994 को विक्रय संपूर्ण बन गया है। मैं अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पहुँचे गए निष्कर्षों के साथ सहमत हूँ।

18. द्वितीय अपील में गुणागुण की कमी है और, तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

प्रभास कुमार सिंह एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 2872 of 2009. Decided on 7th March, 2011.

सेवा विधि–नियुक्ति–कोई रिक्ति विद्यमान असमाप्त चयन सूची से नहीं भरी जा सकती है, जो विज्ञापन जारी होने के बाद उद्भूत हुई हो–जब एक बार विज्ञापित पदों के लिए उम्मीदवारों का चयन हो चुका है, उम्मीदवारों की शेष सूची का उपयोग भंडार के रूप में भविष्य की रिक्ति को भरने के लिए नहीं किया जा सकता है–वर्तमान में, 'A' पद के लिए विज्ञापन दिया गया था और असफल उम्मीदवारों की सूची से उम्मीदवारों की नियुक्ति के बाद 'B' पद के लिए रिक्तियों को भरा गया है–यह अनुच्छेदों 14 एवं 16 (1) का घोर उल्लंघन है–प्रत्यर्थीगण की नियुक्ति अभिखंडित। (पैराएँ 6, 11 एवं 12)

निर्णयज विधि.–(1996)4 SCC 319; (1997) 8 SCC 488; (2010) 2 SCC 637—Relied.

अधिवक्तागण.—Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioners; J.C. to A.G., For the Respondent-State; Mr. Ananda Sen, For the Respondent-Jharkhand High Court; M/s P.K. Prasad, Anil Kumar, For the Respondent Nos. 5 to 26.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इस याचिका में झारखंड राज्य में फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों की नियुक्ति को चुनौती दी है। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 23 मई, 2001 को एक विज्ञापन जारी किया गया था जिसके द्वारा अपर जिला न्यायाधीशों के पदों को विज्ञापित किया गया था। यह विज्ञापन झारखंड उच्चतर न्यायिक सेवा (भर्ती, नियुक्ति एवं सेवा शर्तें) नियमावली, 2001 (इसमें इसके बाद 2001 की नियमावली के रूप में निर्दिष्ट) के अनुसरण में था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, यह विज्ञापन अनन्यत: 2001 की नियमावली के निबंधनानुसार नियुक्ति के लिए था और इन नियमावली के बाहर किसी पद को नियुक्ति का विषयवस्तु नहीं बनाया जा सकता था।

फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों (प्रत्यर्थीगण) की नियुक्ति फास्ट ट्रैक न्यायालय के लिए सीधी भर्ती के रूप में चयन सूची से की गयी थी जो इस विज्ञापन के अनुसरण में थी। चूँकि यह विज्ञापन केवल नियमित अपर जिला न्यायाधीशों के लिए था, इस विज्ञापन के अनुसरण में फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों को नियुक्त नहीं किया जा सकता था।

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क किया है कि विज्ञापन मई माह, 2001 में जारी किया गया था और पहली बार झारखंड राज्य ने नवम्बर, 2001 में फस्ट ट्रैक न्यायालय के लिए अपर जिला न्यायाधीशों के पदों को मंजूर किया था। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि वर्ष 2001 में जब कोई पद उपलब्ध नहीं था, कल्पना की किसी सीमा तक यह नहीं कहा जा सकता है कि इस विज्ञापन के अनुसरण में फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों के पदों पर नियुक्ति की जा सकती थी। मामले के उस दृष्टिकोण में विद्वान अधिवक्ता आग्रह करते हैं कि मई माह, 2001 में जारी विज्ञापन के अनुसरण में तैयार चयन सूची से की गयी किसी नियुक्ति को वैध नहीं माना जा सकता है, क्योंकि यह नियमावली से असंबद्ध है। पदों, जिन्हें इस नियुक्ति को जारी करने की तिथि पर अनुध्यात नहीं किया गया था, पर नियुक्ति नहीं की जा सकती थी। इसे भविष्य की रिक्ति के रूप में नहीं माना जा सकता था क्योंकि नोटिस जारी किए जाने के दिन वे अस्तित्व में नहीं थे और 2001 नियमावली के अधीन भी रिक्ति नहीं थे। ऐसी रिक्ति के पद पर कोई नियुक्ति विधि के विरुद्ध है जैसा **प्रेम सिंह बनाम हरियाणा राज्य विद्युत बोर्ड, (1996)4 SCC 319,** में प्रकाशित मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है।

विद्वान अधिवक्ता के अनुसार पदों, जिन्हें विज्ञापन विशेष द्वारा भरा जा सकता है, पहले से विद्यमान अथवा अनुध्यात पद हैं और न कि भविष्य की रिक्ति। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि चूँकि पद केवल नवम्बर माह, 2001 में अस्तित्व में आए हैं, वे भविष्य की रिक्ति की श्रेणी के अंतर्गत भी नहीं आ सकते हैं क्योंकि विज्ञापन जारी किए जाने के दिन पर वे मंजूर पद नहीं थे बल्कि वे 2001 नियमावली के अधीन मंजूर पद कभी भी नहीं थे। अत: नियुक्तियाँ आरंभ से ही अवैध थी।

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विज्ञापित पद अर्थात् अपर जिला न्यायाधीश के पद के लिए चयन प्रक्रिया विज्ञापित पदों के लिए की गयी नियुक्ति के साथ ही समाप्त हो गयी है।

छोड़ दिए गए उम्मीदवारों की सूची से एक बिल्कुल ही भिन्न अर्थात् फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों के पदों, जिन्हें बाद में मंजूर किया गया है, के लिए की गयी कोई नियुक्ति को विधि की मंजूरी नहीं मिलेगी और इसलिए ये अवैध हैं।

यद्यपि रिट याचिका में अन्य आधारों पर भी आग्रह किया गया है, किन्तु उन आधारों पर तर्कों को नहीं सुना गया था क्योंकि पूर्वोक्त आधार स्वयं इतना महत्वपूर्ण प्रतीत हुआ कि प्रत्यर्थीगण को उत्तर देने के लिए कहा गया था।

2. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री पी० के० प्रसाद, जिनकी सहायता सुश्री देवलीना सेन ने की, ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण की नियुक्ति को चुनौती देने का अधिकार याचीगण को नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि रिट याचिका के आवश्यक पक्षों को जोड़ा नहीं गया है, अत: रिट याचिका पक्षकारों के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे आग्रह किया कि चूँकि वित्त आयोग ने पहले ही इन पदों को मंजूरी दी थी, प्रक्रिया चल रही थी और केंद्र सरकार ने अनुशंसा की है और राज्य सरकार इसपर सक्रिय रूप से विचार कर रही थी, अत: इन्हें अनुध्यात पद माना जा सकता है और मामले के उस दृष्टिकोण में नियुक्तियाँ वैध हैं।

3. प्रत्यर्थीगण में से कुछ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार सिन्हा ने निवेदन किया कि 2001 की नियमावली केवल अपर जिला न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति का कथन करती है और इसका अर्थ अस्थायी पद भी होगा और चूँकि प्रत्यर्थीगण को ए० डी० जे०, फास्ट ट्रैक न्यायालयों, के अस्थायी पदों के विरुद्ध नियुक्त किया गया था, उन्हें वैध माना जाना चाहिए क्योंकि चयन मई, 2001 में जारी विज्ञापन के अनुसरण में किया गया था। उन्होंने आगे जोर दिया कि 2001 नियमावली के नियम 25 में अस्थायी नियुक्ति को निर्दिष्ट किया गया है और अधिकाधिक यह कहा जा सकता है कि उनके मुवक्किल अस्थायी नियुक्त व्यक्ति हैं और इसलिए उन्हें नियम 25 के निबंधनानुसार नियमित बना दिया जाना चाहिए। नियम को त्वरित निर्देश के लिए यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *"25. इन नियमों में अंतर्विष्ट किसी चीज के विपरीत होने के बावजूद अस्थायी आधार पर नियुक्त अपर जिला न्यायाधीश किसी ऊपरी आयु सीमा के बिना शर्तों के अध्यधीन सेवा में स्थायी नियुक्ति के पात्र होंगे यदि:*
>
> *(i) उसने अपनी प्रथम नियुक्ति की तिथि से दो वर्षों की सेवा पूरी कर ली है।*
>
> *(ii) वह उन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ है जिन्हें विभागीय परीक्षा नियमावली, यदि कोई हो, में समय-समय पर विहित किया जा सकता है,*
>
> *(iii) ऐसी स्थायी नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय द्वारा उसे अनुशंसित किया गया है।"*

विद्वान अधिवक्ता ने आगे जोर दिया कि भविष्य की उन रिक्तियों को अनुध्यात रिक्तियों के रूप में माना जाना चाहिए और चूँकि फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों की नियुक्ति इप्सित करने के लिए प्रक्रिया चल रही थी, अत: यह समझा जाना चाहिए कि पद जारी विज्ञापन द्वारा आच्छादित हैं।

4. उच्च न्यायालय की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री आनंद सेन अपने प्रति शपथ पत्र को छोड़कर कुछ भी विधिपूर्ण प्रस्तुत करने की अवस्था में नहीं थे जिसके पैराग्राफ 20 का पठन निम्नलिखित है:

"20. कि पैराग्राफ 10 में दिए गए बयान के संबंध में यह निवेदन किया जाता है कि चूँकि समरुप परीक्षा प्रक्रिया को समाप्त करते हुए सफल उम्मीदवारों का पैनल उपलब्ध था जैसा पैरा 9 में ऊपर कहा गया है, यदि चयन सूची से उम्मीदवार चुना गया था, कोई मनमानापन और/अथवा अवैधता नहीं है। आरंभ में झारखंड में पाँच वर्षों की नियत अवधि के लिए एफ० टी० सी० के 30 पदों को वर्ष 2001 में अधिसूचित किया गया था। उक्त अत्यावश्यकता और एक अन्य चयन प्रक्रिया पूरी करने के लिए आवश्यक समय पर विचार करते हुए हाल-फिलहाल के समरूप चयन प्रक्रिया में चयनित उम्मीदवारों को एफ० टी० सी० के अधिकारियों की अपेक्षित संख्या को तुरन्त भरने के लिए लिया गया था ताकि एफ० टी० सी० के उद्देश्य, लक्ष्य और योजना विफल न हो।''

5. हमने विद्वान अधिवक्ता को सुना है और उनपर गंभीर रूप से विचार किया है। नियुक्ति, जिसका प्रस्ताव विज्ञापन (परिशिष्ट- 4 दिनांक 23.5.2001) के अनुसरण में बार के सदस्यों को दिया गया था, चयन विशेष अर्थात् अपर जिला न्यायाधीशों के लिए था। उस दिन पर जो कोई पद विद्यमान था अथवा अनुध्यात किया गया था, उसे चयन का विषय वस्तु बनाया जा सकता था। जहाँ तक फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों के पदों का संबंध है, उस दिन इन पदों के लिए राज्य सरकार द्वारा कोई मंजूरी नहीं दी गयी थी। चूँकि इन पदों के लिए मंजूरी नहीं थी, कल्पना के किसी विस्तार तक यह नहीं कहा जा सकता है कि ये पद अनुध्यात रिक्तियाँ थी जिन्हें प्रश्नगत विज्ञापन द्वारा आच्छादित किया जा सकता है क्योंकि पदों को मंजूर करने की प्रक्रिया एक लंबी प्रक्रिया है और इन पदों की अंतिम मंजूरी के लिए सरकार द्वारा लिए गए समय का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। अत: उस दिन जिस पर उच्च न्यायालय ने दिनांक 23 मई, 2001 का विज्ञापन जारी किया था, उक्त पदों को उच्च न्यायालय द्वारा अनुध्यात किया जाता नहीं माना जा सकता था। बल्कि, यह कहा जा सकता है कि जैसे और जब इस विज्ञापन को जारी किया गया था, विज्ञापन जारी करते प्राधिकारी को इस तथ्य की जानकारी तक नहीं थी कि नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए ऐसे कोई पद उनके पास उपलब्ध होंगे। मामले के उस दृष्टिकोण में दिनांक 23 मई, 2001 को जारी विज्ञापन के अनुसरण में किया गया कोई भी नियुक्ति वैध नियुक्ति के रूप में नहीं मानी जा सकती है। विज्ञापन अन्य प्रकार के पदों अर्थात् नियमित अपर जिला न्यायाधीशों से संबंधित था और फास्ट ट्रैक न्यायालय के अपर जिला न्यायाधीश न तो नियमित और न ही उस प्रकार के कैडर हैं जिन्हें संविधि अर्थात 2001 नियमावली का सृजन कहा जा सकता है। यह एक बिल्कुल भिन्न लक्ष्य के लिए अस्थायी अवधि के लिए अस्थायी उद्देश्य से सृजित एक्स-कैडर पद था जो 2001 नियमावली का मुख्य लक्ष्य नहीं था। मामले के उस दृष्टिकोण में नियुक्ति, जिसे एक बिल्कुल भिन्न उद्देश्य के लिए किए जाने की आवश्यकता थी, को नियमावली के अधीन नियुक्ति नहीं माना जा सकता था।

6. <u>विद्यमान असमाप्त चयन सूची, जो विज्ञापन जारी किए जाने के बाद उद्भूत हुई, से कोई रिक्ति नहीं भरी जा सकती है। जब एक बार विज्ञापित पद के लिए उम्मीदवारों का चयन समाप्त हो जाता है, उम्मीदवारों की शेष सूची का उपयोग भंडार अथवा असीमित भंडार के रूप में भविष्य की रिक्ति को भरने के लिए नहीं किया जा सकता है।</u> वर्तमान मामले के तथ्य ये हैं कि अपर जिला न्यायाधीश के पद के लिए मई माह, 2001 में विज्ञापन दिया गया था। फास्ट ट्रैक न्यायालयों के पदों को नवम्बर, 2001 में मंजूर किया गया था। लिखित परीक्षा एवं मौखिक परीक्षा लिए जाने के बाद अपर जिला न्यायाधीशों को पहले ही चयनित किया जा चुका था। लिखित परीक्षा के बाद साक्षात्कार के लिए अर्हता अंकों को घटा दिया गया था और 17 नियमित अपर जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद दस फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों

को नियुक्त किया गया था। इस प्रकार, अपर जिला न्यायाधीश के पद के लिए असमाप्त चयन सूची से जो उनमें से असफल रह गए थे, कोई विज्ञापन प्रकाशित किए बिना दस फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों को नियुक्त किया गया था। केवल यही नहीं, बल्कि नियमित अपर जिला न्यायाधीशों के पदों के लिए असफल उम्मीदवारों में से 15 और फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों को नियुक्त किया गया था। इस प्रकार, दिनांक 23.5.2001 को अपर जिला न्यायाधीशों के पदों के लिए विज्ञापनों को दिया गया था। अपर जिला न्यायाधीशों के पदों के लिए लिखित परीक्षा ली गयी थी, अपर जिला न्यायाधीशों के पदों के लिए साक्षात्कार भी लिया गया था। दिनांक 29.11.2001 को फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों के लिए 89 पदों को सृजित किया गया था। सफल उम्मीदवारों से 17 अपर जिला न्यायाधीशों को नियुक्त किया गया था और अपर जिला न्यायाधीशों के पदों के लिए असफल उम्मीदवारों में से दो बार नियुक्तियाँ की गयी थी। प्रथमत:, दस फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों को नियुक्त किया गया था और अपर जिला न्यायाधीशों के पदों के लिए असफल उम्मीदवारों की सूची से पुन: 15 और फास्ट ट्रैक न्यायाधीशों को नियुक्त किया गया था। इस प्रकार, उन रिक्तियों, जिनका अस्तित्व नहीं था, के लिए अपर जिला न्यायाधीशों के पदों के लिए असफल उम्मीदवारों की सूची में से नियुक्तियाँ की गयी थी। यदि भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 (1) के मुताबिक बाद में सृजित रिक्तियों के लिए सार्वजनिक विज्ञापन दिया जाता, भावी उम्मीदवारों ने भी आवेदन दिया होता। सार्वजनिक रोजगार पाने के उनके अधिकार का उल्लंघन किया जा रहा है। यहाँ 'A' पदों के लिए विज्ञापन दिया गया था और असफल उम्मीदवारों की सूची से उम्मीदवारों की नियुक्ति के बाद 'B' पदों के लिए रिक्तियाँ भरी गयी थी। यह भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 (1) का घोर उल्लंघन है।

7. राखी रे बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय, (2010)2 SCC 637 में प्रकाशित मामले में पैराग्राफों 11 और 12 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:

> *"11. मुकुल सायकिया बनाम असम राज्य में इस न्यायालय ने समरुप विवाद्यक पर विचार किया था और अभिनिर्धारित किया था कि ''यदि केवल 27 पदों के लिए तलब और विज्ञापन था, राज्य विज्ञापित पदों की संख्या से अधिक नियुक्ति नहीं कर सकता है।'' चयन सूची ''समाप्त हो गयी थी जब समस्त 27 पदों को भर दिया गया था।'' तत्पश्चात, 27 नियुक्त उम्मीदवारों के नीचे के उम्मीदवारों को किसी रिक्ति, जिसके संबंध में चयन नहीं किया गया था, पर नियुक्ति का दावा करने का अधिकार नहीं था। ''चयन सूची की अवधि (currency) विज्ञापित पदों को भर दिए जाने के साथ-साथ समाप्त हो जाती है, और, इसलिए विज्ञापित पदों की संख्या के परे नियुक्तियाँ भविष्य की रिक्तियों को भरे जाने की कोटि में आएगी और यह रास्ता विधि में अननुज्ञेय है।*
>
> *12. उक्त की दृष्टि में विधि को इस प्रभाव के साथ संक्षिप्त किया जा सकता है कि विज्ञापित रिक्तियों की संख्या के परे की गयी कोई नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 (1) का उल्लंघन होने के कारण अधिकारिता के बिना होगी और इस प्रकार विधि में अकृतता, अनिष्पादनीय और अप्रवर्तनीय होगी। यदि अधिसूचित रिक्तियाँ भर दी जाती है, चयन की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। प्रतीक्षा सूची, इत्यादि का उपयोग भंडार के रूप में रिक्ति, जो अधिसूचना/विज्ञापन जारी किए जाने के बाद अस्तित्व में आती है, को भरने के लिए नहीं किया जा सकता है। समाप्त चयन सूची/प्रतीक्षा सूची अर्थहीन बन जाती है और अब इनका उपयोग नहीं किया जा सकता है।''* *(जोर दिया गया)*

8. सुरिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1997)8 SCC 488, में प्रकाशित मामले में पैराग्राफों 14 और 16 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

''14. आयोग द्वारा संचालित परीक्षा में तैयार की गयी प्रतीक्षा सूची भर्ती का स्रोत प्रदान नहीं करती है। यह केवल उस आकस्मिकता में प्रवर्तित है कि यदि कोई चयनित उम्मीदवार पदग्रहण नहीं करता है, तब प्रतीक्षा सूची से व्यक्ति को आगे लाया जा सकता है और इस प्रकार कारित रिक्ति में नियुक्त किया जा सकता है अथवा यदि कोई अत्यन्त अत्यावश्यकता है सरकार नीतिगत निर्णय के रूप में प्रतीक्षा सूची से मेधाक्रम में व्यक्ति को चुन सकती है। किन्तु उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण कि चूँकि रिक्तियों को समुचित रूप से भरा नहीं जा सका है, अतः प्रतीक्षा सूची से उम्मीदवार नियुक्ति के लिए दायी थे, तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है। इस अभ्यास का परिणाम उन उम्मीदवारों को वंचित करने में हो सकता है जो भविष्य में उपलब्ध रिक्तियों के लिए स्पर्धा करने के लिए पात्र बनते हैं। यदि किसी एक परीक्षा की प्रतीक्षा सूची नियुक्तियों के असीमित भंडार के रूप में प्रवृत्त रहेगी, यह खतरा है कि राज्य सरकार एक साथ वर्षों तक परीक्षा संचालित नहीं करने और जैसा एवं जब आवश्यक हो प्रतीक्षा सूची से उम्मीदवार चुनने की युक्ति का सहारा ले सकती है। संवैधानिक अनुशासन अपेक्षा करता है कि यह न्यायालय शक्ति के ऐसे अनुचित प्रयोग की अनुमति नहीं देगा जिसका परिणाम निहित स्वार्थ सृजित करने में और खुले रूप से अथवा सेवा से भी नए उम्मीदवारों के संपूर्ण संवर्ग की कीमत पर किसी एक परीक्षा की उम्मीदवारों की प्रतीक्षा सूची को स्थायी बनाने में हो।

16. ऐसी शक्ति के प्रयोग को युक्तियुक्तता की कसौटी पर परखना होगा.....यह सामान्य बात नहीं है कि प्राधिकारी विज्ञापित पदों से अधिक पदों को भर सकते हैं।''
(जोर दिया गया)

9. राखी रे बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय, (2010)2 SCC 637, में प्रकाशित मामले में पैराग्राफ 22 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

''22. उक्त की दृष्टि में हम इन निवेदनों में कोई बल नहीं पाते हैं कि मलिक मजहर सुल्तान मामले में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के मुताबिक उच्च न्यायालय ने दिनांक 19.5.2007 को विज्ञापित रिक्तियों के अतिरिक्त रिक्तियों को भरा है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री रंजीत कुमार द्वारा कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका था कि क्यों अपीलार्थीगण स्वयं विज्ञापन को चुनौती नहीं दे सके यदि यह उक्त मामले में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के साथ संगत नहीं था।'' *(जोर दिया गया)*

10. प्रेम सिंह बनाम हरियाणा राज्य विद्युत बोर्ड, (1996)4 SCC 319, में प्रकाशित मामले में पैराग्राफों 23 से 26 तक माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

"23. बिहार राज्य बनाम मदन मोहन सिंह के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि विज्ञापन और परिणामित चयन प्रक्रिया केवल रिक्तियों की एक निश्चित संख्या को भरने के लिए थी, तब उन अधिसूचित रिक्तियों को भरने के उद्देश्य से ही, और न कि इसके अतिरिक्त, मेधा सूची बनी रहेगी। उस मामले में 32 रिक्तियों को विज्ञापित किया गया था किंतु 129 उम्मीदवारों की सूची तैयार की गयी थी। यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या उक्त चयन सूची के आधार पर अधिक उम्मीदवारों को नियुक्त किया जा सकता था। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब एक बार 32 रिक्तियों को भर दिया गया था, उन 32 रिक्तियों के लिए चयन प्रक्रिया समाप्त हो गयी थी। यह आगे अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि उसी सूची को अन्य रिक्तियों को भी भरने के उद्देश्य से बनाए रखा जाता है, यह अन्य उम्मीदवारों के अधिकारों को

वंचित करने की प्राकृतिक कोटि में आएगा, जो उक्त विज्ञापन और चयन प्रक्रिया के बाद पात्र बन सकते हैं।

24. मदन लाल बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रश्नों में से एक, जो विचारार्थ आया, यह था कि क्या 20 उम्मीदवारों की मेधा सूची का तैयार किया जाना दोषपूर्ण था क्योंकि रिक्तियाँ, जिनके लिए आयोग द्वारा विज्ञापन जारी किया गया था, केवल 11 थीं और अध्यपेक्षा जिसे सरकार द्वारा चयन के लिए भेजा गया था, केवल उन 11 रिक्तियों के लिए था। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आयोग की उक्त कार्रवाई स्वयं में दोषपूर्ण नहीं थी किन्तु वास्तविक नियुक्ति किए जाते समय पर मेधा सूची को इस प्रकार प्रवर्तित करना था कि केवल 11 रिक्तियों को भरा जाए। इस न्यायालय द्वारा दिया गया कारण यह था कि चूँकि 11 रिक्तियों के लिए तलब किया गया था, पारिणामिक विज्ञापन एवं आवश्यकता केवल 11 रिक्तियों, न कि अधिक, के लिए हो सकती थी। इस न्यायालय ने आगे संप्रेक्षित कियाः

''यह कल्पना करना आसान है कि यदि 11 रिक्तियों के लिए तलब किया गया है और इसका परिणाम विज्ञापन के जरिए भर्ती प्रक्रिया को आरंभ किए जाने में होता है, क्या विज्ञापन 11 रिक्तियों को भरे जाने का उल्लेख करता है, भावी उम्मीदवार आयोग के कार्यालय से आसानी से पता कर सकते हैं कि प्रस्तावित भर्ती के लिए तलब 11 रिक्तियों के लिए है। ऐसी स्थिति में कोई उम्मीदवार अनेक कारणों से स्पर्धा करना नहीं चाह सकता है किंतु यदि तलब रिक्तियों की एक बड़ी संख्या के लिए है जिसके लिए भर्ती शुरू की गयी है, वह स्पर्धा करना चाह सकता है। परिणामस्वरुप पदों के लिए वास्तविक नियुक्तियों को भर्ती के पदों तक सीमित होना होगा जिनके लिए सरकार द्वारा तलब किया गया है। ऐसी स्थिति में 11 के आधिक्य में उम्मीदवारों जो उम्मीदवारों की मेधासूची में नीचे है, को केवल रिक्तियों जिन्हें तलब किया गया है, को भरने के लिए मेधाक्रम में प्रतीक्षारत उम्मीदवारों के रूप में माना जा सकता है यदि 11 रिक्तियों को भरने के लिए कोई अधिक योग्य उम्मीदवार किसी भी कारण से उपलब्ध नहीं है। जब एक बार चयन सूची के मेधाक्रम से उम्मीदवारों द्वारा 11 रिक्तियों को भर दिया जाता है, वह सूची अपना उद्देश्य पूरा करने पर समाप्त हो जाएगी।''

यह कथन भी किया जा सकता है कि पूर्वोक्त संप्रेक्षणों को करते हुए यह न्यायालय इस प्रतिवाद से सहमत हुआ कि पदों पर भर्ती के लिए तलब करते हुए सरकार न केवल तब विद्यमान वास्तविक रिक्तियों को बल्कि प्रत्याशित रिक्तियों को भी दृष्टि में रख सकती है।

25. निर्णयज विधि की उक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि तलब और विज्ञापन के जरिए चयन प्रक्रिया स्पष्ट रिक्तियों के लिए और प्रत्याशित रिक्तियों के लिए भी, किंतु भविष्य की रिक्तियों के लिए नहीं, आरंभ की जा सकती है। यदि तलब और विज्ञापन केवल पदों की निश्चित संख्या के लिए है, राज्य विज्ञापित पदों की संख्या की तुलना में अधिक नियुक्तियाँ नहीं कर सकता है, यद्यपि इसने अधिक उम्मीदवारों की चयन सूची को तैयार किया है। राज्य केवल आपवादिक परिस्थितियों में अथवा आपातकालीन स्थिति में विज्ञापन से विचलित हो सकता है और बाद में रिक्त होने वाले पदों पर नियुक्ति कर सकता है किंतु इस निमित नीतिगत निर्णय लेने के बाद ही। जब कभी विज्ञापित पदों से अधिक पदों को भरे जाने को चुनौती दी जाती है, न्यायालय अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आधिक्य नियुक्तियों को अवैध नहीं कर सकता है और अनुतोष को ऐसे तरीके से परिवर्तित कर सकता है जो राज्य के हित और रोजगार

इप्सित करने वाले व्यक्तियों के हित के बीच संतुलन स्थापित करता है। ऐसे मामलों में किस प्रकार का अनुतोष दिया जाना चाहिए, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

26. वर्तमान मामले में, बोर्ड ने 62 विज्ञापित पदों के विरुद्ध 138 पदों पर नियुक्तियों को किया। चयन प्रक्रिया 62 स्पष्ट रिक्तियों के लिए शुरु की गयी थी और उस समय पर प्रत्याशित रिक्तियों को विचार में नहीं लिया गया था। अतः कठोरतापूर्वक कहते हुए, बोर्ड दिनांक 2.11.1991 को प्रकाशित विज्ञापन के अनुसरण में और चयन प्रक्रिया जो बाद में अनुसरित हुई, से 62 नियुक्तियों से अधिक नियुक्ति करने में न्यायोचित नहीं था। किंतु चूँकि बोर्ड न केवल वास्तविक रिक्तियों को बल्कि उन रिक्तियों, जिनके उद्‌भूत होने की संभावना भर्ती आदि के कारण थी, को भी विचार में ले सकता था जब तक चयन प्रक्रिया पूरी हो गयी थी; 62 के आधिक्य में की गयी समस्त नियुक्तियों को अवैध ठहराना न्यायोचित और साम्यापूर्ण नहीं होगा। किंतु उन नियुक्तियों, जिन्हें भविष्य की रिक्तियों के विरुद्ध किया गया था□इस मामले में उन पदों पर जिन्हें नए रूप से सृजित किया गया था□को अवैध मानना होगा। जैसा पहले कहा गया है, चयन प्रक्रिया आरंभ किए जाने के बाद 13 पद भर्ती के कारण रिक्त हो गए थे और 12 मृत्युओं के कारण रिक्तियों, जो भर्ती के परिणामस्वरुप उद्‌भूत होने की संभावना थी, का बोर्ड द्वारा पूर्वानुमान लगाया जा सकता था। बोर्ड ने भूल से उन्हें विचार में नहीं लिया था जब 62 पदों को भरने के लिए तलब किया गया था। रिक्तियों जो मृत्युओं के कारण उद्‌भूत हुई, के विरुद्ध किए गए नियुक्तियों के संबंध में भी उदार दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है और समीचीनता एवं साम्या के विचार पर उन्हें अभिखंडित करने की आवश्यकता नहीं है। अतः, इस मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों की दृष्टि में हम उन 25 अतिरिक्त पदों पर की गयी नियुक्तियों को अवैध ठहराना समुचित नहीं समझते हैं। किंतु 87 के परे पदों पर बोर्ड द्वारा की गयी नियुक्तियों को अवैध अभिनिर्धारित किया जाता है। यद्यपि उच्च न्यायालय अपने द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में सही था, हम पूर्वोक्त सीमा तक इसके आदेश को परिवर्तित करते हैं। तद्‌नुसार इन अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है। व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।'' (जोर दिया गया)

11. पूर्वोक्त निर्णयों की दृष्टि में भी प्रत्यर्थीगण सं॰ 5 से 26 तक की नियुक्तियाँ विधि के विरुद्ध है और अभिखंडित एवं अपास्त किए जाने योग्य है।

12. मामले के उस दृष्टिकोण में, हम नहीं समझते हैं कि प्रत्यर्थीगण सं॰ 5 से 26 तक की नियुक्ति विधि के अनुरूप की गयी नियुक्ति थी। किंतु, मामले से अलग होने के पहले हम कहेंगे कि ये व्यक्ति वर्ष 2002 से कार्यरत हैं और उनकी नियुक्ति इस माह के अंत में समाप्त होने वाली है, अत: समीचीनता के लिए हम इस आदेश को दिनांक 31 मार्च, 2011 से प्रभावी बनाने की अनुमति देंगे। किंतु, उनकी नियुक्तियों को अवैध घोषित किया जाता है। उक्त राइडर के अध्यधीन नियुक्ति अधिसूचना को अभिखंडित किया जाता है।

13. यहाँ यह उल्लिखित करना उपयुक्त होगा कि सुने जाने का अधिकार का प्रश्न महत्व खो देता है क्योंकि प्रत्यर्थीगण विधिपूर्वक चयनित उम्मीदवार नहीं थे। पक्षों के असंयोजन का प्रश्न भी प्रासंगिक नहीं है क्योंकि असंयोजित पक्ष प्रश्नगत आदेश द्वारा कुछ नहीं पाएँगे या खोएँगे।

14. इन संप्रेक्षणों के साथ रिट याचिका को निपटाया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

सरजू प्रसाद भगत

बनाम

लाल बाबू प्रसाद भगत एवं अन्य

CR. No. 98 of 2005. Decided on 10th March, 2011.

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882—धारा 53A—बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 11(1) (c)—बेदखली–किराएदार द्वारा किया गया प्राख्यान मात्र कि वह विक्रय के करार के भागिक पालन पर काबिज है अथवा विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद का दाखिल किया जाना मात्र स्वयं में बेदखली कार्यवाही के आस्थगन की ओर नहीं ले जाएगा–विक्रय विलेख के रद्दकरण के लिए किराएदार ने कोई वाद दाखिल नहीं किया था–धारा 53A उसकी मदद में नहीं आएगी–सद्भावपूर्व आवश्यकता और सद्विश्वास के प्रश्न पर निष्कर्ष पूर्णतः न्यायोचित है–हस्तक्षेप के लिए अथवा धारा 53A की मदद से पुनरीक्षक को अनुतोष देने के लिए अथवा बेदखली कार्यवाही स्थगित करने के लिए अच्छा आधार नहीं है–याचिका खारिज। (पैराएँ 9, 10, 13, 19, 22 एवं 26)

निर्णयज विधि.–2010 AIR SCW 1411—Relied on; AIR 1988 Patna 123; 1991(1) PLJR 650—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. S.K. Sharma, For the Petitioner; Mr. Rajesh Lala, For the Opposite Parties.

आदेश

वर्तमान पुनरीक्षण टाइटल बेदखली वाद सं॰ 10/92 में षष्टम अधीनस्थ न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 16.7.2005 और दिनांक 21.7.2005 के निर्णय और डिक्री को चुनौती देते हुए किराएदार द्वारा दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन प्रतिवादी/किराएदार (वर्तमान याची) को तीन माह की अवधि के भीतर किराया परिसर का रिक्त कब्जा मकान मालिक/विपक्षी पक्षकारों को सौंपने का निर्देश दिया गया है जिसमें विफल रहने पर वादी मकानमालिक को वाद परिसर का रिक्त कब्जा पाने की छूट होगी।

2. विवादित वास-सुविधा मुहल्ला पुराना बाजार, मारवाड़ी पट्टी, पी॰ एस॰ बैंक मोड़ धनबाद के भूखंड सं॰ 4024, 4025, 4026, 4027, 4028, 4029, 4030 और 4031 पर स्थित धनबाद नगरपालिका के वार्ड सं॰ 23 में नगरपालिका होल्डिंग सं॰ 262 एवं 263 है। पुनरीक्षक के अधिभोग में विवादित वास-सुविधा 50' x 6' एवं 10' x 6' मापवाले दो कमरों से गठित है। संपूर्ण होल्डिंग का क्षेत्र 76' x 43½' है।

3. बेदखली वाद मकान मालिक द्वारा अपनी निजी और सद्भावपूर्व आवश्यकता के आधार पर संस्थापित किया गया था और कि उसे अपने और अपने परिवार के सदस्यों के उपयोग के लिए पुनरीक्षक के कब्जे में बनी वास-सुविधा की आवश्यकता है। किराएदार/पुनरीक्षक ने वाद का प्रतिवाद किया और इनकार किया कि विपक्षी पक्षकारगण उसके मकान मालिक थे।

4. पुनरीक्षक का मामला यह है कि स्व॰ माधो प्रसाद भगत का पुत्र कामता प्रसाद भगत मूल किराएदार था और उसने विवादित परिसर के विभिन्न हिस्सों को कई किराएदारों को किराए पर दिया था और किराया अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार माहवारी रूप से शुरू हुई थी। पुनरीक्षक की ओर से किया गया निवेदन यह है कि मूल मकान मालिक कामता प्रसाद ने विभिन्न हिस्सों को बेचने के लिए विभिन्न किराएदारों के साथ करार किया क्योंकि वह संपत्ति की देखभाल में सक्षम नहीं था। पुनरीक्षक ने भी विक्रय का करार किया था।

5. इसी प्रकार, मूल मकान मालिक/स्वामी कामता प्रसाद भगत ने 30,000/-रुपयों के प्रतिफल के लिए वादी सं॰ 1 और 2 के साथ विक्रय का करार किया था। इसके परिणामस्वरुप, दिनांक 10.8.1987 को विक्रय विलेख रजिस्टर्ड किया गया था। कामता प्रसाद के विरुद्ध टी॰ एस॰ सं॰ 24 वर्ष 1988 के तहत वादी/विपक्षी पक्षकार द्वारा संस्थापित विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद को वापस लेने के तुरन्त बाद विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था। यह प्रतीत होता है कि वाद सं॰ 24/1988 के लंबित रहने के दौरान कुछ निजी व्यवस्था की गयी थी और दिनांक 21.1.1989 को वाद वापस ले लिया गया था। इसके पश्चात दिनांक 5 फरवरी, 1991 को वादी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था। पुनरीक्षक ने मेरे ध्यान में यह लाया है कि पूर्वोक्त वाद में उसे भी पक्षगण में से एक के रूप में पेश किया गया था। उसने वाद वापस लिए जाने पर आपत्ति की थी किंतु उसकी आपत्तियों को अस्वीकार कर दिया गया था।

6. पुनरीक्षक की ओर से यह कथन भी किया गया है कि **टी॰ एस॰ सं॰ 126/1988 (सरजू प्रसाद बनाम बाबू भगत एवं अन्य)** के तहत विनिर्दिष्ट पालन के लिए एक अन्य वाद संस्थापित किया गया था और यह आज की तिथि तक लंबित है। पुनरीक्षक की ओर से प्रथम निवेदन यह है कि चूँकि वादी ने पूरी जानकारी ली कि किराएदार/पुनरीक्षक के पक्ष में विक्रय का करार पहले से ही विद्यमान है, के साथ विक्रय विलेख निष्पादित करवाया था, अत: संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53A के प्रावधानों की दृष्टि में विक्रय विलेख को प्रभावशील नहीं बनाया जाना चाहिए और, इसलिए, विपक्षी पक्षकारगण स्व॰ कामता प्रसाद के स्थान लेने के हकदार नहीं है और उन्हें मकानमालिक तथा वैध स्वामी नहीं माना जा सकता है। वर्ष 1991 में विक्रय विलेख के निष्पादन के बाद वर्ष 1992 में मकान मालिक द्वारा वर्तमान बेदखली वाद दाखिल किया गया था।

7. विद्वान अधिवक्ता कथन करते हैं कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांत यह है कि ऐसे मामले में जहाँ विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद लंबित है, बेदखली वाद पोषणीय नहीं है। पुनरीक्षक के अधिवक्ता द्वारा **जोसेफ कंठराज एवं एक अन्य बनाम अठ्ठरुनिस्सा बेगम एस॰, 2010 AIR SCW 1411,** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निष्कर्ष पर विश्वास किया गया है। इस निर्णय के आधार पर निवेदन यह है कि चूँकि प्रतिवादी/पुनरीक्षक ने विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद दाखिल किया है जो लंबित था, सिविल न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद को विनिश्चित किए जाने तक बेदखली कार्यवाही आस्थगित कर दिए जाने के लिए दायी थी।

8. निवेदन यह है कि **टी॰ एस॰ सं॰ 126/1988 (सरजू प्रसाद बनाम लाल बाबू प्रसाद भगत एवं अन्य)** के तहत किराएदार/पुनरीक्षक का विनिर्दिष्ट पालन के लिए किए गए वाद के लंबित रहने तक विशेषत: संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53A की दृष्टि में बेदखली वाद की कार्यवाही लंबित रखे जाने के लिए दायी है।

9. मैंने उक्त निर्णय का विस्तारपूर्वक परिशीलन किया है और प्रकटत: पुनरीक्षक द्वारा किया गया निवेदन उक्त निर्णय की गलत व्याख्या पर आधारित है। पुनरीक्षक की ओर से उद्धृत निर्णय का पैराग्राफ-10 दर्शाता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि किराएदार द्वारा किया गया प्राख्यान मात्र कि वह विक्रय के लिए करार के आंशिक पालन पर काबिज है अथवा विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद का दाखिल किया जाना मात्र स्वयं में बेदखली कार्यवाही के आस्थगन की ओर नहीं ले जाएगा। आगे कथन करते हुए सतर्क किया गया है कि प्रतिवादी को विक्रय के करार के बचाव में आगे आने से होशियार रहना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि किसी याचिका में यह असफल बचाव बन जाए, जब तक न्यायालय प्रथम दृष्टया, संतुष्ट नहीं है कि करार वास्तविक है और प्रतिवाद सद्भावपूर्व है, इसे किराया अधिनियम के अधीन बेदखली कार्यवाही आस्थगित नहीं करना चाहिए।

10. मेरा दृष्टिकोण यह है कि विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद तत्कालीन मकानमालिक के विरुद्ध था जिसने विक्रय के दो करारों को, एक प्रतिवादी/पुनरीक्षक के पक्ष में और दूसरा वादी/प्रत्यर्थी के पक्ष में निष्पादित किया है। विक्रय विलेख वादी/प्रत्यर्थी के पक्ष में निष्पादित किया गया था।

11. पश्चातवर्ती मकानमालिक (तत्कालीन मकान मालिक का क्रेता) ने बेदखली का वाद दाखिल किया और इसलिए तत्कालीन मकान मालिक, जो अब जीवित नहीं है, के विरुद्ध वर्ष 1988 से लंबित वाद को किराया अधिनियम के अधीन कार्यवाही, जिसे वर्ष 1991 में उसके पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के बाद वर्ष 1992 में संस्थापित किया गया था, को आस्थगित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। इन परिस्थितियों में, मेरे दृष्टिकोण में पुनरीक्षक के अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया उद्धरण किराएदार की मदद नहीं करता है।

12. मैं विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क से सहमत नहीं हूँ। वस्तुत:, विक्रय विलेख को काफी पहले वर्ष 1991 में निष्पादित किया गया था। अत:, उस समय पर पुनरीक्षक के कहने पर विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद पहले से ही दाखिल किया जा चुका था किंतु विक्रय का करार विलेख किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है जिसने करार किया है जबतक कि विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया जाता है। स्वीकृत रूप से, मकानमालिक के पक्ष में विक्रय के एक अन्य करार के बाद विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था एवं क्रेता ने अपना अधिकार पूरा किया था। उसके पास पूर्वोक्त विक्रय विलेख में दर्शायी गयी संपत्तियों के संबंध में संपूर्ण अधिकार है और उसने स्वामी/मकानमालिक का स्थान ले लिया था।

13. किराएदार ने आज की तिथि तक विक्रय विलेख के रद्दकरण के लिए कोई वाद दाखिल नहीं किया और वह स्वीकार करता है कि उसने किसी किराया का भुगतान किए बिना उक्त घर में निवास करना जारी रखा था। अत: मेरा दृष्टिकोण है, कि जब तक विक्रय विलेख रद्द करवाने के लिए किराएदार द्वारा कोई कदम नहीं उठाया गया हो अथवा मूल मकान मालिक के विरुद्ध कोई कदम नहीं गया हो, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53A उसकी मदद में नहीं आएगी। वर्तमान कार्यवाही बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की धारा 11(i)(c) के अधीन निजी आवश्यकता के आधार पर बेदखली वाद से उद्भूत हुई और इसलिए एकमात्र प्रश्न जिसका परीक्षण करना होगा यह है कि क्या मकानमालिक और उसके परिवार के सदस्यों की वास-सुविधा की आवश्यकता सद्भावपूर्व है या नहीं और क्या बेदखली वाद सद्विश्वास में दाखिल किया गया है और यह भी कि क्या प्रश्नगत वास-सुविधा की आंशिक निर्मुक्ति मकानमालिक की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त है?

14. बेदखली वाद को संस्थापित किए जाने के बाद लिखित कथन दाखिल किया गया था और किराएदार द्वारा उठायी गयी एकमात्र आपत्ति पुनरीक्षक के कहने पर विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद के लंबित रहने और इस तथ्य कि मकानमालिक के पास स्वामी के रूप में प्रश्नगत वास-सुविधा के प्रति कोई अधिकार और दावा नहीं है, के संबंध में थी और वाद खारिज किए जाने का दायी है। मकानमालिक किराएदार के संबंध में अस्तित्व से इनकार किया गया था किन्तु मकानमालिक के परिवार के सदस्यों की संख्या और उसके कब्जे में वास-सुविधा की सीमा और वाद पत्र में दर्शायी गयी आवश्यकता की शुद्धता के बारे में कोई विनिर्दिष्ट इनकार था या नहीं? मकानमालिक के दावा को झूठा ठहराने के लिए अपने लिखित कथन में किराएदार की ओर से कोई प्राख्यान नहीं किया गया था और इसलिए, न्यायालय के पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। वादपत्र में किए गए दावे पर अविश्वास करने के लिए पुनरीक्षक द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था।

15. एक अन्य पहलू है जिसे नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। विपक्षी पक्षकार द्वारा बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की धारा 15 के अधीन किराया के भुगतान के लिए आवेदन दाखिल किया गया था क्योंकि स्वीकृत रूप से किराएदार किसी किराया का भुगतान नहीं कर रहा था। दो सौ रुपये प्रतिमाह की दर से किराया के भुगतान और करेन्ट किराया को जमा करने के

लिए भी निर्देश दिया गया था जिसे करने में किराएदार विफल रहा और दिनांक 28.6.1997 को उसका प्रतिवाद हटा गया था। इस आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी थी किंतु प्रतिवाद हटाने वाले आदेश को संपुष्ट किया गया था। इन परिस्थितियों की दृष्टि में, पुनरीक्षक के प्रतिवाद को विचार में नहीं लिया जा सकता था।

16. मैंने आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया है जो सुविचारित और विस्तृत निर्णय है। इस प्रश्न पर कि क्या पक्षों के बीच मकानमालिक किराएदार का संबंध है अथवा नहीं? पर बिंदु सं॰ 3 विरचित किया गया था और अवर न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष यह था कि संपूर्ण मौखिक तर्कों और दस्तावेजी प्रमाण को विचार में लेने के बाद पाया गया था कि वस्तुत: मकानमालिक–किराएदार के संबंध का अस्तित्व है। निर्णय के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि किराएदार के प्रतिवाद को हटा दिया गया था, फिर भी अवर न्यायालय ने बचाव पक्ष के गवाहों के मौखिक साक्ष्य और प्रदर्शों A, A/1, B से B/7, C और D के तहत अभिलेख पर लाए गए दस्तावेजों पर विचार किया है।

17. वादी ने अपने वादपत्र में विनिर्दिष्टत: प्रकथन किया है कि पिता, माता, बहन सभी संयुक्त परिवार के रूप में रह रहे हैं और कुल मिलाकर परिवार में 17-18 सदस्य हैं।

18. वादपत्र के पैराग्राफ 14 में, यह विनिर्दिष्टत: अभिवचन किया गया है कि वादीगण वास–सुविधा की अत्यन्त कमी का सामना कर रहे हैं। वादी सं॰ 1 विवाहित है और उसके तीन संतान है और वह बेकार है। अन्य दो भाई, वादी सं॰ 2 और 3 महाविद्यालय के छात्र है जिन्हें किराना दुकान का व्यवसाय शुरू करने की आवश्यकता है। वे भवन के कुछ हिस्सों को आवासीय उद्देश्य के लिए चाहते हैं और शेष हिस्से में अपना व्यवसाय शुरू करना चाहते हैं। यह विनिर्दिष्टत: प्राख्यान किया गया है कि वादी ने जमुना राम के विरुद्ध वाद सं॰ 30/1991, वर्तमान प्रतिवादी/पुनरीक्षक के विरुद्ध वाद सं॰ 31/1991, बनारसी पांडे के विरुद्ध वाद सं॰ 32/1991, झारी मोदी के विरुद्ध वाद सं॰ 33/1991 और मोती साव के विरुद्ध वाद सं॰ 34/1991 के तहत पाँच बेदखली वादों को पहले ही संस्थापित कर चुका है।

19. न्यायालय के समक्ष अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य ने भी वाद पत्र के प्राख्यान का समर्थन किया है और इस प्रकार, सद्भावपूर्व आवश्यकता और सद्विश्वास के प्रश्न पर निष्कर्ष सुविचारित और पूर्णत: न्यायोचित है। साक्ष्य का अधिमूल्यन किसी भी हस्तक्षेप के लिए नहीं करता है।

20. वादी/प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने अपने प्रतिवाद के समर्थन में **डॉ॰ एन॰ पी॰ त्रिपाठी बनाम श्रीमती दमयंती देवी एवं अन्य, AIR 1988 पटना 123,** में प्रकाशित मामले में पटना उच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया है कि किराया नियंत्रण संविधियों के अधीन किराएदार की बेदखली के लिए वाद का स्थगन सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 10 के अधीन इस आधार पर इप्सित नहीं किया जा सकता है कि किराएदार के पक्ष में पट्टान्तरित परिसर के विक्रय के लिए करार के आधार पर मकानमालिक के विरुद्ध विनिर्दिष्ट पालन के लिए किराएदार ने पहले ही वाद दाखिल किया था। वह यह अभिकथन करते हुए कि विक्रय करार के फलस्वरुप वह किराएदार के रूप में नहीं बल्कि अंतरिति के रूप में काबिज बना हुआ था, टाइटल का दावा करते हुए बचाव के हथियार के रूप में संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53A का सहारा नहीं ले सकता है। यह सुनिश्चित है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53A का उपयोग ढाल के रूप में, न कि तलवार के रूप में, किया जा सकता है।

21. इस प्रतिवाद का समर्थन करने के लिए कि हित के अंतरण पर निजी आवश्यकता के आधार पर बेदखली वाद में अपने को उसका अभिधारी मानना पक्षों के बीच मकानमालिक–किराएदार का संबंध सृजित करने के लिए आवश्यक शर्त नहीं है और निजी आवश्यकता के आधार पर बेदखली मामले में

अपने को उसका अभिधारी मानने का कोई भी प्रभाव नहीं है वादी/प्रत्यर्थी की ओर से **शांति देवी बनाम महावीर मिस्त्री,** 1993 (2) PLJR 367, और **दिनेश कुमार पूर्वे बनाम महेश कुमार पोद्दार,** 1991(1) PLJR 650 के निर्णयों को उद्धृत किया गया है।

22. मैंने इन समस्त पहलूओं, तथ्यों और परिस्थितियों तथा अधिवक्ताओं के अपने-अपने तर्कों पर विचार किया है और मैं संतुष्ट हूँ कि यहाँ ऊपर वर्णित कारणों से, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 53A की मदद से पुनरीक्षक को अनुतोष प्रदान करने के लिए अथवा अवर न्यायालय के समक्ष लंबित विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद अर्थात् टी॰ एस॰ सं॰ 126 वर्ष 1988 के निपटारे तक बेदखली कार्यवाही स्थगित रखने के लिए हस्तक्षेप के लिए कोई भी अच्छा आधार नहीं है।

23. अधिवक्ता यह सिद्ध करने में भी सक्षम नहीं हुए हैं कि उक्त वाद में कार्यवाही किस चरण पर है अथवा क्या 23 वर्ष बीत जाने के बाद भी वर्ष 1988 से यह ठंडे बस्ते में पड़ा हुआ है। अनंत काल तक वर्तमान मामले में निर्णय आस्थगित करने की पुनरीक्षक की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। मकानमालिक ने निजी आवश्यकता के दावा को पर्याप्त रूप से सिद्ध किया है और कि बेदखली वाद सद्विश्वास में दाखिल किया गया था और अपने निजी उपयोग के लिए मकानमालिक को वास-सुविधा की आवश्यकता है। इस तथ्य को विचार में लेने पर भी कि अन्य किराएदारों द्वारा कतिपय वास सुविधा को खाली किया गया था किंतु एक या दो रूम से गठित छोटे परिसर द्वारा परिवार के सदस्यों की संख्या और उनकी आवश्यकताओं को परिपूर्ण नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, मकानमालिक को संपूर्ण परिसर की आवश्यकता है और 'आंशिक निर्मुक्ति' उसकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं होगी और किराएदार को सदैव न्यायालय का शरण लेने की छूट है यदि यह पाया जाता है कि मकानमालिकों ने वास सुविधा की निर्मुक्ति का दुरुपयोग किया है और किसी तीसरे व्यक्ति को इसे किराए पर दे दिया है।

24. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, वर्तमान पुनरीक्षण में गुणागुण की कमी है। हस्तक्षेप का कोई ठोस आधार नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है। किंतु, तथ्यों और परिस्थितियों में, व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।

25. अंत में, किराएदार की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने अनुरोध किया कि पुनरीक्षक एक अत्यन्त गरीब व्यक्ति है और शिफ्ट करने के लिए उसके पास वैकल्पिक वास सुविधा नहीं है और, इसलिए, अन्य वास सुविधा खोजने के लिए उसे युक्तिसंगत समय दिया जाए अन्यथा, वह और उसके परिवार के सदस्य सड़क पर आ जाएँगे। मकानमालिक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा इस प्रार्थना पर आपत्ति की गयी थी और उन्होंने कथन किया कि पुनरीक्षक पहले ही अपने घर का निर्माण कर चुका है और वह आसानी से शिफ्ट हो सकता है। किन्तु, यह प्राख्यान अभिलेख के विरुद्ध है और इसलिए मैं यह नोटिस में लेने से इनकार करती हूँ कि पुनरीक्षक ने एक अन्य घर का निर्माण कर लिया है।

26. यह सही है कि यदि किराएदार को वास सुविधा से बाहर फेंक दिया जाता है वह गंभीर कठिनाई से पीड़ित होगा और इसलिए मेरा दृढ़ मत है कि आज के दिन से आठ माह की अवधि वैकल्पिक वास सुविधा खोजने के लिए पुनरीक्षक के लिए पर्याप्त है। उसे निष्पादक न्यायालय के समक्ष शपथ पत्र के रूप में वचनबंध दाखिल करना होगा कि वह दिनांक 12 नवम्बर, 2011 को अथवा इसके पहले विवादित घर खाली कर देगा। उसे न्यायालय द्वारा नियत किराए अर्थात् 200/- रुपया प्रतिमाह की दर से इस अवधि के दौरान नुकसानी का भुगतान करना होगा और व्यतिक्रम की स्थिति में मकानमालिक को निष्पादन की स्वतंत्रता होगी। दो सौ रुपया प्रतिमाह की नुकसानी का भुगतान प्रत्येक माह की 10 तारीख तक करना होगा। यह छूट मानवीय आधारों पर प्रदान की जा रही है और न कि मामले के गुणागुण पर।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

अनिसुर रहमान एवं एक अन्य

बनाम

जोगेन्द्र सिंह एवं अन्य

W.P. (C) No. 5532 of 2010. Decided on 4th April, 2011.

बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982–धारा 15—किराया जमा करना–बेदखली वाद की खारिजी–मूल किराएदार के पक्ष में पट्टा की अवधि पहले ही दस वर्षों तक बढ़ायी जा चुकी है–विवाद के विनिश्चय तक इसको वापस निकालना प्रतिषिद्ध करते हुए न्यायालय में किराया की राशि जमा करने का निर्देश विचारण न्यायालय द्वारा मूल प्रतिवादीगण को दिया गया–विचारण न्यायालय द्वारा कोई अवैधता नहीं की गयी–याचिका खारिज। (पैरा 2)

अधिवक्तागण.–Mr. Ayush Aditya, For the Petitioners; none, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका टाइटल अपील सं॰ 44 वर्ष 2006 में विद्वान अपर न्यायिक कमिश्नर XVII, राँची द्वारा दिनांक 17 मई, 2010 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा, वर्तमान याचीगण द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया गया है और किराया राशि जमा करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अपील के चरण पर भी बनाए रखा गया है।

2. याचीगण के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखने पर, मैं मुख्यत: निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से इस रिट याचिका को ग्रहण करने का कारण नहीं पाता हूँ:–

(i) वर्तमान याचीगण मूल वादीगण हैं, जिन्होंने टाइटल (बेदखली) वाद सं॰ 7 वर्ष 1987 मुख्यतः इस आधार पर दाखिल किया है कि पट्टा अवधि का पहले ही अवसान हो चुका है और निजी आवश्यकता के आधार पर वाद परिसर से प्रत्यर्थी सं॰ 1 को बेदखल करने की जरूरत है।

(ii) मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 15 के अधीन एक आवेदन दाखिल किया गया था और दिनांक 16 अगस्त, 2004 को विचारण न्यायालय द्वारा न्यायालय में किराएदार को किराया जमा करने का निर्देश दिया गया था और न्यायालय के आदेश के बिना कोई व्यक्ति इस राशि को निकालने का हकदार नहीं होगा।

(iii) यह भी प्रतीत होता है कि दिनांक 30 मार्च, 2006 के आदेश के तहत विचारण न्यायालय द्वारा वाद को टाइटल सं॰ 131 वर्ष 1990 जिसे मूल प्रतिवादी सं॰ 1 और 2 द्वारा दाखिल किया गया था, में पारित निर्णय एवं डिक्री के कारण खारिज कर दिया गया था।

(iv) मामले के तथ्यों से आगे यह प्रतीत होता है कि टाइटल (बेदखली) वाद सं॰ 7 वर्ष 1987 की खारिजी के विरुद्ध वर्तमान याचीगण (मूल वादीगण) द्वारा टाइटल अपील सं॰ 44 वर्ष 2006 दाखिल किया गया था और उन्होंने बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 15 के अधीन एक अन्य आवेदन दिया था और इस आवेदन में, इस प्रभाव का आदेश पारित किया गया था कि दिनांक 16 अगस्त, 2004 को विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा बनाए रखा गया है।

(v) तथ्यों और आक्षेपित आदेश को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 15 के अधीन वर्तमान याचीगण (मूल वादीगण/अपीलार्थीगण) द्वारा दाखिल आवेदन के अधीन टाइटल अपील सं० 44 वर्ष 2006 में दिनांक 17 मई, 2010 का आदेश पारित करते हुए अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा कोई अवैधता नहीं की गयी है।

(vi) विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 16 अगस्त, 2004 के आदेश, जो वर्तमान याचिका के मेमो के परिशिष्ट 5 पर है, को देखते हुए प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने न्यायालय में किराया राशि जमा करने का निर्देश मूल प्रतिवादीगण को दिया था और आगे निर्देश दिया गया था कि कोई व्यक्ति इसको वापस निकालने का हकदार तब तक नहीं होगा जब तक न्यायालय विवाद विनिश्चित नहीं करता है और इसके भुगतान के लिए आदेश पारित नहीं करता है।

(vii) मामले के तथ्यों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि बिहार मकान (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 15 के अधीन आवेदन पर पारित विचारण न्यायालय और अवर अपीलीय न्यायालय का आदेश न्यायोचित, समुचित साम्यापूर्ण है और विधि के अनुकूल है। विशेषतः, विवाद को देखते हुए, जिसे टाइटल वाद सं० 131 वर्ष 1990 में एक अन्य न्यायालय द्वारा पहले ही विनिश्चित किया जा चुका है और उस अन्य वाद में पट्टे की अवधि पहले ही मूल किराएदार के पक्ष में दस वर्षों तक बढ़ायी जा चुकी थी। ऐसा हो सकता है कि पट्टा अवधि को फिर से आगे बढ़ाने के लिए आवेदन दिया जा सकता है। पूर्व आदेश की तरह, पट्टा अवधि बढ़ाए जाने की पूरी संभावना है और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा कोई अवैधता नहीं की गयी है और न ही बिहार मकान □(पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 की धारा 15 के अधीन आवेदन को विनिश्चित करते हुए अभिलेख को देखते ही कोई गलती प्रकट नहीं है। इस रिट याचिका में कोई सार नहीं है और, इसलिए, इसे एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश

परशु राम महतो एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. Revision No. 177 of 2002. Decided on 4th April, 2011.

छठे अपर सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह द्वारा दांडिक अपील सं॰ 54 वर्ष 2001/24 वर्ष 2001 में पारित दिनांक 19.2.2002 के निर्णय एवं दोषसिद्धि के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 323, 341, 427, 324 एवं 34—अपराधी परीवीक्षा अधिनियम, 1958—धारा 4—घोर उपहति एवं रिष्टि–दोषसिद्धि एवं दंडादेश–दो अभियुक्तगण को परीवीक्षा का लाभ प्रदान किया गया–घटना वर्ष 1996 की है–इतने वर्षों के बाद अभियुक्तगण को जेल भेजना समुचित नहीं होगा–कारावास के दंडादेश के स्थान पर व्यतिक्रम अनुबंध के साथ 5000/-रुपया का जुर्माना अधिरोपित किया गया। (पैराएँ 3 एवं 4)

अधिवक्तागण.–None, For the Petitioner; Mr.R.C.P.Sah, For the State.

न्यायालय द्वारा–याची की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. यह पुनरीक्षण याचिका सत्र न्यायाधीश, गिरिडीह के आदेश, जिसके द्वारा सत्र न्यायाधीश ने प्रथम श्रेणी न्यायिक दंडाधिकारी, गिरीडिह द्वारा पारित निर्णय के विरुद्ध दाखिल अपील अंशत: अनुज्ञात किया है, के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

3. अभियुक्तगण का विचारण, विचारण न्यायालय में भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 323, 341, 427, 34 और 324 के अधीन अपराध के लिए विचारण किया गया था। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने धारा 427/34 के अधीन अपीलार्थीगण/याचीगण की दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया था। किंतु धाराएँ 323, 341/24 के अधीन याची सं॰ 2 और 3 की दोषसिद्धि बनायी रखी गयी थी और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 341 एवं 324 के अधीन दोषसिद्धि समस्त याचीगण के विरुद्ध मान्य ठहरायी गयी थी। याची सं॰ 1 को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 324 के अधीन दोषी पाया गया था और इसलिए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन दोषसिद्धि दर्ज नहीं की गयी थी। याची सं॰ 2 और 3 को अपराधी परीवीक्षा अधिनियम का लाभ प्रदान किया गया था और दंडादेश को भर्त्सना तक घटा दिया गया था। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 341 के अधीन याची सं॰ 1 का दंडादेश भी भर्त्सना तक घटा दिया गया था। इसके अतिरिक्त, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 324 के अधीन याची सं॰ 1 के विरुद्ध दंडादेश एक वर्ष से छह माह तक घटा दिया गया था।

4. घटना वर्ष 1996 की है। हम वर्ष 2011 में हैं। इस न्यायालय का मत है कि इतने वर्षों बाद अभियुक्तगण को जेल भेजना समुचित नहीं होगा। इस स्थिति में, यह समुचित माना जाता है कि याची सं॰ 1 को दिए गए कारावास के दंडादेश को बनाए रखने की बजाय उस पर जुर्माना अधिरोपित किया जाए और तद्नुसार याची सं॰ 1 परशु राम महतो पर 5000/- (पाँच हजार) रुपयों का जुर्माना अधिरोपित किया जाता है। यदि तीन माह के भीतर जुर्माना का भुगतान नहीं किया जाता है, विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित छह माह के दंडादेश का मूल आदेश प्रवर्तन में आएगा और उसको दंडादेश भुगतान होगा।

5. अन्य धाराओं, जिनमें अपराधी परीवीक्षा अधिनियम और भर्त्सना का लाभ अधिनिर्णीत किया गया था, के अधीन दंडादेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा रहा है।

6. दंडादेश में पूर्वोक्त परिवर्तन के साथ, पुनरीक्षण याचिका खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

बिहारी महतो एवं एक अन्य

बनाम

मुरलीधर महतो उर्फ नकुल महतो एवं अन्य

W.P.(C) No. 824 of 2011. Decided on 1st April, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VIII, नियम 1—लिखित कथन—ग्यारह दिनों के विलंब के आधार पर लिखित कथन की अस्वीकृति—आदेश VIII, नियम 1 के प्रावधान आज्ञापक प्रकृति के नहीं हैं—मूल प्रतिवादीगण कुछ विक्रय विलेखों की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षारत थे जिसमें कुछ समय लगा—आक्षेपित आदेश अपास्त—याचीगण को 500/- रुपये के वाद व्यय के साथ लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति दी गयी। (पैराएँ 4 एवं 5)

निर्णयज विधि.—(2005)6 SCC 344—Relied.

अधिवक्तागण.—Mr. Rajesh Kumar Mahtha, For the Petitioners; Mr. , For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका टाइटल वाद सं॰ 12 वर्ष 2010 में विद्वान मुंसिफ, बेरमो, तेनूघाट द्वारा दिनांक 24 सितम्बर, 2010 में पारित आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसके द्वारा वर्तमान याचीगण, जो

मूल प्रतिवादीगण है, द्वारा दाखिल लिखित कथन को मुख्यत: 11 दिनों के विलंब के आधार पर स्वीकार नहीं किया गया है।

2. याचीगण के अधिवक्ता को सुनने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखने पर, यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण–मूल वादीगण हैं, जिन्होंने टाइटल वाद सं॰ 12 वर्ष 2010 संस्थापित किया है। वर्तमान याचीगण मूल प्रतिवादीगण हैं।

3. आगे यह प्रतीत होता है कि दिनांक 21 मई, 2010 को मूल प्रतिवादीगण पर नोटिस तामील की गयी थी। दिनांक 29 मई, 2010 को टाइटल वाद सं॰ 12 वर्ष 2010 में मूल प्रतिवादीगण द्वारा उपस्थिति दाखिल की गयी थी। मामले के तथ्यों से आगे यह प्रतीत होता है कि मूल प्रतिवादीगण कुछ विक्रय विलेखों की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षारत थे जिन्हें एक अन्य वाद में दाखिल किया गया था जिस कारण लिखित कथन दाखिल करने में कुछ समय लगा और इसलिए, इस कारण की दृष्टि में, लिखित कथन दाखिल करने में 11 दिनों का विलंब हुआ था।

4. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 1 के प्रावधान आज्ञापक प्रकृति के नहीं है जैसा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सलेम एडवोकेट बार एसोसियेशन बनाम भारत संघ, (2005)6 SCC 344,** मामले में अभिनिर्धारित किया गया है।

5. पूर्वोक्त तथ्यों, कारणों और न्यायिक उद्घोषणाओं की दृष्टि में, मैं एतद् द्वारा टाइटल वाद सं॰ 12 वर्ष 2010 में विद्वान मुंसिफ, बेरमो, तेनूघाट द्वारा दिनांक 24 सितंबर, 2010 को पारित आदेश को अभिखंडित एवं अपास्त करता हूँ और मैं एतद् द्वारा वर्तमान याचीगण, जो मूल प्रतिवादीगण है, को 500/- (केवल पाँच सौ रुपये) रुपये के मूल्य के साथ अपना लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति देता हूँ और इसे टाइटल वाद सं॰ 12 वर्ष 2010 में अभिलेख पर लिया जाएगा। मूल प्रतिवादीगण द्वारा राशि विचारण न्यायालय के समक्ष जमा की जाएगी जिसे समुचित आवेदन देने पर मूल वादीगण द्वारा निकालने की अनुमति दी जाएगी।

6. तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निपटायी जाती है।

माननीय आर॰ के॰ मेराठिया एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

हरिपद रजक उर्फ हरि रजक एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 630 of 2002. Decided on 7th April, 2011.

एस॰ टी॰ सं॰ 91 वर्ष 1997 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰–II, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 3.9.2002 और 6.9.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302/34—हत्या–आजीवन कारावास–अभियोजन यह सिद्ध नहीं कर सका था कि मृतक की हत्या कारित करने के लिए अपीलार्थीगण ने कोई तैयारी की थी अथवा उनका कोई पूर्वचिंतन था–अपीलार्थी सं॰ 2 को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 304, भाग–II के अधीन अपराध करने का दोषी अभिनिर्धारित किया गया था–अपीलार्थी सं॰ 1 को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 323 के अधीन अपराध का दोषी अभिनिर्धारित किया गया था–दोनों अपीलार्थीगण के दंडादेश को पहले ही भुगत चुके गए दंड की अवधि तक घटा दिया गया। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Sahani, Amrita Banerjee, For the Appellants; Mr. A.B. Mahato, For the State.

न्यायालय द्वारा.—यह अपील एस॰ टी॰ सं॰ 91 वर्ष 1997 में अपीलार्थी सं॰ 1 हरिपद रजक उर्फ हरि रजक को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए और अपीलार्थी सं॰ 2 शंकर रजक को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए और उनमें से प्रत्येक को आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ II जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 3.9.2002 और 6.9.2002 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, सुश्री अमृता बनर्जी ने निवेदन किया कि साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि इस बात कि क्या नदी के ऊपर चेक डैम पहले बनाया जाए या पुलिया, इसको लेकर हुए गाँव वालों के बीच झगड़े के दौरान अपीलार्थी सं॰ 2 शंकर रजक ने मृतक सशधर महतो पर भुजाली से वार किया और इस प्रकार यह मामला अधिकाधिक भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के भीतर आता है।

3. उन्होंने आगे निवेदन किया कि जहाँ तक अपीलार्थी सं॰ 1, हरिपद रजक उर्फ हरि रजक का संबंध है, उसके विरुद्ध अभिकथन अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध लगाए गए अभिकथन के समरुप हैं, जिन्हें दोषमुक्त कर दिया गया है।

4. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, श्री ए॰ बी॰ महतो ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है।

5. यह प्रतीत होता है कि जहाँ तक घटना के तरीका का संबंध है अभियोजन मामला संगत है और लघु विरोधाभासों को अनदेखा किया जा सकता है। किंतु, यह स्पष्ट है कि गाँव वालों के बीच इस बात पर विवाद हुआ कि पहले चेक डैम बनाया जाए या पुलिया। घटना पक्षों के बीच झगड़े के दौरान हुई थी। अभियोजन यह सिद्ध करने में सक्षम नहीं रहा है कि मृतक की मृत्यु कारित करने के लिए अपीलार्थीगण ने पहले से कोई तैयारी की थी अथवा उनका ऐसा पूर्व चिंतन था। साक्ष्य में आया है कि अपीलार्थी सं॰ 2 शंकर रजक ने मृतक पर भुजाली से वार किया। अपीलार्थी सं॰ 2 मृतक पर दोबारा वार कर सकता था, किंतु उसने ऐसा नहीं किया। अतः जहाँ तक अपीलार्थी सं॰ 2 शंकर रजक का संबंध है, हम सुश्री अमृता बनर्जी के निवेदन से संतुष्ट हैं कि उसका मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के भीतर आता है और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि संपोषित नहीं की जा सकती है। किंतु, उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग II के अधीन अपराध का दोषी पाया गया है।

जहाँ तक अपीलार्थी सं॰ 1 हरिपद रजक उर्फ हरि रजक का संबंध है, हम आश्वस्त नहीं हैं कि उसका मामला उन अभियुक्तगण जिन्हें दोषमुक्त कर दिया गया है, के मामले के समरुप हैं। उसके विरुद्ध अभिकथन यह है कि झगड़ा के दौरान उसने मृतक का बाल खींचकर उसे जमीन पर गिरा दिया, यद्यपि अ॰ सा॰ 2 का साक्ष्य इस पहलू पर थोड़ा भिन्न है। हमारे मत में, भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन उसकी दोषसिद्धि बनायी रखी नहीं जा सकती है। किंतु उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया गया है।

6. जहाँ तक दंडादेशों का संबंध है, सुश्री बनर्जी द्वारा सूचित किया गया था कि अपीलार्थी सं॰ 1 हरिपद रजक उर्फ हरि रजक लगभग एक वर्ष पाँच माह जेल अभिरक्षा में रहा है और अपीलार्थी सं॰ 2 शंकर रजक लगभग 14 वर्षों तक जेल अभिरक्षा में रहा है।

7. हमारे मत में, दोनों अपीलार्थीगण को उस सीमा, जितनी वे पहले ही भुगत चुकें है, तक दंडादेशित करके न्याय का उद्देश्य प्राप्त हो जाएगा।

8. परिणामस्वरुप, यह अपील उस सीमा तक उनकी दोषसिद्धि में परिवर्तन के साथ खारिज की जाती है कि अपीलार्थी सं॰ 1 हरिपद रजक उर्फ हरि रजक को भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है और अपीलार्थी सं॰ 2 शंकर रजक को भारतीय दंड संहिता की धारा 304, भाग

II के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है। दोनों अपीलार्थीगण के विरुद्ध अधिनिर्णीत दंडादेशों को ऊपर उपदर्शित सीमा तक परिवर्तित किया जाता है।

9. चूँकि अपीलार्थी सं॰ 1 हरिपद रजक उर्फ हरि रजक पहले से जमानत पर हैं, उसे जमानत बंध पत्र के दायित्वों से उन्मोचित किया जाता है। जहाँ तक अपीलार्थी सं॰ 2 शंकर रजक का संबंध है, उसे अभिरक्षा से तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

कृष्णा मुंडा एवं एक अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 179 of 2011. Decided on 30th March, 2011.

किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 12—हत्या के लिए विचारण—जमानत आवेदन की खारिजी—याची के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट प्रत्यक्ष कृत्य बताया नहीं गया—इस प्रकार, जमानत के लिए उसकी प्रार्थना पर विचार करने की आवश्यकता है—शर्तों के साथ जमानत दिया गया। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.—Mr. Deepak Kumar, For the Petitioners; Mr. V.S.Jha, For the State.

आदेश

याचीगण ने यह दांडिक पुनरीक्षण, दांडिक अपील सं॰ 53 वर्ष 2010 में सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित आदेश, जिसके द्वारा सिसई (भरनो) पी॰ एस॰ केस सं॰ 44 वर्ष, 2010, जी॰ आर॰ सं॰ 210 वर्ष 2010 के तत्सम, के संबंध में याचीगण कृष्णा मुंडा और एटवा मुंडा उर्फ सलिक मुंडा की जमानत की प्रार्थना की किशोर न्याय बोर्ड, गुमला द्वारा अस्वीकृति को अभिपुष्ट किया गया था और अपील को खारिज कर दिया गया था, को अपास्त करने के लिए किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 53 के अधीन दाखिल किया है।

2. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री दीपक कुमार ने आरंभ में ही दो माह बाद जमानत के लिए अपनी प्रार्थना करने की स्वतंत्रता के साथ वर्तमान याचिका से याची सं॰ 1 कृष्णा मुंडा का नाम वापस लेने की अनुमति इप्सित करते हैं जिसे अनुज्ञात किया जाता है।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक के पुत्र अर्थात् सूरज मुंडा का कंकाल गाँव के निर्माणाधीन कुएँ के पास पाया गया था। सूचक कर्मा मुंडा ने कथन किया कि उसका पुत्र सूरज मुंडा अष्टम वर्ग का छात्र था जो पढ़ाई छोड़ने के बाद सिसई के आर॰ सी॰ एम॰ एस॰ सेंटर के साथ जुड़ा हुआ था और नियमित रूप से सिसई आया जाया करता था। वह दिनांक 24 जनवरी, 2010 को सिसई के लिए रवाना हुआ था किन्तु जब वह देर रात तक घर नहीं लौटा, तब उसका पता-ठिकाना मालूम नहीं किया जा सका था। जब सूचक दिनांक 14.3.2010 को चिंटू मुंडा के निर्माणाधीन कुआँ पर नहाने के लिए गया, उसने पानी से आता दुर्गंध महसूस किया। वह वापस घर गया और दुर्गंध छोड़ते वस्तु का पता लगाने के लिए बाँस लेकर आया। गाँव वाले वहाँ जमा हुए और गाँव वालों की उपस्थिति में मृत शरीर बरामद किया गया जिसे उसने पहचाना कि यह उसके पंद्रह वर्षीय गायब पुत्र सूरज मुंडा का था और शरीर

सड़ी-गली अवस्था में था किंतु कंकाल के शरीर पर कपड़े थे और शरीर के साथ कुछ मांस भी जुड़ा था। इसी बीच उसके परिवार के सदस्यगण भी वहाँ आए और संपुष्ट किया कि मृत शरीर सूरज मुंडा का है। शरीर बड़े पत्थरों से बांधा हुआ था जो कंकाल हटाते समय गिर गया। सूचक ने संदेह किया कि कुछ अज्ञात अपराधियों ने उसके पुत्र की हत्या कर दी थी और उन्होंने स्वयं को छुपाने के आशय से मृत शरीर को कुएँ में डाल दिया। अज्ञात दोषियों के विरुद्ध मामला संस्थापित किया गया। अन्वेषण के क्रम में, दोनों याचीगण को गिरफ्तार किया गया था और यह स्थापित करने के बाद कि वे 18 वर्ष से कम आयु के किशोर थे, मामला किशोर न्याय बोर्ड, गुमला को अंतरित कर दिया गया था और भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302/201/120B/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए अभियोगों का सार उनको स्पष्ट किया गया था।

4. याचीगण कृष्णा (जमानत के लिए जोर नहीं) और एटवा मुंडा उर्फ सलिक मुंडा के जमानत की प्रार्थना को जे॰ जे॰ बोर्ड द्वारा दिनांक 26.8.2010 के केवल इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि उनकी निर्मुक्ति न्याय के उद्देश्य को पराजित करेगी जिसके विरुद्ध उन्होंने दांडिक अपील सं॰ 53 वर्ष 2010 दाखिल किया और सत्र न्यायाधीश, गुमला ने दिनांक 27.9.2010 के आदेश द्वारा उनकी अपीलों को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उनकी निर्मुक्ति उन्हें अपराधियों की संगति में ला सकती है जो उनके लिए नैतिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक खतरा बन सकता है।

5. सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के परिशीलन से स्पष्ट होगा कि सिवाय इस बात कि उसकी कृष्णा मुंडा (प्रेस नहीं किया गया) और सूरज मुंडा (मृतक) के साथ दोस्ती थी और त्रिकोणीय प्रेम प्रसंग था, याची एटवा मुंडा उर्फ सलिक मुंडा के विरुद्ध कोई विनिर्दिष्ट प्रत्यक्ष कृत्य नहीं बताया गया है और अभिकथित किया गया था कि कृष्णा मुंडा और सूरज मुंडा दोनों का गाँव की लड़की की सुशीला कुमारी के साथ प्रेम प्रसंग था। गवाह अनिल हजाम ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन दर्ज न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष अपने बयान में कथन किया कि कृष्णा मुंडा ने उसके सामने अपने दोष की संस्वीकृति की थी कि उसने सूरज मुंडा की हत्या कर दी थी जबकि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन दर्ज सुशीला कुमारी के बयान से यह प्रतीत होता है कि चूँकि वह सूरज मुंडा के साथ थी अत: कृष्णा मुंडा को ईर्ष्या हुई और कुछ समय बाद उसे गायब पाया गया था। बाद में कृष्णा मुंडा ने उसके समक्ष संस्वीकार किया कि उसने सूरज मुंडा की हत्या कर दी थी।

6. इन तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि सिवाय इसके कि वह सह-अभियुक्त कृष्णा मुंडा का मित्र था, याची एटवा मुंडा उर्फ सलिक मुंडा के विरुद्ध किसी विनिर्दिष्ट प्रत्यक्ष कृत्य को नहीं बताया गया है और इसलिए उसके जमानत की प्रार्थना पर युक्तिसंगत रूप से विचार करने की जरूरत है। तद्नुसार, एटवा मुंडा एर्फ सलिक मुंडा को सिसई (भरनो) पी॰ एस॰ केस सं॰ 44 वर्ष 2010, जी॰ आर॰ सं॰ 210 वर्ष 2010 के तत्सम, में किशोर न्याय बोर्ड को संतुष्ट करते हुए 10,000/- (दस हजार) रुपयों और समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ जमानत निष्पादित करने पर अधिनियम की धारा 12 के अधीन इस शर्त के साथ निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है कि माता-पिता याची के जमानतदार होंगे और जाँच समाप्त होने तक प्रत्येक माह के पहले सप्ताह में जब और जैसी आवश्यकता हो, उसे जे॰ जे॰ बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

7. यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

बनवारी लाल जालान

बनाम

मुरारी लाल जालान

W.P. (C) No. 4960 of 2009. Decided on 11th April, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VIII, नियम 1—लिखित कथन–समय सीमा के अवसान के आधार पर लिखित कथन की अस्वीकृति–आदेश VIII, नियम 1 के प्रावधान आज्ञापक प्रकृति के नहीं हैं–यदि विलम्ब हुआ है, तब भी न्यायालय द्वारा न्याय के हित में लिखित कथन स्वीकार किया जा सकता है–पक्षों के बीच न्यायपूर्ण रूप से विवाद विनिश्चित करने में प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन दाखिल किया जाना विचारण न्यायालय को सुकर बनाएगा–आक्षेपित आदेश अपास्त–व्यय के साथ लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति की गयी।

(पैराएँ 2 एवं 3)

निर्णयज विधि.–(2005)4 SCC 480—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Arvind Kumar Choudhary, For the Petitioner; Mr. Indrajit Sinha, For the Respondent.

आदेश

वर्तमान याचिका टाइटल (घोषणात्मक) वाद सं॰ 73 वर्ष 2005 में विद्वान सब-जज-VII, देवघर द्वारा पारित दिनांक 21 अगस्त, 2009 के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा वर्तमान याची जो मूल प्रतिवादी है, द्वारा दाखिल लिखित कथन विद्वान अवर न्यायालय द्वारा मुख्यत: इस आधार पर स्वीकार नहीं किया गया है कि समय सीमा, जैसा सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन दिया गया है, का पहले ही अवसान हो चुका है।

2. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और **कैलाश बनाम नन्हकू एवं अन्य, (2005)4 SCC 480,** में प्रकाशित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश VIII, नियम 1 आज्ञापक प्रकृति का नहीं है बल्कि यह प्रक्रियात्मक है और यदि विलंब हुआ भी है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए विचारण न्यायालय द्वारा न्याय के हित में और पक्षों के बीच विवाद का सही रूप से विनिश्चय करने के लिए लिखित कथन स्वीकार किया जा सकता है। यह प्रतीत होता है कि याची, जो मूल प्रतिवादी है, ने दिनांक 6 दिसम्बर, 2006 को टाइटल (घोषणात्मक) वाद सं॰ 73 वर्ष 2005 में अपनी उपस्थिति दाखिल किया था और तत्पश्चात, वाद की पोषणीयता को चुनौती देते हुए उसके द्वारा दिनांक 6 जनवरी, 2007 को आवेदन दिया गया था जिसे वर्ष 2008 में विनिश्चित किया गया था और तत्पश्चात्, वर्ष 2009 में उसके द्वारा लिखित कथन दाखिल किया गया था।

3. पक्षों के बीच विवाद की दृष्टि में, प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन दाखिल किया जाना पक्षों के बीच न्यायपूर्वक वाद विनिश्चित करने में विचारण न्यायालय को सुकर बनाएगा और इसलिए मैं टाइटल (घोषणात्मक) वाद सं॰ 73 वर्ष 2005 में विचारण न्यायालय (विद्वान सब जज VII देवघर) द्वारा पारित दिनांक 21 अगस्त, 2009 के आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित और अपास्त करता हूँ और 500/-(पाँच सौ) रुपयों के व्यय के साथ विलंबित चरण पर लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति देता हूँ जिसे वर्तमान याची (मूल प्रतिवादी) द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष जमा किया जाएगा और समुचित आवेदन पर प्रत्यर्थी (मूल वादी) को उसके द्वारा उक्त राशि निकालने की अनुमति दी जाएगी। याची (मूल प्रतिवादी) द्वारा पूर्वोक्त राशि आज के दिन से चार सप्ताह की अवधि के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष जमा की जाएगी।

4. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है। याची (मूल प्रतिवादी) द्वारा दाखिल लिखित कथन को पूर्वोक्त शर्तों के अध्यधीन टाइटल (घोषणात्मक) वाद सं॰ 73 वर्ष 2005 के अभिलेख पर लेने का निर्देश दिया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

किशोर कुमार अग्रवाल एवं अन्य

बनाम

आशीष अग्रवाल

Civil Revision No. 15 of 2011. Decided on 31st March, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VII, नियम 11 सह-पठित धारा 151—वादपत्र की खारिजी—इस आधार पर बँटवारा वाद की पोषणीयता को चुनौती दी गयी कि वाद उसके पिता के जीवनकाल में संस्थापित किया गया था—वाद पत्र में पहले से ही वाद हेतुक का वर्णन है—अपने पिता के जीवनकाल के दौरान किसी हिस्से के लिए पुत्र की हकदारी वाद के गुणागुण से संबंधित है जिसे अभिवचनों के आदान-प्रदान और दोनों पक्षों द्वारा दिए गए साक्ष्य के बाद देखना होगा—याचिका खारिज। (पैराएँ 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.—AIR 1986 SC 1753; AIR 1987 SC 558—Referred.

अधिवक्तागण.—Mr. Jitendra Kumar Pasari, For the Petitioners; None, For the Opp. Party.

आदेश

पुनरीक्षकों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान पुनरीक्षण टाइटल (बँटवारा) वाद सं॰ 126 वर्ष 2010 (**आशीष कुमार अग्रवाल बनाम किशोर कुमार अग्रवाल एवं अन्य**) में सब-जज I, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 22.12.2010 के आदेश को चुनौती देते हुए दाखिल किया गया है।

3. वाद के संस्थापन के बाद, प्रतिवादी की ओर से सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VII, नियम 11 सह-पठित धारा 151 के अधीन वाद पत्र का इस आधार पर खारिजी के लिए आवेदन दिया गया था कि वर्तमान वाद दाखिल करने के लिए वादी को कोई वाद हेतुक उद्‌भूत नहीं होता है। मुख्य प्रतिवाद कि चूँकि बँटवारा वाद पुत्र द्वारा अपने पिता के जीवनकाल के दौरान संस्थापित किया गया है और, इसलिए, वाद पोषणीय नहीं है और वाद पत्र खारिज किए जाने का दायी है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की दृष्टि में वाद संपत्ति का बँटवारा नहीं किया जा सकता है और इसलिए वाद का संस्थापन द्वेषपूर्ण तथा सारहीन है और यह तुरन्त खारिज किए जाने का दायी है।

4. विद्वान अधिवक्ता का अगला प्रतिवाद यह है कि विशेषत: **संपदा कर कमिश्नर, कानपुर बनाम चंदर सेन, AIR (1986) SC 1753** पैराग्राफ 16A, में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि की दृष्टि में संपत्ति बँटवारा के लिए उपलब्ध नहीं है। उक्त निर्णय मामले को गुणागुण पर विनिश्चित करते हुए दिया गया था और न कि सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VII, नियम 11 के अधीन वाद पत्र की अस्वीकृति के चरण पर।

5. मैंने पैराग्राफ 16A का परिशीलन किया है जहाँ हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 8 के अधीन विधि ने वसीयत किए बिना मृत हिंदू की संपत्ति के उत्तराधिकार की योजना अधिकथित की है। अनुसूची उन उत्तराधिकारियों को वर्गीकृत करती है जिन पर ऐसी संपत्ति न्यागत होनी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि यदि उसके पिता की मृत्यु के समय एक हिंदू और उसके पुत्रों के बीच कोई सहदायिकी नहीं थी, तब पिता की मृत्यु पर उसके द्वारा प्राप्त संपत्ति को उस संपत्ति के साथ नहीं मिलाया जा सकता था जिसे पिता की मृत्यु के पहले किए गए बँटवारा पर उसके पुत्रों को आबंटित

किया गया था। मेरे दृष्टिकोण में, यह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अंतर्ग्रस्त विवाद पर प्रयोज्य नहीं है। तद्नुसार, यह निर्णय पुनरीक्षकों की सहायता नहीं करता है।

6. विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया एक अन्य मामला **युधिष्ठिर बनाम अशोक कुमार** का **AIR (1987)SC 558 पैरा 10,** में प्रकाशित मामला है। पैरा-10 का परिशीलन यह स्पष्ट करता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने **संपदा कर कमिश्नर (ऊपर)** के मामले में अधिकथित सिद्धांत के निर्णय का अनुसरण किया है और किसी नए बिन्दु पर चर्चा नहीं की गयी थी। केवल वर्ष 1986 का निर्णय पश्चातवर्ती निर्णय द्वारा अभिपुष्ट किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VII, नियम 11 पर जोर दिया है जिसे नीचे उद्धृत किया जाता है:–

*O. 7, R.11. **वादपत्र का नामंजूर किया जाना.**–वादपत्र निम्नलिखित दशाओं में नामंजूर कर दिया जाएगा–*

(a) जहां वह वाद-हेतुक प्रकट नहीं करता है;

(b) जहां दावाकृत अनुतोष का मूल्यांकन कम किया गया है और वादी मूल्यांकन को ठीक करने के लिए न्यायालय द्वारा अपेक्षित किए जाने पर उस समय के भीतर जो न्यायालय ने नियत किया है, ऐसा करने में असफल रहता है;

(c) जहां दावाकृत अनुतोष का मूल्यांकन ठीक है किन्तु वादपत्र अपर्याप्त स्टाम्प-पत्र पर लिखा गया है और वादी अपेक्षित स्टाम्प-पत्र के देने के लिए न्यायालय द्वारा अपेक्षित किए जाने पर उस समय के भीतर, जो न्यायालय ने नियत किया है, ऐसा करने में असफल रहता है;

(d) जहां वादपत्र में के कथन से यह प्रतीत होता है कि वाद किसी विधि द्वारा वर्जित है।

7. निवेदन यह है कि वर्तमान वाद में कोई वाद हेतुक नहीं है और वाद में दावा किया गया अनुतोष भी हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के प्रावधानों द्वारा वर्जित है और इसलिए, मामला पूर्णत: सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश VII, नियम 11 के अधीन आच्छादित है और अवर न्यायालय ने प्रतिवादी का आवेदन अस्वीकार करने में अवैधता किया।

8. विद्वान अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुनने और निर्णय तथा विधि के प्रावधान का परिशीलन करने के बाद मेरा सुदृढ़ मत है और मैं अवर न्यायालय द्वारा इस प्रभाव के दर्ज निष्कर्ष के साथ पूरी तरह सहमत हूँ कि वाद पत्र के पैरा 17 और 21 में वाद हेतुक को पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है और यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई वाद हेतुक उल्लिखित नहीं किया गया है। मेरा दृष्टिकोण है कि वाद की कार्यवाही के दौरान न्यायालय सामान्यत: विवाद्यक विरचित करता है कि क्या वाद हेतुक उद्भूत हुआ था या नहीं और इसी प्रासंगिक समय पर वाद हेतुक के अस्तित्व का परीक्षण करना होगा। पुनरीक्षकों के आवेदन को अस्वीकार करते हुए अवर न्यायालय द्वारा यही आधार लिया गया था। वाद हेतुक को पहले ही वाद पत्र में वर्णित किया जा चुका है। जहाँ तक हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम की दृष्टि में विधिक प्रतिपादना का प्रश्न है, अपने पिता के जीवनकाल के दौरान पुत्र किसी हिस्से का हकदार नहीं है जो वाद के गुणागुण से संबंधित है जिसे अभिवचनों के आदान-प्रदान और पक्षों द्वारा साक्ष्य दिए जाने के बाद देखना होगा।

9. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, मेरा सुदृढ़ मत है कि पुनरीक्षण में गुणागुण का अभाव है और यह खारिज किए जाने का दायी है।

व्यय को लेकर आदेश नहीं होगा।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

संजीव कुमार झा एवं अन्य

बनाम

स्वामी राम कृष्ण परमहंस टीचर्स ट्रेनिंग (बी॰ एड॰) महाविद्यालय, करमाटांड एवं अन्य

Civil Review No. 120 of 2010. Decided on 15th April, 2011.

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् अधिनियम, 1993—धारा 14(6)—संबद्धता–प्रबंधन कमिटि के दो गुटों के बीच संघर्ष की दृष्टि में उच्च न्यायालय ने छात्रों की परीक्षा लेने की अनुमति देने का निर्देश विश्वविद्यालय को दिया–उक्त आदेश धारा 14(6) के प्रावधान के निबंधनानुसार था–अभिलेख को देखते हुए कोई प्रकट गलती नहीं है–पुनर्विलोकन आवेदन खारिज। (पैराएँ 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.–(2006)9 SCC 1—Relied on. 1986 (Supp.) SCC 166; (1986)2 SCC 667; (1991)3 SCC 87; 2003 (1) PLJR 128—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Sameer Saurav, For the Petitioners; Mr. Sohail Anwar, For the Respondent no. 1; Mr. Srijit Choudhary, For the University.

आदेश

इस पुनर्विलोकन आवेदन के माध्यम से डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) 4976 वर्ष 2010 में महाविद्यालय के छात्रों के फीस तथा फार्म स्वीकार करके सत्र 2009-10 के लिए बी॰ एड॰ परीक्षा, जो दिनांक 6 दिसम्बर, 2010 से आरंभ होनी थी, देने की अनुमति देने का निर्देश विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग को देते हुए दिनांक 19.11.2010 को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया गया है कि महाविद्यालय अर्थात् स्वामी राम कृष्ण परमहंस टीचर्स ट्रेनिंग (बी॰ एड॰) महाविद्यालय, करमाटांड, बोकारो को सत्र 2009-10 के लिए विश्वविद्यालय द्वारा संबद्धता कभी नहीं दी गयी है किंतु इस न्यायालय के समक्ष बयान दिया गया था कि उक्त महाविद्यालय संबद्ध महाविद्यालय है और इस उपधारणा पर, आदेश पारित किया गया था और, इसलिए, आदेश पुनर्विलोकित किए जाने योग्य है विशेषत: **एन॰ एम॰ नागेश्वरम्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं एक अन्य, 1986 (Supp) SCC 166,** में प्रकाशित मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि असंबद्ध महाविद्यालय के छात्रों को परीक्षा देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

2. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री समीर सौरभ ने निवेदन किया कि यह सत्य है कि एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ द्वारा दिनांक 28.2.2008 के अपने आदेश के तहत महाविद्यालय को मान्यता दी गयी थी किंतु मान्यता दिए जाते समय, एक अनुबंध यह था कि दिनांक 10.12.2007 को अधिसूचित एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ विनियमन, 2007 के खंड 8(12) के निबंधनानुसार परीक्षा निकाय से संबद्धता प्राप्त करने के बाद ही संस्थान प्रवेश देगा किंतु महाविद्यालय ने झारखंड राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 4 (19) के निबंधनानुसार विश्वविद्यालय से संबद्धता प्राप्त किए बिना सत्र 2009-10 के लिए छात्रों को दाखिला दिया और उस स्थिति में, महाविद्यालय के छात्रों को विश्वविद्यालय द्वारा संचालित परीक्षा में उपस्थित होने का अधिकार नहीं था। किंतु, इस न्यायालय ने रिट याची के गलत प्राख्यान कि महाविद्यालय संबद्ध है, पर आदेश पारित किया। जो वापस लिए जाने/पुनर्विलोकित करने के योग्य है क्योंकि इस न्यायालय द्वारा दिया गया निर्देश विश्वविद्यालय अधिनियम के प्रावधान के स्पष्ट उल्लंघन में है और इस प्रकार, जब तक महाविद्यालय संबद्ध नहीं है, न्यायालय भी उनके हितों की सुरक्षा के लिए छात्रों को बचाने नहीं आ सकता है।

3. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **ए॰ पी॰ क्रिश्चियन मेडिकल एजुकेशनल सोसाइटी बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं एक अन्य, (1986)2 SCC 667; तमिलनाडु राज्य एवं अन्य बनाम एस॰ टी॰ जोसेफ टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीच्यूट एवं एक अन्य, (1991)3 SCC 87;** एवं **सुरेन्द्र सिंह बनाम तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य,** (2003)1 PLJR 128 के मामलों में निर्णयों को निर्दिष्ट किया है।

अत:, पूर्वोक्त अभिवचन पर निवेदन किया गया था कि दिनांक 19.11.2010 को न्यायालय द्वारा पारित आदेश पुनर्विलोकन योग्य है।

4. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थी सं॰ 1 (रिट याची) की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री सुहैल अनवर ने निवेदन किया कि राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् द्वारा दिनांक 28.2.2008 के आदेश के तहत महाविद्यालय को स्थायी मान्यता दी गयी है। स्थायी मान्यता प्रदान किए जाने पर राज्य सरकार ने भी सत्र 2008-09 के लिए संबद्धता को अनुमोदन प्रदान किया। उस पर महाविद्यालय के छात्रों ने सत्र 2008-09 के लिए बी॰ एड॰ परीक्षा दिया और उनमें से 98% सफल हुए। परिणाम के प्रकाशन के बाद, महाविद्यालय को सत्र 2009-10 के लिए बी॰ एड॰ पाठ्यक्रम में छात्रों को दाखिला देने की अनुमति देने के लिए महाविद्यालय द्वारा रजिस्ट्रार, बिनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग को अनुरोध पत्र भेजा गया था किंतु जब कोई जवाब नहीं प्राप्त हुआ, सत्र 2009-10 में प्रवेश लेने के लिए विज्ञापन जारी किया गया था और उस स्थिति में, दाखिला दिया गया था और इस बीच, सत्र 2009-10 के लिए संबद्धता प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालय से अनुरोध किया गया था और उसके लिए विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए निर्देश के उत्तर में अपेक्षित निरीक्षण शुल्क जमा किया गया था और उसके लिए विश्वविद्यालय द्वारा दिए गए निर्देश 1 के उत्तर में अपेक्षित निरीक्षण शुल्क जमा किया गया था। बाद में, कमिटि के सदस्यों ने महाविद्यालय का निरीक्षण किया तथा मानव संसाधन विभाग, झारखंड सरकार को अपना रिपोर्ट अग्रसर किया ताकि इस संबंध में निर्णय लिया जा सके। ऐसी रिपोर्ट पर, सत्र 2009-10 के लिए अस्थायी असंबद्धता बढ़ाए जाने के लिए राज्य सरकार द्वारा निर्णय लिया गया था जो दिनांक 5.8.2010 के पत्र से स्पष्ट होगा। उक्त पत्र को रिट आवेदन में परिशिष्ट 7 के रूप में संलग्न किया गया है और वर्तमान प्रति शपथ पत्र में, इसे परिशिष्ट A के रूप में संलग्न किया गया है। तत्पश्चात् दिनांक 28.8.2010 को रजिस्ट्रार, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग को पत्र लिखा गया था जिसमें सूचित किया गया था कि सरकार के पत्र में उल्लिखित समस्त शर्तों को पूरा कर दिया गया है और इस प्रकार संबद्धता प्रदान किए जाने के मामले में निर्णय लेने के लिए अनुरोध किया गया था। जब विश्वविद्यालय द्वारा इस संबंध में कुछ नहीं किया गया था, महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा पत्र लिखा गया था कि छात्रों को फार्म भरने और फीस जमा करने की अनुमति दी जाए ताकि वे सत्र 2009-10 के लिए परीक्षा दे सकें। विश्वविद्यालय इस मामले में इस कारण कोई निर्णय नहीं ले सका था क्योंकि प्रबंधन कमिटि के विरोधी गुटों के बीच महाविद्यालय के प्रबंधन के नियंत्रण से संबंधित विवाद चल रहा था और उस स्थिति में, महाविद्यालय के प्रभारी प्राचार्य द्वारा छात्रों को परीक्षा देने की अनुमति देने के लिए रिट आवेदन दाखिल किया गया गया था ताकि छात्रों का भविष्य बर्बाद न हों। जब पूर्वोक्त स्थिति में इस न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया था, महाविद्यालय के प्रबंधन कमिटि का सचिव होने का दावा करते हुए पुनर्विलोकन आवेदन के याची ने, यद्यपि रजिस्ट्रेशन विभाग द्वारा उसे प्रबंधन कमिटि के सचिव के रूप में मान्यता कभी नहीं दी गयी है, फिर भी अपनी आत्मतुष्टि के लिए यह पुनर्विलोकन आवेदन दाखिल किया है और इस प्रकार, सिविल पुनर्विलोकन आवेदन में अभियोजित करने का उसे कोई अधिकार नहीं है।

5. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याचीगण की ओर से निर्दिष्ट निर्णय प्रयोज्य नहीं है क्योंकि एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ अधिनियम, 1993 के लागू होने के बाद स्थिति बिल्कुल बदल गयी है क्योंकि

उसके द्वारा जब एक बार एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ द्वारा अधिनियम की धारा 14(6) के अधीन मान्यता प्रदान कर दी गयी है। प्रत्येक विश्वविद्यालय (परीक्षा निकाय) विश्वविद्यालय द्वारा संबद्धता प्रदान करने से संबंधित विश्वविद्यालय अधिनियम में प्रावधान होने के बावजूद ऐसे संस्थान को संबद्धता प्रदान करने के लिए बाध्य है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **महाराष्ट्र राज्य बनाम संत ध्यानेश्वर शिक्षण शास्त्र महाविद्यालय एवं अन्य, (2006)9 SCC 1,** में प्रकाशित मामले में निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

7. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने और डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 4976 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 19.11.2010 के आदेश का परिशीलन करने पर यह वस्तुत: प्रतीत होता है कि इस तथ्य को ध्यान में लेते हुए आदेश पारित किया गया था कि एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ द्वारा महाविद्यालय को मान्यता प्रदान कर दिए जाने पर विश्वविद्यालय ने महाविद्यालय को सत्र 2008-09 के लिए संबद्धता प्रदान किया था और सत्र 2008-09 के लिए परीक्षा देने की अनुमति छात्रों को दी गयी थी। बाद में, महाविद्यालय ने पत्र लिखकर छात्रों को दाखिला देने की अनुमति विश्वविद्यालय से मांगा था किंतु विश्वविद्यालय मौन रहा और उस स्थिति में सत्र 2009-10 के लिए छात्रों को दाखिला दिया गया था और तब, कमिटि ने महाविद्यालय के निरीक्षण के बाद राज्य सरकार को अपना रिपोर्ट दिया था। राज्य सरकार ने सत्र 2009-10 के लिए अस्थायी संबद्धता प्रदान करने का निर्णय लिया था और आवश्यक कार्रवाई करने के लिए विश्वविद्यालय को सूचित किया था किंतु विश्वविद्यालय ने इस संबंध में कोई निर्णय नहीं लिया था, शायद इस कारण से कि प्रबंधन कमिटि के दो गुट महाविद्यालय के प्रबंधन पर नियंत्रण पाने के लिए संघर्षरत थे और उस कारण से, जब विश्वविद्यालय छात्रों का फॉर्म और फीस नहीं स्वीकार कर रहा था, फीस और फॉर्म स्वीकार करने के लिए विश्वविद्यालय को निर्देश देने के लिए रिट आवेदन दाखिल किया गया था ताकि छात्र सत्र 2009-10 के लिए बी॰ एड॰ परीक्षा दे सकें और इस न्यायालय ने ऊपर कथित समस्त तथ्यों को ध्यान में लेते हुए विश्वविद्यालय को छात्रों को परीक्षा देने की अनुमति देने का निर्देश देते हुए रिट आवेदन अनुज्ञात किया था। उक्त आदेश एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ अधिनियम की धारा 14 (6) के प्रावधानों और **महाराष्ट्र राज्य बनाम संत ध्यानेश्वर शिक्षण शास्त्र महाविद्यालय एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में इसे विश्वविद्यालय अधिनियम के प्रावधान और याचीगण की ओर से ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों के विपरीत कभी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के वे निर्णय एन॰ सी॰ टी॰ ई॰ एक्ट के अधिनियमन के पहले की अवधि से संबंधित है।

8. अत:, मैं अभिलेख पर कोई प्रकट त्रुटि नहीं पाता हूँ और इसलिए यह पुनर्विलोकन आवेदन खारिज किया जाता है। किंतु, आदेश से अलग होने से पहले, यह दर्ज किया जाए कि पुनर्विलोकन आवेदन दाखिल करने पर दिनांक 21.2.2011 को विश्वविद्यालय को परिणाम प्रकाशित नहीं करने का निर्देश देते हुए आदेश पारित किया गया था। किंतु, वह आदेश पुनर्विलोकन आवेदन की खारिजी की दृष्टि में रिक्त किया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

रविन्द्र टौंक एवं अन्य

बनाम

श्रीमती वसंती बी॰ टौंक एवं अन्य

First Appeal No. 863 of 1993 (R). Decided on 9th March, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VIII, नियम 6A—विवाद्यक विरचित किए जाने और साक्ष्य बन्द कर दिए जाने के बाद प्रतिदावा ग्रहण नहीं किया जा सकता है—न्यायालय को विलम्ब से लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति देने का स्वविवेक है किंतु इसे भी युक्तियुक्त समय के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए—जब एक बार लिखित कथन दाखिल करने का अधिकार प्रतिवादी द्वारा खो दिया जाता है अथवा प्रतिवाद करने के लिए सीमित समय का अवसान हो गया है, तब न तो अधिकार के तौर पर लिखित कथन दाखिल किया जा सकता है और न ही प्रतिदावा उठाने की अनुमति दी जा सकती है। (पैराएँ 17 एवं 18)

निर्णयज विधि.—AIR 2007 SC 10; (2011)2 SCC 330—Relied; (2008) 17 SCC 448; (1999) 7 SCC 435; AIR 1991 MP 11; AIR 1994 Kerala 14; (2003)7 SCC 350—Referred.

अधिवक्तागण.—M/s P.K. Prasad, Ayush Aditya, For the Appellants; Mr. Lalit Kumar Lal, For the Respondents No. 1, 2 and 4; M/s V. Shivnath, D.K. Chakravorty, For the Respondents No. 5, 6 and 7.

आदेश

वर्तमान प्रथम अपील बँटवारा वाद सं॰ 122 वर्ष 1990 में वाद पत्र की अनुसूची B के आइटम सं॰ 1, 2, 3 और 5 से संबंधित वादी-अपीलार्थी के वाद को अंशत: डिक्री करते हुए और अनुसूची B के आइटम सं॰ 4 और 6 से 13 तक के संबंध में बँटवारा के लिए वादी के दावा को अननुज्ञात करते हुए द्वितीय अपर अधीनस्थ न्यायाधीश, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 29 मई, 1993 के निर्णय और दिनांक 10 जून, 1993 की डिक्री को चुनौती देते हुए वर्ष 1993 में दाखिल की गयी थी।

2. वर्तमान अपील में सोलह प्रतिवादीगण को प्रत्यर्थीगण के रूप में प्रस्तुत किया गया था। दिनांक 4.11.1995 को अपील ग्रहण किए जाने के बाद समस्त प्रत्यर्थीगण को नोटिस भेजा गया था।

3. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ शिवनाथ, जिनकी सहायता श्री डी॰ के॰ चक्रवर्ती ने की, ने प्रतिवादीगण-प्रत्यर्थीगण सं॰ 5, 6 और 7 की ओर से उपस्थिति ज्ञापन दाखिल किया और वादपत्र की अनुसूची B के क्रम सं॰ 7, 9 और 10 पर दर्शायी गयी संपत्तियों के संबंध में भी प्रति दावा दाखिल किया। प्रति-आपत्ति दाखिल करने में हुए विलम्ब को माफ करने के लिए भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन के साथ अक्टूबर, 2004 में प्रति-आपत्ति दाखिल किया। वर्तमान मामले में आठ वर्ष नौ माह आठ दिन (3010 दिन) का विलम्ब किया गया है।

4. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री पी॰ के॰ प्रसाद, जिनकी सहायता श्री आयुष आदित्य एवं श्री ललित कुमार लाल ने की, प्रत्यर्थीगण सं॰ 5, 6 और 7 के कहने पर दाखिल प्रतिदावा की पोषणीयता और ग्राह्यता का विरोध करने के लिए अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित हुए हैं।

5. प्रतिवादीगण-प्रत्यर्थीगण, जिन्होंने अपना प्रतिदावा दाखिल किया है, की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने विलम्ब की माफी के लिए प्रार्थना की है जिसका अपीलार्थीगण द्वारा जोरदार विरोध किया गया है।

6. आरंभ में ही, प्रतिवादीगण-प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थीगण पर तामील सम्मन के संबंध में दिनांक 1 फरवरी, 1996 का ऑर्डर-शीट प्रस्तुत किया है। उक्त ऑफिस रिपोर्ट के परिशीलन पर पता चलता है कि—

''प्रत्यर्थीगण सं॰ 6 और 16 पर तामील नोटिस को क्रमशः प्रत्यर्थीगण सं॰ 7 और 11 द्वारा प्राप्त किया गया था जो एक दूसरे के संबंधी हैं और एक ही घर में रह रहे हैं। अवर न्यायालय द्वारा तामील वैध है और अभिलेख पर एस॰ आर॰ रखा गया है।

हस्ताक्षर 1.2.1996"

7. विलम्ब की माफी के लिए आवेदन के समर्थन में आवेदन और चार पूरक शपथ पत्रों के साथ शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसके विरुद्ध प्रति शपथ पत्र भी दाखिल किया गया है। निवेदन किया गया है कि पूर्वोक्त ऑफिस रिपोर्ट यह दर्शाता नहीं है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 पर नोटिस तामील किया गया था, वस्तुत: प्रत्यर्थी सं॰ 5 पर भी नोटिस तामील नहीं किया गया था और केवल प्रत्यर्थी सं॰ 7 ने नोटिस स्वीकार किया था, अत: उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। आगे कथन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6, जिसने विलम्ब माफ करने के लिए आवेदन के समर्थन में शपथ पत्र दाखिल किया है, ने पैराग्राफ 3 में कथन किया है दिनांक 14.8.2004 को अथवा इसके आस-पास पारिवारिक बैठक में स्वयं अपीलार्थी द्वारा आवेदकों-प्रतिवादीगण को सूचित किया गया था कि बँटवारा वाद सं॰ 122 वर्ष 1990 में पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रथम अपील दाखिल की गयी है और यह लंबित है। तत्पश्चात आवेदक दिनांक 16 अगस्त, 2004 को राँची पहुँचा और श्री डी॰ के॰ चक्रवर्ती से संपर्क किया जो अपील में उपस्थित हुए और आवश्यक कदमों को उठाया और दिनांक 16 अगस्त, 2004 को अपील में उपस्थिति दाखिल की गयी थी। इन परिस्थितियों में, यह निवेदन किया गया था कि प्रति-आपत्ति दाखिल करने में विलम्ब जान-बूझकर नहीं किया गया था बल्कि यह इन कारणों से था कि उन्हें अपील दाखिल किए जाने के बारे में जानकारी नहीं थी और इसलिए विलम्ब माफ करने के लिए आवेदन के साथ प्रति-आपत्ति, जिसे केवल दिनांक 14 अक्टूबर, 2004 को ही दाखिल किया गया था, अनुज्ञात किए जाने का दायी था। तीन पूरक शपथपत्रों को क्रमश: दिनों को 3 मई 2005, 19 मई, 2009 और 12 दिसम्बर, 2009 को दाखिल किया गया था और चौथा मार्च, 2011 में दाखिल किया गया है। प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI, नियम 32 के प्रावधानों को प्रस्तुत किया है जो प्रावधानित करता है कि पक्ष को कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जाएगी।

8. विलम्ब की माफी के लिए आई॰ ए॰ के प्रति दिनांक 10 फरवरी, 2011 को प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है। यह कथन किया गया है कि प्रतिवादीगण-प्रत्यर्थीगण द्वारा दावा किए गए जानकारी की तिथि के पहले एकमात्र अपीलार्थी की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी और, इसलिए, प्रतिवादी सं॰ 6 द्वारा शपथ पर दाखिल शपथपत्र में किया गया प्राख्यान प्रकटत: झूठा है और विचार योग्य नहीं है। अपीलार्थी की मृत्यु 6 दिसम्बर, 2001 को हो गयी थी और उसे प्रथम अपील में दिनांक 22 अप्रैल, 2004 को प्रतिस्थापित किया गया था। इस प्रकार, जब प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थिति दाखिल की गयी थी अथवा जानकारी की तिथि पर, जैसा उनके द्वारा दावा किया गया है, एकमात्र अपीलार्थी की मृत्यु पहले ही हो गयी थी, और, इसलिए, दिया गया कारण उनकी ओर से किया गया निहायत ही झूठा प्राख्यान है और प्रति-आपत्ति, जो आठ वर्षों से अधिक के समय के अवसान द्वारा वर्जित है, खारिज किए जाने की दायी है। इन आपत्तियों को वर्तमान मामले की सुनवाई के अंतिम दिन अर्थात् दिनांक 23 फरवरी, 2011 को उठाया गया था। वस्तुत: जब तर्क के क्रम में अपीलार्थी की मृत्यु की तिथि को न्यायालय के नोटिस में लाया गया था, प्रतिवादीगण-प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता के कहने पर मामला स्थगित कर दिया गया था। तत्पश्चात् अंतिम पूरक शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसका उत्तर भी अपीलार्थी द्वारा दिया गया है।

9. प्रतिवादीगण द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण यह है कि पारिवारिक बैठक में अपीलार्थी से जानकारी मिलने का उल्लेख मृत अपीलार्थी के नाम का विनिर्दिष्ट उल्लेख नहीं करता है किंतु यह अपीलार्थी रविन्द्र टौंक था। उतर में, प्रतिस्थापित अपीलार्थी रविन्द्र टौंक, अपीलार्थी सं॰ A (1) (a) ने स्वयं शपथपत्र दाखिल किया है और किसी भी पारिवारिक बैठक में उच्च न्यायालय में दाखिल अपील के लंबित रहने के संबंध में प्रत्यर्थी सं॰ 6 को कोई सूचना देने से इनकार किया है।

10. श्री एल॰ के॰ लाल, जिन्होंने केवल परिसीमा के प्रश्न पर न्यायालय को संबोधित किया है, ने जोरदार रूप से कहा है कि आठ वर्ष नौ माह आठ दिन का विलम्ब ऐसा विलम्ब नहीं है जिसे लापरवाह तरीके से माफ किया जा सकता है और मात्र ऐसा बयान देकर कि आवेदक को प्रथम अपील के लंबित

रहने के बारे में पारिवारिक बैठक में जानकारी हुई जब तक इस संबंध में कि वह कौन सा समारोह था जिसमें परिवार के समस्त सदस्य खास तौर पर सम्मिलित हुए थे विशेषत: तब जब उनके बीच मैत्रीपूर्ण संबंध नहीं था; कौन सा अवसर था और किसने उसे सूचित किया था, कोई विनिर्दिष्ट प्राख्यान नहीं किया गया था, न्यायालय 1030 दिनों के विलम्ब को हल्के रूप में नहीं ले सकता है और माफ नहीं कर सकता है विशेषत: ऐसे मामले में जहाँ स्पष्टीकरण झूठ में लिपटा हुआ है और इसलिए वह किसी भी सहानुभूति के योग्य नहीं है। श्री लाल ने इंगित किया है कि दिनांक 1 फरवरी, 1996 का ऑफिस रिपोर्ट कोई मदद नहीं करता है चूँकि आदेशिका तामीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत दिनांक 7 दिसम्बर 1995 का मूल सर्विस रिपोर्ट प्रतिवादीगण/प्रत्यर्थीगण सं॰ 5 और 7 पर व्यक्तिगत रूप से पर्याप्त तामीला दर्शाता है और यह भी कि प्रत्यर्थी सं॰ 6 पर तामील पर्याप्त था क्योंकि प्रत्यर्थी सं॰ 7 ने उसकी ओर से नोटिस स्वीकार किया था।

11. दिनांक 7 दिसम्बर, 1995 के तामील रिपोर्ट के परिशीलन पर प्रत्यर्थी सं॰ 5 का हस्ताक्षर स्पष्ट है और इसलिए यह श्री एल॰ के॰ लाल द्वारा उठायी गयी आपत्ति को समर्थन देता है। उनके द्वारा उठाया गया एक अन्य प्रश्न कि भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलम्ब की माफी के लिए मूल आवेदन के समर्थन में दाखिल शपथ पत्र प्रत्यर्थी सं॰ 6 द्वारा दाखिल किया गया है किन्तु यह नहीं दर्शाता है कि वह प्रत्यर्थी सं॰ 5 और 7 की ओर से भी शपथ पत्र पर शपथ ले रहा है, ध्यान में लिए जाने योग्य है।

12. पुंडिक जलम पाटिल बनाम कार्यपालक अभियन्ता, जलगाँव मेडियम प्रोजेक्ट एवं एक अन्य, [2008)17 Supreme Court Cases 448] में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर विश्वास किया गया है। उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकारी निकाय द्वारा अपनायी गयी प्रैक्टिस और परिसीमा की वर्जना से पीछा छुड़ाने की अपनी चिंता में झूठे अभिवचन का सहारा लेने के कृत्य की निन्दा की है। सर्वोच्च न्यायालय ने परिसीमा की अवधि को बढ़ाने से इनकार किया। उक्त निर्णय के पैराग्राफों 11 और 12 पर विशेषत: विश्वास किया गया है जहाँ सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि जहाँ विलम्ब की माफी इप्सित करने वाले आवेदन में गलत बयान दिया जाता है, यह किसी आगे जाँच के बिना आवेदन को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त है।

13. यद्यपि प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने दोहराया कि केवल इसलिए कि समारोह जहाँ अपीलार्थी प्रतिवादीगण से मिला था, का विवरण नहीं दिया गया था और यह उल्लिखित किया गया था कि स्वयं अपीलार्थी से जानकारी प्राप्त की गयी थी, भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के लाभ का दावा करते हुए आवेदक की ओर से किसी गलतबयानी को गठित नहीं करता है। यह प्रकाशमान भी किया गया था कि आई॰ ए॰ सं॰ 168 वर्ष 2005 के तहत व्यादेश प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 5, 6 और 7 की ओर से आवेदन दाखिल किया गया था। दिनांक 16 मार्च, 2005 को प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया था और उक्त आई॰ ए॰ के साथ कतिपय अन्य दस्तावेज भी संलग्न थे और परिशिष्ट R-1/A पर न्यायालय द्वारा विश्वास किया गया था जब दिनांक 5 मई, 2005 को व्यादेश प्रदान किया गया था। आवेदकगण-प्रतिवादीगण की ओर से दिया गया यह तर्क इस प्रतिवाद के समर्थन में है कि चूँकि प्रत्यर्थीगण सं॰ 5, 6 और 7 संपत्तियों में से एक के पार्टनर हैं और संयुक्तता का साक्ष्य है, अत:, प्रति-आपत्ति दाखिल करने के हकदार हैं। किन्तु, यह प्राख्यान परिसीमा के विलम्ब को माफी प्रदान किए जाने और समय के भीतर प्रति आपत्ति स्वीकार करने के विरुद्ध श्री एल॰ के॰ लाल द्वारा दी गयी चुनौती के समर्थन में नहीं है।

14. श्री वी॰ शिवनाथ ने अपनी प्रति-आपत्ति के समर्थन में दो निर्णयों को प्रस्तुत किया है। प्रथम, **रविन्द्र कुमार शर्मा बनाम असम राज्य एवं अन्य [(1999)7 Supreme Court Cases 435]** जो

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 और आदेश XLI, नियम 22 (1) से संबंधित है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अपील अथवा प्रति-आपत्ति दाखिल किए बिना भी प्रतिवादी-प्रत्यर्थी डिक्री के आक्षेपित अंश को संपोषित करने अथवा उसके विरुद्ध पारित डिक्री के निष्कर्षों का विरोध करने के लिए ऐसा करने का हकदार है। **बलवंत बनाम मैनाबाई (AIR 1991 Madhya Pradesh 11)** और **नालिनी एवं अन्य बनाम पद्मनाभन कृष्णन एवं अन्य, (AIR 1994 Kerala 14)** में विभिन्न उच्च न्यायालयों के दो निर्णयों पर भी विश्वास किया गया है।

15. परिसीमा के प्रश्न पर आपत्ति के अतिरिक्त, श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने प्रति-आपत्ति की पोषणीयता पर प्रश्न किया है। प्रति-आपत्ति को ग्रहण किए जाने को चुनौती देने का प्रथम आधार यह है कि यद्यपि प्रत्यर्थी सं॰ 5, 6 और 7 को बँटवारा वाद में प्रतिवादीगण के रूप में पेश किया गया था, वे लिखित कथन दाखिल करने में विफल रहे और वाद का प्रतिवाद नहीं किया। मेरे ध्यान में यह भी लाया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 6, जिसने इस न्यायालय में अनेक शपथपत्रों को दाखिल किया है, अ॰ सा॰ 5 के रूप में गवाह के रूप में वादी के पक्ष में उपस्थित हुआ और वर्तमान प्रति-आपत्ति के विषय वस्तु के संबंध में प्रतिवादीगण सं॰ 1, 2 और 4 के दावा का समर्थन किया है और, इसलिए, उसकी प्रति-आपत्ति के विषय वस्तु के संबंध में प्रतिवादीगण सं॰ 1, 2 और 4 के दावा का समर्थन किया है और इसलिए उसकी प्रति-आपत्ति ग्रहण नहीं की जानी चाहिए। क्रमांक सं॰ 7, 9 और 10 पर दर्शायी गयी संपत्तियों के संबंध में प्रति-आपत्ति दाखिल की गयी है। अनुसूची के क्रमांक 7, 9 और 10 पर दर्शायी गयी संपत्तियों के संबंध में प्रतिवादीगण सं॰ 1, 2 और 4 ने अपना लिखित कथन दाखिल किया था और वर्तमान प्रति-आपत्ति भी इन्हीं संपत्तियों के संबंध में दाखिल की गयी है, अपीलार्थी ने अन्य आइटमों के संबंध में संपत्तियों के लिए अपील दाखिल किया है जिसके संबंध में वाद खारिज कर दिया गया था, किंतु चूँकि प्रत्यर्थीगण ने कोई भी लिखित कथन दाखिल नहीं किया था, वे अपीलीय चरण पर प्रति-आपत्ति दाखिल करने से पूरी तरह वर्जित हैं। सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर विश्वास किया गया है जिसमें से पहला **रमेश चन्द अर्दवातिया बनाम अनिल पांजवानी; [(2003)7 Supreme Court Cases 350** Para 28 & 29] है जिसके पैराग्राफ 28 के उद्धरण को नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *''यदि संशोधन के जरिए अथवा पश्चातवर्ती अभिवचन के जरिए कार्यवाही के सुसंचालन को जटिल बनाते हुए अथवा न्यायालय द्वारा पहले ही लिए जा चुके कदमों से पीछे हटने के लिए मजबूर करके वाद की प्रगति में विलंब कारित करते हुए प्रति दावा दाखिल करने की अनुमति दिए जाने का परिणाम विचारण को लंबा खींचने में होगा, न्यायालय विलंबित प्रति-दावा दाखिल करने की अनुमति देने के विपक्ष में अपने स्वविवेक का प्रयोग करने में न्यायोचित होगा। विधि के निर्माताओं का आशय कभी नहीं था कि विचारण को फिर से शुरु करने के लिए मजबूर करने के लिए अथवा कार्यवाही की प्रगति को पीछे धकेलने के लिए उपकरण के रूप में अभिवचन का उपयोग किया जाए। आम तौर पर प्रति-दावा, जो मूल लिखित कथन में अंतर्विष्ट नहीं है, को अभिलेख पर लिए जाने से इनकार किया जा सकता है यदि विवाद्यकों को पहले ही विरचित कर लिया गया है और विचारण के लिए मामला सुनवाई के लिए रख दिया गया है और खासकर जब विचारण पहले ही आरंभ हो चुका है। किंतु निश्चय ही, प्रति-दावा ग्रहण योग्य नहीं है जब अभिलेख पर लिखित कथन नहीं है। वाद में कोई लिखित कथन दाखिल नहीं किए जाने के कारण नियम 6A के अर्थ के अंतर्गत लिखित कथन में प्रति-दावा स्पष्टतः स्थापित नहीं किया गया था। संशोधन के जरिए ऐसे प्रति-दावा को पुरःस्थापित करने का प्रश्न ही नहीं है; क्योंकि उसमें प्रति-दावा सम्मिलित करने के लिए कोई लिखित कथन उपलब्ध नहीं है। समान रूप से, ''पश्चातवर्ती अभिवचन'' के जरिए प्रति-दावा उठाए जाने का प्रश्न नहीं होगा क्योंकि अभिलेख पर कोई ''पूर्व अभिवचन'' नहीं है। वर्तमान मामले में प्रतिवादी द्वारा किसी लिखित कथन को दाखिल करने में*

विफल रहने और इसे दाखिल करने के अधिकार को समपहृत हो जाने के कारण विचारण न्यायालय प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा दाखिल प्रतिदावा को ग्रहण नहीं करने में पूरी तरह न्यायोचित था। विलंबित प्रतिदावा दाखिल करने की अनुमति देने से न्यायालय का इनकार प्रतिवादी पर प्रतिकूलता कारित नहीं कर सकता है क्योंकि प्रतिदावा को ग्रहण करने से इनकार कर दिए जाने के बावजूद प्रतिदावा के लिए वाद हेतुक पर आधारित स्वयं अपना वाद दाखिल करने की स्वतंत्रता उसे सदैव है।''

दूसरा निर्णय **गायत्री महिला कल्याण संघ बनाम गोरम्मा एवं एक अन्य, [(2011)2 Supreme Court Cases 330,** पैराग्राफ 41 से 45] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हाल फिलहाल के निर्णय पर विश्वास किया गया है जिसके पैराग्राफ 42 के उद्धरण को नीचे उद्धृत किया जाता है:

''ऐसी परिस्थितियों में हम उच्च न्यायालय के इन निष्कर्षों को स्वीकार करने में अक्षम हैं कि प्रत्यर्थीगण के प्रतिदावा को अस्वीकार करने में विचारण न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया स्वविवेक किसी भी तरीके से अवैध अथवा मनमाना था। हम यहाँ रोहित सिंह में इस न्यायालय के संप्रेक्षणों को ध्यान में ले सकते हैं जो निम्नलिखित हैः-

''18. .....निःसंदेह, प्रतिदावा लिखित कथन दाखिल किए जाने के बाद भी दाखिल किया जा सकता था किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि विवाद्यकों को विरचित कर लेने और साक्ष्य को बंद कर दिए जाने के बाद भी प्रति दावा को उठाया जा सकता है। अतः, विचारण के लिए विवाद्यकों को विरचित कर लिए जाने के बाद विचारण न्यायालय द्वारा (प्रत्यर्थीगण) 3 से 17 के प्रतिदावा को ग्रहण करना स्पष्टतः अवैध और अधिकारितावहीन था।''

ये संप्रेक्षण दर्शाएँगे कि विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिदावा की खारिजी न तो अवैध और न ही अधिकारितावहीन है। वस्तुतः उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश पूर्वोक्त संप्रेक्षणों के स्पष्टतः विपरीत होगा। पूर्वोक्त मामले में, यह न्यायालय वैसी स्थिति पर विचार कर रहा था जहाँ साक्ष्य बन्द कर दिया गया था, प्रत्यर्थीगण की ओर से तर्क समाप्त हो चुका था, अपीलार्थीगण के तर्कों के लिए वाद स्थगित कर दिया गया था और वाद को व्यतिक्रम के लिए खारिज कर दिया गया था। बाद में, इसे पुनर्स्थापित किया गया था। तत्पश्चात, लिखित कथन में संशोधन के लिए प्रत्यर्थीगण ने आवेदन दाखिल किया। मध्यक्षेपी द्वारा प्रति-दावा दाखिल किया गया था। इन परिस्थितियों में, यह संप्रेक्षित किया गया था कि इस चरण पर कोई प्रतिदावा ग्रहण नहीं किया जा सकता था।''

श्री प्रसाद ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI, नियम 22 के प्रावधान पर भी जोर दिया है। उनका निवेदन यह है कि यद्यपि अपील के चरण पर आपत्ति उठाए जाने की गुंजाइश है किंतु ऐसे मामले में नहीं जहाँ प्रतिवादी ने विचारण के दौरान लिखित कथन दाखिल करने की तकलीफ नहीं उठायी है।

16. मैंने अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है। दो प्रश्न जो अपील के चरण पर विचारार्थ उद्भूत हुए हैं कि क्या प्रत्यर्थीगण 5, 6 और 7 के कहने पर दाखिल किये गये प्रतिदावे को ग्रहण किया जाना चाहिए अथवा नहीं? चुनौती के दो आधार हैं: (i) परिसीमा के प्रश्न पर और कि क्या अपील, जिसे वर्ष 1993 में दाखिल किया गया था और दिनांक 1 फरवरी, 1996 को नोटिस तामील किया गया था के विरुद्ध अक्टूबर, 2004 में दाखिल प्रति-दावा को इतने विलंबित चरण पर ग्रहण किया जा सकता है। विलम्ब की माफी के लिए प्रार्थना अनुज्ञात की जानी चाहिए या नहीं; और (ii) चूँकि प्रतिवादीगण ने विचारण के दौरान लिखित कथन दाखिल करना नहीं चुना था और संपत्ति सं॰ 1, 2, 3 और 5 के संबंध में वाद डिक्री किया गया है, क्या प्रतिवादीगण

सं॰ 5, 6 और 7 को ऐसे विलंबित चरण पर अपना प्रतिदावा दाखिल करने की अनुमति दी जा सकती है?

17. प्रतिदावा के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय बिल्कुल स्पष्ट है कि सामान्यत: प्रतिदावा को अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए यदि यह लिखित कथन में अंतर्विष्ट नहीं है और विशेषत: जब विवाद्यकों को विरचित कर लिया गया है, विचारण के उस चरण पर प्रतिदावा दाखिल किया जाना विवादित प्रश्नों की नयी श्रृंखला को जन्म देगा। वर्तमान मामले में, स्वीकृत रूप से कतिपय संपत्तियों के संबंध में वाद डिक्री किया गया है और अन्य संपत्तियों के संबंध में अपील दाखिल किया गया है, अपीलार्थीगण के पक्ष में प्रदान की गयी डिक्री के संबंध में कोई प्रति अपील दाखिल नहीं की गयी है। प्रतिवादीगण, जिन्होंने आराम से बैठना चुना और वाद का प्रतिवाद नहीं किया, अपीलीय चरण पर प्रतिदावा दाखिल करने के लिए अचानक जाग उठे हैं और वह भी अपील दाखिल किए जाने के लंबे अरसे बाद। प्रति-दावा में जो भी प्रश्न उठाए गए हैं, वे नए साक्ष्य की अपेक्षा करते हैं और नए प्रश्नों को जन्म देंगे जिसकी अनुमति विधि में नहीं दी जा सकती है। **रोहित सिंह बनाम बिहार राज्य (झारखंड), (AIR 2007 Supreme Court 10)** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि विवाद्यकों को विरचित कर लिए जाने और साक्ष्य को बन्द कर दिए जाने के बाद प्रति-दावा ग्रहण नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, वर्तमान मामले में, प्रथम अपील में प्रतिवाद करते हुए प्रत्यर्थीगण-प्रतिवादीगण प्रतिदावा के साथ आगे आए हैं, स्पष्टत: कोई लिखित कथन दाखिल नहीं किया गया था, अत: यह ऐसा है मानो प्रतिवादीगण को पहली बार अपील में वाद पत्र में लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति दी जा रही है जो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII, नियम 6A की योजना को पूरी तरह दरकिनार कर देती है। नि:संदेह न्यायालय को विलंबित रूप से लिखित कथन दाखिल करने की अनुमति देने का स्वविवेक है और अनुमति देने के लिए मुजरा अथवा प्रतिदावा की प्रकृति में अभिवचन अंतर्विष्ट करने वाले इस स्वविवेक का प्रयोग युक्तियुक्त समय के भीतर किया जाना चाहिए और अपना प्रतिदावा ग्रहण करवाए जाने के लिए अनुतोष का दावा करने वाले व्यक्तियों द्वारा सामने लाए गए तथ्यों और परिस्थितियों को इतना स्पष्ट और मुखर होना होगा कि जो बताए कि अपने नियंत्रण के परे कारणों से पक्षगण अपना लिखित कथन दाखिल करने में अक्षम रहे थे और प्रत्येक परिस्थिति को प्रकाशमान करना होगा जिन्होंने उन्हें पहले लिखित कथन दाखिल करने से रोका था। प्रतिदावा करने का अधिकार सांविधिक अधिकार है और केवल अत्यन्त आपवादिक मामलों में बाद के चरण पर प्रतिवाद दाखिल करने की अनुमति की जा सकती है, किन्तु किसी भी परिस्थिति में, अपील, जो 17 वर्षों से अधिक से लंबित है, के चरण पर बिल्कुल नहीं। यह स्थापित अथवा प्रदर्शित नहीं किया गया है कि विलंबित प्रति-दावा ग्रहण करने से न्यायालय का इनकार उन पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा क्योंकि वे आज की तिथि तक पूर्णत: अनजान थे। अभी तक प्रतिवादीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया कि प्रत्यर्थीगण को कार्यवाही में भाग लेने से मना नहीं किया जा सकता है, का संबंध है, प्रति-दावा ग्रहण करने से इनकार कार्यवाही में भाग लेने से इनकार की कोटि में नहीं आएगा। प्रत्यर्थीगण-प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के निवेदन ये हैं कि वे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI, नियम 33 के अधीन डिक्री को और अपील के चरण पर निष्कर्षों को चुनौती देने के हकदार हैं और यह विवादित नहीं है। उन्हें पक्ष के रूप में पेश किया गया है और वे पूरी तरह से कार्यवाही में भाग ले सकते हैं किंतु यह इस चरण पर अपीलार्थी के विरुद्ध प्रति-दावा को अभिलेख पर लाने का हकदार उन्हें नहीं बनाएगा। प्रति-दावा को आवश्यकत: लिखित कथन में स्थान देना होगा, जब एक बार लिखित कथन दाखिल करने का अधिकार प्रतिवादी द्वारा खो दिया जाता है अथवा प्रतिवाद करने के लिए सीमित समय का अवसान हो गया है, तब न तो अधिकार के रूप में लिखित कथन दाखिल किया जा सकता है और न ही प्रतिदावा उठाने की अनुमति दी जा सकती है।

18. इन परिस्थितियों में, वर्तमान अपील में प्रति-दावा की पोषणीयता के संबंध में उठायी गयी आपत्तियाँ पूर्णत: न्यायोचित है और इसलिए मेरा दृष्टिकोण है कि इस चरण पर प्रति-दावा ग्रहण नहीं किया जा सकता है और यह खारिज किए जाने का दायी है।

19. जहाँ तक परिसीमा के संबंध में आपत्ति का संबंध है, यह एक अतिरिक्त कारक है, जिसे बताना आवश्यक नहीं है, कि विलंब आठ वर्षों से अधिक का है और इसे ऐसे मामले के रूप में नहीं माना जा सकता है जहाँ इसे हल्के रूप से स्वीकार किया जा सकता है। प्रतिवादीगण ने कतिपय उलझनों से बच निकलने का प्रयास किया है जब झूठे प्राख्यान के संबंध में अपीलार्थी के कहने पर इन्हें इंगित किया गया था। मेरे दृष्टिकोण में, विलम्ब की माफी के लिए दिए गए स्पष्टीकरण की शुद्धता अथवा अशुद्धता के संबंध में मेरा मत देना समुचित नहीं है, किंतु तथ्य यह है कि भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन अपने आवेदन में आवेदक द्वारा दिए गए कारणों और स्पष्टीकरण से मैं संतुष्ट नहीं हूँ। स्वीकृत रूप से प्रतिवादी सं॰ 6 विचारण के दौरान वादी के गवाह के रूप में उपस्थित हुआ और, इसलिए, वह इनकार नहीं कर सकता है कि उसे वाद के लंबित रहने के बारे में कोई जानकारी नहीं थी किंतु यह अविश्वसनीय है कि वाद वर्ष 1990 से संबंधित है और उसने यह पता करने का परवाह नहीं किया कि वाद में क्या हुआ है जिसमें वह एक पक्ष था और गवाह के रूप में भी उपस्थित हुआ था और लाभार्थियों में से एक है क्योंकि यह बँटवारा वाद था।

20. उक्त कथित कारणों से, दोनों गणनाओं पर प्रति-दावा को अभिलेख पर नहीं लिया जा सकता है। परिसीमा माफ नहीं की जा सकती है क्योंकि स्पष्टीकरण देखते ही संतोषजनक प्रतीत नहीं होता है और पोषणीयता के आधार पर आपत्ति वैध आपत्ति है और इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों और प्रतिपादित सिद्धांतों की दृष्टि में इस चरण पर प्रतिदावा ग्रहण नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है किंतु व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

संतोष कुमार

बनाम

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद के माध्यम से

Cr. Rev. No. 946 of 2010. Decided on 7th April, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 311—गवाहों का परीक्षण–अन्वेषण अधिकारी के प्रति परीक्षण के लिए याची की ओर से दाखिल समय याचिका अस्वीकार कर दी गयी और अभियोजन का साक्ष्य बंद कर दिया गया–याची को अन्वेषण अधिकारी का प्रति-परीक्षण करने के बहुमूल्य अधिकार से वंचित कर दिया गया क्योंकि उसके प्रति-परीक्षण के लिए बचाव को पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था–याची द्वारा किए गए अनुरोध पर विचार करने की आवश्यकता है–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s V. Shivnath, Birendra Kumar, For the Petitioner; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the C.B.I.

आदेश

याची द्वारा वर्तमान दांडिक पुनरीक्षण आर॰ सी॰ 11A/2006(D) में विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी-सह-विशेष दंडाधिकारी, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 24.9.2010 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा अन्वेषण अधिकारी के प्रति परीक्षण के लिए

याची की ओर से दाखिल समय याचिका अस्वीकार कर दी गयी थी और अभियोजन का साक्ष्य बन्द कर दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि इस अभिकथन पर कि पूर्णांक 900 में से 789 अंक प्राप्त करता दर्शाते हुए बिहार इंटरमीडिएट शिक्षा परिषद्, पटना से वर्ष 1995 का इंटरमीडिएट (विज्ञान) का झूठा और बोगस प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके डाक विभाग, राँची सर्किल, राँची में पोस्टल असिस्टेंट के पद पर गैर ईमानदार और कपटपूर्ण तरीके से उसने अपना नियुक्ति पत्र पाया था, सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 420/468/471 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए याची के विरुद्ध प्राथमिकी संस्थापित की गयी थी। सत्यापन में, यह बताया जा सका था कि वर्ष 1998 में जवाहर लाल नेहरु महाविद्यालय डेहरी-ऑन-सोन (बिहार) से उपस्थित होता बिहार इंटरमीडिएट शिक्षा परिषद्, पटना के अभिलेख में एनलिस्टमेंट सं॰ BO-03748, रॉल कोड सं॰ 1514/10230 वाला संतोष कुमार, पुत्र श्री रामपुर राम के नाम का कोई उम्मीदवार नहीं था।

3. याची की शिकायत यह है कि सी॰ बी॰ आई॰ ने समस्त नामित अभियोजन गवाहों को प्रस्तुत किया था और किसी विपिन कुमार सिंह का परीक्षण और प्रति-परीक्षण किया गया था और उसे अ॰ सा॰ 11 के रूप में दिनांक 3.5.2010 को उन्मोचित कर दिया गया था। बाद की तिथियों अर्थात् दिनांक 24.5.2010, 2.7.2010, 21.7.2010 और 26.8.2010 को अभियोजन ने किसी गवाह को प्रस्तुत नहीं किया था। यह कथन किया गया है कि याची के वर्तमान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ सी॰ कुमार को दिनांक 18.9.2010 को या इसके आस-पास सी॰ बी॰ आई॰ के विशेष अभियोजक के रूप में नियुक्त किया गया था, और इसलिए, उन्होंने केवल दिनांक 22.9.2010 को ब्रीफ अपने जूनियर के हवाले कर दिया था। दिनांक 23.9.2010 को, अभियोजन ने अन्वेषण अधिकारी श्री अनिल बिष्ट को प्रस्तुत किया, यद्यपि याची के अधिवक्ता ने एक सप्ताह के लिए अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य के आस्थगन का अनुरोध किया था किंतु न्यायालय ने आश्वासन दिया कि न्यायालय में उसका मुख्य परीक्षण दर्ज किए जाने के बाद, क्योंकि वह दूर के स्थान से आया था, अन्वेषण अधिकारी के प्रति-परीक्षण के लिए उसे स्थगन मिलेगा। याची के जूनियर अधिवक्ता ने अन्वेषण अधिकारी, श्री अनिल बिष्ट के मुख्य परीक्षण में भाग लिया किन्तु मामले को अगली तिथि अर्थात् दिनांक 24.9.2010 के लिए नियत किया गया था, और इसलिए, जूनियर अधिवक्ता किसी वरीय अधिवक्ता को नियुक्त नहीं कर सका था ताकि अन्वेषण अधिकारी का प्रति-परीक्षण तत्परतापूर्वक और सावधानीपूर्वक किया जा सके। विशेष दंडाधिकारी द्वारा दर्ज दिनांक 23.9.2010 के आदेश को संलग्न किया गया है जिसमें यह कथन मात्र किया गया है कि अन्वेषण अधिकारी का प्रति-परीक्षण दिनांक 24.9.2010 तक के लिए आस्थगित कर दिया गया है। जूनियर अधिवक्ता के सलाह के मुताबिक, याची ने अ॰ सा॰ 12 के प्रति-परीक्षण के लिए वकील श्री पी॰ एन॰ मुखर्जी को नियुक्त किया और उनके अनुदेश पर, जूनियर अधिवक्ता ने इस पृष्ठभूमि में अन्वेषण अधिकारी के प्रति-परीक्षण को मुल्तवी करने के लिए दिनांक 24.9.2010 को समय याचिका दाखिल किया और याची स्थगन व्यय का भुगतान करने के लिए तैयार था किंतु दिनांक 24.9.2010 के आक्षेपित आदेश द्वारा इसे खारिज कर दिया गया और इस तरीके से, याची को अन्वेषण अधिकारी जैसे महत्वपूर्ण गवाह का प्रति-परीक्षण के बहुमूल्य अधिकार से वंचित कर दिया गया और इससे उसके बचाव पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। विद्वान सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी-सह-विशेष दंडाधिकारी ने संप्रेक्षित किया कि समय याचिका, जिसे तिथि स्थगित करने के लिए दाखिल किया गया था, केवल न्याय को प्रभावित करने के आशय के साथ दाखिल की गयी थी।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ शिवनाथ ने निवेदन किया कि विगत चार तिथियों से अभियोजन द्वारा कोई गवाह प्रस्तुत नहीं किया जा रहा था और अचानक, दिनांक

23.9.2010 को अन्वेषण अधिकारी की उपस्थिति दाखिल की गयी थी और उस समय तक, याची के वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ सी॰ कुमार को सी॰ बी॰ आई॰ का विशेष अभियोजक नियुक्त कर दिया गया था और इसलिए उन्होंने ब्रीफ अपने जूनियर को दे दिया था जो किसी अन्य अधिवक्ता की व्यवस्था करने में सफल नहीं हो सका था और यह याची के नियंत्रण के परे था किंतु विद्वान न्यायालय ने इस पहलू को विचार में लिए बिना समय याचिका को इस उपधारणा पर खारिज कर दिया था, जिसे याची द्वारा दिनांक 24.9.2010 को दाखिल किया गया था, कि याची स्थगन लेकर न्याय प्रक्रिया को प्रभावित करना चाहता था। याची नियमित रूप से विशेष दंडाधिकारी के समक्ष उपस्थित था किंतु इस पहलू को भी अनदेखा कर दिया गया था क्योंकि उसे अन्वेषण अधिकारी जैसे महत्वपूर्ण गवाह का प्रति परीक्षण करने के बहुमूल्य अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

5. अंत में, विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ शिवनाथ ने निवेदन किया कि अन्वेषण अधिकारी अथवा अभियोजन की ओर से प्रस्तुत किसी अन्य गवाह का प्रति-परीक्षण करने के लिए समय सीमा देकर याची को अवसर दिया जाना चाहिए।

6. सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री मो॰ मुख्तार खान ने निवेदन किया कि अभियोजन के ईमानदार प्रयासों के बाद, अन्वेषण अधिकारी लंबे समय बाद दूर के स्थान से विचारण दंडाधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ और याची के अधिवक्ता को अगली तिथि दिनांक 24.9.2010 को अन्वेषण अधिकारी का प्रति-परीक्षण करने की अनुमति दी गयी थी। जब मामला दिनांक 24.9.2010 को सुनवाई के लिए लाया गया था, याची-अभियुक्त की ओर से समय याचिका दाखिल की गयी थी जिसे तर्कों पर आधारित विस्तृत आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। किंतु, श्री खान ने निवेदन किया कि यदि न्यायालय याची की याचिका को अनुज्ञात करने का इच्छुक है, साक्ष्य के लिए समय सीमा दी जा सकती है ताकि समय पर अन्वेषण अधिकारी को समन किया जा सके।

7. इन तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं याची द्वारा दिए गए तर्कों में सार पाता हूँ कि उसे अन्वेषण अधिकारी का प्रति परीक्षण करने के बहुमूल्य अधिकार से वंचित कर दिया गया है क्योंकि उसके प्रति-परीक्षण के लिए बचाव पक्ष को पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था। दिनांक 23.9.2010 को अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण किया गया था और प्रति परीक्षण के लिए दिनांक 24.9.2010 नियत किया गया था किंतु उस दिन पर समय याचिका में दिए गए आधार पर उसका प्रति-परीक्षण नहीं किया जा सका था कि वह प्रति-परीक्षण के लिए किसी अन्य अधिवक्ता को तैयार नहीं कर सका था क्योंकि वरीय अधिवक्ता, जो याची के मामले की वकालत कर रहे थे, को सरकार द्वारा सी॰ बी॰ आई॰ का विशेष अभियोजक नियुक्त किया गया था और उन्होंने तब ब्रीफ लौटा दिया था। मैं पाता हूँ कि इस दांडिक पुनरीक्षण में याची द्वारा किए गए अनुरोध पर विचार करने की आवश्यकता है। तद्नुसार, याची द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति की प्रस्तुति पर अथवा इस न्यायालय द्वारा फैक्स के माध्यम से संसूचना पर जो भी पहले हो, इस आदेश की प्राप्ति के चार सप्ताह के भीतर तिथि तय करने ताकि अन्वेषण अधिकारी समन पाने पर प्रति परीक्षण के लिए उपस्थित हो सकें, का निर्देश सब डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी-सह-विशेष दंडाधिकारी, सी॰ बी॰ आई॰, धनबाद को देते हुए दिनांक 24.9.2010 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

8. इन संप्रेक्षणों के साथ, यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

चंद्रिका देवी

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 3575 of 2003. Decided on 5th April, 2011.

भूमि विधियाँ—बेदखली—याची के विरूद्ध प्रभारी अधिकारी द्वारा पारित भूमि से बेदखली का आदेश अपास्त किया गया—जब प्रश्नगत भूमि के आधा के व्यवस्थापन एवं कब्जा से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य है जिसे बाद में वर्तमान सर्वे व्यवस्थापन ऑपरेशन के खानापूरी चरण दौरान भी पाया गया था, अन्यथा दर्शाने वाले किसी तर्कपूर्ण सामग्री की अनुपस्थिति में याची प्रतिवाद नहीं कर सकता है कि इस पर कार्रवाई नहीं की गयी थी—भूमि जिस पर प्रत्यर्थीगण काबिज है का वर्णन चार्ज अधिकारी और डिविजनल कमिश्नर के आदेशों में है—आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं–आवेदन खारिज। (पैराएँ 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.–M/s. S.N.P. Singh, Arvind Kumar Choudhary, For the Petitioner; Mr. R.A. Gupta, For the State; Mr. Manjul Prasad, For the Respondents 5 to 8.

आदेश

यह रिट आवेदन कमिश्नर, संथाल परगना डिविजन, दुमका द्वारा पारित परिशिष्ट 5 में अंतर्विष्ट दिनांक 8.1.2003 के आदेश के विरूद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा याची के विरूद्ध चार्ज अधिकारी द्वारा पारित प्रश्नगत भूमि से बेदखली का आदेश (परिशिष्ट-4) अपास्त कर दिया गया था।

2. याची की ओर से दिए गए निवेदन पर ध्यान देने से पहले, अभिलेख से सामने आते मामले के तथ्यों को ध्यान में लेना आवश्यक है।

3. यह प्रतीत होता है कि गांटजर सर्वे व्यवस्थापन अधिकार अभिलेख में, मौजा पिरहामों के अनेक भूखंडों से गठित 9.93 एकड़ क्षेत्र के मापवाला जमाबंदी सं॰ 3 की भूमि मोस्मात अलखी अहरिन और सिबन अहरी के नामों में दर्ज की गयी थी। चूँकि पूर्वोक्त अभिलिखित अभिधारियों ने किराया का भुगतान करने में व्यतिक्रम किया था, मौजा के तत्कालीन मूल रैयत मिसरी चौधरी द्वारा किराया निष्पादन केस सं॰ 1060 वर्ष 1934 लाया गया था, जिसे उक्त मिसरी चौधरी के पक्ष में डिक्री किया गया था। तत्पश्चात्, कब्जा पुनः पाने के लिए अनुमंडलाधिकारी के न्यायालय, देवघर में रैयती निष्पादन केस सं॰ 43 वर्ष 1935-36 दाखिल किया गया था। राजस्व प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के फलस्वरूप अभिलिखित अभिधारियों को जमाबंदी सं॰ 3 के 9.93 एकड़ के संपूर्ण क्षेत्र से बेदखल कर दिया गया था। बाद में सिबन अहरी (अभिलिखित अभिधारियों में से एक) की विधवा मोस्मात अंछी अहरिन के कहने पर आवेदन दाखिल किया गया था जिसमें कथन किया गया था कि लारू अहरी की विधवा मोस्मात अल्खी अहरिन गाँव छोड़कर चली गयी है। ऐसे प्राख्यान पर, जमाबंदी सं॰ 3 की भूमि का आधा भाग व्यवस्थापित करने के लिए प्रार्थना की गयी थी। तद्नुसार, जमाबंदी सं॰ 3 के भूमि के आधा भाग के संबंध में मोस्मात अंछी अहरिन के पक्ष में व्यवस्थापन पुनर्स्थापित किया गया था जबकि उक्त जमाबंदी की भूमि का शेष आधा भाग मूल रैयत के सह-अंशधारी धनुषधारी चौधरी, जो प्रत्यर्थी सं॰ 5 से 8 तक का पिता है, के साथ व्यवस्थापित किया गया था। उसपर, न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से दिनांक 5.10.1936 को धनुषधारी

चौधरी को व्यवस्थापित भूमि का कब्जा दिया गया था। न्यायालय अमीन द्वारा प्रस्तुत कब्जा देने से संबंधित रिपोर्ट उक्त किराया बेदखली केस सं० 43 वर्ष 1935-36 में अनुमंडलाधिकारी, देवघर द्वारा संपुष्ट किया गया था।

4. प्रत्यर्थीगण का आगे मामला यह है कि वर्तमान सर्वे व्यवस्थापन ऑपरेशन के खानापूरी चरण के दौरान, प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक को पूर्वोक्त भूमि पर काबिज पाया गया था किंतु उनका कब्जा अवैध कब्जा के रूप में दर्ज किया गया था जो बिल्कुल गलत है क्योंकि वे न्यायालय के आदेश के फलस्वरूप काबिज हैं। उस समय पर, भूखंड सं० 668 और 375 पर प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक का कब्जा दर्ज नहीं किया जा सका था किंतु आपत्ति उठाए जाने पर, इस पर कब्जा दर्ज किया गया था। इस चरण पर जब (याची अभिलिखित अभिधारियों में से एक) को ज्ञात हुआ कि प्रत्यर्थीगण ने प्रश्नगत भूमि पर कब्जा दर्ज करवा लिया है, प्रत्यर्थीगण के कब्जा के संबंध में की गयी प्रविष्टि को सही करवाने के लिए तसदीक के चरण पर चार्ज अधिकारी के समक्ष आवेदन दाखिल किया गया था क्योंकि प्रत्यर्थीगण भूमि पर कभी नहीं काबिज थे और कब्जा से संबंधित किसी भी दस्तावेज पर कोई कार्रवाई कभी नहीं की गयी थी।

5. ऐसे आवेदन पर, चार्ज अधिकारी ने दिनांक 11.1.1999 के अपने आदेश के तहत राजस्व अभिलेख में शुद्धिकरण से संबंधित आदेश पारित करने के बजाय, जमाबंदी सं० 3 की भूमि के आधा से, जिस पर प्रत्यर्थीगण का कब्जा दर्ज किया गया था, प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक की बेदखली का आदेश इस आधार पर पारित किया कि यद्यपि जमाबंदी सं० 3 की भूमि के आधा के उपर कब्जा दर्ज किया गया है किंतु उक्त दस्तावेज भूखंड संख्या, खेसरा संख्या अथवा दाग संख्या को निर्दिष्ट नहीं करता है।

6. उस आदेश से व्यथित होकर वर्तमान प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक ने पुनरीक्षण अर्थात आर० एम० आर० सं० 104 वर्ष 1999-2000 दाखिल किया जिसके द्वारा कमिश्नर ने यह दर्ज करने के बाद कि जमाबंदी सं० 3 की भूमि का आधा प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक के पिता के पक्ष में व्यवस्थापित किया गया था और इसका कब्जा भी दिया गया था, चार्ज अधिकारी द्वारा पारित आदेश अपास्त कर दिया और आदेश पारित किया कि प्रश्नगत भूमि प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक के नाम में दर्ज की जाए जो स्व० धनुषधारी चौधरी के विधिक उत्तराधिकारी हैं।

इस आदेश के विरुद्ध, वर्तमान रिट आवेदन दाखिल किया गया है।

7. याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस० एन० पी० सिंह ने कमिश्नर द्वारा पारित आदेश का विरोध करने के लिए यह निवेदन किया कि जमाबंदी सं० 3 की भूमि के आधा भाग के ऊपर प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक के कब्जा से संबंधित दस्तावेज, यदि हो, पर कोई कार्रवाई कभी नहीं की गयी थी और इस पर कार्रवाई की नहीं जा सकती थी क्योंकि उन दस्तावेजों में भूखंड संख्या अथवा खेसरा संख्या का उल्लेख नहीं किया गया था और कि यदि वे काबिज थे, किराया का भुगतान किया जाता किंतु ऐसी कोई किराया रसीद प्रस्तुत नहीं की गयी है। अत:, आक्षेपित आदेश पारित करने में पुनरीक्षण न्यायालय ने गलती की जो पूर्वोक्त परिस्थिति में खारिज करने योग्य है।

8. इसके विरूद्ध, प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री मंजुल प्रसाद ने निवेदन किया कि पक्षों के मामलों की दृष्टि में कि प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक जमाबंदी सं० 3 की भूमि के आधा भाग के उपर काबिज हैं जब कि याची उक्त जमाबंदी की भूमि के शेष आधा भाग पर काबिज है, भूमि जिस पर प्रत्यर्थी सं० 5 से 8 तक काबिज हैं पहचान योग्य है और इसके अतिरिक्त, उन

भूमि का वर्णन न केवल चार्ज अधिकारी के आदेश बल्कि डिविजनल कमिश्नर के आदेश में भी किया गया है।

9. आगे इंगित किया गया था कि प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज सिद्ध करते हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 से 8 तक के पिता को भूमि व्यवस्थापित करने के बाद कब्जा दिया गया था और कि वर्तमान सर्वे व्यवस्थापन ऑपरेशन के खानापूरी चरण के दौरान याचीगण का कब्जा भी दर्ज किया गया था और इस स्थिति के अधीन, किसी तर्कपूर्ण सामग्री की अनुपस्थिति में, याचीगण का अभिवचन कि कब्जा के दस्तावेजों को प्रभाव कभी नहीं दिया गया था अर्थात् इन पर कार्रवाई नहीं की गयी थी, स्वीकार नहीं किया जा सकता।

10. मैं प्रत्यर्थीगण की ओर से दिए गए निवेदन में बल पाता हूँ। प्रस्तुत दस्तावेजों के संदर्भ में पक्षों के मामला का परीक्षण करने के बाद कमिश्नर इस निष्कर्ष पर आए कि किराया बेदखली केस सं॰ 43 वर्ष 1935-36 में पारित अभिलिखित रैयत की बेदखली के आदेश के बाद सिबन अहरी (अभिलिखित अभिधारियों में से एक) की विधवा मोस्मात अंछी अहरिन के कहने पर दिनांक 24.4.1936 को अनुमंडलाधिकारी के समक्ष आवेदन दाखिल किया गया था जिसमें सूचित किया गया था कि लारू अहरी (अन्य सह अंशधारी) के विधवा मोस्मात अल्खी अहरिन गाँव छोड़ कर चली गयी है और जमाबंदी सं॰ 3 की भूमि के आधा भाग के संबंध में भूमि के व्यवस्थापन की प्रार्थना की गयी थी जिसे अनुज्ञात किया गया था और इसी समय पर, जमाबंदी सं॰ 3 की भूमि का शेष आधा भाग प्रत्यर्थी सं॰ 5 से 8 तक के पिता धनुषधारी चौधरी के साथ व्यवस्थापित किया गया था और दिनांक 5.10.1936 को न्यायालय की प्रक्रिया द्वारा इसका कब्जा दिया गया था जो तथ्य न्यायालय अमीन द्वारा प्रस्तुत कब्जा देने से संबंधित रिपोर्ट से स्पष्ट है जिसे अनुमंडलाधिकारी देवघर द्वारा संपुष्ट किया गया था। अत:, जब जमाबंदी सं॰ 3 की भूमि के आधा भाग के व्यवस्थापन और कब्जा से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य है जिसे बाद में वर्तमान सर्वे व्यवस्थापन ऑपरेशन के खानापूरी चरण के दौरान भी पाया गया था, याची की ओर से किया गया निवेदन कि इस पर कार्रवाई कभी नही की गयी थी, अन्यथा दर्शाने वाले किसी तर्कपूर्ण सामग्री की अनुपस्थिति में कभी नहीं स्वीकार किया जा सकता है और ऐसे तथ्य के कारण भूमि बिल्कुल पहचान योग्य है और वस्तुत: भूमि, जिस पर प्रत्यर्थी सं॰ 5 से 8 तक काबिज है, का वर्णन चार्ज अधिकारी के आदेश में और डिविजनल कमिश्नर के आदेश में भी किया गया है।

11. तद्नुसार, मैं कमिश्नर, देवघर द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ। अत: यह आवेदन गुणागुणरहित होने के कारण एतद् द्वारा अस्वीकार किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

कृष्ण कन्हैया राजहंस

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. M.P. No. 772 of 2008. Decided on 29th March, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 119/217/218/120B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 197 एवं 482—बिहार अभिधारी धृति (अभिलेख का अनुरक्षण) अधिनियम, 1973—छल एवं षडयंत्र–याची (अंचलाधिकारी) द्वारा पारित नामांतरण आदेश को उसकी निजी

हैसियत में अथवा उसके निजी लाभ के लिए दर्ज किया गया माना नहीं जा सकता है–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी अभियोजन के लिए आवश्यक थी–अंचलाधिकारी अपने सिविल न्यायालय के पीठासीन अधिकारी की शक्ति धारण करता है–समन का आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s. Mohit Prakash, Suresh Kumar, Ranjit Kumar, For the Petitioner; Mr. V. K. Prasad, For the State.

आदेश

याची कृष्ण कन्हैया राजहंस ने परिवाद मामला सं॰ C-72 वर्ष 2006 में जो एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, गुमला के समक्ष लंबित है, दिनांक 27.2.2008 के आदेश, जिसके द्वारा विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, गुमला ने याची सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 119/217/218/120B के अधीन प्रथम दृष्टया मामला पाया था, सहित उसकी संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. परिवाद केस सं॰ C-72 वर्ष 2006 में परिवादी ने अभिकथन किया कि उसने किसी जगेश्वर प्रसाद सिंह से दो पृथक विक्रय विलेखों अर्थात् दिनांक 30.5.1953 के 889/53 और दिनांक 24.9.1953 के 1295 वर्ष 1953 विक्रय विलेखों द्वारा मौजा गुमला के 2.70 एकड़ कुल क्षेत्र वाली खाता सं॰ 4, भूखंड संख्या 890 से संबंधित भूमि खरीदा था। खरीदने के बाद उसने नामांतरण के लिए याचिका दाखिल किया जिसे नामांतरण केस सं॰ 78R27/68-69 संख्यांकित किया गया था और इसे अंचल कार्यालय, गुमला में अनुज्ञात किया गया था। परिवादी द्वारा अभिकथित किया गया है कि अन्य भूमि के साथ इस भूमि के लिए किराया रसीदों को उसके पिता के नाम में संयुक्त रूप से जारी किया गया था और जब उसने अंचलाधिकारी, गुमला के समक्ष अपने नाम में पृथक किराया रसीदों के लिए आवेदन दिया, उसने पाया कि याची, जो गुमला का अंचलाधिकारी था, ने अपनी अधिकारिता के परे कार्रवाई करते हुए क्रेता मनोहर कुमार सिंह के साथ साँठ-गाँठ कर उसके पक्ष में नामांतरण अनुज्ञात किया, यद्यपि किराया रसीदें विगत 53 वर्षों से जारी की जा रही थी। इस मामले में विभिन्न अभियुक्तगण को पक्षकार (बनाते हुए तथ्य) का विवरण दिया गया है।

3. अधिवक्ता सुरेश कुमार की सहायता से विद्वान अधिवक्ता, श्री मोहित प्रकाश ने आरंभ में निवेदन किया कि याची स्वीकृत रूप से अंचलाधिकारी है जिसके हस्ताक्षर और मुहर के अधीन समस्त प्रक्रियात्मक नियमों का अनुसरण करते हुए आवेदक के पक्ष में नामांतरण आदेश पारित किया गया था। एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन सक्षम प्राधिकार से मंजूरी प्राप्त किए बिना उसके विरुद्ध समन जारी करने का निर्देश दिया। दिनांक 1.3.2006 को परिवादी द्वारा परिवाद दाखिल किया गया था और तत्पश्चात् उसने याची के दांडिक अभियोजन के लिए संबंधित विभाग से अनुमति इप्सित करते हुए आवेदन दिया। परिवाद के अनुसरण में अपर कलेक्टर, गुमला ने इस संबंध में जाँच किया और जाँच के बाद उन्होंने नहीं पाया था कि याची के विरुद्ध उपयुक्त प्रथम दृष्टया मामला बनता है ताकि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी की अनुशंसा की जाए। किंतु, सलाह दी गयी थी कि परिवादी अपने शिकायतों को दूर करने के लिए सिविल अधिकारिता के सक्षम न्यायालय के समक्ष जा सकता है। अवर सचिव, झारखंड सरकार, राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग ने दिनांक 2.4.2007 के पत्र सं॰ 1300 के तहत अनुदेश के अधीन साफ इनकार कर दिया और संसूचित किया कि अंचलाधिकारी अर्थात् वर्तमान याची के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है। विद्वान अधिवक्ता श्री मोहित कुमार ने निवेदन किया कि याची भारतीय दंड संहिता की धारा 27 के अधीन लोक सेवक और उक्त संहिता की धारा 19 के अधीन

परिभाषित ''न्यायाधीश'' भी था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी आवश्यक थी क्योंकि याची द्वारा पारित नामांतरण आदेश को उसकी निजी हैसियत में अथवा उसके निजी लाभ के लिए दर्ज किया गया नहीं समझा जा सकता है। वस्तुत:, अंचलाधिकारी अपने सिविल न्यायालय में पीठासीन अधिकारी की शक्ति धारण करता है जैसा बिहार अभिधारी धृति (अभिलेख का अनुरक्षण) अधिनियम, 1973 की धारा 25 के अधीन प्रतिष्ठापित है जिसका पठन निम्नलिखित है:—

''इस अधिनियम के अधीन प्राधिकारीगण को सिविल न्यायालय की शक्ति होगी—

''इस अधिनियम के अधीन जाँच करते हुए और कार्यवाही संचालित करते हुए कलेक्टर, भूमि सुधार उप-कलेक्टर, अंचलाधिकारी (xxx) को साक्ष्य ग्रहण करने, किसी व्यक्ति की उपस्थिति समन करने और प्रवर्तित करने और शपथ पर उसका परीक्षण करने, दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए मजबूर करने और व्यय अधिनिर्णीत करने के मामलों में वही शक्तियाँ होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (अधिनियम V वर्ष 1908) के अधीन न्यायालय में निहित है।''

4. अत:, याची को दी गयी ऐसी सुरक्षा की दृष्टि में उसका दांडिक अभियोजन न्याय की हानि की कोटि में आएगा और आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी प्राप्त किए बिना उसके विरुद्ध समन जारी करना निर्देशित किया गया था, अपास्त किया जा सकता है।

5. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं याची की ओर से दिए गए तर्क में सार पाता हूँ कि नामांतरण मामले में याची द्वारा पारित आदेश उसकी निजी हैसियत में अथवा उसके निजी लाभ के लिए पारित अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और कि वह सिविल न्यायालय के पीठासीन अधिकारी की शक्तियाँ धारण करता है जैसा यहाँ ऊपर निर्दिष्ट अधिनियम की धारा 25 के अधीन परिभाषित किया गया है। अत:, मैं पाता हूँ कि एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, गुमला ने अपना न्यायिक विवेक इस्तेमाल किए बिना और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन मंजूरी प्राप्त किए बिना याची के विरुद्ध समन जारी करना निर्देशित किया जिसे विधि के अधीन संपोषित नहीं किया जा सकता है। इसमें गुणागुण प्रतीत होता है, तद्नुसार याचिका अनुज्ञात की जाती है और एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, गुमला के समक्ष लंबित C-72 वर्ष 2006 में याचीगण कृष्ण कन्हैया राजहंस के विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित दिनांक 27.2.2008 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

मिथिलेश कुमार

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. M.P. No. 158 of 2011. Decided on 15th April, 2011.

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988—धारा 7/13(2) सह-पठित धाराएँ 13(1)(d) एवं 19—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—अवैध परितोषण–संज्ञान–अवैध पारितोषण को स्वीकार करते हुए याची को गिरफ्तार किया गया था–सक्षम प्राधिकारी द्वारा अभियोजन की मंजूरी प्रदान की गयी–मंजूरी आदेश में कोई अवैधता नहीं है–अवैध परितोषण स्वीकार किए जाने के संबंध में याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री है–संज्ञान लेने वाले आदेश में कोई अवैधता नहीं है–आवेदन खारिज। (पैराएँ 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Sujit Narayan Prasad, For the Petitioner; Mr. Nilesh Kumar, For the Vigilance.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–याची ने यह दांडिक विविध याचिका दिनांक 30.12.2010 के मेमो सं॰ 546, I में अंतर्विष्ट आदेश और दिनांक 3.1.2011 के आदेश, जिसके द्वारा निगरानी केस सं॰ 58 वर्ष 2010, विशेष केस सं॰ 75 वर्ष 2010 के तत्सम, के संबंध में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7/13 (2) सह-पठित धारा 13(1)(d) के अधीन अपराध के लिए याची के विरुद्ध श्री बी॰ के॰ खान, विद्वान विशेष न्यायाधीश, निगरानी, राँची के न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है, के अभिखंडन के लिए समुचित आदेश अथवा निर्देश को जारी करवाने के लिए दाखिल की गयी है।

2. याची के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि परिवादी अर्थात् साधु ओराँव द्वारा किए गए अभिकथन के मुताबिक अभियोजन मामला संक्षेप में यह है कि भूमि 40 एकड़ 23 डिसमिल क्षेत्र से गठित है जिसमें से 30 एकड़ भूमि नाथू ओराँव के कब्जे में दी गयी थी और तत्पश्चात नाथू ओराँव और उसके पाँच पुत्र उक्त भूमि पर खेती कर रहे थे और सरकार को किराया का भुगतान किया जा रहा है। पूर्वोक्त भूमि के लिए, एक मामला आरंभ किया गया था जिसमें परिवादी के पक्ष में डिक्री पारित किया गया था और उक्त डिक्री के बाद, उसने विवादित भूमि की मापी और उक्त भूमि का कब्जा देने के लिए संबंधित अंचलाधिकारी, बेरो के समक्ष आवेदन दिया था। समस्त औपचारिकताओं और प्रक्रिया को पूरा करने के बाद अंचलाधिकारी के कार्यालय, बेरो ने मामला व्यवस्थापन अधिकारी, राँची के समक्ष निर्दिष्ट कर दिया है। तत्पश्चात्, उक्त भूमि के व्यवस्थापन के संबंध में परिवादी ने व्यवस्थापन अधिकारी के कार्यालय से संपर्क किया और उस अवसर पर, उसने परिवाद किया है कि श्री बालेश्वर बरायक, व्यवस्थापन प्रभारी-अधिकारी; उसके कार्यालय क्लर्क श्री मिथिलेश कुमार और चपरासी मकसूद अंसारी ने जमीन की मापी करने और इसका कब्जा सौंपने के लिए अवैध पारितोषण के तौर पर 1,50,000/-रुपये की राशि मांगी थी। काफी समझाने पर, वे आदेश पारित किए जाते समय 50,000/-रुपये लेने के लिए तैयार हुए थे और शेष राशि का भुगतान इसके पश्चात किया जाएगा। किंतु उसने कहा है कि वह अवैध पारितोषण का भुगतान करना नहीं चाहता है। अत: उसने निगरानी पुलिस थाना के समक्ष परिवाद किया है।

3. याची के अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि वह निर्दोष है और उसने प्राथमिकी में अभिकथित कोई अपराध नहीं किया है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि याची सरकारी सेवक है और जिला व्यवस्थापन अधिकारी, राँची के कार्यालय में कार्यालय क्लर्क के रूप में कार्यरत है और उसका कैरिअर अकलंकित है। उसे इस मामले में झूठा फँसाया गया है क्योंकि उसने परिवाद के गैरकानूनी कृत्यों में उसके साथ सहयोग नहीं किया है क्योंकि वह अभिलेख के विलेख से किसी बिरसा ओराँव का नाम काटने के लिए कह रहा था जो परिवादी द्वारा उसके विरुद्ध परिवाद दाखिल किए जाने का कारण है।

4. याची के अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि मंजूरी आदेश सक्षम प्राधिकारी (उप कमिश्नर सह-व्यवस्थापन अधिकारी, राँची) द्वारा नहीं दिया गया है क्योंकि उसी प्राधिकारी, जिसने मंजूरी आदेश पारित किया है, ने अपने दिनांक 30.12.2010 के पत्र सं॰ 2797 (ii)/Law में उल्लिखित किया है वह नियुक्ति प्राधिकारी नहीं है अथवा याची को सेवा से हटाने के लिए सशक्त प्राधिकारी नहीं है क्योंकि मंजूरी की शक्ति उसमें निहित नहीं की गयी है और अभियोजन एजेन्सी से इसे निदेशक, भूमि अभिलेख और राजस्व विभाग, झारखंड सरकार को रिपोर्ट करने का अनुरोध किया। किंतु आश्चर्यजनक रूप से उसी दिन उसने (उप कमिश्नर-सह-व्यवस्थापन अधिकारी, राँची) ने याची के अभियोजन के लिए मंजूरी आदेश दिया है। दिनांक 30.12.2010 का पत्र याची द्वारा दाखिल पूरक शपथपत्र में परिशिष्ट 5 के रूप में संलग्न

है। आगे इंगित किया गया है कि मंजूरी आदेश, जो मुख्य आवेदन में परिशिष्ट 3 के रूप में संलग्न है, स्पष्टत: दर्शाता है कि उप कमिश्नर-सह-व्यवस्थापन अधिकारी, राँची द्वारा पारित मंजूरी आदेश दिनांक 30.12.2010 का है। अत:, इस मामले में समुचित और सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी आदेश पारित नहीं किया गया है। इस प्रकार, याची के संबंध में मंजूरी आदेश और संज्ञान लेता हुआ आदेश अभिखंडित करने के योग्य है।

5. निगरानी के अधिवक्ता श्री निलेश कुमार ने निवेदन किया है कि यह सत्य है कि उप-कमिश्नर-सह-व्यवस्थापन अधिकारी, राँची ने दिनांक 30.12.2010 के पत्र के तहत मंजूरी की अपनी शक्ति के बारे में जानकारी के लिए अभियोजन प्राधिकारी को पत्र भेजा है। किंतु पहले भी, उप कमिश्नर-सह-व्यवस्थापन अधिकारी, राँची ने इस संबंध में निदेशक, भूमि, अभिलेख और मापन झारखंड, राँची को दिनांक 16.12.2010 को पत्र भेजा था। उक्त पत्र इस याचिका में दाखिल परिशिष्ट A के रूप में प्रति शपथपत्र में संलग्न है। तत्पश्चात, पूर्वोक्त पत्र की दृष्टि में, उपसचिव, भूमि राजस्व सुधार विभाग, झारखंड सरकार, राँची ने दिनांक 28.12.2010 के पत्रांक सं॰ 3981 के तहत उप कमिश्नर-सह-व्यवस्थापन अधिकारी, राँची को सूचित किया कि याची के अभियोजन की मंजूरी देने के लिए वह सक्षम प्राधिकारी है। अत:, उसके द्वारा मंजूरी आदेश जारी किया जा सकता था। दिनांक 28.12.2010 का उक्त पत्र इस याचिका में दाखिल प्रतिशपथपत्र में परिशिष्ट-B के रूप में संलग्न है। चूँकि दिनांक 28.12.2010 का पत्र एक या दूसरे कारण से उप कमिश्नर-सह-व्यवस्थापन अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था, उसने पुन: निदेशक, भूमि, अभिलेख एवं मापन, झारखंड, राँची को पत्र भेजा। किंतु जब दिनांक 28.12.2010 का पत्र उनके समक्ष प्रस्तुत किया गया था, उन्होंने अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्रियों और आवश्यक कागजातों पर विचार करने के बाद उसी तिथि अर्थात दिनांक 30.12.2010 को मंजूरी आदेश पारित किया। अत:, याची के अधिवक्ता द्वारा किया गया अभिवचन कि दिनांक 30.12.2010 को मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने मंजूरी देने के संबंध में उसके अधिकार के बारे में पूछताछ की और उसी दिन उन्होंने याची के संबंध में अभियोजन के लिए मंजूरी आदेश पारित किया है, पूर्णत: गलत है। चूँकि दिनांक 28.12.2010 का पत्र उप कमिश्नर के समक्ष नहीं प्रस्तुत किया गया था, उन्होंने दिनांक 30.12.2010 को एक अन्य पत्र भेजा था किंतु ज्यों ही दिनांक 28.12.2010 का पूर्वोक्त पत्र (परिशिष्ट-B) उनके समक्ष प्रस्तुत किया गया था, उन्होंने पूर्वोक्त मंजूरी आदेश पारित किया था।

6. निगरानी के अधिवक्ता, श्री निलेश कुमार ने आगे निवेदन किया है कि अन्वेषण में यह आया है कि परिवाद की प्राप्ति और सत्यापन के बाद, जाल बिछाया गया था और याची को अवैध पारितोषण/कलंकित धन स्वीकार करते हुए गिरफ्तार किया गया था। अत:, याची के विरुद्ध अग्रसर होने के लिए पर्याप्त सामग्री है।

7. पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार करते हुए और इस मामले के अभिलेख के परिशीलन के बाद, मैं पाती हूँ कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी दी गयी है और मंजूरी आदेश में कोई अवैधता नहीं है। श्री निलेश कुमार ने सही प्रकार से इंगित किया है कि चूँकि उप सचिव, भू-राजस्व सुधार विभाग, झारखंड सरकार, राँची द्वारा भेजा गया दिनांक 28.12.2010 का पत्र सं॰ 3981 उप कमिश्नर के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था और उप-कमिश्नर ने इस संबंध में निदेशक, भूमि, अभिलेख एवं मापन, झारखंड, राँची को दिनांक 30.12.2010 को एक अन्य पत्र भेजा था। किंतु जब दिनांक 28.12.2010 का पूर्वोक्त पत्र उनके समक्ष प्रस्तुत किया गया था, उन्होंने कागजातों का परिशीलन करने और मामले पर विचार करने के बाद याची के संबंध में अभियोजन के लिए मंजूरी आदेश पारित किया। इसके

अतिरिक्त, अवैध परितोषण स्वीकार करने के संबंध में याची के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री है, अत: मैं दिनांक 3.1.2011 के संज्ञान लेने वाले आदेश में कोई अवैधता नहीं पाती हूँ। तद्नुसार यह आवेदन खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

शंभु ठाकुर

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 517 of 2009. Decided on 5th April, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 379/323—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 468 (2) (c) 473 एवं 482—चोरी और उपहति–संज्ञान–परिसीमा–दिनांक 4.9.2003 को आई॰ ओ॰ द्वारा फाइनल फॉर्म दाखिल किया गया किंतु संज्ञान दिनांक 7.7.2008 को लिया गया था–अपराध का संज्ञान लेने में 5 वर्षों के विलंब को माफ करते हुए सी॰ जे॰ एम॰, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 473 की अपेक्षाओं को पूरा करने में विफल रहे–याची के विरुद्ध अपराध का संज्ञान संपोषित नहीं किया जा सकता है। (पैराएँ 5, 6, 8 एवं 9)

अधिवक्तागण.–Mr. S. Thakur, For the Petitioners; Mr. Binod Singh, For the State.

आदेश

याची ने अपने विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही और दिनांक 7.7.2008 के आदेश, जिसके द्वारा चंदनकियारी (भोजूडीह ओ॰ पी॰) पी॰ एस॰ केस सं॰ 53 वर्ष 2003, जी॰ आर॰ केस सं॰ 520 वर्ष 2003 के तत्सम, में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379/323 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस मामले में अंतर्ग्रस्त विधि के संक्षिप्त प्रश्न को उठाया कि आरंभ में मामला सूचक वि॰ प॰ सं॰ 2 ठंडा देव्या के लिखित कथन पर यह अभिकथन करते हुए कि याची ने रात्रि लगभग 3 बजे उसके घर में घुसने के बाद उसका गला दबाते हुए उसपर प्रहार किया और उसके कब्जे से जबरदस्ती 2000/- (दो हजार) रुपया ले लिया और उसके शरीर के विभिन्न अंगों पर भी प्रहार किया, याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 392 के अधीन संस्थापित किया गया था। मामला दिनांक 23.6.2003 को संस्थापित किया गया था किंतु पुलिस ने दिनांक 4.9.2003 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन सी॰ जे॰ एम॰, बोकारो न्यायालय के समक्ष फाइनल फॉर्म दाखिल किया। पुन: दिनांक 4.9.2003 को सूचक के विरुद्ध मामला संस्थापित करने के लिए संबंधित पुलिस द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं 182/211 के अधीन अभियोजन रिपोर्ट दाखिल किया गया था।

3. विद्वान अधिवक्ता, श्री ठाकुर ने इंगित किया कि दिनांक 7.7.2008 के आदेश द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 379/323 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था। यद्यपि सूचक वि॰ प॰ सं॰ 2 को नया नोटिस जारी किया गया था किंतु उसने उपस्थित नहीं होना चुना और आदेश को नीचे उद्धृत किया जाता है:–

> *''केस डायरी, अंतिम रिपोर्ट और केस रिकॉर्ड का परिशीलन किया गया तथा मैं पाता हूँ कि अभियुक्त शंभू ठाकुर के विरुद्ध भा० दं० सं० की धाराओं 379/323 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला बनता है। परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि मामला दिनांक*

24.6.2003 को दर्ज किया गया था और फाइनल रिपोर्ट दिनांक 4.9.2003 को दाखिल किया गया था। न्याय के हित में संज्ञान लेने में विलंब को एतद् द्वारा माफ किया जाता है।

तद्नुसार, इस मामले में अभियुक्त शंभु ठाकुर के विरुद्ध भा० दं० सं० की धाराओं 323/379 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया जाता है और मामला निपटाने के लिए श्री ए० इकबाल, न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो के न्यायालय को अंतरित किया जाता है।''

4. विद्वान अधिवक्ता, श्री ठाकुर ने निवेदन किया कि तीन वर्षों के परे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379 के अधीन अपराध का संज्ञान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 468(2)(C) के अधीन परिसीमा द्वारा वर्जित है। यद्यपि आक्षेपित आदेश में कहा गया है कि विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ ने न्याय के हित में विलंब माफ कर दिया था और पाँच वर्षों बाद संज्ञान लिया था।

5. धारा 473 कतिपय मामलों में परिसीमा की अवधि के स्पष्टीकरण पर विचार करती है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

''इस अध्याय के पूर्ववर्ती उपबंधों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान परिसीमा-काल के अवसान के पश्चात् कर सकता है यदि मामले के तथ्यों या परिस्थितियों से उसका समाधान हो जाता है कि विलम्ब का उचित रूप से स्पष्टीकरण कर दिया गया है या न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है।''

6. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, दिनांक 7.7.2008 के आक्षेपित आदेश को विधि में संपोषित नहीं किया जा सकता है, विद्वान अधिवक्ता श्री ठाकुर ने आगे कहा।

7. दूसरी ओर, राज्य-विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित विद्वान ए॰ पी॰ पी॰, श्री बिनोद सिंह स्वीकार करते हैं कि संबंधित न्यायालय द्वारा लगभग पाँच वर्षों के विलंब को स्पष्ट नहीं किया गया है।

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों को सुनने के बाद, मैं पाता हूँ कि पूर्वोक्त तौर पर विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 473 की अपेक्षाओं को पूरा करने में विफल रहे जबकि अपराध का संज्ञान लेने में लगभग पाँच वर्षों के विलंब को माफ करते हुए, यद्यपि अन्वेषण अधिकारी द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 के अधीन फाइनल फॉर्म काफी पहले दिनांक 4.9.2003 को दाखिल कर दिया गया था किंतु संज्ञान दिनांक 7.7.2008 को लिया गया था।

9. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में याची के विरुद्ध अपराध के संज्ञान को विधि में संपोषित नहीं किया जा सकता है। तद्नुसार, श्री ए॰ इकबाल, न्यायिक दंडाधिकारी, बोकारो अथवा उनके उत्तरजीवी के समक्ष लंबित चंदनकियारी पी॰ एस॰ केस सं॰ 53 वर्ष 2003 में उसकी संपूर्ण दांडिक कार्यवाही सहित याची के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379/323 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने वाले आदेश को अपास्त किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

सिधेश्वर प्रसाद

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. M. P. No. 4443 of 2001. Decided on 1st April, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 379 सह-पठित भारतीय विद्युत अधिनियम, 1910 की धाराएँ 39/44—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—बिजली के तार और स्विच की अभिकथित चोरी—समन जारी—जब याची ने परिवादी को चोरी-छिपे विद्युत उर्जा का उपभोग करते पाया गया था, उसके विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379 और विद्युत अधिनियम की धारा 39/44 के अधीन मामला दर्ज किया गया था—वर्तमान अभियोजन द्वेषभाव से कलंकित है—संपूर्ण परिवाद मामला अभिखंडित—आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.—None, For the Petitioner; None, For the O.P. No. 2; Ms. Lily Sahay, For the State.

आदेश

मामला बुलाए जाने पर याची अथवा वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। किंतु राज्य के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हैं।

2. अभिलेख के परिशीलन पर, मैं वस्तुत पाता हूँ कि जब याची, सहायक विद्युत अभियन्ता, गोड्डा ने विद्युत बोर्ड के अन्य अधिकारियों के साथ दिनांक 18.12.1999 को क्षेत्र में अनेक घरों पर छापा मारा, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 इंद्र बहादुर को चोरी-छिपे विद्युत उर्जा का उपभोग करते हुए पाया गया था और, इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 379 और भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 39/44 के अधीन उसके विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

3. उक्त मामला दर्ज किए जाने के चार दिन बाद, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 परिवादी ने याची और अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध उसमें यह अभिकथन करते हुए पी॰सी॰आर॰ सं॰ 780 वर्ष 1999 का परिवाद मामला दाखिल किया कि याची और अन्य उसके घर आए थे और उसकी संतानों के साथ दुर्व्यवहार किया था और 50 मीटर बिजली का तार, दो स्विच, आदि ले गए थे। उक्त परिवाद की जाँच की गयी थी और जाँच के बाद, न्यायालय ने याची और अन्य के विरूद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 448/379 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला पाया था और तद्द्वारा दिनांक 16.12.2000 के आदेश के तहत समन जारी करने का निर्देश दिया गया था।

4. उस आदेश से व्यथित होकर, याची की ओर से यह आवेदन तत्कालीन मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, गोड्डा द्वारा पी॰ सी॰ आर॰ सं॰ 780 वर्ष 1999, (विचारण सं॰ 713 वर्ष 2001) में पारित दिनांक 16.12.2000 के आदेश जिसके द्वारा समन जारी किया गया था, के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

5. अभिलेख के कोरे परिशीलन पर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा याची के विरूद्ध आरंभ किया गया अभियोजन द्वेषपूर्ण प्रतीत होता है। दिनांक 18.12.1999 को जब इस याची ने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 परिवादी को चोरी-छिपे विद्युत उर्जा को उपभोग करते पाया था, उसके विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 379 और भारतीय विद्युत अधिनियम की धारा 39/44 के अधीन मामला दर्ज किया गया था। उक्त मामला दर्ज किए जाने के चार दिन बाद, परिवादी ने इस अभिकथन पर परिवाद दर्ज किया कि यह याची अन्य अभियुक्तगण के साथ उसके घर आया जहाँ से वह 50 मीटर बिजली का तार ले गया और इसके अतिरिक्त, उसकी संतानों के साथ दुर्व्यवहार किया। अत:, घटनाओं के क्रम से और अभिकथन की प्रकृति से यह आसानी से कहा जा सकता है कि वर्तमान अभियोजन द्वेषपूर्ण है।

6. तद्नुसार, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 204 के अधीन जारी दिनांक 16.12.2000 के आदेश सहित पी॰ सी॰ आर॰ सं॰ 780 वर्ष 1999 (टी॰ आर॰ सं॰ 713 वर्ष 2001) वाले परिवाद मामले में समस्त कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

परिमणामस्वरूप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

राकेश कुमार उर्फ राकेश कुमार सिंह एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. M.P. No. 1374 of 2004. Decided on 7th April, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 363/365/34—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—अभिकथित अपहरण—संज्ञान— पीड़ित महिला प्रासंगिक समय पर अपने पति और ससुर की अभिरक्षा में थी और उसे याची द्वारा दूर ले जाया गया था—याची के विरूद्ध संज्ञान लिया गया है और आरोप विरचित किया गया है—प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए सुयोग्य मामला नहीं—पीड़ित वयस्क थी या नहीं, इसे पक्षों की ओर से दिए गए साक्ष्य के आधार पर अच्छी तरह से अभिनिश्चित किया जा सकता है—याचिका खारिज। (पैराएँ 4 से 7)

अधिवक्तागण.—Mr. Sujit Narayan Prasad, For the Petitioner(s); A.P.P., For the State; Mr. Mohan Kumar Dubey, For the O.P. No. 2.

आदेश

याचीगण ने लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 67 वर्ष 2002, जी॰ आर॰ सं॰ 1521 वर्ष 2002 के तत्सम, के संबंध में प्राथमिकी के साथ समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लिया है।

2. आरंभिक चरण पर इस न्यायालय के दिनांक 18.5.2005 के आदेश द्वारा वि॰प॰ सं॰ 2 को नोटिस जारी करके उक्त मामले में आगे की कार्यवाही स्थगित कर दी गयी थी। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 इस मामले में उपस्थित हुआ और प्रति शपथ पत्र दाखिल किया किंतु विपक्षी पक्षकार सं॰ 3, जो मामले का सूचक है, उपस्थित नहीं हुआ था।

3. संक्षेप में अभियोजन विवरण यह है कि वि॰ प॰ सं॰ 3 (सूचक) ने लालपुर पुलिस थाना के समक्ष अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए प्राथमिकी दर्ज किया कि उसने अपने पुत्र मृत्युंजय कुमार सिंह का विवाह वि॰ प॰ सं॰ 2 विनीता कुमारी के साथ दिनांक 9.3.2002 को किया था। दिनांक 15.5.2002 को उसका पुत्र मृत्युंजय कुमार सिंह अपनी पत्नी विनीता को बी॰ ए॰ भाग-II की परीक्षा का फार्म भरने के लिए महिला महाविद्यालय, राँची ले गया जहाँ उसने अभियुक्त राकेश कुमार, पुत्र महेश सिंह, इंद्रपुरी रोड नं॰ 10 को पहले से खड़ा पाया। राकेश कुमार ने विनीता का फॉर्म भरने में मदद देने का अनुरोध मृत्युंजय कुमार सिंह से किया और उसकी मदद से उसका फॉर्म भरवाया और मृत्युंजय कुमार सिंह से अपने घर चले जाने को कहा। राकेश कुमार को मृत्युंजय कुमार सिंह पहले से जानता था क्योंकि वह विनीता के घर आता-जाता था। उसके बयान पर विश्वास करके, वह इस धारणा के अधीन अपने घर चला गया कि राकेश कुमार फॉर्म भरवा देगा। घटना प्रात: 7 बजे हुई थी। कुछ समय बाद मृत्युंजय कुमार सिंह महिला महाविद्यालय गया और अपनी पत्नी को खोजा किंतु उसका पता नहीं चला। तब वह अपनी पत्नी के बारे में पूछताछ करने राकेश कुमार के घर गया जहाँ महेश सिंह सहित उसके घर के सभी सदस्यों ने मामले की लीपा-पोती करने का प्रयास किया। इसके बाद भी उसकी बहु विनीता कुमारी का पता नहीं लगाया जा सका था। अत:, सूचक के पास यह विश्वास करने का कारण था कि राकेश कुमार और उसके पिता महेश सिंह द्वारा गलत आशय के साथ उसकी बहु विनीता का अपहरण कर लिया गया था और उसे कहीं बन्द कर दिया गया था। उसे महेश सिंह द्वारा धमकी भी दी गयी थी और इसलिए

मामला संस्थापित किया गया था। सूचक ने आगे कथन किया कि उसकी बहु 7000/- रुपयों से अधिक मूल्य के सोने के गहने पहनी हुई थी। लिखित रिपोर्ट पर, दिनांक 15.5.2002 के अभिकथित अपराध के संबंध में दिनांक 4.6.2002 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 363/365/34 के अधीन मामला दर्ज किया गया था।

4. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि सूचक की बहु का प्रेम प्रसंग याची सं॰ 1 के साथ चल रहा था और दोनों शादी करना चाहते थे और वि॰ प॰ सं॰ 2 विनीता जो उस समय वयस्क थी, याची सं॰ 1 के साथ भाग गयी क्योंकि वह सूचक के पुत्र के साथ अपने विवाह से संतुष्ट नहीं थी क्योंकि उसका विवाह उसकी इच्छा के विरूद्ध उसके साथ कर दिया गया था।

5. विद्धान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याची सं॰ 1 ने वि॰ प॰ सं॰ 2 के साथ भागने के बाद विवाह किया था और उनके विवाह से दो संतानों का जन्म हुआ था और अब वे खुशहाल जीवन बीता रहे हैं। दिनांक 2.9.2004 को सी॰ जे॰ एम॰ के न्यायालय में दाखिल याचिका में वर्तमान वि॰ प॰ सं॰ 2 विनीता ने कथन किया कि उसके ससुर द्वारा संस्थापित प्राथमिकी गलत अभिकथन पर संस्थापित की गयी है। वस्तुतः राकेश कुमार ने उसका अपहरण नहीं किया था बल्कि वह अपनी इच्छा से राकेश कुमार के साथ गयी थी क्योंकि वह उससे प्रेम करती थी और बाद में उसके साथ विवाह किया था। सूचक के पुत्र के साथ उसका विवाह उसकी इच्छा के विरूद्ध हुआ था। उसको एक संतान थी जब याचिका दाखिल की गयी थी।

6. वि॰ प॰ सं॰ 2 विनीता कुमारी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अब उसे याची से कोई शिकायत नहीं है क्योंकि वह उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक रह रही है।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में लेने पर, तथ्य बना रहता है कि क्या वि॰ प॰ सं॰ 2 और याची सं॰ 1 के बीच के विवाह को वैध विवाह माना जा सकता है? विनीता कुमारी, प्रासंगिक समय पर अपने पति और ससुर के अभिरक्षा में थी क्योंकि उस समय वह विवाहित थी और उसे याची सं॰ 1 राकेश कुमार सिंह द्वारा ले जाया गया था। यद्यपि विचारण के क्रम में दिए गए साक्ष्य के अध्यधीन याची सं॰ 2 और याची सं॰ 3 के विरुद्ध कोई प्रथम दृष्टया अभिकथन नहीं बनता है, मैं इस पृष्ठभूमि और यह कि याची के विरूद्ध संज्ञान लिया जा चुका है और आरोप विरचित किया जा चुका है, प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए सुयोग्य मामला नहीं मानता हूँ। प्रश्न जिसका उत्तर दिया जाना अपेक्षित है, तथ्य का वह प्रश्न है कि क्या प्रासंगिक समय पर विनीता वयस्क थी और स्वयं अपना निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र थी जिसका अभिनिश्चय पक्षों द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर अच्छी तरह किया जा सकता है।

इस संप्रेक्षण के साथ यह याचिका खारिज की जाती है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं प्रकाश टटिया, न्यायमूर्ति

राँची नगर निगम, राँची (6499, 3347, 6500 में)

बनाम

भगवती देवी (6499 में)

श्रीमती अलक नंदा अधिकारी (3347 में)

पारस नाथ दूबे (6500 में)

W.P. (C) Nos. 6499, 6500/07 with 3347 of 2005. Decided on 11th April, 2011.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987—धारा 22-C—नगरपालिका कर को चुनौती–कर का अधिरोपण संप्रभुतापूर्ण कृत्य है–अधिनियम, जो कर उद्ग्रहण को प्रवर्तित करने वाला अधिनियम है, की प्रवर्तनीयता पर स्थायी लोक अदालत द्वारा विचार किए जाने को विधिक प्रावधान संभव नहीं बनाते हैं–लोक सुविधा सेवाएँ करों का अधिरोपण सम्मिलित नहीं करती हैं–स्थायी लोक अदालत कर उद्ग्रहण करने में नगर निगम की अधिकारिता में हस्तक्षेप करने में न्यायोचित नहीं था जब पहले ही कर अधिरोपित करने वाले प्रावधानों के वैधता को उच्च न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया है–याचिकाएँ अनुज्ञात। (पैराएँ 4 और 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Ray Rajat Nath, For the Petitioners; M/s J. Dubey, Bhaiya Vishwajeet Kumar, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इन रिट याचिकाओं में, पी॰ एल॰ ए॰ सं॰ 758 वर्ष 2005 एवं अन्य में स्थायी लोक अदालत द्वारा पारित आदेशों को चुनौती दी गयी है। आदेशों, जो चुनौती के अधीन है द्वारा स्थायी लोक अदालत ने आदेश दिया है कि पटना नगर निगम अधिनियम के अधीन राँची नगर निगम द्वारा अधिरोपित कर संपोषित किए जाने के दायी नहीं है क्योंकि मुहल्लों में पानी और अन्य सुविधाओं की कोई नियमित आपूर्ति नहीं है और इसलिए ऐसा कर अधिरोपित नहीं किया जा सकता है।

3. स्थायी लोक अदालत के आदेशों को चुनौती देते हुए, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्राख्यान किया है कि कतिपय विवादों से संबंधित विवाद्यकों को विनिश्चित करने की अधिकारिता को धारा 22-C के अधीन स्पष्ट किया गया है जहाँ विवादों को स्थायी लोक अदालत में ले जाया जा सकता है और स्थायी लोक अदालत उन मामलों को विनिश्चित करेगा। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि धारा 22A के अधीन परिभाषा खंड (b) में दो उपखंड अर्थात् उपखंड (iii) और उपखंड (iv) हैं जिसे त्वरित संदर्भ के लिए यहाँ पर नीचे उत्कथित किया जाता है:–

> *"(iii) किसी स्थापन द्वारा जनता को बिजली, प्रकाश या जल की आपूर्ति; या*
>
> *(iv) लोक संरक्षण अथवा स्वच्छता प्रणाली; अथवा''*

4. इन दोनों खंडों में से कोई भी हस्तक्षेप को अधिकारिता नहीं देगा और आच्छादित नहीं करेगा जैसा कर अधिरोपण के संबंध में स्थायी लोक अदालत द्वारा किया गया है। कर का अधिरोपण संप्रभुतापूर्ण कृत्य है। कर अधिरोपण की वैधता चुनौती के अधीन नहीं है क्योंकि यह अब अनिर्णीत विषय नहीं है चूँकि इसे पहले ही इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2704 वर्ष 1995 में मान्य ठहराया गया है। ऐसी अवस्था होने के चलते, यह प्रश्न कि क्या नगर निगम अधिनियम द्वारा कर का अधिरोपण वैध अभिनिर्धारित किया जा सकता है और क्या इसकी प्रवर्तनीयता को स्थायी लोक अदालत द्वारा निर्णीत किया जा सकता है या नहीं, इस पर केवल धारा 22A में वर्णित यहाँ ऊपर उद्धृत लोक सुविधा सेवाएं उपखंडों (iii) और (iv) की परिभाषाओं के प्रकाश में ही विचार किया जा सकता है।

विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि पूर्वोक्त उपखंड केवल वर्णित विषयों और न कि कर अधिरोपण के संबंध में कथन करते हैं। विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि स्थायी लोक अदालत की अधिकारिता केवल उन मामलों के संबंध में होगी जहां संपत्ति का मूल्य दस लाख रुपयों से अधिक नहीं है। कर अधिरोपण के संबंध में, कर जो उद्ग्रहित और संग्रहित किए जाने का दायी है, के मूल्य

का निर्धारण संभव नहीं है, और इसलिए यह पुनः धारा 22C के परन्तुक के अधीन अधिकारिता विहीन है जहाँ स्थायी लोक अदालत द्वारा संज्ञेय मामलों को वर्णित किया गया है और परन्तुक आगे प्रावधानित करता है कि स्थायी लोक अदालत के पास उन मामलों में अधिकारिता नहीं होगी जहाँ विवादित संपत्ति का मूल्य दस लाख रुपयों से अधिक है।

विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क किया है कि स्थायी लोक अदालत की अधिकारिता ऐसे मामलों के संबंध में है जहाँ दोनों पक्ष परस्पर आदान-प्रदान करके सुलह कर सकते हैं। वर्तमान परिदृश्य में, रिट याचीगण किसी सुलह पर नहीं आ सकते थे क्योंकि नगर निगम द्वारा विपक्षी पक्षकारों को कुछ भी देने का प्रश्न ही नहीं था और चूँकि सुलह के मूल अवयव अनुपस्थित हैं जहाँ रिट याची कुछ भी देने की दशा में नहीं था, सुलह का प्रश्न विवाद्यक में सुलह का प्रश्न ही नहीं होने के कारण स्थायी लोक अदालत द्वारा इसका संज्ञान नहीं लिया जा सकता था। रिट याचीगण ने आगे तर्क किया है कि निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले स्थायी लोक अदालत ने सुलह की संभावना पर विचार नहीं किया है और ऐसा इसलिए हो सकता है कि सुलह का प्रश्न शायद ही विवाद की परिधि और विस्तार के अंतर्गत था और इस संबंध में स्थायी लोक अदालत द्वारा धारा 22C के खंडों (5) और (6) के निबंधनानुसार कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है और मामले के उस दृष्टिकोण में स्थायी लोक अदालत के सदस्यों ने प्रश्नगत विवाद्यक विनिश्चित करने में स्वयं को लगभग अपनिर्देशित किया है।

5. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया कि प्रश्न धारा 22A, B(3) और (4) द्वारा आच्छादित है और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि इसको विनिश्चित करने की अधिकारिता स्थायी लोक अदालत के पास नहीं है। आगे आग्रह किया गया था कि यह कर का प्रश्न है जो कोई सेवा दिए बिना मुहल्लों पर अधिरोपित किया जा रहा है और इसलिए, कर अधिरोपित किए जाने का दायी नहीं है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और किए गए तर्कों पर ध्यानपूर्वक विचार करने पर और सांविधिक प्रावधानों की दृष्टि में भी, हम नहीं देखते हैं कि कोई विधिक प्रावधान किसी अधिनियम जो कर उद्ग्रहण को प्रवर्तित करता अधिनियम है, की प्रवर्तनीयता पर स्थायी लोक अदालत द्वारा विचार किए जाने को संभव बनाता है और जो यह कर सकता है, वह धारा 22 में अंतर्विष्ट है जहाँ पक्षों के बीच का विवाद लोक अदालत के समक्ष लाया जा सकता है। यहाँ, इसे विवाद नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कर संविधि के अधीन उद्गृहीत किया जा रहा है और इसे विवाद के लिए उपलब्ध वाद हेतुक बिल्कुल नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, धारा 22A, B खंड (3) और (4) के अधीन लोकोपयोगी सेवाएँ करों का अधिरोपण सम्मिलित नहीं करती हैं। मामले के उस दृष्टिकोण में, जब कर अधिरोपित करने वाले प्रावधानों की वैधता को पहले ही इस न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया जा चुका था, हम नहीं समझते हैं कि कर उद्गृहीत करने में नगर निगम की अधिकारिता में हस्तक्षेप करने में स्थायी लोक अदालत न्यायोचित था। मामले के उस दृष्टिकोण में, ये रिट याचिकाएं अनुज्ञात करने योग्य है। तद्नुसार, ये तीनों रिट याचिकाएँ [डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 6499 वर्ष 2007; डब्ल्यू० पी० (सी०) 3347 वर्ष 2005 और डब्ल्यू० पी० (सी०) सं० 6500 वर्ष 2007] अनुज्ञात की जाती हैं। स्थायी लोक अदालत द्वारा पी० एल० ए० सं० 759 वर्ष 2005 में पारित दिनांक 24.8.2007 का आदेश, पी० एल० ए० सं० 1 वर्ष 2005 में पारित दिनांक 15.3.2005 का आदेश और पी० एल० ए० सं० 758 वर्ष 2005 में पारित दिनांक 24.8.2007 के आदेश को तद्नुसार अपास्त किया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

मूंगा लाल गुप्ता एवं एक अन्य (257-259 में)

बनाम

हुसैनी महतो एवं अन्य (257 में)

गोपाल चन्द्र वर्मा एवं अन्य (258 में)

अनिल कुमार सिन्हा एवं अन्य (259 में)

Misc. App. Nos. 257, 258, 259 of 2009. Decided on 11th April, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश XLI, नियम 25—मामले का रिमांड–विचारण न्यायालय ने समस्त विवाद्यकों को एक में मिलाकर अपना निर्णय दर्ज किया और प्रत्येक प्रश्न का विश्लेषण किए बिना अंतिम निष्कर्ष पर आया गया था–विरचित विवाद्यक पृथक रूप से विनिश्चित किए जाने का दायी है–किसी एक विवाद्यक को सिद्ध करने के लिए दर्ज साक्ष्य को समस्त विवाद्यकों के संबंध में निष्कर्ष पर आने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता था–रिमांड आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है–अपीलें खारिज। (पैराएँ 12 एवं 13)

निर्णयज विधि.–2004 (3) JCR 624 (Jhr.)—Distinguished.

अधिवक्तागण.–Mr. L. K. Lal.,For the Appellants; M/s Rajeev Ranjan Tiwary & Arbind Kumar Sinha, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान तीनों अपीलें वाद पत्र के साथ संलग्न अनुसूची-A में वर्णित वाद संपत्ति के ऊपर अधिकार, टाइटल और हित की घोषणा के लिए और इस प्रभाव की घोषणा के लिए भी कि प्रतिवादीगण का वाद संपत्ति में कोई अधिकार, टाइटल और हित नहीं है, गोपाल चंद्र वर्मा एवं अन्य प्रतिवादीगण के विरुद्ध वादी मुंगा लाल गुप्ता द्वारा संस्थापित एक ही टाइटल वाद सं॰ 42 वर्ष 1998 से उद्भूत होती है। विचारण न्यायालय के सब जज-I गढ़वा ने दिनांक 29 अप्रैल, 2008 के निर्णय और डिक्री के तहत प्रतिवाद करने वाले प्रतिवादीगण के विरुद्ध वादी के पक्ष में वाद डिक्री किया।

2. विचारण न्यायालय ने सात विवाद्यकों को विरचित किया। वाद डिक्री करते हुए विवाद्यक सं॰ 3, 4, 5, 6 और 8 को साथ-साथ विनिश्चित किया गया था। उक्त निर्णय के विरुद्ध तीन अपीलों को दाखिल किया गया था–अपीलार्थीगण हुसैनी महतो, बलदेव महतो और रामगहन महतो द्वारा टाइटल अपील सं॰ 11 वर्ष 2008, गोपाल चंद्र वर्मा, जय प्रकाश नारायण, सुधीर कुमार वर्मा और प्रद्युमन वर्मा द्वारा टाइटल अपील सं॰ 12 वर्ष 2008; और अनिल कुमार सिन्हा द्वारा टाइटल अपील सं॰ 13 वर्ष 2008 दाखिल किए गए थे। इन अपीलों को एक साथ कर दिया गया था और दिनांक 25 अगस्त, 2009 के निर्णय और 1 सितम्बर, 2009 के डिक्री के तहत जिला न्यायाधीश, गढ़वा द्वारा एक ही निर्णय में विनिश्चित किया गया था। तीनों अपीलों को विभिन्न अपीलार्थीगण द्वारा दाखिल किया है जिन्हें पुनः इस निर्णय द्वारा साथ-साथ विनिश्चित किया जा रहा है।

3. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री एल॰ के॰ लाल और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव रंजन तिवारी, जिनकी सहायता श्री अरविंद कुमार सिन्हा ने किया, को सुना गया।

4. अपीलीय न्यायालय का मत था कि समस्त विवाद्यकों को एक साथ करके न्यायनिर्णीत करने में विचारण न्यायालय गलती पर था, क्योंकि घोषणात्मक वाद में टाइटल के प्रश्न और अन्य संबंधित विवाद्यकों पर पृथक रूप से विस्तारपूर्वक विचार करना होगा और विक्रय विलेख, जो वादीगण के दावा

का आधार था, को इसके समुचित परिप्रेक्ष्य में परीक्षित किया जाना चाहिए था ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि विक्रय विलेख के विक्रेता को क्रेता के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने का टाइटल था जो संपूर्ण वाद का आधार है और टाइटल की श्रृंखला संपूर्ण होनी चाहिए थी, अत:, विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया गया था और अपीलीय न्यायालय के निर्णय में निर्दिष्ट प्रत्येक विवाद्यक पर विधि के अनुरुप नया निर्णय पारित करने के लिए मामला विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया गया था।

5. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री एल० के० लाल ने जिला न्यायाधीश के निर्णय का विरोध करते हुए अनेक प्रश्नों को उठाया है। विद्वान अधिवक्ता की पहली आलोचना यह है कि रिमांड का निर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में ''सी० पी० सी०'') की दृष्टि में विधिक संवीक्षा पर खरा नहीं उतर सकता है। तर्क यह है कि न्यायालय को सी० पी० सी० के आदेश XLI, नियम 25 के अधीन अग्रसर होना चाहिए था। न्यायालय विवाद्यक अथवा विवाद्यकों को विरचित करने और इसे नए विचारण के लिए भेजने और विधि एवं तथ्य के प्रश्नों जिन्हें अपीलीय न्यायालय पक्षों के अधिकारों को तय करने के लिए आवश्यक मानता था, को विनिश्चित करने और यदि आवश्यक हो, तो परिस्थिति के अनुसार अतिरिक्त साक्ष्य लेने का दायी था। नए निर्णय के लिए विचारण न्यायालय के संपूर्ण निर्णय को अपास्त करने के बजाय विनिर्दिष्टत: विरचित विवाद्यक विशेष को वापस भेजा जाना चाहिए था।

6. अगला तर्क इस प्रभाव का है कि अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्य का आकलन किए बिना और कोई निष्कर्ष कि साक्ष्य अपर्याप्त था अथवा विचारण न्यायालय का निर्णय पूरी तरह ओवर हॉल किए जाने लायक है, दर्ज किए बिना पूरे मामले को रिमांड कर दिया है।

7. तीसरा तर्क यह है कि मुकदमा के पक्षों अर्थात् वादीगण और प्रतिवादीगण को विवादग्रस्त प्रश्नों की जानकारी थी और यदि कतिपय विवाद्यकों को विरचित नहीं भी किया गया था, तब अपीलीय न्यायालय को सी० पी० सी० के आदेश XLI, नियम 24 के अधीन अग्रसर होना चाहिए था और विवाद्यकों को विरचित और अपने निष्कर्षों को दर्ज करना चाहिए था। चूँकि साक्ष्य की अपर्याप्तता के संबंध में अपीलीय न्यायालय का कोई निष्कर्ष नहीं है, ऐसे परिस्थिति में, अपीलीय न्यायालय अवर न्यायालय के निर्णय के बावजूद, विवाद्यक को पुनर्निश्चित करते हुए स्वयं निर्णय की उद्घोषणा करने और यदि आवश्यक हो तो विशेषत: वाद को विनिश्चित करने का दायी था। अवर अपीलीय न्यायालय प्रकटत: विचारण न्यायालय के निर्णय पर विचार करने में विफल रहा और रिमांड के बाद विनिश्चित किए जाने वाले प्रश्नों को पहले ही विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया जा चुका था।

8. अंतिम तर्क यह है कि सर्वोच्च न्यायालय और अनेक उच्च न्यायालयों ने बार-बार दोहराया है कि मुकदमा को दीर्घकालीन और लम्बे समय तक चलना नहीं चाहिए और संपूर्ण पुनर्विचारण का निर्देश देने के बजाय स्वयं प्रश्न को विनिश्चित किए जाने का प्रयास किया जाना चाहिए। विद्वान अधिवक्ता ने अपने निर्णय को उदीप्त करने के लिए ताथ्यिक पहलुओं पर जोर दिया है कि प्रदर्श-A अर्थात् जगन महतो, बिरेन महतो और सीता महतो के पक्ष में तिलक धारी महतो द्वारा अभिकथित रूप से निष्पादित किया गया, व्यवस्थापन विलेख/उपहार विलेख से संबंधित तथ्यपरक प्रश्न अपीलीय न्यायालय द्वारा उठाए गए थे। अपीलीय न्यायालय ने जगन महतो, बिरेन महतो और सीता महतो के पक्ष में उपहार विलेख अथवा व्यवस्थापन विलेख, जिससे उन्होंने अपना टाइटल प्राप्त किया, के संबंध में और यदि यह वैध व्यवस्थापन नहीं था, तब विक्रय विलेख निष्पादित करने का पारिणामिक अधिकार और अंत में ऐसे विक्रय विलेख के आधार पर टाइटल की वैधता के सम्बन्ध में अपना संदेह अभिव्यक्त करते हुए निष्कर्ष दर्ज किया अपीलीय न्यायालय ने वादीगण के दावा के संबंध में भी अपना संदेह अभिव्यक्त किया क्योंकि यह प्रतिकूल कब्जा के फलस्वरूप बिहार राज्य के रैयत के रूप में किसी अधिकार के आधार पर नहीं है।

9. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव रंजन तिवारी ने तर्कों को विवादित करते हुए और श्री एल० के० लाल द्वारा उठाए गए प्रश्नों को चुनौती देते हुए निवेदन किया कि रिमांड सी० पी० सी० के आदेश XLI, नियम 24 अथवा नियम 25 के अधीन किया जाना चाहिए था और विचारण न्यायालय के संपूर्ण निर्णय को अभिखंडित नहीं किया जा सकता था। प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि सी० पी० सी० की धारा 107 अपील से संबंधित सामान्य प्रावधानों पर विचार करती है। सी० पी० सी० की धारा 107 का पठन निम्नलिखित है:–

*"107. **अपीलीय न्यायालय की शक्तियां**.–(1) ऐसे शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, जो विहित की जाएं, अपील न्यायालय को यह शक्ति होगी कि वह–*

(a) मामले का अंतिम रूप से अवधारक करे;

(b) मामले का प्रतिप्रेषण करे;

(c) विवाधक विरचित करे और उन्हें विचारण के लिए निर्देशित करें;

(d) अतिरिक्त साक्ष्य ले या ऐसे साक्ष्य का लिया जाना उपेक्षित करें।

(2) पूर्वोक्त के अधीन रहते हुए, अपील न्यायालय को वे ही शक्तियां होंगी और वह जहां तक हो सके उन्हीं कर्तव्यों का पालन करेगा, जो आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालयों में संस्थित वादों के बारे में इस संहिता द्वारा उन्हें प्रदत्त और उन पर अधिरोपित किए गए हैं।"

10. अपीलीय न्यायालय को सी० पी० सी० की धारा 107 (b) के अधीन मामला वापस भेजने की शक्ति है और न कि स्वयं इसे आवश्यकत: विनिश्चित करने अथवा विवाद्यक विरचित करने और केवल उक्त विवाद्यक को पुनर्विचारण के लिए निर्दिष्ट करने की शक्ति है। आगे कथन किया गया है कि वर्तमान मामले में चूँकि अवर अपीलीय न्यायालय ने विचार किया कि तथ्यों का प्रश्न पुनर्न्याय निर्णयन की अपेक्षा करता है और इसलिए केवल एक विवाद्यक वापस भेजने के बजाय, इसने स्पष्टत: कथन किया है कि इस तथ्य की वादीगण के टाइटल की श्रृंखला इसके आरंभिक चरण अर्थात् व्यवस्थापन के चरण से विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने की तिथि तक से पूर्ण है, के संबंध में पृथक विवाद्यक विरचित किया जाना चाहिए था। जब तक टाइटल की श्रृंखला पूर्ण नहीं है, वादी के टाइटल की घोषणा करते हुए वाद डिक्री नहीं किया जा सकता था। वादी अपना दावा सिद्ध करने का दायी था और, इसलिए, अपील को सही प्रकार से रिमांड किया गया है और विचारण न्यायालय के निर्णय को शून्य कर दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि चूँकि तिलक धारी महतो के पक्ष में व्यवस्थापन पर विनिर्दिष्ट रूप से विवाद किया गया है, अत: उत्तराधिकार का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है। उत्तराधिकार की अनुपस्थिति में, तिलक धारी महतो के भतीजे जगन महतो, बिरेन महतो और सीता महतो के पास कोई टाइटल नहीं था और तिलक धारी महतो विवादित संपत्ति को उपहार में नहीं दे सकता था और इसलिए श्रृंखला अपूर्ण थी। इसके अतिरिक्त, यह तर्क भी किया गया है कि वर्तमान मामले में रिमांड आदेश वस्तुत: सी० पी० सी० के आदेश XLI, नियम 23A के अधीन है। वर्तमान मामले में अपीलीय न्यायालय ने आरंभिक बिन्दु पर अपील को नहीं निपटाया है। वस्तुत:, विद्वान जिला न्यायाधीश ने अपील में डिक्री को उलट दिया है और विचारण न्यायालय को पुनर्विचारण का निर्देश दिया है और अपीलीय न्यायालय ने उन्हीं शक्तियों का प्रयोग किया है जो वह सी० पी० सी० के आदेश XLI, नियम 23 के अधीन करता है।

11. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता के तर्कों का उत्तर देते हुए, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने अपना तर्क दोहराया है और विवादित किया है कि यह सी० पी० सी० के आदेश XLI, नियम 23 अथवा 23A के अधीन रिमांड है।

12. पक्षों के अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुनने और अवर अपीलीय न्यायालय के निर्णय के परिशीलन के बाद, यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने समस्त विवाद्यकों को एक साथ मिलाकर अपना निर्णय दर्ज किया और प्रत्येक प्रश्न का विश्लेषण किए बिना अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचा गया था। मामले

के तथ्यों, सामने आते विधिक प्रश्नों और तत्पश्चात वादी की अनुतोष की हकदारी को साथ-साथ लिया गया है और इस पर विचार नहीं किया गया है कि पृथक विवाद्यकों में विरचित प्रश्न स्वतंत्र प्रकृति के हैं। टाइटल और कब्जा की घोषणा का अनुतोष पृथक रूप से विनिश्चित किया जाना था, अत:, टाइटल के प्रश्न पर विचार करते हुए न्यायालय को पृथक रूप से व्यवस्थापन के अधिकार और पारिणामिक विक्रय-विलेख और आरंभिक टाइटल का पता लगाना चाहिए था और तत्पश्चात कब्जा के प्रश्न पर विचार करना चाहिए था क्योंकि अनुतोष टाइटल की घोषणा के साथ-साथ कब्जा की घोषणा के लिए भी था। यदि व्यवस्थापन, जैसा वादीगण द्वारा अभिकथित किया गया है, दो व्यक्तियों अर्थात् अलियर महतो और तिलक धारी महतो के बीच विवादित प्रश्न था, न्यायालय जगन महतो, बिरेन महतो और सीता महतो, जिन्होंने भी वादीगण के विक्रेता के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया था, के पक्ष में तिलकधारी महतो द्वारा उपहार विलेख के संबंध में विनिर्दिष्ट और पृथक निर्णय देने का दायी था। मैं मामले के गुणागुणों पर कोई निष्कर्ष देने का इच्छुक नहीं हूँ किंतु अवर अपीलीय न्यायालय के निर्णय का परीक्षण करते हुए मैं पहुँचे गए निष्कर्षों के साथ सहमत हूँ कि विरचित विवाद्यक और यह प्रश्न भी कि क्या अलियर महतो एवं तिलक धारी महतो के संयुक्त नाम में भूतपूर्व भूस्वामी द्वारा व्यवस्थापन किया गया था और क्या जगन महतो, बिरेन महतो और सीता महतो के पक्ष में तिलक धारी महतो द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख वैध था, पृथक रूप से विनिश्चित किए जाने के दायी हैं और तत्पश्चात् ही विक्रय विलेख निष्पादित करने के अधिकार का प्रश्न और वादीगण के विक्रेता बंसी प्रसाद गुप्ता के पारिणामिक टाइटल को निजी विवाद्यक के रूप में विनिश्चित किया जाना चाहिए था। अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा **गया महतो बनाम लीला देवी एवं अन्य, [2004 (3) JCR 624 (Jhr.)],** मामले में दिए गए निर्णय को उद्धृत किया गया है जो ऐसा मामला है जो किसी निष्कर्ष कि वाद का पुनर्विचारण आवश्यक था, को दर्ज किए बिना मामले के रिमांड पर विचार करता है और, इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सी॰ पी॰ सी॰ के नियम 24 की आज्ञा वैध नहीं थी और आगे कहा गया है कि सामान्यत: सी॰ पी॰ सी॰ के नियम 23A के अधीन रिमांड सही नहीं है। यह निष्कर्ष केवल इस पर आधारित है कि क्योंकि अपीलीय न्यायालय ने विचार किया कि कुछ संबंध में दिए गए विचारण न्यायालय के तर्क गलत थे अथवा साक्ष्य के साथ असंगत थे। वर्तमान मामले की परिस्थिति ऐसी नहीं है। अवर अपीलीय न्यायालय ने संपूर्ण अभिलेख और साक्ष्य का परिशीलन किया है और तत्पश्चात विनिर्दिष्ट कारणों को दर्ज किया कि चूँकि समस्त विवाद्यकों को आपस में जोड़ दिया गया है, इसका परिणाम अनुचित न्याय निर्णयन और टाइटल की श्रृंखला का पता लगाए बिना घोषणा में हुआ है। स्वीकृत रूप से साक्ष्य लेने और विनिर्दिष्ट एवं पृथक निष्कर्ष दर्ज करने के बाद ऐसा किया जाना अपेक्षित है। निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि विचारण न्यायालय ने मामले में अंतर्ग्रस्त विवाद्यक का सावधानीपूर्वक परीक्षण नहीं किया था और अनेक विवाद्यकों को आपस में जोड़ दिया था; जबकि साक्ष्य के आधार पर प्रत्येक विवाद्यक पर पृथक/स्वतंत्र न्यायनिर्णयन की आवश्यकता थी। एक विवाद्यक को सिद्ध करने के लिए दर्ज साक्ष्य को समस्त विवाद्यकों के संबंध में निष्कर्ष पर आने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता था और, इसलिए, रिमांड ऑर्डर सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश XLI, नियम 24 अथवा 25 के अधीन नहीं हैं जैसा विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्राख्यान किया गया है और, मेरे दृष्टिकोण में, वर्तमान मामले में रिमांड ऑर्डर में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

13. ऊपर दिए गए कारणों से, मैं अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में कोई गुणागुण नहीं पाती हूँ। विविध अपील में गुणागुण का अभाव है और, तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है। किंतु व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

14. किंतु, यह स्पष्ट किया जाता है कि विचारण न्यायालय किसी पक्ष को किसी भी अनुचित स्थगन दिए बिना शीघ्रातिशीघ्र कार्यवाही करेगा और अतिरिक्त साक्ष्य देने की अनुमति केवल तब दी जाएगी यदि

यह आवश्यक हो। दोनों पक्षों को समुचित अवसर दिया जाना चाहिए और मामला विचारण न्यायालय द्वारा अवर न्यायालय अभिलेखों की प्राप्ति की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर विनिश्चित कर देना होगा। कार्यालय को आज के दिन से दो सप्ताह के भीतर इस आदेश की प्रति के साथ संपूर्ण अवर न्यायालय अभिलेख को विचारण न्यायालय भेजने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

स्वपन चक्रवर्ती

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 1005 of 2010. Decided on 29th March, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण-पोषण—याची-पति को 7000/-रुपया मासिक भरण-पोषण का भुगतान पत्नी को करने का निर्देश दिया गया—आदेश एकपक्षीय रूप से पारित किया गया—परिवादी धारा 125 के अधीन अपना दावा सिद्ध करने में विफल रही—याची को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया—विधि के अधीन 7000/-रुपयों की राशि संपोषित नहीं की जा सकती है—आक्षेपित आदेश अपास्त—कुटुम्ब न्यायाधीश को नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—Mrs. M. M. Paul, Mrs. M. Palit,. For the Petitioner; Mr. Ravindra Kumar Mehta, For the Opp.party no. 2; A.P.P., For the State.

आदेश

यह दांडिक पुनरीक्षण भरण-पोषण केस सं॰ 155/08 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची द्वारा पारित दिनांक 25.1.2010 के आदेश के विरुद्ध दाखिल किया गया है जिसके द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन आरंभ की गयी कार्यवाही के अधीन याची-पति को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 रीना चक्रवर्ती को 7000/-रु॰ मासिक भरण-पोषण का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

पक्षों के बीच विवाह विवादित नहीं है।

2. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्रीमती पॉल और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से श्री रविन्द्र कुमार मेहता को सुना गया। स्थगन के बावजूद इस दांडिक पुनरीक्षण में कोई प्रति शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया है।

3. विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्रीमती पॉल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में पारित आक्षेपित आदेश का विरोध इस आधार पर किया है कि याची पति भरण-पोषण के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को 7000/- रुपया का भुगतान करने में अक्षम है और उसे अपना मामला रखने का कोई अवसर नहीं दिया गया था और उस पर कोई भी नोटिस कभी तामील नहीं किया गया था। परिवादी-पत्नी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन दावा किया कि याची-पति शिक्षक है और 26000/-रु॰ प्रतिमाह पा रहा था और ट्यूशन से भी 20,000/-रुपया प्रति माह अर्जित करता है जिसके अतिरिक्त वह मकान किराए से भी 20,000/-रुपया कमाता है, किंतु उक्त प्रतिवादों के समर्थन में कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया था।

4. यह उपधारित करते हुए कि परिवादी-पत्नी के प्रतिवाद सत्य हैं, इन्हें सिद्ध किए बिना एक पक्षीय रूप से आदेश पारित किया गया था। परिवादी की जिम्मेवारी थी कि वह अपना मामला सिद्ध करे कि याची समस्त साधनों द्वारा 26000/-रु॰ प्रतिमाह अर्जित कर रहा था। याची-पति ने याचिका के पैराओं 9, 10 और 11 में आय के ऐसे स्रोत का खंडन किया है, कि वह समय के किसी भी बिंदु पर शिक्षक

नहीं था और वह बेरोजगार था और तबला और ढोलक बजाकर सत्संग से प्रतिमाह 4000 रुपयों की समेकित राशि प्राप्त करता था। मैं याची की ओर से दिए गए तर्क से पाता हूँ कि परिवादी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन अपना दावा सिद्ध करने में विफल रही और परिवादी-पत्नी को प्रत्येक माह उसके द्वारा भुगतान की जानेवाली 7000/-रुपयों की नियत राशि विधि के अधीन संपोषित नहीं की जा सकती है। न तो याची-पति को सुनवाई का कोई अवसर दिया गया था और न ही परिवादी पत्नी कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करके अपना मामला सिद्ध करने में सफल रही थी।

5. दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में, भरण पोषण केस सं॰ 155/08 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची द्वारा पारित दिनांक 25.1.2010 का आपेक्षित आदेश अपास्त किया जाता है। प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची को याची-पति और परिवादी-वि॰ प॰ सं॰ 2, यदि वह ऐसा चाहती है, की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

6. यहाँ यह उल्लिखित करना प्रासंगिक है कि यह आदेश प्रधान न्यायाधीश कुटुंब न्यायालय, राँची और दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं की उपस्थिति में पारित किया गया है। अत: तिथि तय करके दो सप्ताह बाद कार्यवाही को पुन: आरंभ किया जा सकता है और याची पति अथवा परिवादी-पत्नी को कोई नया नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

विजय किशोर सहाय

बनाम

झारखंड राज्य आरक्षी उपनिरीक्षक, निगरानी जाँच ब्यूरो, राँची के माध्यम से

Cr. M.P. No. 1280 of 2010. Decided on 24th February, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ, 467, 468, 469, 471, 477A, 409 एवं 120B सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(d), 13(2) एवं 19—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 197 एवं 482—लैंड स्कैम—याची सेवा-निवृत्त सरकारी सेवक है—उनके विरूद्ध संज्ञान लेने के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं है—अपराध में उसकी अंतर्ग्रस्तता के संबंध में याची के विरूद्ध पर्याप्त सामग्री है—प्रासंगिक अवधि के दौरान याची अंचलाधिकारी था—न्यायालय याची के विरूद्ध समस्त दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने का इच्छुक नहीं है—याचिका खारिज। (पैराएँ 8 से 10)

निर्णयज विधि.—AIR 1999 SC 2405—Relied. AIR 2004 SC 2179; (2006)1 SCC 294—Referred.

अधिवक्तागण.—Mr. R. N. Sahay, For the Petitioner; Mr. T. N. Verma, For the Vigilance.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता तथा निगरानी विभाग के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने वर्तमान मामला विशेष न्यायाधीश, निगरानी, राँची द्वारा पारित दिनांक 18.1.2010 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया है, जिसके द्वारा उन्होंने विशेष केस सं॰ 17 वर्ष 2000 में भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 467, 468, 469, 471, 477A, 409, 120B, 109, 423, 424, 201 एवं

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(d) सह-पठित धारा 13(2) के अधीन याची के विरूद्ध संज्ञान लिया है और निगरानी केस सं॰ 30 वर्ष 2000 के संबंध में संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए भी दाखिल किया है।

3. याची के विद्धान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि वर्तमान पटना सदर निगरानी पी॰ एस॰ केस सं॰ 30 वर्ष 2000 दिनांक 13.11.2000 को किसी श्री शिव कुमार झा, आरक्षी उपाधीक्षक-सह-निगरानी, पुलिस थाना प्रभारी, पटना द्वारा याची, जिसे प्राथमिकी में अभियुक्तगण की सूची में क्रमांक (b-3) पर दर्शाया गया है, सहित 30 व्यक्तियों के विरूद्ध दर्ज किया गया था।

करम दयाल ओराँव, आरक्षी उपाधीक्षक, राँची कैम्प पटना द्वारा दाखिल दिनांक 10.11.2000 को पूर्वोक्त सूचना के अनुसार संक्षिप्त मामला यह है कि राँची जमीन घोटाला की जाँच करने के लिए निगरानी जाँच ब्यूरो, पटना में एक जाँच टीम गठित की गयी थी और कॉलम-4 में किए गए अभिकथनों की जाँच करने के लिए उक्त सूचक और पुलिस इंस्पेक्टर सुखदेव पांडे को निर्देश जारी किया गया था। उक्त जाँच में निम्नलिखित तथ्यों का पता लगाया गया था:-

पुनरीक्षण सर्वे खतियान भाग-II का परिशीलन मौजा मशीलांग, थाना सं॰ 176, खाता 263, भूखंड सं॰ 1656 और 1661 में राँची जिला के अंतर्गत नानकुम अंचल के संबंध में किया गया था। यह पाया गया था कि भूखंड सं॰ 1656 क्षेत्र 4.75 एकड़ खेवट सं॰ 2 में ''परती कादिम'' गैरमजरूआ मालिक भूमि है और इसी प्रकार भूखंड सं॰ 1661 क्षेत्र 25.60 एकड़'' 'परती पत्तर गैरमजरूआ मालिक' भूमि है और दोनों भूखंडों के लगान धारक 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया इन काउँसिल' है।

पूर्वोक्त भूखंड सं॰ 1661 का 19.86 एकड़ भूमि आरंभ में बिहार राज्य द्वारा सरकार के तत्कालीन सहायक सचिव श्री वी॰ पी॰ घोष के माध्यम से मेमो सं॰ ए॰/जी॰ एल॰ 335/59/5359 आर॰ दिनांक 24.7.1959 के तहत डॉ॰ एस॰ सी॰ होम, सचिव नेचर क्योर होम, पुराना कमिश्नर कंपाउन्ड, राँची के नाम में व्यवस्थापित किया गया था जिसके लिए कृषि/बागवानी/खेती-बाड़ी के लिए राज्य द्वारा निर्णय लिया गया था तथा अनुमति दी गयी थी और वार्षिक लगान नियत करने के लिए निर्देश जारी किया गया था। पूर्वोक्त लिखित सूचना के अनुसार याची के संबंध में वर्तमान मामले में प्रासंगिक तथ्य ये हैं कि दिनांक 30.3.1960 को खाता सं॰ 263 मौजा माहिलाँग में रैयती बन्दोबस्ती के रूप में खेती के लिए भूखंड सं॰ 1661 क्षेत्र 19.60 एकड़ के संबंध में डॉ॰ एस॰ सी॰ होम के नाम में परवाना जारी किया गया था। उक्त भूमि के संबंध में, नामकुम अंचल कार्यालय में डॉ॰ एस॰ सी॰ होम के नाम में व्यवस्थापन विविध केस सं॰ 5-R-8/64-65 के तहत जमाबन्दी कार्यवाही आरंभ की गयी थी जो सूचना के अनुसार नियम विरूद्ध और अवैध थी। पूर्वोक्त भूखंड सं॰ 1656 क्षेत्रफल 4.75 एकड़ भूमि के संबंध में रैयती व्यवस्थापन के लिए डॉ॰ एस॰ सी॰ होम के नाम में तत्कालीन प्रभारी उप कलेक्टर (भूमि सुधार) सदर, राँची द्वारा सरकार की अनुमति के बिना हुकुमनामा जारी किया गया था। इसे दिनांक 18.8.1972 को तत्कालीन प्रभारी एल॰ आर॰ डी॰ सी॰, सदर राँची के हेड असिस्टेंट ऑफिसर, श्री रामेश्वर नायक द्वारा संपुष्ट भी किया गया था। उक्त अवैध व्यवस्थापन के आधार पर तत्कालीन प्रभारी, एल॰ आर॰ डी॰ सी॰, राँची श्री एस॰ के॰ सिन्हा ने विविध केस सं॰ 59-R-8/71-72 में डॉ॰ एस॰ सी॰ होम के नाम में दिनांक 18.8.1972 को किराया अनुसूची/तालिका जारी किया। उक्त किराया अनुसूची में खाता संख्या गलत रूप से 262 दर्शाया गया था जबकि भूखंड सं॰ 1656 खाता सं॰ 262 के भीतर नहीं आता है।

इस प्रकार से भूखंड सं॰ 1656 में 4.75 एकड़ और भूखंड सं॰ 1661में 19.86 एकड़ अर्थात पूर्वोक्त भूमि का कुल 24.61 एकड़ क्षेत्र के लिए पृथक रूप से प्रभारी उप कलेक्टर, सदर, राँची द्वारा व्यवस्थापन परवाना जारी किया गया था। पूर्वोक्त डॉ॰ एस॰ सी॰ होम की मृत्यु के बाद, उक्त भूमि वैध

उत्तराधिकारी नामान्तरण केस सं॰ 51-R-27/78-79 में तत्कालीन अंचलाधिकारी, नामकुम श्री एन॰ पी॰ सिंह द्वारा उसके एकमात्र पुत्र रंजीत कुमार होम के नाम में अंतरित की गयी थी। उक्त रंजीत कुमार होम ने दिनांक 21.1.1980 के रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के तहत डॉ॰ एस॰ सी॰ बागची, वर्धमान कंपाउंड पी॰ एस॰ लालपुर, जिला राँची के पक्ष में भूखंड सं॰ 1661 में 7 एकड़ भूमि अंतरित कर दिया।

अभिकथित किया गया है कि याची विजय किशोर सहाय ने षडयंत्र किया और नामांतरण केस सं॰ 38-R-27/80-81 के तहत डॉ॰ एस॰ सी॰ बागची के नाम में जमाबंदी सृजित किया। आगे, उक्त डॉ॰ एस॰ सी॰/बागची ने बाद में पूर्वोक्त खरीदी गयी भूमि को हजारीबाग रोड, राँची के निवासी श्रीमती शिव दुलारी गुप्ता, श्रीमती मीना रानी गुप्ता और श्रीमती नलिनी गुप्ता के नाम में बेचे और अंतरित कर दिया। अभिकथित किया गया है कि तत्कालीन सी॰ ओ॰, नामकुम, विजय किशोर सहाय ने षडयंत्र किया और नामांतरण केस सं॰ 35-R-27/82-83 द्वारा जमाबंदी सृजित किया। इसके अतिरिक्त, नामांतरण केस सं॰ 9-R-27/84-85 के तहत याची ने सुभाष चंद्र शर्मा एवं अन्य के नाम में जमाबंदी सृजित करते हुए आदेश पारित किया। उक्त सुभाष चंद्र शर्मा और अन्य ने बाद में राम स्वरूप रूंगटा और कुछ अन्य के नाम में भूमि अंतरित कर दिया। बाद में जमाबन्दी रद्द करने के लिए वर्ष 1991-92 में विविध मामला संस्थापित किया गया था और अंतत: दिनांक 14.6.1995 को समस्त मामलों को निपटा दिया गया था और राम चंद्र रूंगटा एवं अन्य के नाम में जमाबंदी रद्द कर दी गयी थी। चारों जमाबंदियों के उक्त रद्दकरण के विरूद्ध राम चंद्र रूंगटा एवं अन्य ने कमिश्नर, दक्षिण छोटानागपुर, राँची के न्यायालय में राजस्व अपील सं॰ 400/1995 दाखिल किया। उक्त अपील में, जमाबंदी का रद्दकरण अंतत: अपास्त कर दिया गया था। अभिकथित किया गया था कि तत्कालीन कमिश्नर, दक्षिण छोटानागपुर श्री एस॰ एस॰ वर्मा भी षडयंत्र में शामिल थे।

जाँच के दौरान, पाया गया था कि उक्त श्री एस॰ एस॰ वर्मा, जब वह राँची के उप कमिश्नर थे, ने तत्कालीन एस॰ डी॰ ओ॰ राँची श्री एम॰ पी॰ यादव को अधिकारियों, जिनकी मिली भगत से संदेहास्पद और अवैध जमाबंदी सृजित की गयी थी, के विरूद्ध कार्रवाई करने के लिए रिपोर्ट करने को अनेक पत्रों को लिखा था और उक्त के बारे में दिनांक 9.9.1997 इत्यादि को कमिश्नर और सचिव, राजस्व और भूमि सुधार विभाग, बिहार, पटना को लिखा था।

लिखित सूचना में कथित तथ्यों के आधार पर, उसमें नामित अभियुक्तगण के विरूद्ध प्राथमिकी संस्थापित करने की अनुशंसा की गयी थी। उक्त करम दयाल ओराँव, आरक्षी उपाधीक्षक, निगरानी जाँच ब्यूरो, राँची कैम्प पटना द्वारा दाखिल दिनांक 10.11.2000 की उक्त लिखित सूचना के पैरा सं॰ 11 पर याची का नाम आता है।

4. याची के विद्धान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची निर्दोष है और उसने कोई अपराध नहीं किया है, उसने न्यायिक कल्प कार्यवाही में आदेश पारित किया था और यदि इसे अशुद्ध अथवा गलत पाया जाता है, उक्त आदेश के विरूद्ध अपील और पुनरीक्षण का प्रावधान है और न कि प्राथमिकी दर्ज करने के लिए। याची ने रजिस्टर्ड विक्रय विलेख के आधार पर और अभिलेख के आधार पर और सद्भावपूर्ण परिस्थिति के अधीन कब्जा के संबंध में रिपोर्ट के आधार पर आदेश पारित किया था। वर्तमान याची के विरूद्ध कोई विशेष लांछन नहीं है कि उसने ऐसे तरीके से कृत्य किया जो भा॰ दं॰ सं॰ अथवा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के दांडिक प्रावधानों को आकृष्ट करे। प्राथमिकी में विहित अन्य धाराएँ इस याची पर लागू नहीं होती है क्योंकि उसने कोई व्यवस्थापन, कूटरचित व्यवस्थान की तो बात ही दूर नहीं किया था, बल्कि प्राथमिकी में मामला यह है कि व्यवस्थापन श्री होम के नाम में किया गया था और बाद में, श्री होम ने व्यवस्थापन किया था। तत्पश्चात्, अन्य लोग श्री होम के खरीदार अथवा अंतरिति थे।

5. याची के अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि वर्तमान मामले में अभियोजन द्वारा इस आधार पर याची के विरूद्ध मंजूरी प्राप्त नहीं की गयी थी वह सेवानिवृत्त लोक सेवक है, और इसलिए संज्ञान लेता आदेश अवैध है और अभिखंडित किए जाने योग्य है। इस संबंध में उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों, **AIR 2004 SC 2179 एवं 2006(1) SCC 294** को उद्धृत किया है।

6. याची के विद्धान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि वर्तमान मामले में प्राथमिकी वर्ष 2000 में दर्ज की गयी थी, आरोप पत्र वर्ष 2010 में दाखिल किया गया था और तत्पश्चात् वर्ष 2010 में संज्ञान लिया गया था।

7. निगरानी के अधिवक्ता श्री टी॰ एन॰ वर्मा निवेदन करते हैं कि याची प्रासंगिक समय पर अंचलाधिकारी था और प्रश्नगत भूमि के प्रत्येक विवरण की जाँच करना उसका कर्तव्य था। अतः, वह निश्चय ही जिम्मेदार है जैसा प्राथमिकी के विषयवस्तु में उल्लिखित किया गया है।

8. श्री वर्मा ने आगे निवेदन किया है कि **केरल राज्य बनाम वी॰ पद्मनाभन नायर, AIR 1999 SC 2405,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"6. अतः सही विधिक अवस्था यह है कि पी० सी० अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए अभियोजन का सामना करता अभियुक्त मंजूरी की कमी के आधार पर उन्मुक्तता का दावा नहीं कर सकता है, यदि उस तिथि पर, जब न्यायालय ने उक्त अपराधों का संज्ञान लिया, वह लोक सेवक के रूप में अस्तित्व में नहीं था। अतः उच्च न्यायालय किसी भी सूरत में अभियोजन कार्यवाही अभिखंडित करने में गलत था जहाँ तक वे पी० सी० अधिनियम के अधीन अपराध से संबंधित थे।''

7. इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी का प्रतिवाद कि भा० दं० सं० की धाराओं 406 और 409 सह-पठित धारा 120B के अधीन अपराधों के लिए संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी अभियोजन आरंभ करने के लिए पूरोभाव्य शर्त है, समान रूप से झूठा है। इस न्यायालय ने श्री कैंटिया रामैय्या मुन्नीपल्ली बनाम बॉम्बे राज्य, AIR 1955 SC 287; (1955 Cri LJ 857) और अमरीक सिंह बनाम पेप्सु राज्य, AIR 1955 SC 309; (1955 Cri LJ 865) में सही विधिक अवस्था का कथन किया है कि लोक सेवक द्वारा किये गये प्रत्येक अपराध के लिए संहिता की धारा 197 के अधीन अभियोजन के लिए मंजूरी आवश्यक नहीं हैं और न ही उसके द्वारा किए गए प्रत्येक कृत्य के लिए, जब वह वस्तुतः अपने आधिकारिक कर्तव्यों के पालन में लगा हुआ है। उक्त विधिक अवस्था का अनुसरण करते हुए हरिहर प्रसाद (1972 Cri LJ 707) (ऊपर) में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:-

''जहाँ तक भा० दं० सं० की धारा 120B सह-पठित धारा 409 के अधीन दंडनीय दांडिक षडयंत्र के अपराध का संबंध है और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(2) का संबंध है, उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 में उल्लिखित प्रकृति का नहीं कहा जा सकता है। संक्षेप में, अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए दांडिक षडयंत्र में प्रवेश करना अथवा दांडिक अवचार में लिप्त होना लोक सेवक के कर्तव्य का अंग नहीं है। अतः, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अधीन मंजूरी की कमी कोई वर्जना नहीं है।''

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय की दृष्टि में, मेरे मत में, विचारण न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में पूर्णत: सही था कि चूंकि विजय किशोर सहाय और नागेन्द्र प्रसाद रॉय सेवानिवृत्त सरकारी सेवक हैं, अत: उनके विरूद्ध संज्ञान लेने के लिए मंजूरी का आदेश आवश्यक नहीं है।

10. दोनों पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के परिशीलन पर, मैं याची के विरूद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने की इच्छुक नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त, मैं संज्ञान लेने वाले आदेश में कोई अवैधता नहीं पाती हूँ। तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

दीना नाथ मंडल एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 5756 of 2006. Decided on 31st March, 2011.

सेवा विधि–नियुक्ति–प्रवर्तित कराने के लिए दैनिक मजदूरों के पास कोई विधिक अधिकार नहीं है–उन्हें स्थायी रूप से नियुक्त एवं आमेलित करने का राज्य का कर्तव्य नहीं है–मात्र इसलिए कि रिक्तियाँ अधिसूचित की गयी हैं, पद पर नियुक्ति का दावा करने का विधिक अधिकार याचीगण को नहीं है–पद को भरना या न भरना नीतिगत निर्णय है–याचीगण का अधिकार उन रिक्तियों पर प्रोद्भूत नहीं हुआ है जिसका दावा किया गया है–याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 9)

निर्णयज विधि.–(1991)3 SCC 47 : AIR SC 1612; (2005)3 SCC 618 : AIR 2005 SC 2775—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Abdul Hakim, For the Petitioners; J.C. to G.P. I, For the Respondents.

आदेश

यह रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोष इप्सित करने के लिए दाखिल की गयी है:–

''विधि के अनुरुप श्रम, नियोजन एवं प्रशिक्षण विभाग, जिला नियोजन कार्यालय, साहिबगंज, झारखंड सरकार द्वारा जारी विज्ञापन सं० ओ० सी०/6-10.1.2002 और विज्ञापन सं० ओ० सी०-2.4.2005 के आधार पर साहिबगंज जिला में चतुर्थ ग्रेड कर्मचारीगण के रिक्त पदों, जिसके लिए सभी सातों याचीगण ने उक्त विज्ञापन के प्रत्युत्तर में आवेदन दिया था, के विरुद्ध याचीगण को नियुक्त करने के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण को परमादेश की प्रकृति का रिट और/अथवा कोई समुचित रिट और/अथवा रिटें जारी करने के लिए।''

2. सार में, यह पक्षों का स्वीकृत मामला है कि याचीगण ने दैनिक मजदूरों के रूप में कार्य किया था। प्रत्यर्थीगण के अनुसार उन्होंने नियमित रूप से काम नहीं किया था और आवश्यकता होने पर ही उनकी सेवाएँ ली गयी थी। किंतु याचीगण के अनुसार, उन्होंने नियमित रूप से प्रत्यर्थी के अधीन काम किया है। चयनित उम्मीदवारों का पैनल तैयार किया गया था और याचीगण के नाम उस पैनल में आए थे जिसे बाद में रद्द कर दिया गया था। पक्षों ने चतुर्थ ग्रेड पद पर नियुक्ति के लिए वर्ष 1993-94 के पैनल में नामों को सम्मिलित करवाने के लिए पटना उच्च न्यायालय का आश्रय लिया था और याचीगण के दावा का परीक्षण करने के निर्देश के साथ याचिका खारिज कर दी गयी थी। तत्पश्चात, चतुर्थ ग्रेड पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए वर्ष 1998 में नयी अधिसूचना जारी की गयी थी और याचीगण ने इसके लिए आवेदन दिया था। तत्पश्चात, वर्ष 2002 में पुनः चतुर्थ वर्ग कर्मचारीगण

के रिक्त पद पर नियुक्ति के लिए एक नयी अधिसूचना जारी की गयी थी जिसके लिए याचीगण ने पुनः आवेदन दिया था। प्रत्यर्थीगण ने चयन सूची तैयार करने के बजाय इन्हीं पदों के लिए वर्ष 2005 में नया विज्ञापन विज्ञापित किया। आगे अभिकथित किया गया है कि चतुर्थ वर्ग कर्मचारीगण के लिए पाकुड़ जिला में अनेक पद रिक्त हैं।

3. प्रत्यर्थीगण ने विवादित किया है कि वर्ष 1987 और 1994 में परीक्षाएँ संचालित की गयी थी और उम्मीदवारों को उपयुक्त नहीं पाया गया था, और इसलिए, उन्हें नियुक्त नहीं किया गया था और आगे यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रक्रिया जो 2005 में प्रारम्भ हुई थी, अभी भी जारी है।

4. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख का परिशीलन किया है। याचिका के परिशीलन पर, याचीगण का दावा दो आधारों पर आधारित है। प्रथमतः, उन्होंने 20 वर्षों से अधिक समय तक दैनिक मजदूर के रूप में काम किया था और इसलिए उनकी सेवाएँ नियमित की जानी चाहिए और उन्हें उक्त चतुर्थ वर्गीय कर्मचारीगण के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए और द्वितीयतः उन्होंने अभिवचन किया है कि जिला में चतुर्थ वर्गीय कर्मचारीगण के पद रिक्त हैं और उन्होंने इसी पद के लिए आवेदन दिया है और उन्हें उक्त चतुर्थ वर्गीय पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए जबकि इस आधार कि उन्होंने विभाग में 20 से अधिक वर्षों तक काम किया था, पर याचीगण की सेवाओं को नियमित करने अथवा चतुर्थ वर्गीय पद पर उनको नियुक्त करने का प्रश्न संपोषणीय नहीं है क्योंकि यह याचीगण का स्वीकृत मामला है कि उन्होंने विभाग में दैनिक मजदूरों के रूप में लगातार काम किया था यद्यपि प्रत्यर्थीगण द्वारा इसे विवादित किया गया है।

5. यह विधि की सुनिश्चित अवस्था है कि संविधि अथवा नियमावली के अधीन इसे प्रवर्तित करवाने के लिए दैनिक अथवा आकस्मिक मजदूरों के पास कोई विधिक अधिकार नहीं है चूँकि **सचिव, कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 52 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

> *"52. सामान्यतः न्यायालय के समक्ष आए ऐसे अस्थायी कर्मचारीगण द्वारा उनको स्थायी सेवा में आमेलित करने अथवा बने रहने के लिए नियोक्ता, राज्य अथवा इसके परिकरणों को निर्देश देता हुआ परमादेश रिट जारी करना ईप्सित किया जाता है। इस संदर्भ में, प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या ऐसे व्यक्तियों के पक्ष में परमादेश जारी किया जा सकता है। इस संदर्भ में, राय शिवेन्द्र बहादुर (डॉ०) बनाम नालंदा महाविद्यालय का शासी निकाय, 1962 (Supp.) (2) SCR. 144, में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ के निर्णय को समुचित रूप से निर्दिष्ट किया जा सकता है। वह मामला उसमें, रिट याची को महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में प्रोन्नति से इनकार करने से उद्भूत हुआ था। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि प्राधिकारीगण को कुछ करने के लिए मजबूर करने के लिए परमादेश जारी करने के लिए यह दर्शाना होगा कि संविधि प्राधिकारी पर विधिक कर्तव्य अधिरोपित करती है और इसे प्रवर्तित करवाने के लिए व्यथित पक्ष के पास संविधि अथवा नियमावली के अधीन विधिक अधिकार है। यह उच्च कोटि की अवस्था जारी है और उनको स्थायी बनाने का निर्देश सरकार को देते हुए कर्मचारीगण के पक्ष में परमादेश जारी नहीं किया जा सकता था चूँकि कर्मचारीगण दर्शा नहीं सके हैं कि उनके पास स्थायी रूप से आमेलित किए जाने के लिए प्रवर्तनीय विधिक अधिकार है अथवा यह कि उनको स्थायी बनाना राज्य का विधिक कर्तव्य है।''*

6. पैरा 54 में, ... माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि वे निर्णय जो इस निर्णय में सुनिश्चित सिद्धांत के विपरीत है अथवा जिनमें निर्देश माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उसमें सुनिश्चित सिद्धांत के विपरीत है, पूर्व निर्णय के उनके हैसियत से रहित हो जाएँगे। विधि की इस सुनिश्चित दृष्टि में, दैनिक अथवा आकस्मिक मजदूर को कोई प्रवर्तनीय अधिकार नहीं है, अतः वह विधि के अनुरुप

नियमित किए जाने का दावा न्यायालय के समक्ष नहीं कर सकता है। साथ ही साथ, राज्य को उनको नियुक्त और स्थायी रूप से आमेलित करने का कोई कर्तव्य नहीं है। उक्त की दृष्टि में, याचीगण का प्रथम प्रतिवाद संपोषणीय नहीं है।

7. द्वितीय दावा इससे सम्बन्धित है कि रिक्तियाँ अभी भी खाली है और उक्त परीक्षा में याचीगण आवेदक हैं और प्रत्यर्थीगण द्वारा रिक्तियों को भरा नहीं गया है। उक्त आधार पर केवल इसलिए कि रिक्ति अधिसूचित की गयी थी याचीगण के पास उक्त पद पर नियुक्ति का दावा करने का विधिक अधिकार नहीं है। राज्य उन रिक्तियों को भरने के लिए बाध्य नहीं है जब तक प्रयोज्य नियमों में इसके विपरीत कोई प्रावधान नहीं हो। किंतु, उन पदों को नहीं भरने का निर्णय सद्भावपूर्व होना चाहिए और इसे मनमाना नहीं होना चाहिए और यदि भरे जाने के लिए रिक्तियाँ प्रस्तावित है, राज्य चयनित उम्मीदवारों की सूची से मेधानुसार उनको भरने के लिए बाध्य है। याचीगण यह दर्शा नहीं सके थे कि पद को असद्भाव के कारण भरा नहीं गया है। पद को भरना अथवा नहीं भरना नीतिगत निर्णय है और जब तक यह मनमानापन के दुर्गुण से पीड़ित नहीं हो, न्यायिक पुनर्विलोकन में हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है। रिक्तियों पर याचीगण को कोई भी अधिकार प्रोद्भूत नहीं हुआ है जिसका दावा किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भारतीय खाद्य निगम बनाम भानु लोध (2005)3 SCC 618 : AIR 2005 SC 2775** के पैरा-14 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

> *''14. मात्र इसलिए कि रिक्तियाँ अधिसूचित की गयी है, राज्य समस्त रिक्तियों को भरने के लिए बाध्य नहीं है जब तक प्रयोज्य नियमों में कोई विपरीत प्रावधान नहीं हो। किंतु, कोई संदेह नहीं है कि रिक्तियों को नहीं भरने का निर्णय सद्भावपूर्वक लिया जाना होगा और इसे युक्तियुक्तता की परीक्षा में उत्तीर्ण होना होगा ताकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 की कसौटी पर विफल न हो। पुनः, यदि रिक्तियाँ भरे जाने के लिए प्रस्तावित है, तब राज्य उनको मेधा के अनुरूप चयनित उम्मीदवारों की चयन सूची से भरने के लिए बाध्य है। पद को भरना अथवा नहीं भरना नीतिगत निर्णय है और जब तक यह मनमानापन के दुर्गुण से संक्रमित नहीं है, न्यायिक पुनर्विलोकन में हस्तक्षेप की गुंजाइश नहीं है।''*

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **शंकरसन दास बनाम भारत संघ, (1991)3 SCC 47 : AIR SC 1612**, में प्रकाशित मामले में इस पहलू पर भी विचार किया है जिसमें संवैधानिक पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि कतिपय रिक्तियों को भरने की अधिसूचना भर्ती के लिए अर्हित उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित करने की कोटि में आती है और उनके चयन पर वे पद के प्रति कोई अधिकार अर्जित नहीं करते हैं। उक्त की दृष्टि में, याचीगण ने केवल विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन करके कोई अधिकार अर्जित नहीं किया था। इस प्रकार, याचीगण के पास कोई अधिकार नहीं है और याचीगण के अधिवक्ता का तर्क संपोषणीय नहीं है।

9. उक्त चर्चा की दृष्टि में, यह याचिका खारिज किए जाने की दायी है। तद्नुसार, इस याचिका को खारिज किया जाता है। व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

श्री विष्णु दयाल राम (आई॰पी॰एस॰)

बनाम

भारत संघ, गृह सचिव गृह मंत्रालय, नयी दिल्ली के माध्यम से एवं अन्य

W. P. (S) No. 5459 of 2010. Decided on 15th April, 2011.

भारत का संविधान, 1950–अनुच्छेद 226—पक्षकार-प्रत्यर्थी के रूप में मध्यपेक्षी को पक्षकार बनाया जाना–मामला वरीय पुलिस अधिकारियों द्वारा गुप्त सेवा कोष से विपुल राशि के निकाले जाने से संबंधित है–सी॰ बी॰ आई॰ जाँच की मांग–राज्य को सी॰ बी॰ आई॰ के जाँच के प्रति कोई आपत्ति नहीं है–मध्यक्षेपी को समुचित पक्ष के रूप में मानने में कोई मुश्किल नहीं है–समुचित पक्षकारगण वे होते हैं जिनकी उपस्थिति अधिक प्रभावकारी रूप से और पूर्णतः न्यायनिर्णीत करने के लिए न्यायालय को सक्षम बनाने के लिए सुविधा के तौर पर अपेक्षित है–मध्यक्षेपी को पक्षकार-प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाने की अनुमति दी गयी।

(पैराएँ 9 से 17)

अधिवक्तागण.–M/s. B. K. Kanth, P. Pallav, For the Petitioner; Advocate General, For the State; Mr. Mokhtar Khan, For the Union of India.

आदेश

जब याची पुलिस महानिदेशक, राँची, झारखंड में पदस्थापित था, तत्कालीन अपर पुलिस महानिदेशक ने गुप्त सेवा निधि से क्रमशः 5.6 करोड़ रुपयों और 2.5 करोड़ रुपयों की राशि का उपयोग किया था। तीन वर्षों बाद, कुछ समाचार पत्रों ने वर्ष 2009 में रिपोर्ट किया कि गुप्त सेवा निधि का दुरुपयोग किया गया था। ऐसे रिपोर्ट पर, जनहित याचिका प्रकृति के दो मामले डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰ आई॰ एल॰) सं॰ 3439 वर्ष 2009 (राजीव कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य) और डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰ आई॰ एल॰) सं॰ 3975 वर्ष 2009 (राम सुभग सिंह बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य) इस न्यायालय में क्रमशः दिनांक 23.7.2009 और दिनांक 24.7.2009 को अन्य बातों के साथ-साथ उक्त गुप्त सेवा निधि से विपुल राशि निकालने के मामले में जाँच/अन्वेषण करने के लिए सी॰ बी॰ आई॰ अथवा किसी अन्य स्वतंत्र एजेन्सी को निर्देश देने के लिए दाखिल किया गया था।

2. उन मामलों में, राज्य सरकार की ओर से प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है, जिसमें कथन किया गया है कि वाउचर्स और प्रासंगिक रजिस्टरों की अनुपलब्धता की दृष्टि में राज्य की अन्वेषण एजेन्सी द्वारा जाँच/अन्वेषण करना मुश्किल होगा किंतु सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा उक्त जाँच/अन्वेषण किया जा सकता है। इस प्रकार, यह कथन किया गया था कि राज्य को कोई आपत्ति नहीं होगी यदि इस न्यायालय द्वारा मामले को जाँच के लिए सी॰ बी॰ आई॰ को सौंपा जाता है।

3. ऐसे प्राख्यान पर, मामला दिनांक 28.8.2010 को यह संप्रेक्षित करते हुए निपटाया गया था कि याची को कोई आपत्ति नहीं है यदि राज्य सरकार द्वारा समुचित कदम उठाया जाता है। तत्पश्चात्, गुप्त सेवा निधि से राशि निकाले जाने से संबंधित कतिपय डी॰ ओ॰ पत्रों के उत्तर में, तत्कालीन गृह सचिव, भारत सरकार ने दिनांक 16.9.2010 को तत्कालीन मुख्य सचिव, झारखंड सरकार को पत्र लिखा जिसमें सूचना दी गयी कि दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 की धारा 6 के निबंधनानुसार राज्य सरकार की सहमति सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा जाँच/अन्वेषण संचालित करने के लिए आवश्यक है।

4. इसके उपरांत, एक रिट आवेदन डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 292 वर्ष 2010 माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया था, जिसमें झारखंड राज्य सहित प्रत्येक राज्य के पुलिस प्राधिकारीगण द्वारा गुप्त सेवा निधि के उपयोग में सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा गहन जाँच के लिए प्रार्थना की गयी थी। यह अभिनिर्धारित करते हुए उक्त आवेदन को खारिज कर दिया गया था कि गुप्त सेवा निधि से धन निकालने के मामले में सी॰ बी॰ आई॰ जाँच संस्थापित करने का कोई सांविधिक प्रावधान नहीं है।

5. उस पर, डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 292 वर्ष 2010 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के प्रकाश में गुप्त सेवा निधि से धन निकालने से संबंधित मामले पर नए सिरे से विचार करने के लिए

याची द्वारा गृह सचिव, भारत सरकार और मुख्य सचिव, झारखंड सरकार को पत्र लिखे गए थे। किंतु गुप्त सेवा निधि से राशि निकालने से संबंधित मामले में झारखंड राज्य की शक्ति और अधिकारिता के प्रयोग के लिए दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन को सक्षम बनाते हुए दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 की धारा 6 के निबंधानुसार दिनांक 23.10.2010 को एक अधिसूचना जारी की गयी थी।

6. उस आदेश को इस रिट आवेदन में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी है। दिनांक 29.10.2010 को इस न्यायालय ने पूर्वोक्त रिट आवेदन में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को विचार में लेते हुए आदेश पारित किया था जिसके द्वारा अधिसूचना का प्रवर्तन स्थगित कर दिया गया था। उस पर, दो मध्यक्षेप याचिकाओं आई॰ ए॰ सं॰ 3983 एवं 4208 वर्ष 2010 को क्रमशः राजू कुमार और राम सुभग सिंह की ओर से उनको पक्षकार-प्रत्यर्थीगण के रूप में पक्षकार बनाने के लिए इस अभिवचन पर दाखिल किया गया था कि रिट आवेदन जनहित याचिका, जिसे उनके द्वारा दाखिल किया गया था, में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश से उद्‌भूत हुआ था और इस प्रकार उन्हें रिट आवेदन में मध्यक्षेप करने का अधिकार है। किंतु, दोनों अंतर्वर्ती आवेदनों को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि मध्यक्षेपियों के अधिकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं होंगे यदि रिट आवेदन में की गयी प्रार्थना को अनुज्ञात भी किया जाता है। उक्त आदेश को एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 8 वर्ष 2011 में चुनौती दी गयी थी जिसे दिनांक 10.1.2011 के आदेश के तहत निपटाया गया था जिसका पठन निम्नलिखित है:-

''पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰ आई॰ एल॰) सं॰ 3975 वर्ष 2009 में पारित आदेश की दृष्टि में, हम मानते हैं कि अपीलार्थी डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5459 वर्ष 2010 में समुचित पक्ष है और इसलिए विद्वान एकल न्यायाधीश डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5459 वर्ष 2010 में उसे पक्षकार-प्रत्यर्थी के रूप में नए सिरे से जोड़ने के लिए अपीलार्थी के अनुरोध पर विचार कर सकते हैं।

तद्नुसार, इस लेटर्स पेटेन्ट अपील को निपटाया जाता है।''

7. उस आदेश के अनुसरण में, आई॰ ए॰ सं॰ 262 वर्ष 2011 वाला अंतर्वर्ती आवेदन मध्यक्षेपी रामसुभग सिंह की ओर से उसे पक्षकार-प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाए जाने के लिए दाखिल किया गया है।

8. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री बी॰ के॰ कंठ और मध्यक्षेपी के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव सिन्हा को सुना गया।

9. याची की ओर से निवेदन किया गया था कि झारखंड राज्य सहित विभिन्न राज्यों में गुप्त सेवा निधि से विपुल राशि निकाले जाने से संबंधित मामलों का अन्वेषण करने का निर्देश सी॰ बी॰ आई॰ को देने के लिए न केवल इस न्यायालय के समक्ष बल्कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष भी अनेक रिट आवेदनों को दाखिल किया गया था क्योंकि उन्हें याची सहित संबंधित व्यक्तियों द्वारा गुप्त सेवा निधि से विपुल राशि के दुर्विनियोग किए जाने का संदेह था किंतु उन मामलों में से किसी में भी इस न्यायालय अथवा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जाँच/अन्वेषण के लिए मामला लेने का निर्देश सी॰ बी॰ आई॰ को देते हुए कोई प्रार्थना अनुज्ञात नहीं की है और मामले के उस दृष्टिकोण में, मध्यक्षेपी को समुचित पक्ष नहीं कहा जा सकता है। आगे तर्क किया गया है कि एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 8 वर्ष 2011 निपटाते हुए अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 10.1.2011 के अपने आदेश के तहत कभी अभिनिर्धारित नहीं किया है कि मध्यक्षेपी समुचित पक्ष है, बल्कि आदेश के मुताबिक, अपीलार्थी को समुचित पक्ष माना गया है और, इसलिए, उसको पक्ष-प्रत्यर्थी के रूप में संयोजित करने के लिए अपीलार्थी के अनुरोध पर नए सिरे से विचार करने के लिए मामला वापस भेज दिया गया था।

10. आगे तर्क किया गया था कि मामले का अन्वेषण करने के लिए सी॰ बी॰ आई॰ को निर्देश देने के लिए जनहित याचिकाओं में से किसी में मध्यक्षेपी अथवा किसी अन्य व्यक्ति की प्रार्थना को इस न्यायालय द्वारा कभी अनुज्ञात नहीं किया गया था। अत: यह नहीं कहा जा सकता है कि वर्तमान रिट आवेदन डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰ आई॰ एल॰) सं॰ 3975 वर्ष 2009 सहित उन जनहित याचिकाओं का परिणाम है और इसलिए, इस रिट आवेदन में इप्सित अनुतोष को विचार में लेते हुए मध्यक्षेपी को समुचित पक्ष कभी नहीं माना जा सकता है।

11. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि यद्यपि मामला विचारार्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा वापस भेजा गया है कि क्या मध्यक्षेपी समुचित पक्षकार है या नहीं किंतु इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 1.12.2010 का आदेश कभी अपास्त नहीं किया गया है और इस प्रकार, अगर पहले दिए गए निष्कर्ष से भिन्न कोई अन्य निष्कर्ष दर्ज किया जाता है, यह आदेश के पुनर्विलोकन की कोटि में आएगा जो अनुज्ञेय नहीं होगा क्योंकि दिनांक 1.12.2010 के आदेश में कोई प्रकट गलती नहीं है।

12. इसके विरुद्ध, मध्यक्षेपी के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव सिन्हा निवेदन करते हैं कि अपीलीय न्यायालय ने डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰ आई॰ एल॰) 3975 वर्ष 2009 में पारित आदेश को विचार में लेने के बाद वस्तुत: अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी समुचित पक्षकार है और मामले के उस दृष्टिकोण में, मध्यक्षेपी को पक्षकार-प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया जाए।

13. मैं मध्यक्षेपी की ओर से किए गए निवेदन में बल पाता हूँ जिसने डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰ आई॰ एल॰) सं॰ 3975 वर्ष 2009 दाखिल किया था जिसे दिनांक 28.8.2010 को निपटाया गया था, जिसका पठन निम्नलिखित है:-

> *''राज्य सरकार ने उत्तर शपथपत्र में यह प्राख्यान किया है कि ''कि पूर्वोक्त रिपोर्ट में कथित कारणों की दृष्टि में विभिन्न पुलिस अधिकारियों को किए गए संवितरण और विशेषत: स्वतंत्र स्रोतों को श्री वी० डी० राम द्वारा सीधे किए गए संवितरण के दावों को सत्यापित करना संभव नहीं है। वस्तुत: वाउचर्स और प्रासंगिक रजिस्टरों की अनुपलब्धता की दृष्टि में, राज्य एजेंसियों द्वारा कोई जाँच इस चरण पर मुश्किल लगता है। इसे केवल सी० बी० आई० जैसी स्वतंत्र एजेन्सी द्वारा ही किया जा सकता है। अत:, राज्य को कोई आपत्ति नहीं होगी यदि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मामला जाँच के लिए सी० बी० आई० को सौंप दिया जाता है। किन्तु, यह अनुरोध एवं निवेदन किया जाता है कि जाँच एजेन्सी कठोरतापूर्वक गोपनीय रूप से मामले की जाँच करे ताकि मुखबिरों के पहचान आदि सार्वजनिक न हो जो उनके हितों को हानि पहुँचा सकता है और भविष्य में सूचना पाने से राज्य को वंचित कर सकता है।''*
>
> *राज्य सरकार के ऐसे प्राख्यान पर याची को कोई आपत्ति नहीं है यदि राज्य सरकार द्वारा समुचित कदम उठाया जाता है।*
>
> *मामले के उस दृष्टिकोण में यह याचिका निपटायी जाती है।''*

14. आदेश की प्रकृति चाहे कुछ भी हो किंतु इतना तो निश्चित है कि उक्त आदेश मध्यक्षेपी द्वारा किए गए मुकदमों का परिणाम है जिसमें कतिपय सामग्रियों को प्रकट किया गया है। अत:, मध्यक्षेपी को समुचित पक्ष अभिनिर्धारित करने में कोई मुश्किल नहीं है, क्योंकि समुचित पक्षगण वे होते हैं जिनकी उपस्थिति अधिक प्रभावकारी रूप से और पूर्ण न्याय निर्णयन के लिए न्यायालय को सक्षम बनाने के लिए सुविधा के रूप में आवश्यक है और मामले के उस दृष्टिकोण में, मध्यक्षेपी को समुचित पक्ष अभिनिर्धारित किया जा सकता है।

15. जहाँ तक याची की ओर से किए गए अन्य निवेदन का संबंध है, मैं इसमें कोई सार नहीं पाता हूँ। यह सत्य है कि दिनांक 1.12.2010 का आदेश अपीलीय न्यायालय द्वारा अपास्त नहीं किया गया है

किंतु मामला इसको लेकर विचारार्थ वापस भेजा गया है कि क्या मध्यक्षेपी समुचित पक्षकार हैं या नहीं। पूर्व आदेश में यह विचार किया गया प्रतीत नहीं होता है कि क्या मध्यक्षेपी समुचित पक्षकार हैं या नहीं, बल्कि विचार मुख्यत: यह था कि क्या मध्यक्षेपी आवश्यक पक्षकार हैं या नहीं।

16. मामले के उस दृष्टिकोण में, यह महत्वपूर्ण नहीं है कि क्या इस न्यायालय द्वारा पहले पारित किया गया आदेश अपास्त किया गया है या नहीं, क्योंकि विचारार्थ मामला यह है कि क्या मध्यक्षेपी समुचित पक्षकार है जिसे विचार करने पर समुचित पक्षकार पाया गया है जैसी चर्चा ऊपर की गयी है।

17. परिणामस्वरुप, मध्यक्षेपी को पक्षकार-प्रत्यर्थी सं॰ 6 के रूप में पक्षकार बनाए जाने की अनुमति दी जाती है।

आई॰ ए॰ सं॰ 262 वर्ष 2011 निपटाया जाता है।

माननीया पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

अल्पना चौधरी

बनाम

आलोक कुमार बनर्जी

C.R. No. 6 of 2010 Decided on 4th April, 2011.

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 115—सिविल पुनरीक्षण की अधिकारिता का प्रयोग इस तरह नहीं किया जा सकता है मानो नियमित प्रथम अपील विनिश्चित किया जा रहा हो–किराया नियंत्रण अधिनियम में पुनरीक्षण की शक्ति की गुंजाइश उतनी संकुचित नहीं है जितना सी॰ पी॰ सी॰ के अधीन नियमित पुनरीक्षण में–किंतु, फिर भी साक्ष्य का पूर्ण पुनर्आकलन अनुज्ञेय नहीं है और उच्च न्यायालय स्वयं को अपीलीय न्यायालय में परिवर्तित नहीं कर सकता है। (पैरा 11)

(ख) अभिधृति–बेदखली–जब एक बार मकान मालिक अपनी सद्भावपूर्ण आवश्यकता सिद्ध करता है और अवर न्यायालय का समाधान तथ्यों के वस्तुपरक मूल्यांकन की परीक्षा पर खरी उतरती है, तब वास-सुविधा, जो उसकी आवश्यकता को युक्तियुक्त रूप से संतुष्ट करेगा, का चयन जरूरतमंद के निजी चुनाव पर छोड़ देना होगा–न्यायालय अपना चुनाव जरूरतमंद पर लाद नहीं सकता है–पुनरीक्षक-किराएदार बेदखल किए जाने का दायी है। (पैरा 22)

निर्णयज विधि.–2003(2) JLJR 158; AIR 1989 Patna 66; (2003) 1 SCC 462; AIR 1960 SC 100—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. P.R. Bhagat, For the Petitioner; Mr. Sudarshan Shrivastava, For the Opposite Party.

पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति.–वर्तमान पुनरीक्षण टाइटल (बेदखली) वाद सं॰ 45 वर्ष 1999 (आलोक कुमार बनर्जी बनाम अल्पना चौधरी) में प्रथम सब-जज, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 16.11.2009 के निर्णय और बेदखली की डिक्री से उद्भूत होता है।

2. वाद दो आधारों पर संस्थापित किया गया था–2400/-रुपयों के किराया बकाया और बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम की धारा 11(i)(c) के अधीन निजी आवश्यकता के आधार पर। वादी ने किराया के बकाया के आधार पर बेदखली के अपने दावे को अधित्यक्त कर दिया किंतु निजी आवश्यकता के आधार पर

वाद का प्रतिवाद किया। अवर न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर आते हुए कि वाद पत्र की अनुसूची B में वर्णित विवादित परिसर, जो अनुसूची A का अभिन्न अंग है, की जरूरत वादी मकानमालिक को निजी उपयोग के लिए है।

3. मामले के तथ्य ये हैं कि वादपत्र की अनुसूची-A में वर्णित मुहल्ला जे॰ सी॰ मल्लिक रोड अवस्थित संपत्ति प्रतिवादी के पति सहित किसी डॉ॰ समरेन्द्र नाथ चौधरी और अन्य सह-अंशधारियों की संयुक्त पारिवारिक संपत्ति थी। अनुसूची-A में वर्णित संपत्ति के अन्य सह-अंशधारियों और डॉ॰ समरेन्द्र नाथ चौधरी के परिवार में बँटवारा हुआ था। डॉ॰ समरेंद्र नाथ चौधरी ने संपत्ति विरासत में पायी थी और अपने पिता की मृत्यु के बाद इस पर अनन्य रूप से काबिज हुआ था।

समय काल में, अनुसूची-A में वर्णित संपत्ति समरेंद्र नाथ चौधरी द्वारा किराएदार अर्थात् देब शंकर देव उर्फ गोलू और प्रतिवादी को भी किराए पर दी गयी थी। प्रतिवादी को किराएदार के रूप में लाया गया था जो अनुसूची-A संपत्ति का हिस्सा है।

वह दवा दुकान चलाने लगा और इंगलिश कैलेंडर के अनुसार बाद वाले माह में भुगतान योग्य मासिक किराया के रूप में 300/-रुपया का भुगतान करने लगा। वादी ने दिनांक 24.5.1993 को डॉ॰ समरेन्द्र नाथ चौधरी के साथ विक्रय के लिए करार किया और वादी को आन्वयिक कब्जा भी दिया गया था क्योंकि उसने प्रतिफल राशि के मुख्य अंश का भुगतान कर दिया था।

इसके उपरांत, प्रतिवादी इस आश्वासन के साथ वादी को किराए का भुगतान करने लगा कि वह सम्यक् क्रम में अनुसूची-B संपत्ति को खाली कर देगा। अंततः, अनुसूची-A परिसर के संबंध में दिनांक 28.5.1999 को डॉ॰ समरेंद्र नाथ चौधरी द्वारा वादी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था।

प्रतिवादी को विक्रय विलेख के बारे में सूचना स्वयं क्रेता द्वारा दी गयी थी। दूसरे किराएदार देब शंकर देव उर्फ गोलू ने परिसर खाली कर दिया था। किंतु, वर्ष 1998 में वादी के अनुरोध पर प्रतिवादी ने परिसर खाली करने से इनकार कर दिया और दिसंबर, 1998 के प्रभाव से किराया का भुगतान करना रोक दिया।

4. वादी धनबाद में पेशेवर वकील है और झरिया पहाड़ी, कतरास मोड़, झरिया, जिला-धनबाद में उसका पैतृक घर है। यह स्थान धनबाद न्यायालय से 8 कि॰ मी॰ की दूरी पर अवस्थित है। वादी 8 कि॰ मी॰ की दूरी तय करके झरिया से न्यायालय आता है। इसके अतिरिक्त, वह वास सुविधा की कमी का सामना कर रहा है क्योंकि उसका परिवार बड़ा है और उनकी आवश्यकताओं की परिपूर्ति के लिए पैतृक घर पर्याप्त नहीं है। इन परिस्थितियों में, डॉ॰ समरेन्द्र नाथ चौधरी से घर खरीदा गया था। वाद पत्र में यह प्रकथन भी किया गया था कि झरिया का पैतृक घर बहुत पुराना और काफी क्षतिग्रस्त है और इसके अतिरिक्त मेसर्स बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के खनन कार्यों के कारण प्रासंगिक समय पर, जब वाद संस्थापित किया गया था, उसमें अनेक दरारें पड़ गयी थी। वादी की माता की हृदयरोग एवं दमा के कारण बीमारी का आधार भी लिया गया था किंतु कार्यवाही के दौरान उसकी मृत्यु हो गयी।

वादी ने आगे प्राख्यान किया कि देब शंकर देव उर्फ गोलू द्वारा खाली किया गया परिसर केवल दो छोटे कमरों से गठित था, अतः अपना चैम्बर स्थापित करने के लिए और उसके परिवार की आवासीय आवश्यकता की कमी पूरी करने के लिए यह अपर्याप्त था और इसलिए विवादित परिसर, जो प्रतिवादी के अधिभोग में था, की उसकी आवश्यकता वास्तविक थी।

5. प्रतिवादी ने अपना लिखित कथन दाखिल किया और वादी के अभिधान और बिहार मकान (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम की प्रयोज्यता से इनकार किया। प्रतिवादी ने आगे दावा किया कि संपत्ति प्रतिवादी के पति और अन्य सह-अंशधारियों की संयुक्त पैतृक संपत्ति थी और इसका कभी भी बँटवारा नहीं हुआ है और, इसलिए, वादी का दावा बिल्कुल निराधार है और वादी के पक्ष में विक्रय विलेख मनगढ़ंत दस्तावेज है और उनको कोई अधिकार अथवा टाइटल नहीं देता है।

6. लिखित कथन के पैराग्राफ 38 में 300/-रुपया प्रतिमाह भुगतान का तथ्य स्वीकार किया गया है किंतु प्रतिवादी द्वारा स्पष्ट किया गया है कि पेशेवर वकील की सलाह पर अतिरिक्त सावधानी के रूप में प्रतिमाह 300/-रुपयों की राशि का भुगतान किया जा रहा था और, इसलिए, प्रत्येक माह वादी को उक्त राशि भेजी जाती थी।

7. अवर न्यायालय द्वारा अनेक विवाद्यकों को विरचित किया गया था। वर्तमान मामले के लिए विवाद्यक सं॰ 4, 5, 6 प्रासंगिक है:-

विवाद्यक सं॰ IV-क्या अनुसूची B परिसर के संबंध में वादी और प्रतिवादी के बीच मकान मालिक-किराएदार का संबंध है?

विवाद्यक सं॰ V-क्या वादी को स्वयं अपने उपयोग और अधिभोग के लिए अनुसूची B परिसर की सद्भावपूर्ण एवं युक्तियुक्त आवश्यकता है?

विवाद्यक सं॰ VI-क्या प्रतिवादी की आंशिक बेदखली वादी की सद्भावपूर्ण आवश्यकता को मुख्य रूप से संतुष्ट करेगी?

दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य दिया गया था जो स्वयं निर्णय में विस्तार से वर्णित है।

8. अवर न्यायालय ने वादी के पक्ष में अपने निष्कर्षों को दर्ज किया और आदेश की तिथि से तीन माह के अंदर वाद परिसर खाली करने, जिसमें उसके विफल रहने पर वादी को न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से अनुसूची B संपत्ति का कब्जा पाने की स्वतंत्रता होगी, का निर्देश प्रतिवादी को देते हुए वाद डिक्री किया।

9. किराएदार/पुनरीक्षक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता, श्री पी॰ आर॰ भगत ने तीन निवेदनों को किया है। प्रथम निवेदन मकान मालिक और किराएदार के संबंध के अस्तित्व के संबंध में है। संबंध से विनिर्दिष्टत: इनकार किया गया है। उनका अगला तर्क निजी आवश्यकता के आधार पर वादी/विपक्षी पक्षकार के पक्ष में वास सुविधा की निर्मुक्ति को चुनौती देने के लिए है। पुनरीक्षक का प्रतिवाद यह है कि वादी झरिया में अपने पैतृक गृह में रह रहा है और उसकी आवश्यकता सद्भावपूर्ण अथवा वास्तविक नहीं है और इसलिए अवर न्यायालय के निष्कर्ष शून्य किए जाने के दायी हैं। अंतिम निवेदन यह है कि साक्ष्य का आकलन गलत है और इसके संपूर्ण संवीक्षण की आवश्यकता है। उन्होंने अपना तर्क सिद्ध करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य के मुकाबले मौखिक साक्ष्य के उद्धरणों को उद्धृत किया है कि वादी यह दर्शाने में पूरी तरह विफल रहा है कि स्वयं उसके उपयोग के लिए विवादित संपत्ति की आवश्यकता है।

10. पुनरीक्षक के अधिवक्ता ने अवर न्यायालय अभिलेख से संपूर्ण साक्ष्य को प्रस्तुत किया है, वाद पत्र को पढ़ा है और वाद पत्र के पैरा सं॰ 14, 16, 17, 18, 19 और 20 पर जोर दिया है। उसने आगे अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य पर भी टिप्पणी की है। अ॰ सा॰ 1 अधिवक्ता का क्लर्क है जिसने वादी के हस्ताक्षर को पहचाना है और स्वीकार किया है कि चूँकि वह क्लर्क है, अत: वह वादी के हस्ताक्षर से अच्छी तरह वाकिफ हैं। यद्यपि प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया है कि उसकी उपस्थिति में वाद पत्र

पर हस्ताक्षर नहीं किया गया था। विद्वान अधिवक्ता की आपत्ति यह है कि चूँकि कार्बन प्रति पर हस्ताक्षर प्रदर्श-1 के तौर पर प्रस्तुत किए जाने की अनुमति दी गयी थी जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 (2) के प्रावधानों के उल्लंघन में है और अनदेखा किए जाने का दायी है। वादी के बड़े भाई अ॰ सा॰ 2 अशोक कुमार बनर्जी के परिसाक्ष्य को विद्वान अधिवक्ता ने विस्तार से बताया है।

मुख्य परीक्षण के पैराग्राफ 4 में वह स्वीकार करता है कि अपने निजी उपयोग के लिए वादी ने विवादित घर खरीदा है और तत्पश्चात्, प्रति परीक्षण में अनेक बयानों को इंगित किया जहाँ अ॰ सा॰ 2 द्वारा स्वीकार किया गया है कि वादी वर्ष 1975 से धनबाद न्यायालय में प्रैक्टिस कर रहा था। उसकी तीन बहनें है जिनका विवाह हो चुका है। दोनों भाइयों, माता, पिता, तीनों बहनों सहित संपूर्ण परिवार उसके पिता के समय से झरिया में पैतृक मकान में रह रहा था। विवादित परिसर में अधिवक्ता के चैंबर के रूप में कोई वास सुविधा उपयोग में नहीं है। किंतु, यह स्वीकार किया गया है कि विवादित घर के उस भाग, जिसे एक अन्य किराएदार द्वारा खाली किया गया था, से उसके मुवक्किल आते-जाते हैं। वादी का एक पुत्र है जो कक्षा-XI में पढ़ रहा है। झरिया अवस्थित पैतृक गृह घनी आबादी में स्थित है। घर खाली कराने के केंद्र सरकार के आशय के संबंध में उसकी जानकारी में कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। अत:, प्रति परीक्षण के पैराग्राफ-48 में विनिर्दिष्टत: इंगित किया गया है कि गवाह उक्त प्रभाव का कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं हुआ था।

इसी प्रकार, अ॰ सा॰ 3 परमेश्वर लाल बर्नवाल का साक्ष्य भी प्रस्तुत किया गया था। उसने भी स्वीकार किया है कि वादी वर्ष 1974 से पेशे में है और झरिया के पैतृक गृह के आस-पास 100-150 घर है और अ॰ सा॰ 3 का घर भी आधा किलोमीटर की दूरी पर है।

अ॰ सा॰ 4 समरेंद्र नाथ चौधरी ने विक्रय विलेख और पत्र, जिसे उसने प्रतिवादी/किराएदार (पुनरीक्षक) को यह सूचित करते हुए कि घर वादी द्वारा खरीद लिया गया है, को भी सिद्ध किया है।

प्रति परीक्षण के कतिपय उद्धरणों को भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें केवल अन्य गवाहों द्वारा कथित बातों को दोहराया गया है।

अधिवक्ता शेखर शर्मा और आलोक कुमार बनर्जी को भी वादी के गवाह के रूप में परीक्षित किया गया है। उसने कूपन और तत्सम रसीदों को सिद्ध किया है जिसके माध्यम से पुनरीक्षक ने 300/- रुपया प्रति माह भुगतान किया था। उसने यह भी स्वीकार किया है कि विक्रय विलेख में उसने कथन नहीं किया है कि घर को निजी उपयोग के लिए खरीदा जा रहा है। आगे, वादी ने कथन किया कि उसने अपने झरिया वाले घर से पेशा शुरू किया है और यह भी कि विवादित परिसर में दो छोटे कमरे और बरामदा, आंगन, रसोईघर, शौचालय और स्नानघर खाली है किन्तु उसे अपना संपूर्ण स्थापन धनबाद शिफ्ट करने के लिए यह पर्याप्त नहीं है।

ये साक्ष्य यह सिद्ध करने के लिए इंगित किए गए हैं कि मामले में स्थापित वादी की आवश्यकता निराधार है और अपने निजी उपयोग, चैंबर और आवासीय उद्देश्य के लिए उसे विवादित परिसर की आवश्यकता नहीं है।

11. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, यह पूरी तरह सिद्ध किया गया है कि अवर न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष कि मकान मालिक और किराएदार के संबंध का अस्तित्व है और पुनरीक्षक 300/-रुपया प्रतिमाह किराया दिया करता था, पूर्णत: सही है, और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। गवाहों के मौखिक परिसाक्ष्य के निश्चित/कतिपय हिस्से का कोई महत्व नहीं है, जैसा विद्वान अधिवक्ता द्वारा इंगित किया गया था, क्योंकि मैं इस तथ्य के प्रति जागरूक हूँ कि सिविल पुनरीक्षण की अधिकारिता का प्रयोग

इस तरह नहीं किया जा सकता है मानों नियमित प्रथम अपील को विनिश्चित किया जा रहा हो। नि:संदेह, किराया नियंत्रण अधिनियम में पुनरीक्षण की शक्ति की गुंजाइश इतनी संकुचित नहीं है जितना सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन नियमित पुनरीक्षण में, किंतु फिर भी साक्ष्य का संपूर्ण पुनर्आकलन अनुज्ञेय नहीं है और यह न्यायालय स्वयं को अपीलीय न्यायालय में परिवर्तित नहीं कर सकता है।

12. अगला प्रश्न वादी की सद्भावपूर्ण आवश्यकता के संबंध में है जिसे अवर न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में अभिनिर्धारित किया गया है। मामले के संपूर्ण साक्ष्य, तर्क और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद यह स्पष्ट है कि उक्त परिसर का कुल क्षेत्रफल 20' x 8' है। याची की आयु लगभग 65 वर्ष है। उसने अपना पेशा झरिया स्थित पैतृक गृह से शुरू किया, जो कुछ दूरी पर अवस्थित है। वह धनबाद से न्यायालय आने-जाने में अत्यन्त कठिनाइयों का सामना कर रहा है। यदि किराएदार की ओर से किए गए इस प्राख्यान को स्वीकार किया भी जाता है कि झरिया घनी आबादी वाला क्षेत्र है, तब भी यह तथ्य विवादित नहीं किया गया है कि वादी वर्ष 1974 से धनबाद में पेशा कर रहा है और समयक्रम में उसने निश्चय ही वकालत जमा ली होगी। इसके अतिरिक्त, उसकी आयु 65 वर्ष है और झरिया से धबनाद सुबह-शाम यात्रा करने को सुरक्षित और सुविधापूर्ण प्रतिपादना नहीं कहा जा सकता है। यह तर्क भी किया गया है कि उसके कब्जे में बने छोटे कमरों का मुवक्किलों द्वारा उपयोग किया जा रहा है और यदि वह विवादित वास-सुविधा का कब्जा पाता है, वह अपने परिवार को धनबाद शिफ्ट करना चाहता है और निवेदन किया कि यदि वह विवादित वास सुविधा का कब्जा पाता है, वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ धनबाद शिफ्ट करना चाहेगा और अपना चैंबर भी एक ही स्थान पर बनाए रखेगा, को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। विचारण न्यायालय द्वारा इस विवाद्यक पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया था और, इसलिए, मैं हस्तक्षेप का कोई कारण नहीं पाती हूँ।

13. मैं प्रदर्श 3 से 3/d तक के संबंध में प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों से भी सहमत हूँ। मनीऑर्डर कूपनों और पावती रसीदों को प्रतिवादी के पति ब॰ सा॰ 3 (अरुप चौधरी) द्वारा प्रति परीक्षण के पैरा-59 में सिद्ध किया गया है। ये प्रदर्श ''स्वीकृति पर'' है और जैसा **AIR 1960 SC 100** में अभिनिर्धारित किया गया है, स्वीकृति सर्वोत्तम साक्ष्य है। किसी एक या अन्य बहाना पर इसे चुनौती देने की अनुमति प्रतिवादी को नहीं है। इसके अतिरिक्त, इन प्रदर्शों की वास्तविकता पर विचारण के चरण पर भी प्रश्न नहीं उठाया गया है। यद्यपि प्रतिवादी/याची की ओर से विचारण के क्रम पर अनेक स्थगनों को इस आधार पर लिया गया था कि अंतर्वर्ती चरण पर पारित एक या अन्य आदेशों को उसे चुनौती देनी थी किन्तु प्रतिवादी/किराएदार द्वारा इस माननीय न्यायालय के समक्ष कोई पुनरीक्षण आवेदन दाखिल नहीं किया गया है। यह तथ्य अवर न्यायालय के अभिलेखों से स्पष्ट है।

14. उसने यह कथन भी किया है कि जून 1999, जुलाई, 1999 और अगस्त, 1999 के लिए किराए के मनीऑडर कूपन क्रमश: प्रदर्श A/1, B और C जैसे दस्तावेज सार्वजनिक दस्तावेज के रूप में अननुज्ञेय हैं और न्यायालय ने उक्त कूपन पर गलत रूप से विश्वास किया है क्योंकि इन्हें सिद्ध नहीं किया गया था।

15. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता सुदर्शन श्रीवास्तव ने श्री पी॰ आर॰ भगत के तर्कों का विरोध किया है। उन्होंने लिखित कथन में किए गए प्राख्यान पर जोर दिया है और अपने तर्कों कि प्रतिवादी द्वारा 300/- रुपये प्रतिमाह का भुगतान स्वीकार किया गया है, के समर्थन में पैराग्राफ 38 प्रस्तुत किया है। यद्यपि उन्होंने अपने लिखित कथन में यह स्पष्ट स्वीकृति कि 300/-रुपया प्रतिमाह का भुगतान किराए के रूप में किया जाता था, से बच निकलने का प्रयास किया है किंतु उन्होंने यह लचर स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया है कि यह उसके अधिवक्ता की कानूनी सलाह पर दिया गया था। इसके अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया है कि मनी ऑर्डर कूपन को प्रतिवादी द्वारा अपने मौखिक परिसाक्ष्य में स्वीकार किया गया

है। उसने कथन किया है कि कूपन पर लिखावट स्वयं उसका हस्तलेखन है किंतु नीचे उसकी पत्नी का नाम दर्शाया गया है। वस्तुत:, प्रतिवादी ने स्वीकार किया कि कूपन प्रतिवादी के पति ब॰ सा॰ 3 अरुप चौधरी द्वारा भरा गया है। उसने अपने मौखिक परिसाक्ष्य के पैराग्राफ 59 में स्वीकार किया है कि स्वयं उसकी स्वीकृति पर न्यायालय में दस्तावेजों को प्रदर्शों के रूप में चिन्हित किया गया था। तत्सम रसीदों को भी स्वीकार किया गया है जो स्वीकृत रूप से सार्वजनिक दस्तावेज हैं।

16. इन परिस्थितियों में, मैं हस्तक्षेप करने की इच्छुक नहीं हूँ। उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण की अधिकारिता अत्यन्त सीमित है और इसे अपीलीय अधिकारिता के बराबर नहीं माना जा सकता है। मकान मालिक और किराएदार के संबंध और सद्भावपूर्ण एवं युक्तियुक्त आवश्यकता जैसे तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप तबतक नहीं किया जा सकता है जबतक ये विकृत नहीं हैं। वर्तमान मामले में, याची द्वारा कोई विकृतता इंगित नहीं की गयी है। इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने प्रत्येक साक्ष्य पर विचार किया है और समस्त निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर आधारित है। इसे **अखिलेश्वर कुमार एवं अन्य बनाम मुस्तकिम एवं अन्य, (2003)1 SCC 462,** मामले में भी अभिनिर्धारित किया गया है।

17. मैंने पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और प्रतिवाद कर रहे पक्षों की ओर से दिए गए मौखिक साक्ष्य सहित संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया है। प्रथम प्रश्न जिसका परीक्षण करना होगा यह है कि क्या मकान मालिक-किराएदार के संबंध में अवर न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता है?

18. विवाद्यक सं॰ IV इस प्रश्न से संबंधित है और मेरा दृढ मत है कि लिखित कथन में स्वीकृति कि 300/- रुपया प्रतिमाह वादी को प्रत्येक माह दिया जाता था और जून, जुलाई और अगस्त माह की तीन मनीऑर्डर कूपन तत्सम रसीदों के साथ यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त है कि प्रतिवादी ने प्रत्येक माह 300/- रु॰ का भुगतान किया और मनीऑर्डर कूपन के बारे में स्वयं निर्णय में उद्धृत किया गया है।

19. उक्त दस्तावेज के कोरे परिशीलन पर, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी के पति ब॰ सा॰ 3 ने कूपन पर स्पष्टत: लिखा है कि राशि किसी माह विशेष के लिए किराए के रूप में दी जा रही है और लिखावट को गवाह द्वारा स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त, गवाह ने प्रत्येक माह किराए के भुगतान के संबंध में रसीदों से इनकार नहीं किया है और इसलिए मैं अवर न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष से पूर्णत: सहमत हूँ। इसके अतिरिक्त, यह ब॰ सा॰ 3 अरुप चौधरी की स्पष्ट स्वीकृति है और इसलिए, मैं इस निष्कर्ष पर आयी हूँ कि दोनों के बीच मकान मालिक और किराएदार के संबंध के अस्तित्व होने का निष्कर्ष निकालने में अवर न्यायालय का दृष्टिकोण बिल्कुल सही था।

20. श्री पी॰ आर॰ भगत ने तथ्य पर विवाद करने के लिए दो निर्णयों को उद्धृत किया है। प्रथम निर्णय **मोस्मात राजवती देवी एवं एक अन्य बनाम संयुक्त निदेशक, चकबन्दी, बिहार सरकार, पटना एवं अन्य [AIR 1989 Patna 66]** में है। पटना उच्च न्यायालय ने सिद्धांत अधिकथित किया कि दस्तावेज स्वयं को तब तक सिद्ध नहीं करते हैं, एवं जब तक उक्त दस्तावेज जो, जिन पर विश्वास किया गया है, को सिद्ध करने के लिए गवाह का परीक्षण नहीं किया जाता है। यह वैसा मामला था जहाँ दस्तावेजों को सिद्ध करने के लिए किसी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया था जबकि वर्तमान मामले में, ब॰ सा॰ 3 ने मनीऑर्डर कूपन पर अपना हस्तलेखन स्वीकार किया है। तत्सम रसीदों को भी प्रदर्शित किया गया है। जहाँ तक प्रत्येक मनीऑर्डर कूपन पर पत्नी (प्रतिवादी) के हस्ताक्षर का संबंध है, स्वीकृत रूप से, बचाव पक्ष गवाह द्वारा यह विवादित नहीं किया गया है कि हस्ताक्षर कूट रचित है। इसके विपरीत, उसने स्पष्टत: स्वीकार किया है कि कूपन पर पृष्ठांकन स्वयं उसके हस्तलेखन में है और इसलिए मेरा

दृष्टिकोण यह है कि विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया पटना उच्च न्यायालय का निर्णय मददगार नहीं है।

21. दूसरा निर्णय **देव कुमार बनर्जी एवं अन्य बनाम अशोक कुमार केसरी एवं अन्य, (2003)2 JLJR 158** में प्रकाशित है। यह निर्णय भी पुनरीक्षक के मामले में मददगार नहीं है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ-3 में न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

"3. .....यह बराबर रूप से सुनिश्चित है कि मनी ऑडर कूपनों को सिद्ध करने के उद्देश्य से डाकखाना के डाकिया और अन्य प्राधिकारियों को बुलाना आवश्यक नहीं है। मनीऑर्डर रसीद सार्वजनिक दस्तावेज हैं जो मनीऑर्डर द्वारा किराया भेजे जाने के निश्चयात्मक साक्ष्य हैं..... ।''

22. इस प्रकार, यह सत्य है कि जब एक बार मकान मालिक अपने सद्भावपूर्ण आवश्यकता को सिद्ध कर देता है और अवर न्यायालय की संतुष्टि तथ्यों के वस्तुपरक मूल्यांकन की परीक्षा पर खरी उतरती है, तब वास-सुविधा, जो उसकी आवश्यकता को संतुष्ट करने के लिए युक्तियुक्त होगी, का चयन जरुरतमंद के निजी चुनाव पर छोड़ देना होगा। न्यायालय अपना चुनाव जरूरतमंद पर थोप नहीं सकता है। निश्चय ही, चुनाव का प्रयोग युक्तियुक्त रूप से और न कि मनमाने/सनकपूर्ण रूप से करना होगा।

23. अत: आज के दिन से तीन माह के भीतर किराएदार/पुनरीक्षक विवादित वास सुविधा खाली करने और इसका कब्जा वादी-मकानमालिक/विपक्षी पक्षकार को सौंपने का दायी है। उसे उपयोग और अधिभोग के लिए कब्जा सौंपने तक 300/-रुपया प्रतिमाह का भुगतान जारी रखना होगा।

24. उक्त दर्ज निष्कर्षों की दृष्टि में, इस सिविल पुनरीक्षण में कोई गुणागुण नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

कोई वाद व्यय नहीं।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

राम लखन मिश्रा

बनाम

झारखंड राज्य, निगरानी के माध्यम से एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 400 of 2008. Decided on 20th April, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 409/420/467/468/471/477A/120B सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धाराएँ 13(2) एवं 13(1)(d)—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—सरकारी धन का दुरुपयोग–दांडिक कार्यवाही और अनुशासनिक कार्यवाही में दृष्टिकोण और लक्ष्य बिल्कुल भिन्न है–याची प्राथमिकी में नामित–अपराध में अंतर्ग्रस्तता के संबंध में उसके विरुद्ध पर्याप्त सामग्री/अभिकथन है–प्राथमिकी अभिखंडित करने का कोई कारण नहीं–याचिका खारिज। (पैराएँ 3 से 7)

निर्णयज विधि.–(2007) 14 SCC 497—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Vishnu Kumar Sharma, For the Petitioner; Mr. Shekhar Sinha, For the Vigilance.

आदेश

यह दांडिक विविध याचिका भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409/420/467/468/471/477A/120B सह-पठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धाराओं 13 (2) और 13(1)(d) के अधीन दर्ज निगरानी थाना केस सं॰ 13 वर्ष 2007, विशेष केस सं॰ 17 वर्ष 2007 के तत्सम, में दर्ज प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए और विशेष न्यायाधीश निगरानी, राँची के समक्ष लंबित उक्त प्राथमिकी के आधार पर उसके विरुद्ध पुलिस द्वारा आरंभ की गयी कार्यवाही और संपूर्ण अन्वेषण के अभिखंडन के लिए भी दाखिल की गयी है।

2. दिनांक 3.10.2007 को प्रभारी-अधिकारी-निगरानी विभाग, राँची के समक्ष एस॰ पी॰ निगरानी, राँची द्वारा झारखंड सरकार के ग्रामीण अभियंत्रण संगठन विभाग में रोजगार गारंटी योजना में अनियमितताओं का कथन करते हुए लिखित रिपोर्ट दाखिल की गयी थी जिसमें अभिकथन किया गया था कि सरकारी धन का दुरुपयोग हुआ है। अनियमितताओं की जाँच की गयी थी। की गयी अनियमितताएँ सड़क के निर्माण/मरम्मत और तालाब खोदने निर्माण के संबंध में थी। मापी के बाद, पाया गया था कि काम चिन्हित स्तर तक नहीं था। यह भी अभिकथित किया गया था कि गलत बजट तैयार किया गया था और उक्त गलत बजट के आधार पर सरकार ने 1,04,81,900/- (एक करोड़ चार लाख इक्यासी हजार नौ सौ) रुपयों की राशि मंजूर किया था जिसमें 54,98,892/- (चौवन लाख अंठानवे हजार आठ सौ बानवे) रुपयों की राशि गबन कर ली गयी थी। उक्त रिपोर्ट के आधार पर याची और विभाग के दो अन्य अभियंताओं के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची को इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है और उसके विरुद्ध लगाए गए समस्त अभिकथन झूठे और निराधार हैं। यह निवेदन भी किया गया है कि प्राथमिकी में याची के विरुद्ध किए गए अभिकथन केवल दो व्यक्तियों अर्थात् कार्यपालक दंडाधिकारी श्री अमरेन्द्र कुमार और कार्यपालक अभियंता, आर॰ ई॰ ओ॰, श्री बी॰ के॰ सिंह के रिपोर्ट पर आधारित है। निवेदन किया गया है कि उन व्यक्तियों ने कभी सशरीर साइट का दौरा नहीं किया और न ही अभिकथन सत्यापित किया किंतु रिपोर्ट प्रस्तुत किया है जो संपूर्ण अभियोजन का आधार है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि दांडिक मामले की भाँति ही उन्हीं आरोपों पर याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही भी शुरु की गयी थी। याची को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। याची के विरुद्ध संपूर्ण विभागीय कार्यवाही शुरु की गयी थी। कार्यवाही के समापन के बाद, याची को दिनांक 5.7.2006 के आदेश के तहत विभागीय कार्यवाही से विमुक्त कर दिया गया था। यह प्रतिवाद भी किया गया है कि इस निष्कर्ष कि जाँच टीम जिसने 54,98,892/- (चौवन लाख अठानवे हजार साठ सौ बानवे) रुपयों के गबन के बारे में कथन करते हुए आरंभिक रिपोर्ट प्रस्तुत किया था जो सही नहीं था क्योंकि कार्य का मापन विस्तृत रूप से नहीं किया गया था, पर आने के बाद संबंधित विभाग द्वारा विभागीय कार्यवाही बन्द कर दी गयी थी। निवेदन किया गया था कि वर्तमान प्राथमिकी जो याची एवं अन्य के अभियोजन के लिए रिपोर्ट का आधार है, निराधार है और अपास्त किए जाने योग्य है।

4. दूसरी ओर निगरानी के विद्वान अधिवक्ता, श्री शेखर सिन्हा ने निवेदन किया है कि याची प्राथमिकी में नामित है और याची के विरुद्ध किए गए अभिकथन से प्रकट है कि यह कूटरचना का मामला है। यह निवेदन भी किया गया है कि वर्तमान में अन्वेषण जारी है और इसलिए दांडिक विविध याचिका खारिज किए जाने योग्य है। इस संदर्भ में विद्वान अधिवक्ता ने **केंद्रीय जाँच ब्यूरो बनाम लक्ष्मी धौल,**

(2007)XIV SCC 497, में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि मामले का परीक्षण और पुलिस अन्वेषण का अभिखंडन करने में उच्च न्यायालय न्यायोचित नहीं था। अत:, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि संपूर्ण दांडिक कार्यवाही, जिसमें अन्वेषण जारी है, अभिखंडित करने के लिए दाखिल वर्तमान दांडिक विविध याचिका को इस चरण पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता है।

5. मेरे मत में, दांडिक कार्यवाही और अनुशासनिक कार्यवाही में दृष्टिकोण और लक्ष्य भिन्न और सुभिन्न है। अनुशासनिक कार्यवाही में प्रश्न यह होता है कि क्या अवचारी ऐसे आचरण का दोषी है जिसका परिणाम सेवा से उसे हटाए जाने अथवा कमतर दंड, जैसा भी मामला हो, में होगा जबकि दांडिक कार्यवाही में प्रश्न यह होता है कि क्या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम अथवा भा॰ दं॰ सं॰ के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध दर्ज अपराध, अगर कोई हो, स्थापित किए गए हैं या नहीं और यदि स्थापित किए गए हैं, उन पर वैसा दंडादेश अधिरोपित किया जाना चाहिए। जाँच और विचारण को शासित करने वाले प्रमाण के स्तर, जाँच का ढंग और नियम पूर्णत: भिन्न और सुभिन्न है।

6. प्राथमिकी के विषय वस्तु से मैं पाता हूँ कि याची प्राथमिकी में नामित है और इस अपराध में उसकी अंतर्ग्रस्तता के संबंध में उसके विरुद्ध पर्याप्त सामग्री/अभिकथन है।

7. पूर्वोक्त कारणों से, मैं इस चरण पर प्राथमिकी और संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने का कोई कारण नहीं पाती हूँ। तद्नुसार यह दांडिक विविध याचिका खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

नरेश साव उर्फ नरेश साह

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 763 of 2010. Decided on 21st April, 2011.

किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 12—केवल इस आधार पर जमानत आवेदन खारिज कर दिया गया कि अपराध जघन्य प्रकृति का था और अपीलार्थी को किशोर घोषित करने का मामला उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायाधीन था—पक्षों के बीच दुश्मनी और याची को झूठा आलिप्त करने से इनकार नहीं किया जा सकता है—मामला जाँच के चरण पर है और याची लगभग एक वर्ष नौ माह से अभिरक्षा में है—उसने दोषसिद्धि के बिना ही दंडादेश का आधा भाग से अधिक पहले ही भुगत लिया है—जमानत प्रदान किया गया। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.—Mr. Mahesh Tewari, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

यह दांडिक पुनरीक्षण दांडिक अपील सं॰ 22 वर्ष 2010 में सत्र न्यायाधीश, साहिबगंज द्वारा पारित दिनांक 24.6.2010 के आक्षेपित आदेश को अपास्त करने के लिए किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 53 के अधीन दाखिल किया गया है जिसके द्वारा किशोर न्याय बोर्ड साहिबगंज द्वारा याची के जमानत की प्रार्थना की अस्वीकृति अभिपुष्ट की गयी थी और अपील खारिज कर दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि याची-किशोर के विरुद्ध प्रत्यक्ष अभिकथन था कि उसने सूचक के भतीजा पर दो गोलियों चलायी थी जिसके परिणामस्वरूप उपहतियों से उसकी मृत्यु हो गयी थी। याची की किशोरावस्था को चुनौती दी गयी थी किंतु न्यायालय ने दांडिक अपील सं॰ 475 वर्ष 2010 में याची को दिनांक 19.8.2010 के आदेश द्वारा किशोर पाया था।

3. याची की जमानत की प्रार्थना को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा केवल इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि अभिकथित अपराध जघन्य प्रकृति का था और अपीलार्थी (याची) को किशोर के रूप में घोषित करने का मामला इस न्यायालय के समक्ष लंबित था। आगे संप्रेक्षित किया गया था कि याची की निर्मुक्ति न्याय के उद्देश्य को पराजित करेगी और पक्षों के बीच दुश्मनी थी। अंत में, सत्र न्यायाधीश द्वारा कथन किया गया था कि याची की निर्मुक्ति उसे नैतिक, शारीरिक और मानसिक खतरों के प्रति खुला छोड़ देगी।

4. याची-किशोर की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री तिवारी ने निवेदन किया कि विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा कोई कारण नहीं दिया गया है कि याची निर्मुक्त होने पर किस तरीके से नैतिक, शारीरिक और मानसिक खतरों के प्रति खुला छूट जाएगा। सत्र न्यायाधीश ने पक्षों के बीच दुश्मनी स्वीकार किया है और इसलिए याची को झूठा आलिप्त किए जाने से इनकार नहीं किया जा सकता है। मामला जाँच के चरण पर है और याची लगभग एक वर्ष नौ माह से अभिरक्षा में है और उस तरीके से उसने दंडादेश का आधा से अधिक पहले ही भुगत लिया है यद्यपि विधि के सक्षम न्यायालय द्वारा उसे अभी तक दोषसिद्ध नहीं किया गया है। याची का मामला किसी भी तरीके से अधिनियम की धारा 12 के परंतुक के अंतर्गत नहीं आता है ताकि उसकी जमानत के लिए याची के सांविधिक अधिकार से इनकार किया जा सके।

5. मामले के गुणागुण को छुए बिना, तथ्यों और परिस्थितियों में, याची नरेश साव उर्फ नरेश साह को साहिबगंज (टी॰) पी॰ एस॰ केस सं॰ 124 वर्ष 2009, जी॰ आर॰ सं॰ 263 वर्ष 2009 (ई॰ सं॰ 101 वर्ष 2001) के तत्सम, के संबंध में किशोर न्याय बोर्ड, साहिबगंज के संतोषानुसार समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ 10,000/- (दस हजार) रुपये का जमानत बंधपत्र निष्पादित करने पर इस शर्त के साथ निर्मुक्त किए जाने का निर्देश दिया जाता है कि याची के माता-पिता जमानदार होंगे जो उसकी देखभाल करेंगे और जाँच समाप्त होने तक अथवा किशोर न्याय बोर्ड द्वारा सुझाए गए प्रत्येक माह के पहले सप्ताह में या किसी अन्य तिथि पर जे॰ जे॰ बोर्ड को जब और जैसी जरूरत पड़ने पर उसे प्रस्तुत करेंगे।

इस संप्रेक्षण के साथ, यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं प्रकाश तातिया, न्यायमूर्ति

यूनियन क्लब, धनबाद

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 848 of 2011. Decided on 20th April, 2011.

अभिधृति–बेदखली–पट्टा–मात्र सांविधिक प्राधिकारी को किराया का भुगतान याची को पट्टाधारी होने का अधिकार नहीं देगा–सांविधिक प्राधिकारीगण मात्र लगान स्वीकार करके पट्टा सृजित नहीं कर सकते हैं–रिट इप्सित करके अवैध कब्जा को सुरक्षित नहीं किया

जा सकता है–याची को परिसर खाली करने की नोटिस दी गई थी–पदधारियों से साँठ-गाँठ करके पट्टा का नवीकरण किया गया था–अनुच्छेद 226 के अधीन विवादित तथ्य के प्रश्नों को विनिश्चित नहीं किया जा सकता है–याचिका खारिज। (पैराएँ 3, 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.–(1989) 2 SCC 505; (1996) 4 SCC 144; (2002) 4 SCC 134; (2010)8 SCC 383—Distinguished.

अधिवक्तागण.–Mr. P.K. Prasad, For the Petitioner; Mr. R. R. Mishra, For the Respondent State; M/s Niranjan Singh, O.P. Singh, For the Zila Parishad, Dhanbad.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची क्लब एक पट्टा और इसके दो पश्चातवर्ती नवीकरण के अधीन अधिकारों का दावा करते हुए रिट याचिका में इस न्यायालय के समक्ष आया है। इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न उठाया गया था कि क्या कोई पट्टा वस्तुतः था? याची द्वारा मूल दस्तावेज को कभी प्रस्तुत नहीं किया गया था। मूल के बारे में पूछे जाने पर याची ने मूल पट्टा विलेख को प्रस्तुत करने में अक्षमता दर्शाया। राज्य को यह अन्वेषण करने के लिए कहा गया था कि क्या कभी कोई मूल पट्टा था। पूरी छानबीन के बाद राज्य ने कहा है कि पट्टा, जिसके अस्तित्व का दावा किया जा रहा है, का अस्तित्व धनबाद जिला के रजिस्ट्रार कार्यालय में और पुरुलिया (पश्चिम बंगाल) जो धनबाद के लिए मूल जिला था, के कार्यालय में भी नहीं था। अतः, सरकार के उत्तर के अनुसार मूल पट्टा विलेख का अस्तित्व न केवल संहेदास्पद प्रतिपादना है बल्कि पट्टा रजिस्टर करने के लिए रजिस्ट्रार के कार्यालय के रजिस्टरों में कहीं भी इसका स्थान नहीं पाया गया था। अतः यह प्रश्न कि क्या याची को पट्टा दिया भी गया था एक संदेहास्पद प्रश्न है और याची का मामला मूल पट्टा विलेख के प्रति पर आधारित है जो याची द्वारा प्रत्यर्थी राज्य को दी गई है और राज्य ने यह दर्शाते हुए अभिलेख पर दस्तावेज दाखिल किया है कि याची द्वारा इस प्रकार का दस्तावेज राज्य के समक्ष प्रस्तुत किया गया है तथा इस प्रकार का दस्तावेज धनबाद अथवा पुरुलिया में कभी रजिस्टर्ड नहीं किया गया था। अतः, स्वयं पक्षों के अनुसार मूल पट्टा का अस्तित्व मात्र ही संदेहास्पद प्रतिपादना है और याची के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों की ताकत पर आग्रह किया कि चूँकि विस्तारण है, यह उपधारित किया जाना चाहिए कि पट्टा भी अस्तित्व में था। ऐसी कोई उपधारणा नहीं की जा सकती है जब मूल का अस्तित्व ही संदेहास्पद है क्योंकि ऐसी उपधारणा केवल तब उपलब्ध होगी जब यह संकेत अथवा सदृश है कि मूल कमी मौजूद था। याची के पक्ष में पट्टा का अस्तित्व ही संदेहास्पद प्रतिपादना है।

3. अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग में हम नहीं समझते हैं कि यह न्यायालय कभी भी याची को बचाने आगे आएगा जो यह तथ्य स्थापित करना चाहता है जो आस्तित्वहीन हो सकता है किंतु स्थापित किया जा सकता है अथवा जिसे साक्ष्य देकर स्थापित करने का प्रयास किया जा सकता है और उसके लिए, फोरम है और न कि अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका। याची का दावा कि वह जिला बोर्ड अथवा जिला परिषद् को किराया का भुगतान कर रहा है, के संबंध में यह कहना पर्याप्त है कि सांविधिक प्राधिकारीगण मात्र किराया स्वीकार करके पट्टा सृजित नहीं कर सकते हैं। वे विधि का अनुसरण करने के लिए बाध्य हैं जैसा स्वयं विद्वान अधिवक्ता द्वारा उपदर्शित किया गया है कि जिला परिषद् अधिनियम, 1993 की धाराओं 78 और 79 के अधीन प्रावधान है कि जहाँ जिला परिषद् पट्टा सृजित कर सकता है किंतु ऐसा पट्टा सृजित नहीं किए जाने के कारण मात्र किराया स्वीकार करके यह नहीं

कहा जा सकता है कि याची को पट्टाधारी में परिवर्तित किया जा सकता है और मामले के उस दृष्टिकोण में अगर याची के पास हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के आधार पर, उसके पक्ष में निश्चित निश्चयात्मक टाइटल नहीं है, तब यह कहा जा सकता है कि वह गैर कानूनी रूप से काबिज है। अनुच्छेद 226 के अधीन अवैधता स्थायी नहीं बनायी जा सकती है क्योंकि रिट इप्सित करते हुए अवैध कब्जा को सुरक्षित नहीं किया जा सकता है। यह न्यायालय महसूस करता है कि इस न्यायालय के पास आकर याची ने गलत फोरम चुना है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए मामले दर्शाते हैं कि उन्हें जो ऐसे टाइटलों पर काबिज हैं जिनको विधि में कुछ पवित्रता है, को कार्यपालिका के आदेश द्वारा कब्जाविहीन नहीं करना चाहिए। इस संबंध में याची ने **1989 (2) SCC 505** में प्रकाशित मामले पर विश्वास किया है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 30 में अभिनिर्धारित किया है कि पट्टेकर्ता को न्यायिकेतर रूप से बल के प्रयोग द्वारा कब्जा वापस लेने का कोई अधिकार नहीं है। यह मामला स्वयं अपने बारे में कथन करता है क्योंकि इस मामले में अधिकथित विधि लागू करने के पहले पट्टाधारी को अस्तित्व में होना होगा। इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 28 में इसे अभिनिर्धारित किया है कि तद्नुसार, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि इस प्रश्न कि क्या तात्पर्यित समपहरण और पट्टा का रद्दकरण वैध था या नहीं, इसको अनुच्छेद 226 के अधीन कार्यवाही में उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी। अनुच्छेद 226 के अधीन ऐसे प्रश्नों का उठाया जाना वर्जित किया गया है और याची का मामला ही तथ्यों के विवादित प्रश्न पर आधारित है और, इसलिए, यह मामला प्रयोज्य नहीं है।

5. आगे याची ने **1996 (4) SCC 144** में प्रकाशित मामले पर विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि करार के अधीन काबिज किसी व्यक्ति को आनन-फानन में बेदखल करने की अपेक्षा नहीं की जाती है। यहाँ भी करार नहीं है। यह संदेहास्पद पट्टा है बल्कि, अस्तित्वहीन पट्टा है जिसे वैध अथवा अवैध रूप से नवीकृत किया गया है। इस विवाद को रिट अधिकारिता में विनिश्चित नहीं किया जा सकता है।

6. विद्वान अधिवक्ता द्वारा **2002 (4) SCC 134** में प्रकाशित एक अन्य मामले पर विश्वास किया गया है। यहाँ पुनः पैरा 11 पर विद्वान अधिवक्ता जोर देते हैं कि किसी पट्टेदार को कार्यपालिका के ओदश पर बेदखल नहीं किया जा सकता है। हमें भय है कि यहाँ ऊपर दर्ज तर्कों के मुताबिक याची को पट्टाधारी माना ही नहीं जा सकता है। तथ्यों के विवादित प्रश्न की दृष्टि में, यह मामला प्रयोज्य नहीं है।

7. विद्वान अधिवक्ता ने **2010 (8) SCC 383** में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित मामले पर आगे विश्वास किया है जिसमें पैराग्राफ 46 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अतिचारी को भी बलपूर्वक बेदखल नहीं किया जा सकता है। इसके बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता कि किसी अतिचारी को विधि की सम्यक् प्रक्रिया के बिना बेदखल नहीं किया जा सकता है। यहाँ हम अभिलेख पर पाते हैं कि याची को परिसर खाली करने की नोटिस दी गयी थी। अतः, वह इस नोटिस के बिना नहीं था कि उसे प्रश्नगत भूमि से बेदखल किया जाना है। याची को वर्ष 2009 से ही नोटिस देना शुरू किया गया था। अतः, याची नोटिस के अधीन था। किसी भी स्थिति में, हम नहीं पाते हैं कि कोई वैध पट्टा था जिसे प्रस्तुत करने में याची विफल रहा है और राज्य सरकार हमारे समक्ष निश्चित उत्तर के साथ आयी है कि संबंधित रजिस्ट्रार के साथ कोई पट्टा विलेख कभी नहीं रजिस्टर्ड किया गया था। यह प्रकट करता है कि पट्टा का नवीकरण पदधारियों की साँठ-गाँठ से किया गया था जिन्होंने उपधारित किया कि नया पट्टा प्रदान करने के बजाय ऐसे पट्टा जो अस्तित्वहीन है, का सहारा लेना बेहतर है।

8. पूर्वोक्त तथ्य की दृष्टि में, हम पाते हैं कि तथ्य के विवादित प्रश्न है जिन्हें अनुच्छेद 226 के अधीन विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 226 के अधीन अवैधता स्थायी नहीं बनायी जा सकती है क्योंकि रिट इप्सित करके अवैध कब्जा को सुरक्षा प्रदान नहीं किया जा सकता है। हम नहीं समझते हैं कि यह याचिका इस न्यायालय द्वारा ग्रहण किए जाने की दायी है।

तद्नुसार, इस याचिका को खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

गोपाल चंद्र घोष

बनाम

रानी घोष एवं अन्य

W.P. (C) No. 1298 of 2011. Decided on 18th April, 2011.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VI, नियम 17—लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन की अस्वीकृति—लिखित कथन में प्रस्तावित संशोधन वाद की प्रकृति में परिवर्तन नहीं लाएगा—स्वयं संशोधन करने के चरण पर गुणागुण पर संशोधन को दरकिनार नहीं किया जा सकता है—अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर संशोधन को ठुकराया जा सकता है—आक्षेपित आदेश अभिखंडित किया गया। (पैराएँ 5 एवं 6)

निर्णयज विधि.—AIR 1978 SC 484; AIR 1967 SC 96—Referred.

अधिवक्तागण.—Mr. Rohit Roy, For the Petitioner; M/s P.K. Sinha, M. Sinha, R. R. Sinha, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका टाइटल वाद सं॰ 277 वर्ष 2005 में सब-जज-II, राँची द्वारा पारित दिनांक 22 जनवरी, 2011 के आदेश के विरूद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा, मूल प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा लिखित कथन में संशोधन के लिए की गयी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी है।

2. याची के अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया है कि याची मूल प्रतिवादी सं॰ 1 है, जो वाद संपत्ति पर काबिज है, जिसे आइटम सं॰ 1 में बताया गया है, और जो अब पेट्रोल पंप है और इसलिए निम्नलिखित प्रस्तावित संशोधन किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:—

> *"38(a) कि चूँकि राँची झारखण्ड राज्य की राजधानी बन गया है, शहर में वाहनों की संख्या अचानक बढ़ गयी है और परिणामस्वरूप डीजल, पेट्रोल और अन्य पेट्रोलियम उत्पादों का उपभोग भी बढ़ गया है। अब उन सारे वाहनों की जगह देना मुश्किल हो गया है जो पेट्रोल/डीजल खरीदने पेट्रोल पंप पर आते हैं। यदि वादी को उसके 1/3 हिस्सा के बदले अनुसूची की आइटम सं० 1 में भूमि आवंटित किया जाता है, व्यवसाय करने में मुश्किल होगी। अतः प्रतिवादी सं० 1 अर्थात मुझे वाद पत्र की अनुसूची के आइटम सं० 1 में वर्णित संपूर्ण संपत्ति को रखे रहने की अनुमति दी जाए जिसके बदले में प्रतिवादी को धन का भुगतान किया जा सकता है अथवा अन्य भूमि/संपत्ति से वादी की क्षतिपूर्ति की जा सकती है।''*

3. मूल प्रतिवादी सं॰ 1 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया है कि इस प्रार्थना को करने पर, जैसा लिखित कथन के प्रस्तावित पैराग्राफ सं॰ 38(a) में कथित किया गया है, मूल वादी पर कोई प्रतिकूलता कारित नहीं होगी और न ही यह वाद की प्रकृति को बदलेगा और इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा ऐसा संशोधन अनुज्ञात किया जाना चाहिए था। वाद अंतत: दिए गए साक्ष्य के आधार पर विनिश्चित किया जाना है। प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा दाखिल संशोधन आवेदन को अनुज्ञात मात्र करके मूल वादी के अधिकार को कम किया गया नही कहा जा सकता है और न ही यह वाद की प्रकृति बदलेगा।

4. प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि मूल वादी प्रश्नगत संपत्ति के सह-अंशधारियों में से एक की विधवा है जिसे वाद में आइटम सं॰ 1 में विशेषत: कथन किया गया है। आगे कथन किया गया है कि संशोधन वाद की प्रकृति बदल देगा और वादी के पक्ष से एक गवाह का परीक्षण भी पहले किया जा चुका है। अत:, विद्वान विचारण न्यायालय ने लिखित कथन में संशोधन के लिए आवेदन को सही प्रकार से ठुकरा दिया है। प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने **AIR 1978 SC 484** और **AIR 1967 SC 96** में प्रकाशित दो मामलों पर विश्वास किया है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि लिखित कथन में नया विचार अंत: स्थापित नहीं किया जा सकता है चूँकि लिखित कथन के पैराग्राफ 38(a) के रूप में प्रस्तावित संशोधन में प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा प्रार्थना की गयी है कि उसका 1/3 हिस्सा है।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले के तथ्यों को देखने पर प्रतीत होता है कि लिखित कथन में प्रस्तावित संशोधन वाद की प्रकृति नहीं बदलेगा। इसके अतिरिक्त, यदि मूल प्रतिवादी का मामला उच्चतम पिच पर लिया जाता है, जैसा याची (मूल प्रतिवादी सं॰ 1) के अधिवक्ता द्वारा कथित किया गया है, पैराग्राफ 38 में जो भी सुझाया गया है वह और कुछ नहीं, अनुरोध है क्योंकि बँटवारा वाद सं॰ 277 वर्ष 2005 में आइटम सं॰ 1 पर वर्णित संपत्ति पूर्णत: मूल प्रतिवादी सं॰ 1 के कब्जा में है, जो एक पेट्रोल पंप है और इसलिए, यदि विचारण न्यायालय संपत्ति को आइटम सं॰ 1 के रूप में द्विभाजित कर रहा है, तब इसे मूल प्रतिवादी सं॰ 1 के हिस्सा में दिए गए अंश के साथ पेट्रोल पंप के रूप में प्रबंधित करना मुश्किल हो जाएगा, और इसलिए, संशोधन के जरिए विचारण न्यायालय से केवल यह प्रार्थना की गयी है कि यदि विचारण न्यायालय आइटम सं॰ 1 पर की संपत्ति याची को दे रहा है, जिसके लिए याची आनुषंगिक रूप से हकदार है, तब आइटम सं॰ 1 पर की संपत्ति का शेष भाग भी याची को दिया जा सकता है ताकि याची पेट्रोल पंप के रूप में संपत्ति का प्रभावकारी और कुशलतापूर्वक उपयोग कर सके और अन्य सह-अंशधारियों को धनीय क्षतिपूर्ति दी जा सकती है, जहाँ तक आइटम सं॰ 1 का संबंध है। स्वयं संशोधन करने के चरण पर गुणागुण पर संशोधन को ठुकराया नहीं जा सकता है किंतु अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर संशोधन को ठुकराया जा सकता है। विचारण न्यायालय द्वारा मामले के इस पहलू का समुचित अधिमूल्यन नहीं किया गया है।

6. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए निर्णयों को देखते हुए और वर्तमान मामले के इस प्रभाव के विचित्र तथ्यों को भी देखते हुए कि मूल प्रतिवादी सं॰ 1 लिखित कथन में संशोधन इप्सित कर रहा है और प्रार्थना के अंश को भी देखते हुए जो लिखित कथन के पैराग्राफ 38(a) में प्रस्तावित संशोधन में सुझाया गया है, वह कुछ और नही बल्कि आइटम सं॰ 1 के रूप में संपूर्ण संपत्ति के आवंटन के लिए विचारण न्यायालय से की गयी प्रार्थना मात्र है जैसा बँटवारा वाद सं॰ 277 वर्ष 2005 में कथन किया गया है और मूल प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा और कुछ भी दावा नहीं किया जा रहा है। इस तथ्य को देखते

हुए, सारा कुछ जो साक्ष्य पर निर्भर करता है, विचारण न्यायालय प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा किए दावा को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकता है। मैं एतद् द्वारा दिनांक 22 जनवरी, 2011 को विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त और अभिखंडित करता हूँ। मैं आगे निर्देश देता हूँ कि आज के दिन से पंद्रह दिनों के भीतर मूल प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा व्यय के रूप में 1000/- रुपया जमा किया जाएगा। मैं विचारण न्यायालय को आगे निर्देश देता हूँ कि वह इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर शीघ्रातिशीघ्र बँटवारा वाद सं॰ 227 को निपटाए।

7. तद्नुसार, पूर्वोक्त संप्रेक्षण के साथ रिट याचिका को निपटाया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

अजय तिर्के

बनाम

झारखंड राज्य

Cr. M.P. No. 17 of 2011. Decided on 25th April, 2011.

(क) रेलवे अधिनियम, 1989—धाराएँ 145/146 एवं 147—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—अभिकथित अपराध का मामला रेलवे न्यायिक दंडाधिकारी के विशेष न्यायालय के समक्ष दर्ज किया गया जिसमें क्षेत्रीय अधिकारिता निहित थी–उसकी पोषणीयता के बारे में उसमें कोई अवैधता अथवा अनियमितता नहीं जो हस्तक्षेप के लिए कहती हो। (पैरा 6)

(ख) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 325, 307 एवं 353 सह-पठित धारा 34—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 162, 173 और 482—हत्या का प्रयास–सामान्य विधि के अधीन किए गए अपराध का संज्ञान लेने की क्षेत्रीय अधिकारिता सी॰ जे॰ एम॰, राँची को है–सूचक का बयान, जिस पर संज्ञान का आदेश आधारित था, को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 162 के अधीन सूचक के बयान के रूप में अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है जो इसे अभिखंडित करने के लिए हस्तक्षेप की अपेक्षा करे–याचिका खारिज। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Pratius Lala, For the Petitioner; A.P.P., For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 143/147/148/341/323/325/307/353/34 के अधीन अभिकथित अपराधों के लिए दिनांक 4.8.2008 को जगरनाथपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 125 वर्ष 2008, जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन पुलिस रिपोर्ट की प्रतीक्षा करते हुए सी॰ जे॰ एम॰, राँची के न्यायालय के जेनरल रजिस्टर में जी॰ आर॰ सं॰ 2976 वर्ष 2008 के रूप में संख्यांकित किया गया था, के रूप में दर्ज प्राथमिकी के अभिखंडन के लिए इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि राँची डिविजन के अधीन दक्षिण-पूर्व रेलवे, हटिया के वरीय सेक्शन इंजीनियर, श्री हरि प्रमोद के बयान के आधार पर परिवादी श्री आर॰ के॰ पांडे, ए॰ एस॰ आई॰, आर॰ पी॰ एफ॰ द्वारा रेलवे न्यायिक दंडाधिकारी, हटिया के समक्ष परिवाद मामला दर्ज किया गया था जिसमें उसने कथन किया था कि दिनांक 4.8.2008 को वह श्री के॰ के॰ राव, डिविजनल इंजीनियर, राँची, श्री बी॰ एम॰ राव, सहायक डिविजनल इंजीनियर (स्थापना), राँची और श्री गणेश प्रसाद जूनियर इंजीनियर ग्रेड-I, हटिया के साथ प्रात: 10.30 बजे राँची-खूँटी रोड के बगल में अवस्थित रेलवे भूमि पर रेलवे का काम करवाने के लिए सोलंकी मोड़ गया। यह कथन किया गया था कि जब चारदीवारी खड़ा

करने का काम प्रगति में था, इसी बीच, याची अजय तिर्के सहित समस्त चारों नामित अभियुक्तगण लाठी, बाँस और लोहे की छड़ से लैस 40-50 महिला-पुरुष सहयोगियों के साथ वहाँ जमा हुए और यह कहते हुए कि वे वहाँ चारदीवारी खड़ा करने की अनुमति नहीं देंगे, वहाँ उपस्थित रेलवे अधिकारियों को काम रोकने को कहा। जब गवाहों ने हमलावर को शांत करने और समझाने की कोशिश की, यह अभिकथित किया गया है कि उन्होंने गवाहों की जान लेने का प्रयास किया जिसके परिणामस्वरुप गवाह भागने लगे, फिर भी उन पर याची और नामित अभियुक्तगण सहित भीड़ द्वारा हमला किया गया था और विनिर्दिष्टत: कहा गया था कि अभियुक्त त्रिपुरारी शर्मा लोहे का रॉड पकड़े था और याची सहित अन्य अभियुक्त लाठी और पत्थर से लैस थे। हरि प्रमोद के मस्तक पर त्रिपुरारी शर्मा द्वारा लोहे की छड़ से वार किया गया था, अभियुक्त देवेन्द्र शर्मा ने सह-अभियुक्तगण के साथ रेलवे के वरीय अधिकारियों पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरुप वे चारों उपहति प्राप्त करके जमीन पर गिर गए। विधि विरुद्ध जमाव के सदस्यों ने उन पर लाठी और पत्थर से प्रहार किया, किंतु, वे नजदीक के मुहल्ला से व्यक्तियों के आने पर बच गए। उन्हें रेलवे अस्पताल, हटिया में भरती किया गया था जहाँ उनका उपचार जारी रहा। बयान के आधार पर रेलवे अधिनियम, 1989 की धाराओं 145/146 और 147 के अधीन रेलवे न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के समक्ष दिनांक 4.8.2008 को परिवाद दर्ज किया गया था।

3. विद्वान अधिवक्ता प्रत्युष लाला ने निवेदन किया कि घटना के इसी संवर्ग के लिए जगरनाथपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 125 वर्ष 2008 को उद्भूत करते हुए उसी दिन अर्थात् दिनांक 4.8.2008 को प्रात: 11 बजे हरि प्रमोद के 'फर्दबयान', जो रेलवे न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष आर॰ पी॰ एफ॰ के ए॰ एस॰ आई॰ द्वारा दर्ज परिवाद का भी आधार था, पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 143/147/148/341/323/325/307/353/34 के अधीन याची अजय तिर्के और 40-50 अज्ञात महिला-पुरुष सहित समस्त चारों नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध एक भिन्न मामला संस्थापित किया गया था। दिनांक 4.8.2008 को लगभग प्रात: 11.30 बजे रेलवे अस्पताल, हटिया में हरि प्रमोद द्वारा समरुप बयान दिया गया था जिसके आधार पर दिनांक 4.8.2008 को दोपहर 2/3 बजे प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। हरि प्रमोद के 'फर्दबयान' पर अन्य पीड़ितों ने भी हस्ताक्षर किया था।

4. इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लेते हुए वर्तमान मामले में याची की शिकायत यह है कि घटना के एक ही संवर्ग से उद्भूत होने वाले मामले के लिए दो भिन्न प्राधिकारियों के समक्ष दो मामले दर्ज नहीं किए जा सकते हैं। विद्वान अधिवक्ता, श्री लाला ने निवेदन किया कि जब रेलवे अधिनियम, 1989 की धाराओं 145, 146 और 147 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दिनांक 4.8.2008 को परिवाद केस सं॰ C-4/57/08 उद्भूत करता मामला रेलवे न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष संस्थापित किया जा चुका था, उसी सूचक/परिवादी के बयान पर जगरनाथपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 125 वर्ष 2008 के तहत दर्ज पश्चातवर्ती मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के अधीन वर्जित है और इसलिए जगरनाथपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 125 वर्ष 2008 का पश्चातवर्ती मामला पोषणीय नहीं है और अभिखंडित किए जाने का दायी है।

5. राज्य की ओर से विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को सुना गया।

6. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह सुनिश्चित विधि है कि विशेष विधि सामान्य विधि पर अभिभावी होती है। स्वीकृत रूप से, विशेष विधि अर्थात् रेलवे अधिनियम से उद्भूत होने वाले अपराध का संज्ञान क्षेत्रीय अधिकारिता रखने वाले रेलवे न्यायिक दंडाधिकारी के विशेष न्यायालय में निहित है। तद्नुसार, परिवाद दाखिल करके रेलवे न्यायिक दंडाधिकारी के विशेष न्यायालय के समक्ष अभियुक्तगण के विरुद्ध रेलवे अधिनियम के अधीन अभिकथित अपराध के लिए मामला दर्ज किया गया

था और मैं उक्त न्यायालय के समक्ष इसकी पोषणीयता के बारे में उसमें कोई अनियमितता अथवा अवैधता नहीं पाता हूँ जो हस्तक्षेप के लिए कहता हो। जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धाराओं 143/147/148/341/323/325/307/353/34 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए जगरनाथपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 125 वर्ष 2008 के तहत सामान्य विधि के अधीन उसी दिन उसी परिवादी/सूचक के फर्दबयान के आधार पर पुलिस मामला के संस्थापन का संबंध है, सामान्य विधि के अधीन किए गए अपराध का संज्ञान लेने के लिए सी॰ जे॰ एम॰, राँची को क्षेत्रीय अधिकारिता है और इसलिए मैं एक ही परिवादी/सूचक के कहने पर जगरनाथ पुलिस थाना में प्राथमिकी के संस्थापन में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ। दोनों न्यायालयों की सुभिन्न क्षेत्रीय अधिकारिता है। सूचक के बयान, जिसने भारतीय दंड संहिता के अधीन दर्ज जगरनाथपुर, पुलिस केस को उद्‌भूत करते हुए संज्ञेय अपराध को प्रकट किया जिसे सी॰ जे॰ एम॰ को अग्रसारित किया गया, पर सामान्य विधि के अधीन किए गए अपराध का संज्ञान लेने की अधिकारिता सी॰ जे॰ एम॰, राँची को है और मेरे दृष्टिकोण में इसे दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 162 के अधीन सूचक का बयान अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है जो इसे अभिखंडित करने के लिए हस्तक्षेप की अपेक्षा करता हो। दो सुभिन्न प्रकृति के अपराधों के लिए ऊपर बताए गए कारणों से रेलवे न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष समरुप बयान पर दाखिल परिवाद पोषणीय है। मैं कोई अवैधता अथवा अनियमितता अथवा दुर्बलता नहीं पाता हूँ जो जगरनाथपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 125 वर्ष 2008 के अभिखंडन का आदेश दर्ज करने के लिए हस्तक्षेप की अपेक्षा करता हो।

7. कोई गुणागुण नहीं होने पर, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

मो॰ नौशाद आलम

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 621 of 2007. Decided on 25th April, 2011.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 498A—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 177 एवं 482—क्रूरता–संज्ञान–मोटर साईकिल की अभिकथित मांग–परिवादी यह दर्शाने में विफल रही कि याची द्वारा अभिकथित घटना का कोई अंश मधुपुर न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत किया गया था–संज्ञान का आक्षेपित आदेश अधिकारिता द्वारा वर्जित है–संज्ञान का आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 10)

निर्णयज विधि.–2008 (3) JLJR (SC) 287—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Jitendra Nath, Sandhya Sahay, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Arvind Kumar Choudhary, For the O.P. No.2.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–याची ने पी॰ सी॰ आर॰ सं॰ 399 वर्ष 2006 में एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर, देवघर द्वारा पारित दिनांक 22.3.2007 के आदेश, जिसके द्वारा उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, के अभिखंडन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लिया है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 2 ने ''निकाह,'' जिसे दिनांक 23.4.2002 को संपन्न किया गया था, के अनुसरण में याची-नौशाद आलम की पत्नी होने का दावा किया और उनके विवाहोत्तर संभोग के बाद उनकी दो संताने हुईं, जिसमें से एक पुत्र और दूसरी पुत्री है। परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 2 ने अभिकथित किया कि विगत तीन वर्षों से याची पति उसे अपने पैतृक घर से हीरो होण्डा मोटरसाईकिल लाने के लिए मांग कर रहा था और इस संबंध में वह उसे शारीरिक और मानसिक क्रूरता के अध्यधीन किया करता था। उसके पिता को मामला सूचित किया गया जो याची के घर आया और मामला शांत कराने का प्रयास किया और अपनी पुत्री को रखने और देखभाल करने का अनुरोध उससे किया और तब वापस चला गया। पिता के वापस लौट जाने के बाद अभियुक्त परिवादी के प्रति और भी हिंसक हो गया जिसके परिणामस्वरुप वह बीमार हो गयी किंतु कोई उपचार नहीं किया गया था। उसका पिता आया और उसने उसका ईलाज करवाया। यह अभिकथित किया गया था कि दिनांक 17.6.2006 को समस्त अभियुक्तगण ने उसके सारे गहनों को रख लिया और पति-याची मो॰ नौशाद आलम उसे उसकी दो संतानों के साथ मधुपुर ले गया और यह धमकाते हुए कि यदि वह उसकी मांग पूरी करवाए बिना लौटेगी तो उसकी हत्या कर दी जाएगी, उन्हें मधुपुर रेलवे स्टेशन पर नि:सहाय छोड़ कर चला गया। उसके दांपत्य गृह में अपनी पुत्री की ''रुखसदी'' के लिए उसके पिता के समझाने-बुझाने का हर प्रयास विफल रहा और तब उसने अपनी पुत्री की व्यथा बताते हुए अंजुमन कमिटि के सचिव, अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को पत्र लिखा किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। किंतु, अभिकथित किया गया है कि घटना के दिए गए समय और तिथि पर अभियुक्तगण पन्हैयाटोला स्थित परिवादी के पैतृक घर पर आए और स्पष्ट शब्दों में धमकाया कि उनकी मांग की परिपूर्ति के बाद ही परिवादी को स्वीकार किया जाएगा और वापस लौट गए। आगे अभिकथित किया गया था कि याची पति ने धमकी दी कि विभिन्न राज्यों में झूठे मामले दर्ज करके परिवादी और उसके पिता को आलिप्त कर दिया जाएगा। अंत में, दिनांक 25.9.2006 को परिवादी मामला दर्ज करने पुलिस थाना गयी जिसे स्वीकार नहीं किया गया था किंतु बाद में तीन नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 323/379/498A/406 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए परिवाद मामला दर्ज किया गया था किंतु भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध के लिए केवल याची पति मो॰ नौशाद आलम के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था।

3. विद्वान अधिवक्ता, श्री जितेन्द्र नाथ ने केवल इस आधार पर आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा पति-याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था, का विरोध किया कि एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर, देवघर की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत अभिकथित घटना का कोई अंश घटित नहीं हुआ था और इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 177 के अधीन क्षेत्रीय अधिकारिता द्वारा अपराध का संज्ञान वर्जित है क्योंकि ऐसा करने के लिए एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर, देवघर अपनी सक्षमता के अंतर्गत नहीं थे। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि वस्तुत: घटना परिवादी द्वारा बताए गए तरीके से घटित नहीं हुई थी बल्कि याची-पति अपने घर उसे ले जाने के लिए बार-बार उसके पैतृक घर गया था और दिनांक 25.6.2006 को उसे अपनी पत्नी से मिलने तक नहीं दिया गया था और उसकी ''रुखसदी'' के लिए उसे पाँच अन्य व्यक्तियों के साथ आने के लिए कहा गया था। याची-पति को आशंका थी कि उसे किसी झूठे मामले में आलिप्त किया जा सकता है और, इसलिए, उसने समस्त प्रासंगिक तथ्यों का कथन करते हुए दिनांक 5.9.2006 के विविध आवेदन सं॰ 1897 वर्ष 2006 के तहत मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय गिरीडीह में सूचनात्मक याचिका दाखिल किया और सी॰ जे॰ एम॰,

गिरिडीह को सूचित किया कि उसकी पत्नी सबीना बेगम और उसके पिता के कहे जाने पर किसी दांडिक मामले में उसको झूठा आलिप्त करने का मौका था और भविष्य में उपयोग के लिए अभिलेख में सूचना को रखने का अनुरोध किया।

4. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि याची ने अपनी पत्नी और संतानों को भेजने के लिए उसको कहते हुए अपने ससुर मो॰ फरीउद्दीन को कानूनी नोटिस (परिशिष्ट-2) भेजा जैसा करने में विफल होने पर उसे सावधान किया गया था कि कानूनी कार्रवाई की जा सकती है। याची पति ने तब दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए मोहम्मडन विधि की धारा 281 के अधीन प्रिंसिपल जज, कुटुंब न्यायालय, गिरिडीह के समक्ष टाइटल (वैवाहिक) वाद सं॰ 163 वर्ष 2006 दाखिल किया जिसे ग्रहण किया गया था और परिवादी पत्नी को नोटिस जारी किया गया था। भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379/323 और 406 के अधीन अपराध के अन्य अभिकथनों पर विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर, देवघर द्वारा अविश्वास किया गया था और केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध का संज्ञान पति के विरुद्ध लिया गया था और दो अन्य अभियुक्तगण को विमुक्त कर दिया गया था और इस तरीके से, अभिकथनों के मुख्य अंश पर एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ द्वारा अविश्वास किया गया था।

5. दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 177 के अधीन न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के बिंदु पर, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 2 ने सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दर्ज अपने बयानों में स्वीकार किया कि उसका पति प्रतियोगिता परीक्षा की तैयारी करने के लिए मुख्यत: पटना में रह रहा था और विवाहोपरांत पाँच वर्षों तक उनके साथ रहने के दौरान कोई परिवाद नहीं किया गया था और न ही उसके साथ क्रूरता की गयी थी किंतु इसे केवल तब उठाया गया था जब उसके उकसावे पर उसके पिता द्वारा उसे ले जाया गया था। परिवाद याचिका से यह स्पष्ट होगा कि संपूर्ण घटना गिरिडीह न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत सिताला गाँव, थाना गंडे में उसके दांपत्यगृह में हुई थी किंतु परिवाद एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर, देवघर के समक्ष दाखिल किया गया था जिन्हें संज्ञान लेने की अधिकारिता नहीं थी।

6. अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह प्रासंगिक होगा कि दिनांक 26.9.2006 को सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान पर दर्ज अपने बयानों में उसने स्वीकार किया कि यातना का संपूर्ण अभिकथन अथवा मोटरसाइकिल के रूप में दहेज की मांग उसके दांपत्य गृह में किया गया था और आगे स्वीकार किया कि उसका पति/याची उसे जून, 2006 में मधुपुर ले गया था किंतु किसी प्रकट कृत्य के बिना। भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के निबंधनानुसार परिवादी के प्रति क्रूरता का कोई अंश पति-याची द्वारा नहीं किया गया था, जो देवघर जिला के अंतर्गत मधुपुर न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत मामला लाए।

7. वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री अरविंद कुमार चौधरी ने निवेदन किया कि परिवादी ने परिवाद याचिका में जैसा पैराग्राफ सं॰ 9 में अंतर्विष्ट है, स्पष्टत: कथन किया है कि याची सहित समस्त अभियुक्तगण उसके पिता के घर पनहैयाकोला, मधुपुर आए थे और स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी थी कि वे परिवादी को केवल तब स्वीकार करेंगे जब उनकी मांग पूरी की जाएगी और तब वे चले गए और इसलिए घटना का अंश मधुपुर न्यायालय की अधिकारिता के अधीन पनहैयाकोला में हुआ।

8. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों और पक्षों द्वारा दिए गए तर्कों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि परिवाद मामले के पैराग्राफ सं॰ 9 में अंतर्विष्ट तथ्य जिसके द्वारा यह दर्शाया गया था कि घटना का अंश पनहैयाकोला में हुआ था जब अभियुक्तगण वहाँ गए थे और परिवादी और उसके पिता को चेतावनी

दी थी जैसा यहाँ ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, को एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ द्वारा दर्ज सत्यनिष्ठ से प्रतिज्ञान पर परिवादी के बयानों में सिद्ध नहीं किया जा सका था। जाँच के बाद अभिकथित अपराध में अन्य अभियुक्तगण की सह-अपराधिता पर न्यायालय द्वारा अविश्वास किया गया था और इसलिए केवल पति-याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध का संज्ञान लिया गया था। मैं पाता हूँ कि परिवादी-वि॰ प॰ सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता यह दर्शाने में विफल रहे कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अभिकथित घटना के किसी अंश को याची द्वारा मधुपुर न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत किया गया था और इसलिए आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर ने संज्ञान लिया था, अधिकारिता द्वारा वर्जित था क्योंकि अपराध का संज्ञान लेने के लिए न्यायालय अपनी सक्षमता के अंतर्गत नहीं था जो गिरिडीह जिला के बाहर हुआ था जहाँ परिवादी का दांपत्य गृह स्थित था।

9. भूरा राम एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, 2008 (3) JLJR SC 287, में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया,

> *''परिवाद में कथित तथ्य प्रकट करते हैं कि परिवादी उस जगह से चली गयी थी जहाँ वह पति और ससुराल वालों के साथ रह रही थी और श्री गंगानगर, राजस्थान राज्य में आ गयी थी और परिवाद के मुताबिक समस्त अभिकथित कृत्य पंजाब राज्य में हुए थे। राजस्थान के न्यायालय को मामले पर विचार करने की अधिकारिता नहीं है। परिवाद में परिवादी द्वारा प्रकट ताथ्यिक परिदृश्य के आधार पर अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि वाद हेतुक का कोई अंश राजस्थान में उद्भूत नहीं हुआ और, इसलिए, संबंधित दंडाधिकारी को मामले पर विचार करने की अधिकारिता नहीं है। उसके परिणामस्वरूप, अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, श्री गंगानगर के समक्ष कार्यवाही अभिखंडित की जाती है। परिवादी को परिवाद लौटाया जाए और यदि वह चाहती है, विधि के अनुरुप विचार किए जाने के लिए समुचित न्यायालय में इसे दाखिल कर सकती है।''*

10. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, यहाँ पहले निर्दिष्ट विधि की प्रतिपादना पर विश्वास करते हुए मैं इसे आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, मधुपुर, देवघर द्वारा अपराध का संज्ञान लिया गया था, के अभिखंडन के लिए न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लेने हेतु सुयोग्य मामला पाता हूँ क्योंकि यह क्षेत्रीय अधिकारिता द्वारा वर्जित है। तद्नुसार, याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध का संज्ञान अभिखंडित किया जाता है। विधि के अनुरुप विचार किए जाने के लिए समुचित न्यायालय के समक्ष नया परिवाद दाखिल करने, यदि वह ऐसा चाहती है, की स्वतंत्रता के साथ परिवादी वि॰ प॰ सं॰ 2 को परिवाद लौटाने का निर्देश दिया जाता है।

11. इन संप्रेक्षण के साथ, यह याचिका अनुज्ञात है।

माननीय जे॰ सी॰ एस॰ रावत, न्यायमूर्ति

बीर सिंह जोंको

बनाम

मेसर्स यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लि॰ एवं अन्य

WP(S) No. 6169 of 2002. Decided on 5th April, 2011.

सेवा विधि–नियमितीकरण–स्थायी रूप से आमेलित किए जाने के लिए दैनिक मजदूर के पास कोई प्रवर्तनीय अधिकार नहीं है और न ही राज्य सरकार के पास उसे स्थायी बनाने के लिए तत्सम विधिक कर्तव्य है–नियमितीकरण इप्सित करता परमादेश पोषणीय नहीं है–दैनिक मजदूर/ठेका मजदूर/तदर्थ कर्मचारी स्थायी कर्मचारीगण के साथ समतुल्यता का दावा नहीं कर सकते हैं–याची की सेवाएँ कभी भी अभिमुक्त की जा सकती थी क्योंकि उसकी नियुक्ति नियत अवधि के लिए थी–याची को कोई अनुतोष (नियमित वेतन) प्रदान नहीं किया जा सकता है–याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 10)

निर्णयज विधि.–(2006)4 SCC 1; 322—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Das, For the Petitioner; M/s V. Shivnath, M.B. Lal, For the Respondents.

आदेश

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों को इप्सित करते हुए दाखिल की गयी है:–

1. यह कारण बताने के लिए कि क्यों और किस प्राधिकार के अधीन संबंधित प्रत्यर्थीगण ने कोई आदेश पारित किए बिना दिनांक 11.11.1997 के प्रभाव से अपने कर्तव्य का पालन करने से याची को रोक दिया है, प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए समुचित रिट/आदेश/निर्देश जारी करने के लिए;

2. आगे किसी विलम्ब के बिना अपने कर्तव्यों को फिर से संभालने के लिए याची को अनुमति देने के लिए संबंधित प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में आगे रिट जारी करने के लिए; और

3. याची की सेवा को नियमित करने के लिए और याची को उसका मासिक वेतन उस दर पर जिस पर अन्य सुरक्षा प्रहरियों को भुगतान किया जा रहा है का भुगतान करने के लिए और सेवा की निरंतरता का लाभ उसे देने के लिए भी संबंधित प्राधिकारीगण को निर्देश देने से आगे रिट के लिए।

2. सार में, याची को बिहार होम गार्ड्स अधिनियम की धारा 8 के अधीन होम गार्ड के रूप में नियुक्त किया गया था और दिनांक 11.11.1997 को उसकी सेवाएँ अभिमुक्त कर दी गयी थी। उक्त याची ने अपनी सेवाओं का नियमितीकरण इप्सित करते हुए और उन कर्मचारीगण जो स्थापन में स्थायी रूप से समरुप कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे, के समतुल्य वेतन के भुगतान का दावा करते हुए याची ने इस रिट याचिका को दाखिल किया था।

3. मैंने याची के अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख का परिशीलन किया है। याची की ओर से प्रतिवाद किया गया था कि याची को बिहार होम गार्ड्स अधिनियम की धारा 8 के अधीन नियुक्त किया गया था और तत्पश्चात उसकी सेवाएँ अभिमुक्त कर दी गयी थी यद्यपि उसने विभाग को दस वर्षों से अधिक की सेवा दी थी। याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस बिंदु पर जोर दिया कि प्रत्यर्थीगण को सरकारी उपक्रम होने के नाते याची की सेवाओं को नियमित कर दिया जाना चाहिए था क्योंकि याची लंबे समय से सेवा दे रहा था और वह यह दावा भी करते हैं कि याची को समान वेतन दिया जाना चाहिए था को उन लोगों के जो उन कर्मचारीगण को दिया जा रहा था जिन्हें विभाग ने स्थायी रूप से नियुक्त किया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रतिवाद किया कि दैनिक मजदूर और नैमित्तिक मजदूर, जिन्हें संविदात्मक आधार पर काम में नहीं लगाया गया है, के पास पद पर संपुष्ट किए जाने का वैध अधिकार है जब कभी भी रिक्ति होती है।

4. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवाद का खंडन किया और प्रतिवाद किया कि याची को पद पर नियमित किए जाने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि याची दैनिक मजदूर अथवा नैमित्तिक मजदूर

के रूप में काम कर रहा था। उन्होंने आगे इंगित किया कि बिहार होम गार्ड्स अधिनियम की धारा 8 स्पष्टत: प्रावधानित करती है कि ऐसे कर्मचारीगण (होम गार्ड्स) की सेवाएँ एक वर्ष की अवधि के लिए ली जाएँगी, जिस अवधि को समय-समय पर तीन वर्षों तक बढ़ाया जा सकता है। उसके अधीन विरचित नियम स्पष्टत: प्रावधानित करते हैं कि धारा के मुताबिक और नियमों के अधीन होमगार्ड की सेवा किसी भी समय अभिमुक्त की जा सकती है। उन्होनें आगे निवेदन किया कि अपनी सेवा के नियमितीकरण के लिए याची के पास कोई वैध अधिकार नहीं है।

5. यह विधि की सुनिश्चित प्रतिपादना है कि दैनिक मजदूर अथवा संविदात्मक मजदूर अथवा अस्थायी कर्मचारी किसी पद पर स्थायीत्वता का दावा नहीं कर सकता है और उसे स्थायी बनाने के लिए राज्य सरकार को निर्देश देता हुआ परमादेश इप्सित नहीं कर सकता है क्योंकि कर्मचारी दर्शा नहीं सकते हैं कि स्थायी रूप से आमेलित किए जाने के लिए उसके पास प्रवर्तनीय वैध अधिकार था अथवा यह कि उसको स्थायी बनाने के लिए राज्य सरकार किसी तत्सम वैध कर्तव्य/बाध्यता के अधीन था। अत:, नियमितीकरण इप्सित करता परमादेश पोषणीय नहीं है। **सचिव, कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी (3), 2006 (4) SCC 01,** में प्रकाशित मामले में पैराग्राफ 52 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

> *''.....यह उच्च कोटि की अवस्था जारी है और उनको स्थायी बनाने के लिए सरकार को निर्देश देता कर्मचारीगण के पक्ष में परमादेश जारी नहीं किया जा सकता था क्योंकि कर्मचारीगण दर्शा नहीं सकते हैं कि स्थायी रूप से आमेलित किए जाने के लिए उनके पास प्रवर्तनीय वैध अधिकार है अथवा उनको स्थायी बनाना राज्य का विधिक कर्तव्य है।''*

पूर्वोक्त मामले में पैराओं 43 और 45 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

> *43. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि लोक नियोजन में समानता के नियम के प्रति आसंजन हमारे संविधान का मूल लक्षण है और चूँकि विधि का शासन हमारे संविधान का केंद्र है, न्यायालय निश्चय ही अनुच्छेद 14 के उल्लंघन को मान्य ठहराने वाला आदेश पारित करने अथवा संविधान के अनुच्छेद 14 सह-पठित अनुच्छेद 16 की अपेक्षाओं के अनुपालन की आवश्यकता को दरकिनार करते हुए आदेश देने में अक्षम होगा। अत:, लोक नियोजन की योजना के साथ संगति में, इस न्यायालय को विधि अधिकथित करते हुए आवश्यकत: अभिनिर्धारित करना होगा कि जब तक नियुक्ति प्रासंगिक नियमों के निबंधनानुसार नहीं है और अर्हित व्यक्तियों के बीच समुचित प्रतिस्पर्धा के पश्चात नहीं की गयी है, यह नियुक्त व्यक्ति को कोई अधिकार प्रदान नहीं करेगी। यदि यह संविदात्मक नियुक्ति है, नियुक्ति संविदा के अंत के साथ समाप्त हो जाती है। यदि यह दैनिक मजदूरी अथवा नैमित्तिक आधार पर की गयी नियुक्ति है, यह समाप्त हो जाएगी जब इसे बीच में रोक दिया जाता है। समरुपत:, अस्थायी कर्मचारी नियुक्ति की अपनी अवधि के अवसान पर स्थायी बनाए जाने का दावा नहीं कर सकता था। यह भी स्पष्ट करना होगा कि मात्र इसलिए कि किसी अस्थायी कर्मचारी अथवा नैमित्तिक दैनिक मजदूर को उसकी नियुक्ति की अवधि के परे कुछ समय के लिए बनाए रखा जाता है, केवल ऐसे बने रहने के आधार पर नियमित सेवा में आमेलित किए जाने अथवा स्थायी बनाए जाने का हकदार वह नहीं होगा, यदि मूल नियुक्ति चयन की सम्यक् प्रक्रिया, जैसा प्रासंगिक नियमों द्वारा परिकल्पित किया गया है, का अनुसरण करते हुए नहीं की गयी थी। न्यायालय को अस्थायी कर्मचारीगण जिनके नियोजन की अवधि समाप्त हो गयी है अथवा तदर्थ कर्मचारीगण जो अपनी नियुक्ति की प्रकृति के फलस्वरूप कोई अधिकार अर्जित नहीं करते हैं, के कहने पर नियमित भर्ती रोकने की छूट नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन कार्रवाई करते हुए उच्च न्यायालय को सामान्यत: आमेलन,*

नियमितीकरण, अथवा स्थायी रूप से बने रहने के लिए निर्देशों को जारी नहीं करना चाहिए जब तक स्वयं भर्ती नियमित रूप से और संवैधानिक योजना के निबंधनानुसार नहीं की गयी थी। मात्र इसलिए कि कोई कर्मचारी न्यायालय के आदेश के आच्छादन के अधीन बना हुआ था, जिसे हमने निर्णय के पूर्व भाग में ''वादप्रिय नियोजन'' के रूप में वर्णित किया है, वह सेवा में आमेलित किए जाने अथवा स्थायी बनाए जाने का हकदार नहीं होगा। वस्तुतः, ऐसे मामलों में अंतरिम निर्देशों को जारी करने में उच्च न्यायालय न्यायोचित नहीं होगा चूँकि आखिरकार, यदि अंततः इसके पास आए कर्मचारी को अनुतोष का हकदार पाया जाता है, इसके लिए अनुतोष को इस तरीके से परिवर्तित करना संभव हो सकता है कि अंततः उस पर कोई प्रतिकूलता कारित नहीं होगी जबकि उसके नियोजन को जारी रखने का अंतरिम निर्देश चयन की नियमित प्रक्रिया को रोक देगा अथवा राज्य पर ऐसे कर्मचारी, जिसकी वस्तुतः आवश्यकता नहीं है, को भुगतान करने का बोझ अधिरोपित करेगा। न्यायालयों को यह सुनिश्चित करने में सावधान रहना चाहिए कि वे राज्य अथवा इसके अभिकरण द्वारा अपने क्रियाकलापों की आर्थिक व्यवस्था में अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं करें अथवा संवैधानिक एवं सांविधिक आज्ञाओं को अपेक्षित करना सुकर बनाने के लिए स्वयं उपकरण न दें।

45. यह निर्देश देते हुए कि नियुक्तियाँ, अस्थायी अथवा नैमित्तिक, नियमित की जाए अथवा स्थायी बनायी जाए, न्यायालय इस तथ्य से प्रभावित हो जाते हैं कि संबंधित व्यक्ति ने कुछ समय तक काम किया है और कुछ मामलों में लंबे समय तक। ऐसा नहीं है कि कोई व्यक्ति, जो अस्थायी अथवा नैमित्तिक प्रकृति का रोजगार स्वीकार करता है, अपने नियोजन के प्रकृति से अवगत नहीं है। वह खुले मन से रोजगार स्वीकार करता है। यह सत्य हो सकता है कि वह सौदाबाजी करने की दशा में नहीं तो–रत्ती भर भी नहीं–चूँकि वह जीवन यापन करने के लिए रोजगार खोज रहा था ताकि अपनी जीविका अर्जित कर सके और जो रोजगार उसे मिलता है, वह स्वीकार करता है। किंतु केवल उसी आधार पर नियुक्ति की संवैधानिक योजना को छोड़ देना और यह दृष्टिकोण अपनाना कि व्यक्ति जो अस्थायी रूप से अथवा नैमित्तिक रूप से नियोजित हो गया, उसे स्थायी रूप से बने रहने का निर्देश दिया जाना चाहिए, समुचित नहीं होगा। ऐसा करके, यह नियुक्ति का एक अन्य ढंग सृजित करेगा जो अनुज्ञेय नहीं है। यदि न्यायालय इस प्रकृति के संविदात्मक नियोजन को इस आधार पर शून्य करता है कि पक्षों के पास सौदाबाजी की समान शक्ति नहीं थी यह भी उस कर्मचारी को कोई अनुतोष प्रदान करने के लिए न्यायालय को सक्षम नहीं बनाएगा। प्रशासन की अत्यावश्यकता के मद्देनजर ऐसे नैमित्तिक अथवा अस्थायी नियोजन पर पूर्ण प्रतिबंध संभव नहीं है और यदि इसे अधिरोपित किया जाता है, इस अर्थ केवल यह होगा कि कुछ लोग, जो कम से कम अस्थायी रूप से, संविदात्मक रूप से अथवा नैमित्तिक रूप से नियोजन पाते हैं, उस नियोजन को भी नहीं पाएँगे जब ऐसा नियोजन सुरक्षित करना उन्हें कुछ राहत देता है। आखिरकार, हमारे विशाल देश के असंख्य नागरिक रोजगार की तलाश में हैं और किसी को नैमित्तिक अथवा अस्थायी नियोजन स्वीकार करने के लिए मजबूर नहीं किया जाता है यदि वह ऐसा रोजगार पाने का इच्छुक नहीं है। इस संदर्भ में ही किसी को इस आधार पर अग्रसर होना होगा कि इसकी प्रकृति और इसके परिणाम को पूर्णतः जानते हुए रोजगार स्वीकार किया गया था। दूसरे शब्दों में, रोजगार स्वीकार करते हुए भी संबंधित व्यक्ति अपने नियोजन की प्रकृति जानता है। यह अभिव्यक्ति इस शब्द के वास्तविक अर्थ में पद पर नियुक्ति नहीं है। पद, जिसमें वह अस्थायी रूप से नियोजित

है, पर उसके द्वारा अर्जित अधिकार अथवा उस पद में उसके हित को इस व्यापकता का नहीं माना जा सकता है जो राज्य की सेवा में उपलब्ध पदों पर नियमित नियुक्ति करने के लिए स्थापित प्रक्रिया को त्यागने के लिए सक्षम बनाए। यह तर्क कि किसी को जो कुछ समय से पद पर कार्यरत है, उसे बीच में छोड़ देना न्यायोचित नहीं होगा भले ही वह नियोजन की प्रकृति के प्रति जागरूक था जब उसने इसे स्वीकार किया था, का तर्क ऐसा नहीं है जो सार्वजनिक नियोजन के लिए विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़ देने के लिए सक्षम बनाएगा और संविधान के अनुच्छेद 14 में प्रतिष्ठापित संवैधानिकता एवं अवसर की समानता की कसौटी पर कसे जाने पर विफल हो जाएगा।''

6. यह भी विधि का सुनिश्चित प्रतिपादना है कि दैनिक मजदूर, संविदात्मक मजदूर अथवा कोई अन्य व्यक्ति, जिसे राज्य द्वारा तदर्थ कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया है, उन कर्मचारीगण के साथ समतुल्यता का दावा नहीं कर सकता हैं जिन्हें नियमों के अनुसार स्थायी रूप से नियुक्त किया गया है और **उमा देवी (ऊपर)** के पैरा 48 में संवैधानिक पीठ द्वारा यह दृष्टिकोण निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया है:–

''.....दैनिक मजदूरी पर नियोजन पर कोई अधिकार यह दावा करने के लिए आधारित नहीं किया जा सकता है कि ऐसे कर्मचारी को नियमित रूप से भर्ती किए गए उम्मीदवारों के समतुल्य माना जाना चाहिए और नियोजनों में स्थायी बना दिया जाना चाहिए भले ही यह उपधारित किया जाए कि समान काम के लिए समान वेतन का दावा करने के लिए इस सिद्धांत का अवलंब लिया जा सकता था। यह दावा करने के लिए कि उन्हें सेवा में आमेलित होने का अधिकार है, दैनिक मजदूरी पर अथवा अस्थायी रूप से अथवा संविदात्मक आधार पर नियोजित व्यक्ति को यह मूल अधिकार नहीं है। जैसा इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, उन्हें किसी पद का धारक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि, संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 के साथ संगत नियुक्ति करके ही नियमित नियुक्ति की जा सकती थी। दैनिक मजदूरी पर नियोजित अन्य कर्मचारीगण के समतुल्य माने जाने के अधिकार को नियमित रूप से नियोजित कर्मचारी के समतुल्य माने जाने के दावा तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। यह असमानों को समानों की तरह मानने जैसा होगा। सेवा में आमेलित किए जाने के अधिकार का दावा करने के लिए भी इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है भले ही उन्हें प्रासंगिक भर्ती नियमों के निबंधनानुसार चयनित कभी नहीं किया गया हो। अतः संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 पर आधारित तर्क नामंजूर किए जाते हैं।''

7. याची ने आगे दावा किया है कि उसे 30 दिनों के लिए 1350/-रुपयों और 31 दिनों के लिए 1395/-रुपयों की राशि का भुगतान किया गया था, जबकि अन्य सुरक्षा प्रहरी इसी तरह का काम करते हुए 3500/-रुपयों के मासिक वेतन का भुगतान पाते थे। रिट याचिका में यह दावा भी किया गया है कि याची को दिनांक 10.9.1978 को बिहार होम गार्ड्स के रौल में एनरॉल किया गया था और तत्पश्चात् वह मेसर्स यूरेनियम कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लि॰ के अधीन अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा था। वह वर्ष 1997 तक सेवा में बना रहा और दिनांक 11.11.1997 को उसकी सेवाएँ अभिमुक्त की गयी थी। उसने उन कर्मचारीगण के साथ समतुल्यता का दावा किया है जिन्हें प्रत्यर्थीगण द्वारा नियमित रूप से नियुक्त किया गया था। याची को वर्ष 1978 में नियुक्त अथवा एनरॉल किया गया था और वह तब से वेतन पा रहा था जो उसने रिट याचिका में बताया था, और उसने वर्ष 1997 तक समान काम के लिए समान वेतन का दावा नहीं किया था। पहले-पहले, उसने वर्ष 2002 में इस रिट याचिका को दाखिल किया और वह आगे दावा करता है कि उसकी सेवा गलत रूप से अभिमुक्त की गयी है।

8. याची की सेवा को किसी भी समय अभिमुक्त किया जा सकता था क्योंकि उसकी नियुक्ति नियत अवधि के लिए थी। उसके सेवा को केवल तदर्थ आधार पर अथवा दैनिक मजदूरी पर कहा जा सकता है। उसकी सेवा कभी भी अभिमुक्त की जा सकती है। प्रत्यर्थीगण के निर्देशानुसार याची की सेवा अभिमुक्त

करने में कोई अवैधता नहीं है। याची पहले पहल वर्ष 2002 में इस न्यायालय के समक्ष अपनी शिकायत के साथ आया। याची को, यदि वह वेतन की समतुल्यता का दावा कर रहा था, वर्ष 1997 के पहले ही इसका दावा करना चाहिए था। वह अपने अधिकारों से अनभिज्ञ बना रहा। उसने वेतन की समतुल्यता का दावा नहीं किया जैसा दावा उसने इस रिट याचिका में किया है। याची की ओर से ढिलाई थी जो वह रिट याचिका में स्पष्ट नहीं कर सका था। प्राधिकारीगण को अभ्यावेदन देना मात्र याची की ओर से की गयी ढिलाई को माफ करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस संदर्भ में, **कर्नाटक ऊर्जा निगम लि॰ बनाम के॰ थंगप्पन, [(2006)4 SCC 322]** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:–

> *"10. अनेक मामलों में इस न्यायालय द्वारा यह इंगित किया गया है कि विलंब को माफ करने के लिए अभ्यावेदन पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं है। इसे पहली बार के० वी० राजलक्ष्मीया बनाम मैसूर राज्य, (AIR 1967 SC 993) में कहा गया था। रविन्द्र नाथ बोस मामले, (AIR 1970 SC 470) में यह कहते हुए इसे दोहराया गया था कि समय की एक सीमा है जिसे अभ्यावेदन देने के लिए युक्तियुक्त माना जा सकता है और यदि सरकार ने एक अभ्यावेदन को ठुकरा दिया था, उसी प्रकार के दूसरे अभ्यावेदन देकर विलम्ब को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। उड़ीसा राज्य बनाम प्यारी मोहन सामंत राय, [(1977)3 SCC 396] में बार-बार अभ्यावेदन दिए जाने को विलंब का संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं माना गया था। उस मामले में केवल विलंब के कारण याचिका खारिज कर दी गयी थी। (देखें उड़ीसा राज्य बनाम अरुण कुमार पटनायक, (AIR 1976 SC 1639)"*

9. इसके अतिरिक्त, याची उस तिथि, जब उसकी सेवा अभिमुक्त कर दी गयी थी, से नियमित वेतन का भी दावा कर रहा है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि याची की सेवा सही प्रकार से अभिमुक्त की गयी है और याची को कोई अनुतोष जैसा इस रिट याचिका में दावा किया गया है, प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं है।

10. पूर्वोक्त कारणों से, यह रिट याचिका गुणागुण रहित है और खारिज किए जाने योग्य है।

तद्नुसार इस रिट याचिका को खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

सुधीर लकड़ा

बनाम

झारखंड राज्य, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के माध्यम से

Criminal Revision No. 1030 of 2010. Decided on 25th April, 2011.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 205—न्यायालय में व्यक्तिगत उपस्थिति से छुट्टी–याचिका की अस्वीकृति–याची कर्ज मंजूर करने में अभिकथित अनियमितता के लिए दांडिक अभियोजन का सामना कर रहा है–याची प्राथमिकी में नामित नहीं है–याची वर्तमान में मुंबई में पदस्थापित है–उसके लिए राँची में न्यायालय में हाजिर होना व्यवहार्यत: संभव नहीं है–याची को अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होने के निर्देश के साथ उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति से उसे अभियुक्त किया गया–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 8)

निर्णयज विधि.–2005 (1) East. Cr.C. 176 (Jhr)—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Nityanand Sinha, Vikram Sinha, Raj Kishore Kullu, Kislaya Prasad, For the Petitioner; Mr. Md. Mokhtar Khan, For the C.B.I..

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–यह दांडिक पुनरीक्षण श्री पंकज कुमार, विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, राँची द्वारा पारित दिनांक 17.9.2010 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा याची की ओर से आर॰ सी॰ केस सं॰ 14(S) 08-AHD-R में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 205 के अधीन दाखिल याचिका अस्वीकार कर दी गयी थी और अब यह मामला श्री राधा मोहन तिवारी, विशेष न्यायाधीश, सी॰ बी॰ आई॰, राँची के उत्तरजीवी न्यायालय के समक्ष लंबित है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथित करते हुए कि मेसर्स नीलम स्पाइसेज, राँची को 25,00,000/-रुपयों की नगद उधार सीमा और 75,00,000/-रुपयों का टर्म लोन बैंक ऑफ बड़ौदा द्वारा मंजूर किया गया था, आरक्षी अधीक्षक (सी॰ बी॰ आई॰), राँची को संबोधित दिनांक 28.11.2008 को लिखित रिपोर्ट दाखिल करके मुख्य प्रबंधक, बैंक ऑफ बड़ौदा, मुख्य शाखा, राँची द्वारा मामला संस्थापित किया गया था। यह अभिकथित किया गया था कि ऊपर कथित विभिन्न शीर्षों पर क्रमश: 74,92,805 रुपयों की और 16,59,716/-रुपयों की राशि उनपर लगने वाले ब्याज के साथ मेसर्स नीलम स्पाइसेज, राँची के विरुद्ध अभी भी बकाया थी। संतोष साहू और सतीश कुमार साहू मेसर्स नीलम स्पाइसेज, राँची के भागीदार थे और पूर्वोक्त भागीदारों की अचल संपत्ति के साम्यापूर्ण बंधक के विरुद्ध कर्ज राशि मंजूर की गयी थी जबकि श्री बुधराम साहू, जयराम साहू और गिरधारीराम साहू गारंटीदाता थे और इसके लिए सांपार्श्विक प्रतिभूति के रूप में बैंक ऑफ बड़ौदा को विक्रय विलेख कर्ज के आवेदन के साथ प्रस्तुत किए गए थे। यह अभिकथित किया गया था कि फार्म के भागीदार श्री संतोष साहू ने वास भूमि के दो टुकड़ों अर्थात् पहला सिमलिया गाँव में अवस्थित 83 डिसमिल माप वाली भूखंड सं॰ 1937 से 1940 और दूसरा झिरी गाँव में .25 एकड़ माप वाली भूमि के संबंध में भूमि के दो विलेखों को जमा किया था। गारंटीदाता द्वारा प्रस्तुत भूमि के विलेखों ने अछोरी गाँव, रातू, राँची अवस्थित 2.81 एकड़ भूमि को प्रकट किया। यह कथन किया गया था कि जब कर्ज नहीं चुकाया गया, बैंक प्राधिकारियों ने अचल संपत्तियों का सत्यापन किया और सत्यापन की प्रक्रिया में यह पता चला कि कर्जदार अथवा गारंटीदाता द्वारा दर्शायी गयी अचल संपत्ति उनकी नहीं थी। यह पता लगाया गया था कि भूमि के 0.81 एकड़ को 2.81 एकड़ के रूप में पढ़े जाने के लिए छल साधन किया था और इस तरीके से, बैंक के साथ छल किया गया था कि इसे कूटरचित प्रतिभूतियों के आधार पर उधार लेने वालों/कर्जदारों के पक्ष में कर्ज मंजूर करने के लिए प्रेरित किया गया था और इसलिए भारतीय दंड संहिता की धाराओं 120B/420/467/468/471 के अधीन अभिकथित अपराध के लिए कर्जदारों/गारंटीदाताओं अर्थात् संतोष साहू, सतीश कुमार साहू, बुधराम साहू, जयराम साहू और गिरधारी राम साहू के विरुद्ध दिनांक 17.12.2008 को लिखित परिवाद पर आर॰ सी॰ केस सं॰ 14 (S)/08-AHD-R दर्ज किया गया था।

3. विद्वान अधिवक्ता, श्री सिन्हा ने निवेदन किया कि याची को प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया है किंतु प्रासंगिक समय पर वह बैंक ऑफ बड़ौदा में प्रबंधक, क्रेडिट के रूप में पदस्थापित था। उसे कर्जदारों द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों की वास्तविकता का परीक्षण करने का कर्तव्य नहीं दिया गया था। सामान्य प्रक्रिया यह थी कि शाखा प्रबंधक द्वारा कर्ज की अनुशंसा करने के पहले नए एस॰ एस॰ आई॰ इकाई

के लिए मंजूरी पूर्व निरीक्षण रिपोर्ट तैयार किया जाता था और निरीक्षण बैंक के सक्षम अधिकारियों द्वारा किया जाता था। बैंकिंग नियमों के मुताबिक, कागजातों और प्रासंगिक दस्तावेजों का परीक्षण बैंक के विधि खंड द्वारा किया जाता था और पैनल में मौजूद वकीलों का विधिक मत प्राप्त करने के बाद ही कर्ज मंजूर किया जाता था और इस कारण से, सूचक ने आरक्षी अधीक्षक (सी॰ बी॰ आई॰) के समक्ष प्रस्तुत अपने लिखित रिपोर्ट में अभियुक्त के रूप में याची को नामित नहीं किया था। अब याची बैंक ऑफ बड़ौदा में प्रबंधक, क्रेडिट के रूप में मुंबई में पदस्थापित है। विशेष न्यायालय, सी॰ बी॰ आई॰ से समन प्राप्त करने पर उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 205 के अधीन अपने वकील द्वारा इस मामले में प्रतिनिधित्व किए जाने के लिए आवेदन दिया किंतु इसे आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। प्रत्येक तिथि पर विशेष न्यायालय, सी॰ बी॰ आई॰ में उपस्थित होना याची, जिसके विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं था, के लिए व्यवहार्यत: संभव नहीं था और इसलिए उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 205 के अधीन याचिका दाखिल करके विशेष न्यायालय की कृपा का अनुरोध किया जिसे अस्वीकार का दिया गया था।

4. विद्वान अधिवक्ता, श्री सिन्हा ने आगे निवेदन किया कि याची के विरुद्ध कोई सामग्री नहीं है किंतु चूँकि उसके विरुद्ध समन जारी किया गया है, उसने न्यायालय में अपनी व्यक्तिगत उपस्थिति से अभिमुक्ति के लिए और प्रत्येक तिथि पर अपने वकील के माध्यम से प्रतिनिधित्व किए जाने की अनुमति के लिए अनुरोध किया जिसे केवल इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि अभिकथन गंभीर प्रकृति के थे और उसकी याचिका विचार योग्य नहीं थी।

5. सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री खान को सुना गया, जिन्होंने निवेदन किया कि बैंक ऑफ बड़ौदा के संबंधित शाखा में याची की पदस्थापना की अवधि के दौरान नामित अभियुक्त को कर्ज प्रदान करके संव्यवहार किया गया था।

6. डॉ॰ (श्रीमती) करुणा झा बनाम झारखंड राज्य एवं एक अन्य, 2005 (1) East. Cr. C.176 (Jhr.), में प्रकाशित मामले में इस न्यायालय की पीठ द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:–

> *''रामहर्ष दास बनाम बिहार राज्य, 1998(1) All PLJR 495, में प्रकाशित मामले में पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने प्रावधान का अधिमूल्यन करते हुए संप्रेक्षित किया कि दंडाधिकारी वारन्ट मामलों में भी दं० प्र० सं० की धारा 205 के अधीन उसको प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकता है परंतु यह कि उसने वारन्ट जारी करने के बजाए समन जारी किया हो। न्यायालय ने आगे संप्रेक्षित किया कि ऐसे मामले में जहाँ पहले वारन्ट ही जारी किया गया है, दं० प्र० सं० की धारा 205 के अधीन शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि कोई कठोर नियम नहीं है जिसे व्यक्तिगत उपस्थिति से अभिमुक्ति के लिए प्रार्थना की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का प्रश्न विनिश्चित करने के लिए अधिकथित किया जा सकता है।''*

7. इन तथ्यों एवं परिस्थितियों के अधीन, याची द्वारा दाखिल दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है और इस निर्देश के साथ याची को अपनी व्यक्तिगत उपस्थिति से अभिमुक्त किया जाता है कि संबंधित न्यायालय के संतोषानुसार वचनबंध देकर की वह उक्त मामले में किसी अभियुक्त विशेष के रूप में अपनी पहचान को विवादित नहीं करेगा, अपने वकील/वकीलों के माध्यम से उपस्थित होगा और उसके अधिवक्ता/अधिवक्तागण न्यायालय में उपस्थित रहेंगे और अपनी अनुपस्थिति में अभियोजन साक्ष्य दर्ज किए जाने पर उसकी ओर से कोई आपत्ति नहीं की जाएगी। यह संप्रेक्षित किया गया है कि विचारण के क्रम में किसी भी समय, यदि विचारण न्यायालय पाता है कि याची की उपस्थिति आवश्यक है, तब दर्ज

किए जाने वाले कारणों से न्यायालय अभियुक्त याची को सशरीर उपस्थित होने का निर्देश दे सकता है और ऐसी स्थिति में याची न्यायालय में उपस्थित होने से कतराएगा नहीं।

8. पूर्वोक्त संप्रेक्षण और निर्देश के साथ यह दांडिक पुनरीक्षण अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय भगवती प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश एवं एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति

गिरिन्द्र प्रसाद (3783 में)

अधिवक्ता संघ एवं एक अन्य (1134 में)

बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य (3783 में)

पटना उच्च न्यायालय एवं एक अन्य (1134 में)

W.P. (PIL) No. 3783 of 2005 with CWJC No. 1134 of 1995. Decided on 28th April, 2011.

बिहार राज्य अधिवक्ता कल्याण कोष अधिनियम, 1983—प्रयोज्यता–राज्य का बिहार राज्य अधिवक्ता कल्याण कोष अधिनियम, 1983 को निरसित या प्रतिस्थापित करने का कोई इरादा नहीं है–राज्य इसे राज्य के विभाजन के पूर्व इसमें समाविष्ट सभी संशोधनों के साथ लागू करने का इरादा रखती है–अधिनियम झारखंड राज्य पर प्रयोज्य होगा। (पैरा 2)

अधिवक्तागण.–Mr. V. Shivnath, For the Petitioner; Mr. A.K. Sinha, For the State of Jharkhand; Mr. P.C. Tripathy, For the Jharkhand State Bar Council; Mr. K. Murari, For the Bihar State Bar Council; Mr. M.S. Anwar, For the Bar Council of India; Mr. S.P. Roy, For the State of Bihar; Mr. A.K. Mehta, For the Bihar State Trustee Committee; Mr. S.B. Gadodia, For the Jharkhand State Trustee Committee.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. राज्य की ओर से विद्वान महाधिवक्ता के स्पष्ट कथन की दृष्टि में कि राज्य का बिहार राज्य अधिवक्ता कल्याण कोष अधिनियम, 1983 को निरसित या प्रतिस्थापित करने का कोई आशय नहीं है एवं राज्य के विभाजन के पहले इसमें समाविष्ट सभी संशोधनों के साथ इसे लागू करने का राज्य का इरादा है तथा अधिनियम झारखंड राज्य पर प्रयोज्य होगा।

3. विद्वान महाधिवक्ता द्वारा दिए गए दृष्टिकोण के साथ, इस मामले में आगे कार्यवाही करने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता है एवं दिनांक 22 अगस्त, 2006 का आदेश उस सीमा तक स्पष्ट किया जाता है। जहाँ तक बिहार राज्य अधिवक्ता कल्याण कोष अधिनियम, 1983 का सम्बन्ध है आगे कुछ और पारित किए जाने की आवश्यकता नहीं है। जब एवं जैसे ही प्रश्न उत्पन्न होगा अन्य मुद्दा ग्रहण किया जायेगा।

4. जब एवं जैसे ही पक्षकार आवेदन करते हैं एवं स्थिति ऐसा आवश्यक बनाती है, इस मामले को प्रस्तुत किया जाय।